डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य

Dr. Dayakrishan Vijay ke Gadya Sahitya ka Vagvaidagdhya

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

(श्रीमती) ऋचा भार्गव

शोध निर्देशिका

डॉ. अनिता वर्मा

सह–आचार्य

हिन्दी विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2019

प्रमाण—पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोध छात्रा (श्रीमती) ऋचा भार्गव द्वारा प्रस्तुत "**डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य"** शीर्षक शोध—प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है।

प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध (श्रीमती) ऋचा भार्गव की मौलिक कृति है। इन्होंने दो सौ दिनों से अधिक अवधि तक निरंतर मेरे संपर्क में रहकर यह अनुसंधान कार्य सम्पन्न किया है। मैं इस शोध प्रबन्ध को पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि के लिए संस्तुत करती हूँ।

दिनांक : **हस्ताक्षर शोध निर्देशिका**

डॉ. अनिता वर्मा
सह—आचार्य
हिन्दी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled **"डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य"** by **Smt. Richa Bhargava** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.

e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)

Smt. Richa Bhargava

Place :

Date :

(Name & Signature and Seal of

Dr. Anita Verma

Research Supervisor

Place :

Date :

शोध सार

संवेदना सृजन का आधार होती है प्रत्येक साहित्यकार अपनी अनुभूतियों को शब्दबद्ध करते हुए साहित्य सृजन करता है। तथा पाठकों के मनोभावों को स्पर्श करता हुआ एक महनीय संदेश भी हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। प्रत्येक साहित्यकार की अपनी विशिष्टता व प्रस्तुतीकरण की शैली होती है। इसी क्रम में मैंने 'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' विषय को अपने शोध का विषय बनाया है। इसके अन्तर्गत मैंने इनके नाटक, निबंध, कथासंग्रह, उपन्यास आदि को आधार बनाकर डॉ. विजय के लेखन कौशल का विश्लेषणात्मक अध्ययन को प्रस्तुत किया है। इनका कहानी संग्रह उलझन, एक और क्रांति, में तत्कालीन परिवेश व वर्तमान परिवेश में लगभग 50 वर्ष का अन्तर है तब से लेकर अब तक समाज में अनेक परिवर्तन आए हैं। उस परिवर्तन की आहट को साहित्यकार महसूस करता है। मैंने इस अन्तर का विश्लेषण करते हुए समस्याएँ जैसे एकाकीपन, धार्मिक विश्वास, संस्कारों की महत्ता, त्रिकोणीय प्रेम, पारिवारिक समर्पण भाव, त्याग आदि को दर्शाया है। इनके नाटक, सिंहासन, राग से विराग तक, छत्रपति शिवाजी सभी ऐतिहासिक संदर्भों को लिये हुए हैं। इनका उपन्यास 'पायसपायी' रामानन्द सम्प्रदाय के एक परम श्रद्धेय संत के नाम के साथ जुड़ा हृदयस्पर्शी इतिहास को याद दिलाता है। डॉ. विजय ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में रामभक्ति की गंगा को प्रवाहित करने वाले आचार्य श्री स्वामी रामानन्द जी के सम्पूर्ण जीवन पर जीवन चरितात्मक उपन्यास की रचना की है। स्वामी रामचरण जी महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय के निर्गुण संत हैं। संतों, महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर उपन्यास लेखन की परम्परा हिन्दी उपन्यास परम्परा में विरल है। नाटक 'सिंहासन' ऐतिहासिक संदर्भों को लिये हुए है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक षडयंत्र व संबंधों के त्याग समर्पण, भाव को भी दर्शाया गया है। तथा ऐतिहासिक पात्रों की चारित्रिक विशेषता तथा कथानक की सूत्र बद्धता अभिव्यक्ति हुई है। 'छत्रपति शिवाजी' नाटक में डॉ. विजय ने ऐतिहासिक महान योद्धा शिवाजी का चारित्रिक वर्णन तथा मराठा प्रभुत्व का अनूठा चित्रण प्रस्तुत किया है। यह बहुत ही मार्मिक भाव से देश के प्रति त्याग, समर्पण बलिदान की कहानी व्यक्त करता है। 'आदि सम्राट्' नाटक में गुप्त वंश के राजा का देश के प्रति निष्ठा, समर्पण का भाव आदि चारित्रिक विशेषताओं से समृद्ध हैं तथा यह नाटक एक महनीय संदेश को प्रस्तुत करता है।

'राग से विराग तक' नाटक में डॉ. विजय ने एक महान राजा का अपने राजपाट को त्यागकर वैराग्य के भाव को अपनाने की गाथा का वर्णन है। जो अत्यन्त प्रेरणास्पद व आदर्श हम सबके समक्ष प्रस्तुत करता है इसमें चारित्रिक वर्णन संवाद, कथोपकथन आदि सभी बहुत ही सरल व सटीक भाव को लिये हुए है तथा पढ़ने में बड़े ही रौचक व मार्मिक लगते हैं।

डॉ. विजय के निबंध संग्रह गीता अनुशीलन, राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, विचारों के अमलतास, साहित्य संस्कृति और युगबोध, राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, हिन्दी भाषा और महाकाव्य, संस्कृति का वागर्थ, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका इन सभी निबंध संग्रहों में डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, रीति–रिवाज, परम्परा, संस्कार आदि को गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है। इन सभी निबंधों में हमें भारतीय दर्शन वेद, उपनिषद्, संस्कृति की विशेषता का विस्तार से अध्ययन करने को मिलता है। इस ज्ञान से हमारे समाज का निर्माण सभ्यता व संस्कृति से ओत–प्रोत है। इन सभी निबंधों में आदर्शवाद राष्ट्रीयता, मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि अन्तर्निहित हैं।

मैंने डॉ. विजय के गद्य साहित्य के लेखन कौशल की अभिव्यक्ति एवं प्रतिभा से प्रेरित होकर इस विषय पर कार्य करते हुए, गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य, को अपनी दृष्टि से मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। सुविधा के लिए इसे मैंने छः अध्यायों में बाँटा है।

प्रथम अध्याय – में 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्यसाहित्य और वाग्वैदग्ध्य' में गद्य साहित्य का इतिहास, परिभाषा, विकास व सर्वश्रेष्ठ कृतियों का सारांश विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय – में 'डॉ. दया कृष्ण विजय का रचना संसार' है। इसमें मैंने डॉ. विजय के नाटक, कहानी, उपन्यास व निबंध संग्रह में प्रस्तुत वागवैदग्ध्य के भाव को विभिन्न उदाहरणों से मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।

तृतीय अध्याय – में 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य' है। इसमें नाटकों, कथा, उपन्यासों में पात्रों की संवेदना तथा उनके मन का उत्स संवादों के द्वारा प्रकट किया गया है। आदर्शवाद, राष्ट्रीयता मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि को समाहित करते हुए गद्य सहित्य का विश्लेषण इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय – में 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य के विविध आयाम एवं वाग्वैदग्ध्य' है। इसमें सामाजिक समस्याएँ जैसे दहेज, जातिगत भाव, त्रिकोण प्रेम, एकाकीपन, परिवार विच्छेद को सौदाहरण सहित दर्शाया गया है। इनमें सांस्कृतिक धरोहर का चित्रण भी मिलता है जिसमें धर्म, दर्शन, सभ्यता एवं संस्कार की व्याख्या विस्तार से की गई है। जिसके द्वारा हमें इनकी कृतियों में अन्तर्निहित संदेश पढ़ने को मिलता है। यह कृतियाँ समाज को निश्चित रूप से दिशा निर्देश प्रदान करती हुई एक सकारात्मक संदेश भी प्रस्तुत करती है।

पंचम अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य व समसामयिक संदर्भ' में गद्य की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ जैसे निबंधात्मक, वर्णनात्मक, सामाजिक, आंचलिकता आदि को बताया गया है। आंचलिकता में क्षेत्र विशेष हाड़ौती अंचल की रीति, परम्परा, भाषा, वेशभूषा आदि पर प्रकाश डाला गया है। पारिवारिक

संदर्भ में परिवार की स्थितियों को दर्शाया गया है। परिवेशगत प्रवृत्ति के अन्तर्गत ग्रामीण व शहरी परिवेश को दर्शाते हुए तत्कालीन परिवेश तथा वर्तमान परिवेश के अन्तर को भी इस अध्याय में उदाहरण के साथ इंगित किया गया है।

षष्ठ अध्याय – 'शिल्प विधान' में डॉ. विजय के गद्य साहित्य के लेखन की शैली का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत है। इसमें डॉ. विजय के लेखन कौशल में प्रयुक्त भाषा शैली, मुहावरे, लोकोक्ति, सांकेतिकता आदि सभी का विवेचन किया गया है। डॉ. विजय की अपनी विशिष्ट शैली व चिन्तन है जिससे उनका सम्पूर्ण गद्य साहित्य अत्यन्त समृद्ध व प्रभावी बन पड़ा है। इन सबका उल्लेख इस अध्याय में उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। जिससे डॉ. विजय का शिल्प वैशिष्ट्य उद्घाटित हो सके।

इस प्रकार मैंने 'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' विषय पर शोध कार्य करते हुए अपनी दृष्टि व समझ के अनुसार इनके गद्य साहित्य का सूक्ष्मता से अध्ययन करते हुए इनके लेखन कौशल व गद्य साहित्य के मर्म को विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास किया है।

♦♦♦♦

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Anita Verma and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Smt. Richa Bhargava

This is to certify that the above statement made by Smt. Richa Bhargava (Registration No. RS/1438/16 is correct to the best of my knowledge

Dr. Anita Verma

Associate Professor

Supervisor

प्राक्कथन

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. दयाकृष्ण विजय ने गद्य साहित्य के माध्यम से गद्य साहित्य का वाग्वैदध्य का सूत्रपात किया है। डॉ. विजय के गद्य साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध, कथा संग्रह आदि सभी में अपने सृजन कौशल का परिचय दिया है। डॉ. विजय के लेखन कौशल लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसमें सामाजिक सरोकार, व्यंग्य शैली, निबंधात्मक शैली आदि सभी से 'गद्य साहित्य' में परिष्कार हुआ है।

डॉ. विजय ने महापुरुष के जीवन को औपन्यासिक शिल्प में हृदयावर्जक शैली के माधुर्य में भिगोकर प्रस्तुत किया है। 'पायसपायी' रामानन्द सम्प्रदाय के एक परम श्रद्धेय संत के नाम के साथ जुड़ा हृदयस्पर्शी इतिहास याद दिलाता है। डॉ. विजय ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में रामभक्ति की गंगा को प्रवाहित करने वाले आचार्य श्री स्वामी रामानन्द जी के सम्पूर्ण जीवन पर जीवन चरितात्मक उपन्यास की रचना की है। स्वामी रामचरण जी महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय के निर्गुण संत हैं। संतों, महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर उपन्यास लेखन की परम्परा हिन्दी उपन्यास परम्परा में विरल है। डॉ. विजय ने इस उपन्यास लेखन से हिन्दू सभ्यता, परम्परा व संस्कृति से को उजागर किया है। कथासंग्रह 'बड़ी मछली', 'उलझन', 'स्वप्न और सत्य', 'राग से विराग तक' में डॉ. विजय ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक पक्ष को उजागर किया है। नाटक 'सिंहासन' ऐतिहासिक संदर्भों को लिये हुए है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक षडयंत्र व संबंधों के त्याग समर्पण, भाव को भी दर्शाया गया है। तथा ऐतिहासिक पात्रों की चारित्रिक विशेषता तथा कथानक की सूत्र बद्धता अभिव्यक्ति हुई है। 'छत्रपति शिवाजी' नाटक में डॉ. विजय ने ऐतिहासिक महान योद्धा शिवाजी का चारित्रिक वर्णन तथा मराठा प्रभुत्व का अनूठा चित्रण प्रस्तुत किया है। यह बहुत ही मार्मिक भाव से देश के प्रति त्याग, समर्पण बलिदान की कहानी व्यक्त करता है। 'आदि सम्राट्' नाटक में गुप्त वंश के राजा का देश के प्रति निष्ठा, समर्पण का भाव आदि चारित्रिक विशेषताओं से समृद्ध हैं तथा यह नाटक एक महनीय संदेश को प्रस्तुत करता है।

'राग से विराग तक' नाटक में डॉ. विजय ने एक महान राजा का अपने राजपाट को त्यागकर वैराग्य के भाव को अपनाने की गाथा का वर्णन है। जो अत्यन्त प्रेरणास्पद व आदर्श हम सबके समक्ष प्रस्तुत करता है इसमें चारित्रिक वर्णन संवाद, कथोपकथन आदि सभी बहुत ही सरल व सटीक भाव को लिये हुए है तथा पढ़ने में बड़े ही रौचक व मार्मिक लगते हैं। डॉ. विजय के निबंध संग्रह गीता अनुशीलन, राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, विचारों के अमलतास, साहित्य संस्कृति और युगबोध, राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, हिन्दी भाषा और

महाकाव्य, संस्कृति का वागर्थ, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका इन सभी निबंध संग्रहों में डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, रीति–रिवाज, परम्परा, संस्कार आदि को गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है। इन सभी निबंधों में हमें भारतीय दर्शन वेद, उपनिषद्, संस्कृति की विशेषता का विस्तार से अध्ययन करने को मिलता है। इस ज्ञान से हमारे समाज का निर्माण सभ्यता व संस्कृति से ओत–प्रोत है। इन सभी निबंधों में आदर्शवाद राष्ट्रीयता, मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि अन्तर्निहित हैं।

मैंने डॉ. विजय के गद्य साहित्य के लेखन कौशल की अभिव्यक्ति एवं प्रतिभा से प्रेरित होकर इस विषय पर कार्य करते हुए, गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य, को अपनी दृष्टि से मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। सुविधा के लिए इसे मैंने छः अध्यायों में बाँटा है।

प्रथम अध्याय – में 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्यसाहित्य और वाग्वैदग्ध्य' में गद्य साहित्य का इतिहास, परिभाषा, विकास व सर्वश्रेष्ठ कृतियों का सारांश विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय – में 'डॉ. दया कृष्ण विजय का रचना संसार' है। इसमें मैंने डॉ. विजय के नाटक, कहानी, उपन्यास व निबंध संग्रह में प्रस्तुत वागवैदग्ध्य के भाव को विभिन्न उदाहरणों से मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।

तृतीय अध्याय – में 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य' है। इसमें नाटकों, कथा, उपन्यासों में पात्रों की संवेदना तथा उनके मन का उत्स संवादों के द्वारा प्रकट किया गया है। आदर्शवाद, राष्ट्रीयता मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि को समाहित करते हुए गद्य सहित्य का विश्लेषण इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय – में 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य के विविध आयाम एवं वाग्वैदग्ध्य' है। इसमें सामाजिक समस्याएँ जैसे दहेज, जातिगत भाव, त्रिकोण प्रेम, एकाकीपन, परिवार विच्छेद को सौदाहरण सहित दर्शाया गया है। इनमें सांस्कृतिक धरोहर का चित्रण भी मिलता है जिसमें धर्म, दर्शन, सभ्यता एवं संस्कार की व्याख्या विस्तार से की गई है। जिसके द्वारा हमें इनकी कृतियों में अन्तर्निहित संदेश पढ़ने को मिलता है। यह कृतियाँ समाज को निश्चित रूप से दिशा निर्देश प्रदान करती हुई एक सकारात्मक संदेश भी प्रस्तुत करती है।

पंचम अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य व समसामयिक संदर्भ' में गद्य की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ जैसे निबंधात्मक, वर्णात्मक, चारित्रिगगत विशेषताएँ आदि को बताया गया है। आंचलिकता में क्षेत्र विशेष हाड़ौती अंचल की रीति, परम्परा, भाषा, वेशभूषा आदि पर प्रकाश डाला गया है। पारिवारिक संदर्भ में परिवार की स्थितियों को दर्शाया गया है। परिवेशगत प्रवृत्ति के अन्तर्गत ग्रामीण व शहरी परिवेश को दर्शाते हुए तत्कालीन परिवेश तथा वर्तमान परिवेश के अन्तर को भी इस अध्याय में उदाहरण के साथ इंगित किया गया है।

षष्ठ अध्याय – 'शिल्प विधान' में डॉ. विजय के गद्य साहित्य के लेखन की शैली का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत है। इसमें डॉ. विजय के लेखन कौशल में प्रयुक्त भाषा शैली, मुहावरे, लोकोक्ति, सांकेतिकता

आदि सभी का विवेचन किया गया है। डॉ. विजय की अपनी विशिष्ट शैली व चिन्तन है जिससे उनका सम्पूर्ण गद्य साहित्य अत्यन्त समृद्ध व प्रभावी बन पड़ा है। इन सबका उल्लेख इस अध्याय में उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। जिससे डॉ. विजय का शिल्प वैशिष्ट्य उद्घाटित हो सके।

उपसंहार – में सम्पूर्ण गद्य साहित्य का सार प्रस्तुत करते हुए डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य में गद्य की विशेषताओं का अवलोकन किया गया है।

इस शोध प्रबंध को सम्पन्न करने में जिनका स्नेह व सहयोग प्राप्त हुआ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम कर्त्तव्य मानती हूँ।

मैं हृदय से आभारी हूँ अपनी शोध निर्देशिका डॉ. अनिता वर्मा की जिन्होंने विषय चयन से लेकर विषय निर्वहन तक मेरा मार्ग निर्देशन किया। मैं हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय कोटा के समस्त सदस्यों का भी आभार व्यक्त करती हूँ। जिनका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग प्राप्त हुआ।

मेरे शोध परख परिवेश को समृद्ध करने में मेरे पति श्री शशांक अग्निहोत्री व पुत्र अमृतांश व मेरे परम श्रद्धेय पिता डॉ. मदनमोहन भार्गव एवं माता श्रीमती रमा भार्गव एवं मेरे सास–ससुर सुधीर अग्निहोत्री व श्रीमती सरोज अग्निहोत्री एवं मेरे भाई–भाभी श्री कृष्ण मोहन भार्गव–श्रीमती नीलिमा भार्गव व मेरी बहन–बहनोई नीता–राधेश्याम, सुनीता–डॉ. नरेश भार्गव, अनीता–ओम प्रकाश, संतोष–योगेश, रेखा–विनय व छोटी बहन डॉ. अंजु–डॉ. मथुरेश गुप्ता आदि सभी ने मेरे इस शोध कार्य को सम्पन्न कराने में मुझे स्नेहिल सहयोग व अनुकूल वातावरण प्रदान किया है। अतः मैं ऋचा भार्गव इन सबका हृदय के अन्तः स्थल की गहराईयों से आभार प्रकट करती हूँ।

अन्त में मैं कुशल, अत्रुटिपूर्ण एवं तत्परता से टंकण कार्य करने के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा को धन्यवाद देना चाहूँगी जिन्होंने इस शोध ग्रंथ को साकार रूप दिया वह प्रशंसनीय हैं। वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को शुद्ध करने का मैंने यथा सम्भव प्रयास किया हैं, फिर भी टंकण संबंधी कोई त्रुटियाँ रह गयी हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं हिन्दी–विभाग के समस्त गुरुजनों की भी ऋणी हूँ, जिन्होंने समय–समय पर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

शोधार्थी

(श्रीमती) ऋचा भार्गव

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	शोध सार	**i - iii**
	प्राक्कथन	**iv - vi**
	प्रथम अध्याय	**1–33**
1.0	**डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य**	
1.1	हिन्दी गद्य साहित्य–एक परिचय	
1.2	वाग्वैदग्ध्य का अर्थ	
1.2.1	वाग्वैदग्ध्य का आभास सर्वप्रथम सूरदास द्वारा रचित	
1.2.2	व्यंग्यात्मकता	
1.2.3	वाग्विदग्धता	
1.3	हिन्दी गद्य और वाग्वैदग्ध्य	
1.4	हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाएँ	
1.4.1	हिन्दी निबंध और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.2	डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के निबंध और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.3	उपन्यास लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.4	कहानी लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.5	नाटक लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
14.6	एकांकी लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.7	जीवनी साहित्य और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.8	आत्मकथा और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.9	पत्र लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.10	हिन्दी गद्य काव्य और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.11	रेखाचित्र और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.12	संस्मरण लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.13	रिपोर्ताज लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.14	हिन्दी का यात्रा–साहित्य और वाग्वैदग्ध्य	
1.4.15	साक्षात्कार साहित्य लेखन और वाग्वैदग्ध्य	
1.5	हिन्दी गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य का महत्त्व	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	द्वितीय अध्याय	**34–98**
2.0	**डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का रचना संसार**	
2.1	कथा संग्रह	
2.1.1	उलझन	
2.1.2	स्वप्न और सत्य	
2.1.3	बड़ी मछली	
2.1.4	एक और क्रांति	
2.2	नाटक संग्रह	
2.2.1	सिंहासन	
2.2.2	आदि सम्राट	
2.2.3	छत्रपति शिवाजी	
2.2.4	राग से विराग तक	
2.3	उपन्यास	
2.3.1	रमताराम	
2.3.2	पायसपायी	
2.4	निबंध संग्रह	
2.4.1	गीता अनुशीलन	
2.4.2	राजस्थानी काव्य साधना अब और तब	
2.4.3	विचारों के अमलतास	
2.4.4	साहित्य संस्कृति और युगबोध	
2.4.5	राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना	
2.4.6	हिन्दी भाषा और महाकाव्य	
2.4.7	संस्कृति का वागर्थ	
2.4.8	राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य	
2.4.9	वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका	
	तृतीय अध्याय	**99–166**
3.0	**डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य**	
3.1	प्रकृति और परिवेश	
3.2	आदर्शवाद	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
3.3	राष्ट्रीयता	
3.4	मानवीय मूल्य व उपन्यास	
3.5	सांस्कृतिक मूल्य	
3.6	सामाजिक मूल्य	
3.7	दार्शनिक मूल्य	
	चतुर्थ अध्याय	**167–198**
4.0	**डॉ. दयाकृष्ण 'विजय के गद्य साहित्य के विविध आयाम एवं वाग्वैदग्ध्य**	
4.1	सामाजिक समस्याएँ	
4.1.1	जातिवाद	
4.1.2	परिवार विच्छेद	
4.1.3	अन्तर्जातीय विवाह	
4.2	आर्थिक संदर्भ	
4.2.1	आर्थिक संदर्भ की परिभाषा	
4.2.2	आर्थिक मूल्य	
4.3	सांस्कृतिक धरोहर	
4.3.1	सांस्कृतिक शब्द का अर्थ	
4.3.2	संस्कृति की अवधारणा	
4.3.3	संस्कृति और साहित्य	
4.4	आध्यात्मिकता	
4.4.1	आध्यात्मिकता का अर्थ	
4.4.2	आध्यात्मिकता का मार्ग	
4.4.3	आध्यात्मिकता में धर्म का महत्त्व परिभाषा	
4.4.4	आध्यात्मिकता में दर्शन	
4.4.5	आध्यात्मिकता सत्यों तथा मूल्यों में विश्वास	
4.5	वर्तमान समस्याएँ और समाधान	
4.5.1	वर्तमान समस्या	
4.5.2	एकाकीपन	
4.5.3	त्रिकोणीय प्रेम	
4.5.4	पारिवारिक जीवन मूल्य	

क्र.सं.	विषय—वस्तु	पृष्ठ सं.
4.5.5	जातिवाद की समस्या	
4.5.6	धन का लालच	
4.5.7	वृद्धावस्था	
4.6	राजनीतिक संदर्भ	
4.6.1	राजनीतिक संदर्भ की परिभाषा	
4.6.2	साहित्य, साहित्यकार और राजनीति	
	पंचम अध्याय	**199—220**
5.0	**डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य व समसामयिक संदर्भ**	
5.1	डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य की प्रकृतिगत विशेषताएँ	
5.1.1	डॉ. विजय के नाटक	
5.1.2	डॉ. दयाकृष्ण विजय के कथा संग्रह	
5.1.3	उपन्यास	
5.1.4	निबंध संग्रह	
5.2	ऐतिहासिक संदर्भ	
5.2.1	ऐतिहासिकता का अर्थ	
5.2.2	ऐतिहासिकता की परिभाषाएँ	
5.3	आंचलिकता	
5.4	पारिवारिक संदर्भ	
5.5	वर्तमान परिवेश और वाग्वैदग्ध्य	
5.6	परिवेशगत संदर्भ	
5.6.1	शहरी परिवेश	
5.6.2	ग्रामीण परिवेश	
	षष्ठ अध्याय	**221—253**
6.0	**शिल्प विधान**	
6.1	शिल्प : एक दृष्टि	
6.2	भाषा प्रयोग	
6.2.1	बिम्ब	
6.2.2	सांकेतिकता	
6.2.3	मुहावरे	
6.2.4	लोकोक्तियाँ	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
6.3	शब्द शक्ति	
6.3.1	अभिधा	
6.3.2	लक्षणा	
6.3.3	व्यंजना	
6.4	शब्द भण्डार	
6.4.1	तत्सम	
6.4.2	तद्भव	
6.4.3	देशज	
	उपसंहार	**254–267**
	शोध सारांश	**268–282**
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	**283–287**
	आधार ग्रन्थ	
	पत्र–पत्रिकाएँ	
	प्रकाशित शोध–पत्र	
	परिशिष्ट (साक्षात्कार)	**288–291**

प्रथम अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य

प्रथम अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य

वाग्विदग्धता का अर्थ है 'वाक् चातुरी' अर्थात अपनी बात को इस प्रकार प्रस्तुत करना की वह प्रभावशाली व हृदयस्पर्शी बन जाये। वाक् वैदग्ध्य दक्षतापूर्ण अपनी बात रखना तथा उस पर अडिग रहकर साहित्य को श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के साथ प्रस्तुत करना ही वाग्वैदग्ध्य कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में सूर, तुलसी, मीरां, कबीर सभी के साहित्य में वाक कौशल व्यक्त हुआ है। यह शब्दों की अभिव्यक्ति को दर्शाने वाली वह शैली है जो हृदय को स्पर्श करती है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम सूरदास रचित भ्रमर गीत में गोपियों का वाग्वैदग्ध्य मिलता है। जहाँ गोपियाँ–उद्धव के वार्तालाप में गोपियाँ अपनी वाणी के चातुर्य व व्यंग्य भाव से अपनी बात मनवाने में सफल होती हैं। अपने वाक कौशल वाक चातुर्य से जब साहित्य सृजन होता है तो वह समाज के लिये प्रेरणास्पद व पथ प्रदर्शक होता है। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इसी भाव का निर्वहन करते हुए अपने गद्य साहित्य में अपने वाग्वैदग्ध्य को निबन्ध, कथा, नाटक आदि के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। मैंने दयाकृष्ण विजय के गद्य का वाग्वैदग्ध्य शीर्षक से इस दिशा में कार्य करने का विनम्र प्रयास किया है।

1.1 हिन्दी गद्य साहित्य – एक परिचय

"किसी भी भाषा के ज्ञान के संचित कोश को साहित्य कहा जाता है। हिन्दी साहित्य की गंगा में दो धारायें प्रवाहित हैं एक गद्य और दूसरी पद्य।

गद्य साहित्य – "गद्य साहित्य निबंध, पत्र, कहानियाँ नाटकों आदि में विचारों को व्यक्त करना समाज की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक किसी भी विषय पर अपनी बात प्रकट करने के लिए जिस ढंग को अपनाया जाता है। उसे गद्य कहा जाता है।"[1] **पद्य साहित्य –**"कविता चौपाई, पद्य चरण आदि को लय बद् तरीके से रचित करना चरित्रावली कवितावली, दोहावली आदि की रचना कर पद्य कौशल उजागर करने की निपुर्णता इस साहित्य में अपना स्थान रखती है।"[2]

मेरी रचना का विषय गद्य संसार है जिसमें डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य लेखन में समाविष्ट चातुर्य को उजागर किया गया है। डॉ. विजय ने कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास आदि की रचनाओं में चरित्रों को अपने लेखन कौशल से साहित्य जगत को नया आयाम प्रदान किया है। ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र को अपने कलम के चातुर्य से गढ़ने का प्रयास किया है।

1.2 वाग्वैदग्ध्य का अर्थ

"वाक्+वैदग्ध्य=वाणी की अभिव्यक्ति बात करने में निपुणता वाणी की कुशलता वाणी की कुशलता को बड़ी चातुर्य के साथ अपनी कलम द्वारा कागज पर उकेरा है। यही कुशलता बाद में एक निपुर्ण कवि साहित्यकार द्वारा शिल्प में हृदयावर्जक शैली जो चातुर्य से प्रस्तुत की गई अनूठी विद्या बन गई।"[3]

वाक् का अर्थ – "सरस्वती माँ के शब्दों का भाषा में उच्चारण।"[4]

वाग्वैदग्ध्य का अर्थ – "शब्दों की अभिव्यक्त करने वाली उत्कृष्ठ शैली है जो गद्य विधा में प्रेरक वचन व हृदय स्पर्शी अभिव्यक्ति का एक माध्यम सिद्ध हुई।"[5]

1.2.1 वाग्वैदग्ध्य का आभास सर्वप्रथम सूरदास रचित

"भ्रमरगीत सार में गोपियों व उद्धव के वार्तालाप में व्यक्त किया गया गोपियों की अपनी वाणी के चातुर्य से व्यंग्य द्वारा आक्रोश भाव से अपनी बात कहने का ढंग ही वाग्वैदग्ध्य कहलाया ऐसी चातुर्य पूर्ण वाणी सुनकर श्रोता के हृदयस्पर्शी भाव जाग्रत हो जाये।"[6] कविता का माध्यम हो या कहानी का जब भी श्रोता या पाठक उसे पढ़े तो बात व्यक्त करने की निर्पुणता उसे महसूस हो। कहा जा सकता है "लेखन द्वारा लिखी गई पंक्ति का पाठक के हृदय पर दक्षतापूर्ण अडीग सटीक मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रतीत हो सके।"[7] यही वाग्वैदग्ध्य कहा जा सकता है। आचार्य शुक्ल कहते हैं– "सूर का सबसे मर्म स्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमर गीत है। गोपियों की वचन वक्रता अत्यन्त मनोहारी है।"[8]

इसी भाव का निर्वाह करते हुए डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने साहित्य गद्य के स्वरूप को कलम द्वारा अपनी रचनाओं में कौशलता से लेखन में विचार अभिव्यक्ति निपुणता वाणी की कुशलता को कलम द्वारा कागज पर उकेरा है।

1.2.2 व्यंग्यात्मकता

व्यंग्य द्वारा ही काव्य में सरसता तथा मनोहारिता का आधान किया जाता है। प्रत्यक्ष रूप में "उपालम्भ व व्यंग्य दोनों शब्द समानार्थी प्रतीत होते हैं, किन्तु इन दोनों में अन्तर है। उपालम्भ में वक्ता की विवशता, आत्मपीड़न की भावना, दैन्य भाव की प्रधानता और आत्म–दोषोरोपण की प्रवृत्ति होती है उपालम्भ में वक्ता का मूल उद्देश्य आत्मसंतोष है जबकि व्यंग्य में दूसरे के हृदय को कचोटना होता है।"[9]

1.2.3 वाग्विदग्धता

"वाग्विदग्धता का अर्थ है वाक् चातुरी अर्थात् अपनी बात को इस प्रकार घुमा फिरा कर कहना कि वह और अधिक प्रभावशालिनी तथाा हृदयस्पर्शिणी बन जाये काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ को अधिक प्रभावशाली तथा हृदय स्पर्शी व श्रेष्ठ माना गया इसलिये सत्कवियों के काव्य में वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग भी प्रचुरता से पाया जाता है।"[10]

भावों को प्रेरित न करने वाली अथवा भावों से प्रेरित न होने वाली वाग्विदग्धता भले ही चमत्कारी हो पर काव्य की श्रेष्ठता में वह कोई योगदान नहीं करती। इसलिए भ्रमरगीत में प्रयुक्त गोपियों की वाग्विदग्धता अत्यन्त श्रेष्ठ व मनोहारिणी है।

वाग्वैदग्ध्य दक्षतापूर्ण अपनी बात रखना और उस पर अडीग रहने के प्रवीणता को दर्शाकर साहित्य को श्रेष्ठ जीवनमूल्यों से परिपूर्ण रखना इस शब्द का अर्थ है इसी भाव का निर्वाह करते हुए डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने साहित्य गद्य के स्वरूप को उकेरा है। डॉ. विजय अपने कौशल द्वारा "निबंध में समाज के प्रति समर्पण भाव प्राचीन परम्परागत आध्यात्म और सांस्कृतिक धरोहर से जोड़कर भावी पीढ़ी को ज्ञान प्रदान करते हैं।"[11] वही कहानियाँ उपन्यास, नाटक एकांकी में सामाजिक सरोकार पर भारतीय दृष्टि से विचार करते हुए हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक सरोकार भारतीय साहित्य की परम्परा का अभिन्न अंग माना जाता है।

"भाषा तक पहुँचती वाक् की लोक यात्रा में विद्वान लेखक भारतीय भाषा के उद्भव की आंतरिक एवं बाह्य प्रक्रिया की दृष्टि से वाग्वैदग्ध्य का विवेचन किया है। परापश्यंती की मध्यमा तथा बैखरी अन्तरमय के स्फोट वाग्वैदग्ध्य की यात्रा का वैज्ञानिक विवेचन भृतहरी के अनुसार किया है।"[12]

पाणिनी के अनुसार – "भाषा का विकास को सहजता से अंकित कर दिया है।"[13]

"लेखक की वेदना शब्दाश्रित होती है जो अनवरत है प्रगतिवादी, जनहितवादी धाराओं से ओत–प्रोत भावनाओं का समावेश हमें यहाँ मिलता है। वाग्वैदग्ध्य निपुणता डॉ. विजय की भाषा प्रवाहमय है जिसमें शब्द चयन में कहीं–कहीं स्थानीय शब्दावली का संयोजन भी वे करते हैं। तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग अपने विचार की पुष्टि के अनुरूप करते है।"[14] कहीं–कहीं चिंतन का परिवेश ये सूक्तिमयी अभिव्यक्तियाँ मिलती है। "अभिव्यक्ति या क्रिया का जो सूक्ष्मतम तथा मधुरतम भाव है वही संस्कृति है 'वाग्वैदग्ध्य' की। आत्मा का आन्नदमय तत्त्व रस शिल्प में नहीं भाव में निवास करता है। जीवन स्वयं एक अभिव्यक्ति है। वाग्वैदग्ध्य में रचना की स्वायत्तता की परिधि शिवत्व है।"[15]

डॉ. दयाकृष्ण विजय के वाग्वैदग्ध्य का चित्रण विविध आयामों द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विश्लेषण करने का मेरा प्रयास रहेगा। हिन्दी साहित्य में धार्मिक उपदेश जीवन चरित्र लेखन के पूर्व में ब्रजभाषा का प्रयोग होता था आधुनिक काल में प्रजातान्त्रिक आदर्शों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा।[16]

1.3 हिन्दी गद्य और वाग्वैदग्ध्य

हिन्दी गद्य साहित्य सदैव आगे की ओर बढ़ता रहा है। चाहे वह भारतेन्दुकाल हो, द्विवेदी युग हो, प्रसाद युग हो या फिर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का युग। हिन्दी गद्य साहित्य में पीढ़ी दर पीढ़ी नई सोच, नई आशाऐं, नये विचार पढ़ने मिले हैं। इसमें सदैव ही परिष्कार होता रहा है डॉ. महावीर प्रसाद सरस्वती हिन्दी गद्य साहित्य के निखार लाने में अग्रणी हैं। "आधुनिक हिन्दी साहित्य की महत्ती विशेषता है गद्य साहित्य की प्रचुरता। भारतेन्दु युग में प्रारम्भ होने वाली कुछ प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में पूर्णतः परिष्कृत होती हैं।"[17] इस "परिष्कार के परिणाम स्वरूप ही इस समय अंग्रेजी की लाक्षणिकता बंगला की कोमलकांत पदावली अलंकार उर्दू की मुहावरेदार समन्वित शैली के जन्म के साथ साथ प्रेमचन्द जैसे लेखकों की कृतियों के माध्यम से हिन्दी की निजी शैली का विकास हुआ। इस युग के प्रमुख लेखकों में बालमुकुन्द गुप्त पद्म सिंह शर्मा, गोविन्द नारायणमिश्र सरदार पूर्णसिंह, श्याम सुन्दरदास आचार्य शुक्ल इत्यादि के नाम लिये जाते हैं।"[18]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में ये दोनों घटनाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। "द्विवेदी युग 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 1903 में इसका कार्यभार सम्भालना सरस्वती पत्रिका के माध्यम से आचार्य द्विवेदी ने खड़ी बोली का परिष्कार कर गद्य शैली को परिष्कृत किया।"[19]

हिन्दी गद्य को वास्तविक प्रौढ़ता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल में प्राप्त हुई। स्वयं आचार्य शुक्ल ने हिन्दी समीक्षा को नया आधार प्रदान किया। हिन्दी में साहित्य के इतिहास लेखन की वैज्ञानिक परम्परा की नींव डाली। उनका "'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आज भी अभूतपूर्व कृति मानी जाती है। उन्होंने साहित्य तथा मनोविकार सम्बन्धी उच्च कोटि के निबंध लिखे।"[20] "शुक्ल जी के युग से ही हिन्दी में कहानी–लेखन परम्परा का भी सूत्रपात हुआ। तुलसी, सूर, जायसी आदि पर शुक्ल जी ने मौलिक दृष्टि से लिखा। प्रसाद, प्रेमचन्द गुलाबराय, राहुल सांकृत्यायन, राजा रघुवीर सिंह आदि उनके युग के प्रतिनिधि गद्यकार थे।"[21]

साहित्य सृजन एक सांस्कृतिक कर्म है डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने भी जिस समय लेखन प्रारम्भ किया वह एक संधि युग की भाँति था जिसमें एक ओर छायावादी स्वर था तथा दूसरी ओर

प्रगतिवादी विचारधारा अतः डॉ. विजय के साहित्य सृजन में इन दिनों की विचारधाराओं का अभूतपूर्व मिश्रण पढ़ने को मिला। "डॉ. विजय का कवि जीवन का प्रारम्भ सीनियर कक्षा के विद्यार्थी अकलेरा (झालावाड़) विद्यालय के विद्यार्थी के रूप में हुआ।"[22] "डॉ. दया कृष्ण विजय ने उस समय 'तुलसी' पर ही अपनी पहली रचना लिखकर कवि हृदय का प्रस्फुटन समाज को मिला महान कवि की रचनाओं की शुरुआत इस शुभ घड़ी से हुई। डॉ. विजय की रचनाओं में कविता, एकांकी, नाटक, समालोचना समीक्षा संपादन 'निबंध' कहानी"[23] आदि साहित्य की सभी विधाओं में डॉ. दयाकृष्ण विजय ने मौलिक ग्रंथों का सृजन किया। साहित्यिक समाज को उत्कृष्ट साहित्यकार, कुशल संपादक श्रेष्ठ कवि अनेक राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्ष, राजस्थान विधानसभा के सदस्य एवं बहुत सी सामाजिक सरोकार हेतु अन्य गतिविधियों से भी जुड़ी हुई गद्य शैली का परिचय गद्यलेखन में डॉ. विजय ने प्रस्तुत किया है।

"सन् 1944 में अकलेरा में तुलसी जयंती की पूर्व संध्या को आयोजित कार्यक्रम में 'समस्यापूर्ति कहलाएगें' से प्रथम लेखन रचना का प्रस्फुटन किया।"[24] तब "डॉ. विजय मात्र आठवीं के प्रतिभावान छात्र थे। यही सृजनात्मक लेखन 24 वर्ष की आयु में प्रथम गद्य लेखन कहानी संकलन 'उलझन' के रूप में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात गद्य लेखन के प्रति आकर्षण दिन प्रतिभा बड़ा और डॉ. विजय के लेखक साहित्यकार को तो सर्वत्र ख्याति प्राप्त हुई नाटककार कहानीकार एवं सांस्कृतिक धरोहर के व्याख्याता कार लोक संस्कृति के प्रतिष्ठापक रहे हैं।"[25]

"डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' की साहित्यिक प्रतिभा के साथ उनकी वक्तृता–दक्षता भी छात्र जीवन में विकसित हुई अध्ययन काल में कोटा महाविद्यालय (हर्बर्ट कॉलेज) में सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों तथा गोष्ठियों का आयोजन एवं संचालन किया।"[26]

सरस्वती सभा व संचालिका के सदस्य रहकर अपना अमूल्य योगदान दिया। गद्य साहित्य के शब्दों को बहुत ही सुन्दर तरीके से पिरोकर साहित्यसंगत में योगदान दिया। तेजस्वी, प्रफुल्लित, सौम्य, आकर्षक लेखन के मनोहारी व्यक्तित्व "डॉ. विजय ने गद्य साहित्य के आत्मसात किया वह महान लेखनी के धनी द्विव्य भाल पर ललित ललाम बिन्दु की आभा को परभूत करता है।"[27]

1.4 हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाएँ

हिन्दी का गद्य साहित्य अनेक विधाओं के साथ समृद्ध है। उसका विपुल साहित्य उपलब्ध है। यहाँ मैंने डॉ. विजय के वाग्वैदग्ध्य को विविध विधाओं के साथ संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

1.4.1 हिन्दी निबंध और वाग्वैदग्ध्य

निबंध आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक नवीन विद्या है हिन्दी में इसका विकास आधुनिक युग में अंग्रेजी में Essay के अनुकरण पर हुआ। भारतेन्दु युग से पहले निबंध का कोई उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ तक कि विशाल संस्कृत वाङ्मय में भी इस विद्या का कहीं उल्लेख नहीं है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य की लगभग सभी प्रचलित विधाओं के साथ ही निबंध पर भी अपनी लेखनी उठाई। भारतेन्दु युग के दूसरे प्रसिद्ध निबन्धकार 'बालकृष्ण भट्ट' का नाम प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने वर्णनात्मक, विचारात्मक और भावात्मक सभी प्रकार के निबंधों की रचना की है।

"बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग के तीसरे प्रसिद्ध निबंध लेखक हैं। 'शिवशम्भू का चिट्ठा' और खत में निहित निबंधों की 'पत्रात्मक शैली' के लिए ये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। भारतेन्दु युग के चौथे प्रसिद्ध निबंधकार पं. प्रताप नारायण मिश्र है। इन्होंने अत्यन्त साधारण विषयों को लेकर व्यंग्य प्रधान तथा गवेषणात्मक निबंध लिखे।"[28] हिन्दी निबंधों का आदर्श रूप द्विवेदी युग में सामने आया। "इस युग के प्रमुख निबंधकारों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी डॉ. श्याम सुन्दरदास, पद्म सिंह शर्मा, अध्यापक पूर्णसिंह आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"[29]

"हिन्दी निबंध लेखन एवं शैली का पूर्ण विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों में मिलता है शुक्ल जी के निबंधों की पुष्ट भाषा चुस्त एवं कसी हुई शैली, विचारों की परिपक्वता और उनका क्रम विन्यास सभी कुछ नवीन और हिन्दी निबन्धकारों में बाबू गुलाबराय, परशुराम चतुर्वेदी, वियोगी हरि, राय कृष्णदास, शांतिप्रिय द्विवेदी तथा वासुदेवशरण अग्रवाल विशेष उल्लेखनीय है।"[30]

हिन्दी वर्तमान युग निबंधो की दृष्टि से भी उत्कर्ष एवं विस्तार का काल है। "डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी डॉ. नगेन्द्र, महादेवी वर्मा, रामविलास शर्मा प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, डॉ. देवराज आदि इस काल के प्रमुख निबंधकार हैं। इधर 'हिन्दी' में ललित निबंधों के लेखन की परम्परा का भी विकास हुआ है।"[31] इस क्षेत्र में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, "डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय ठाकुर प्रसाद सिंह, विवेकी राय, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे और डॉ. श्रीराम परिहार का प्रयास स्तुत्य है। डॉ. नगेन्द्र ने भी ललित निबंध लेखन में कुछ योग दिया है। इधर हिन्दी में हास्य व्यंग्य प्रधान निबंधों की परम्परा भी विकसित हुई है। इस क्षेत्र में बेढ़ब बनारसी, हरिशंकर परसाई, केशवचन्द्रसेन वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, भीमसेन त्यागी, शरदजोशी, नरेन्द्र कोहली आदि के नाम उल्लेखनीय है।"[32] इस प्रथा को अपने लेख में डॉ. विजय के शब्दों में साहित्यिक जगत में

निबंध शैली को "डॉ. विजय ने आगे बढ़ाया। डॉ. विजय की निबंध शैली गीता अनुशीलन (1984 ई.) ने बहुत ही उत्कृष्ट योगदान दिया डॉ. विद्यानिवास मिश्र तथा डॉ. कुबेरनाथ राय जैसे लब्धप्रतिष्ठ निबंधकारों की पंक्ति में राजस्थान से खड़े होने में समर्थ एवं सक्षम निबंधकारों के रूप में डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का नाम हम निःसंकोच रूप से ले सकते हैं।"[33]

1.4.2 डॉ. दयाकृष्ण विजय के निबंध और वाग्वैदग्ध्य

डॉ. विजय के निबंध संग्रह में वैचारिकता का उन्मेष हमें दो स्तरों पर स्पष्ट हुआ परिलक्षित होता है। वे जहाँ दर्शन की भंगिमा को स्वीकार करते हुए अपने वैचारिक निष्कर्ष को रूपायित करते हैं वहीं वे उस दृष्टि का व्यवहारिक परिणाम भी विवेचित करते हैं। इन्हें मात्र सिद्धांत की खोज की वरेण्य नहीं है उस सिद्धान्त को व्यवहारिक समीक्षा में उपादेय बनाते हुए उसी आधार पर कृति एवं कृतिकार की समीक्षा का प्रयास करते हैं।

"डॉ. विजय के निबंधों में स्पष्टता, संक्षिप्तता, सूत्रात्मकता, सरलता, सहजता जैसे प्राप्त गुणों ने निबंधों को प्रासंगिक तथा मूल्यवान बनाया है।"[34]

"डॉ. विजय की नैबंधिक दृष्टि वस्तुपरक है वे एक चिंतक है। निबंध के विषय का उदय अन्य समानधर्मी विषयों की सूचना उनका तुलनात्मक इतिहास महत्त्व एवं प्रसंगिकता पर वे विशेष ध्यान देते हैं।"[35] डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' के विभिन्न विषयों पर लिखे तेईस निबंधों का संग्रह 'भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार' में लेखक के भारत के शास्त्रीय वाङ्मय के विराट अध्ययन उसके मौलिक चिन्तन भारतीयता में अटूट आस्था अद्भूत लेखकीय क्षमता तथा भाषा पर असाधारण अधिकार के दर्शन होते हैं। यह लेख अत्यन्त समृद्ध सूचनाओं उच्च स्तरीय मौलिक स्थापनाओं तथा भारतीय साहित्य के नैसर्गिक रूप से निहित सर्वजनहिताय के तथ्य की ईमानदारी पड़ताल के लिए अत्यन्त महान् एवं पूर्ण हो गया है।"[36] लेखक इस लेख में "यह सिद्ध करने में पूरी तरह सफल साहित्य का आनन्द हेतु आत्म चेतना प्रतिष्ठा व लोकमंगल का अधिष्ठान है अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है"[37] एवं सत्यम् शिवम् सुन्दरम् इसके उपादान तत्त्व है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' कवि कथाकार के रूप में राजस्थान के सुपरिचित एवं स्थापित हस्ताक्षर है। शोध आलोचना में भी डॉ. विजय का अपना दखल व अन्दाज पढ़ने को मिलता है। निबंधों का यह आलोच्य संग्रह उनके निबन्धकार के ज्ञानात्मक स्वरूप का परिचय देता है। आलोच्य निबंध संग्रह के इन अट्ठारह निबंधों को चार वर्गों में रखा जा सकता है।

"प्रथम वर्ग में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और रचनाकार शिक्षा और जीवन मूल्य, अन्तर्राष्ट्रीयता, साहित्य और संस्कृति भारतीयता और साहित्य में पाँच निबंध संग्रहों को स्थान दिया है जो साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बनाते हैं।"[38]

द्वितीय वर्ग– "इसमें विभिन्न युग चेतना को स्थान दिया है गुप्त जी की युग चेतना पं. गिरधर शर्मा नवरत्न की युग चेतना सूरदास का मानववाद आदि पर रचित रचनाओं को इस वर्ग में रखा गया है। डॉ. विजय की रचनाओं की शैली भी इसी में मिलती है अतः तीन निबंध इस शैली में है।"[39]

तीसरे वर्ग – "साहित्य सर्जन की केन्द्रीय विधा समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में भारतीयता साहित्य में रामकथा की महत्ता काव्य का स्वरूप और उसकी उपयोगिता कस्मैदेवाय हविषाविधेयम् छः निबंधों को रखा गया है।"[40]

चौथे वर्ग– "हाड़ौती अंचल की साहित्यिक परम्परा राजस्थान की संत परम्परा और रामस्नेही स्वामी रामचरण राजस्थान की लोक भाषाएँ और राजस्थानी भाषा की एकरूपता की आवश्यकता (चार) है। डॉ. विजय के प्रथम वर्ग की अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य की विशिष्ट परम्परा के चिन्तनस्त्रोत आवाहन करती है तो दूसरे वर्ग में तीन साहित्यकारों का मूल्यांकन है। तीसरे वर्ग में साहित्यिक वैविध्य का शास्त्रिय स्वरूप उभरता है और चौथे में हाड़ौती अंचल की लोकभाषा साहित्य एवं संत परम्परा आदि का विश्लेषण मिलता है।"[41]

"निबंध वैचारिक चिन्तन की देन है और विविध चिन्तन दृष्टियों का समावेश हो जाना ही उसकी विधात्मक विशेषता होती है। अतः इसी निष्कर्ष पर इन निबन्धों में डॉ. विजय का मनोयोगपूर्ण चिन्तन एवं कथन भंगिमा की नवीनता विद्यमान है। प्राध्यापकीय आलोचना–पद्धति से इन निबंधों की सैद्धान्तिकता भले ही न मिले परन्तु यह अवश्य ही मिलता है कि इन निबंधों में गम्भीर जीवनानुभूति समाज से गहरा जुड़ाव, वैचारिक जीवन दृष्टि, शाश्वत जीवन मूल्य, विचार विश्लेषण की गहनता और चिन्तन की सूक्ष्मता विद्यमान है। "अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा रचनाकार की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि रचनाकार की यह आंतरिक चेतना विराट चिति का अतीव सूक्ष्मांश है।"[42]

डॉ. विजय इस चिन्तन के परिणत रूप में ही विषय के साथ न्याय करते हैं तथा यह स्पष्ट करते हैं कि "अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है लेकिन इसमें प्रतिबद्ध लेखन को इस स्वतन्त्रता का हरण भी मानते हैं क्योंकि इसे अर्थवती वेग भी मानते हैं कि जब सर्जन मानवीय सम्वेदनाओं से जुड़े, स्वतन्त्रता से विसंगतियों के विरुद्ध जुझारु स्वर उच्चारित करें तथा दुर्बल का पक्ष घर बने।"[43] सृजन सदैव मानवीय मूल्यों का पक्षधर व आमजन की पीड़ा का

पक्षधर होना चाहिए। जिसमें यह जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं को उजागर करते हुए मानव मूल्य का निर्वहन व सृजन करे। डॉ. विजय अपने सृजन में गद्य के विविध रूपों में अपना वाक कौशल व चिन्तन की गहराई प्रस्तुत करते हैं। "जब साहित्य सर्जन की केन्द्रीय विधा पर वे चिन्तन करते हैं तो उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में समकालीनता पर विस्तार से विचार करते हैं क्योंकि उसके कारण ही यथार्थ जीवन, यथार्थ समाज, यथार्थ, राजनीतिक घटनाचक्रों का जीवन्त दस्तावेज उपन्यास बनता है।"[44]

डॉ. विजय के निबंध संग्रह के समस्त निबंध, निबंध की कसौटी पर खरे हैं। उनके निबन्धों की भाषा संस्कृत निष्ठ है यथावसर इनमें खंडन–मंडन भी है। युगधर्म कर्म का निर्वहन निबंधकार की कीर्ति पताका फहराती है। वही विघटन, अराजकता, दिग्भ्रमिता की परिस्थिति में इनके निबंधों की विषय वस्तु हमें आश्वस्त करती है, अन्तर्मन को आन्दोलित करती है।

1.4.3 उपन्यास लेखन और वाग्वैदग्ध्य

"हिन्दी उपन्यास कला भी आधुनिक युग की देन है। हिन्दी उपन्यासों की रचना का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है परन्तु इसका पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है। 'गोदान' प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों से भिन्न यथार्थवादी दृष्टिकोण से एक भारतीय कृषक की दीन–हीन दशा का चित्रण है।"[45]

"प्रेमचन्द के साथ या बाद में उपन्यासों की रचना करने वालों में जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक, बेचेन शर्मा 'उग्र' प्रतापनारायण श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, निराला, पंत, महादेवी वर्मा आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।"[46] प्रसाद के उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाज का चित्रण है किन्तु शैली काव्यात्मक है। किन्तु विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक सुदर्शन, प्रतापनारायण, श्रीवास्तव आदि ने प्रेमचन्द की शैली अपनाते हुए सामाजिक उपन्यास लिखे जिनमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था।

प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास–कला भी स्वयं को युग की बौद्धिकता के अनुरूप शैली और शिल्प के स्तर पर नवीन करती देखी जा सकती है। "इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र भगवती चरण वर्मा, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल, सियाराम शरण गुप्त रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर नरेन्द्र कोहली आदि इस युग के प्रमुख उपन्यासकार है।"[47]

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के "उपन्यास साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रतिष्ठित कथाकार के रूप में स्वामी रामानंद के जीवन पर उपन्यास 'पायसपायी' लिखा वह उसी प्रकार

चरित्र उपन्यास और इतिहास की त्रिवेणी को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की भाषा सहज और सुबोध है यद्यपि उसमें भक्ति सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का भी प्रसंगगत, विवरण है जो कभी आचार्य मुख से कहलवाया गया है।"[48]

डॉ. विजय ने "उपन्यास के शीर्षक 'पायसपायी' का उत्स भी संकेतित किया है कि उनके मित्र उदय प्रताप सिंह जी ने सुझाया था।"[49] इसमें हमें रामानन्द संप्रदाय के एक अन्य परम श्रद्धेय सन्त के नाम के साथ जुड़ा दिलचस्प इतिहास याद आ गया। "पायसपायी का शब्दार्थ होता है। दुग्धाहारी (अर्थात खीर पिलाने वाला इसका ही एक पर्याय है पय–आ–हारी दुग्ध का ही आहार करने वाला)। इसी अभिधान को आत्मसात किये रामानन्दाचार्य के प्रधान शिष्य अनन्तानन्द के चेले कृष्णदास पयहारी का जो जयपुर में आए थे और इसी सम्प्रदाय की परम्परा यहाँ स्थापित कर एक युग का निर्माण किया।"[50] डॉ. विजय ने उत्तर भारत के शिखर स्तर के संत की जीवनी को ललित उपन्यास के लिबास में उतारकर अपने लेखन कौशल का परिचय देकर न केवल साहित्यिक सर्जन यात्रा को एक नया पड़ाव दिया है अपितु जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य को राजस्थान की ओर से विनयपूर्ण श्रद्धांजलि देकर हमसब का गौरव भी बढ़ाया है।

डॉ. विजय द्वारा रचित "'रमताराम' उपन्यास स्वामी रामचरण जी महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय के संस्थापक निर्गुण संत पर आधारित है। संतों महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर उपन्यास लेखन परम्परा हिन्दी उपन्यास परम्परा में विरल है।"[51]

"अमृतलाल नागर के 'मानस के हंस' एवं 'खंजन नयन' में तुलसीदास एवं सूरदास के जीवन को औपन्यासिक रंगों में रंगने के लिए रचनाकार ने कल्पना और यथार्थ के ताने–बाने में जो चरित्र सृष्टि की है उसमें पाठक अपने एवं रचनाकार युग के जीवन संघर्षों को प्रतिबिम्बित पाता है। इसी प्रकार डॉ. विजय ने 'रमताराम' को भी विधा के तत्त्वों पर परखते हुए इसे उपन्यास की अपेक्षा जीवनी कहना अधिक उचित होगा। उपन्यास में कल्पना और यथार्थ का योग अनिवार्य है अतः यह उपन्यास इसका युक्ति संगत है।"[52] इसमें कल्पना, इतिहास व यथार्थ का मिश्रण प्रस्तुत किया गया है।

1.4.4 'कहानी' लेखन और वाग्वैदग्ध्य

हिन्दी कहानी लेखन में उपन्यास के बाद आज भी हर विषय पर लिखी जाने वाली "कहानी अपने आप में हिन्दी जगत में स्थान रखती है। उपन्यास की भाँति कहानियों की रचना का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है। हिन्दी कहानी का भी चरम उत्कर्ष प्रेमचन्द की लेखनी से हुआ इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य में कहानियों के अभाव की पूर्ति की। प्रेमचन्द

के बाद हिन्दी कहानी कला के क्षेत्र में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का योगदान चिरस्मरणीय है। इनकी 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है यही इनकी अक्षय कीर्ति का स्तम्भ भी है।"[53] जैनेन्द्र जी से हिन्दी कहानियों के वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है।

"डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने भी इसी धारा में बहकर उत्कृष्ट अपनी कहानियों में सामाजिक सरोकार, सांस्कृतिक चिन्तन को अपनी कलम द्वारा कागज में उकेरने की प्रवीणता, कौशलता का परिचय देते हुए वाग्वैदग्ध्य का अर्थ स्पष्ट किया है।"[54]

कहानी संग्रह उलझन (सन् 1953 ई.) इनकी प्रथम साहित्यिक कृति है जिसमें ग्रामीण परिवेश जीवन की सामान्य घटनाओं, अनुभवों और भावनाओं को मार्मिक हृदय स्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है। "डॉ. दयाकृष्ण विजय के भावुकता यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख भाव से इस कहानी के विषय में लिखा है। उलझन की पृष्ठभूमि में कुछ मेरे प्राणों की उलझन है तो कुछ सारे संसार के प्राणों की उलझन है।"[55]

डॉ. देवराज उपाध्याय के अनुसार – "लेखक की प्रतिभा ने आधुनिक कहानी के स्वरूप और मर्म को पहचाना है वह दुर्लभ है।"[56]

1.4.5 नाटक और वाग्वैदग्ध्य

"हिन्दी नाटकों की परम्परा संस्कृत नाटकों को आधार बनाकर विकसित हुई। राजा लक्ष्मण सिंह ने सन् 1919 में कालिदास के रचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का हिन्दी अनुवाद किया। हिन्दी नाटकों की विस्तृत परम्परा का विकास सर्वप्रथम भारतेन्दु युग में हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली' भारत जननी भारत दुर्दशा, नीलदेवी, सती प्रताप, विषस्य विषमौषधम जैसे नाटक लिखे। प्रसाद जी हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी के रूप में आते हैं।"[57]

हिन्दी नाटकों को स्वस्थ, साहित्यिक, कलापूर्ण, स्वाभाविक मौलिक और स्वाधीन रूप देने का प्रथम श्रेय प्रसादजी की प्रतिभा का है। "अजातशत्रु स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य, ध्रुव स्वामिनी आदि नाटक इसी युग में लिखे गये। लक्ष्मी नारायण मिश्र, हरिकृष्ण 'प्रेमी', उपेन्द्रनाथ 'अश्क', डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहनराकेश, डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर आदि हिन्दी के प्रमुख नाटककार हैं।"[58]

इसी धारा में प्रवाहित होते हुए प्रतिष्ठित लेखक के रूप में अपनी छवि को उभारते हुए डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने आदि सम्राट, छत्रपति शिवाजी सिंहासन, राग से विराग तक जैसे नाटक लिखे जो ऐतिहासिक संदर्भों के साथ, सांस्कृतिक वैभव व दर्शन पर आधारित है।

आदि सम्राट (1974) – डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'आदि सम्राट' नाटक ऐतिहासिकता पर आधारित है। गुप्त वंश की पदलोलुप्ता का भाव इसमें प्रमुख है। इस नाटक में सभी पात्र अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। कुछ पात्र लोभ, लालच, पद प्राप्ति की लालसा लिये लेकर रिश्तों की अहममियत को तार–तार करते हैं। "डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'आदि सम्राट' (1974) नाटक 59 पात्रों से सृजित 5 अंक वाला नाटक है। इन्द्र के जीवन की ऋग्वेदोक्त घटनाओं को समाविष्ट करके पूर्ण नाटक बनाने का प्रयत्न किया है।"[59]

छत्रपति शिवाजी– ऐतिहासिक नाटक महाराष्ट्र के महान सम्राट छत्रपति शिवाजी पर आधारित है उनका ओजस्वी चरित्र व गोरिल्ला युद्ध नीति द्वारा मराठा की आन–बान व शान को कायम रखने में अहम् भूमिका निभाती है। छत्रपति शिवाजी का ओजस्वी चरित्र चित्रण इस बात का द्योतक है कि हिन्दुत्व को मराठा में कायम रखने के लिए हर नीति के युद्ध करके मुगलों से अपने राज्य की रक्षा की। "डॉ. विजय रचित शिवाजी के जीवन की वीरगाथा को शिवाजी के चरित्र में राम की मर्यादा भगवान कृष्ण की चतुरता दूरदर्शिता तथा प्रताप की सी राष्ट्र भक्ति पूर्ण सहिष्णुता धीरोदात्त नायकत्व एवं महापुरुषत्व को देखते हैं।"[60]

सिंहासन–ऐतिहासिक नाटक 'सिंहासन' भी पारिवारिक कलह को दर्शाता है इसमें सिंहासन के प्रति एक भाई का प्रेम राज्य की सेवा करना है तथा दूसरे भाई की पदलोलुप्ता से परिपूर्ण है। "सिंहासन की रचना अयोध्या के ऐतिहासिक सूत्र को जोड़ने के लिए सांस्कृतिक ऐतिहासिक का विकास यात्रा के मार्ग में इस नाटक का मूल्य समकालीनता के संदर्भ में सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना करना है।"[61]

राग से विराग तक– की नाटिका में डॉ. विजय ने पति–पत्नी के राज्य के प्रति भाव को दर्शाया है इसमें राजा पूर्ण रूप से राज्य के प्रति कर्तव्य निष्ठ धर्मपरायण है उनका प्रथम प्रेम प्रजा है फिर परिवार। पत्नी के प्रति पति का समर्पण कम होने पर पत्नी ने ईर्ष्या, घमण्ड का भाव अधिक है। डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस नाटक में सांसारिक मोह माया का त्याग कर इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि शीर्षकों में कथानक कथावस्तु को बाँटा गया है। जीवन के क्रिया कलापों को मानसिक शारीरिक आध्यात्मिक आदि पर बल देना की कथा मिलती है।[62]

इस बात से डॉ. विजय के नाटकों में वाग्वैदग्ध्य का पता चलता है कि नाटकों की रचना जिस निपूर्णता से की है उनके शीर्षकों से उनकी कथा वस्तु का आभास हो जाता है।

1.4.6 एकांकी लेखन और वाग्वैदग्ध्य

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने "भारतीय नाट्य परम्परा में एक अंक वाले नाटकों का विकास अति प्राचीन परम्परा से लेखन कला को अपने एकांकी में लिया है। आधुनिक एकांकी विधा, कहानी, उपन्यास रेखाचित्र जैसी अन्य साहित्यिक विधाओं की भांति पाश्चात्य प्रभाव से ग्रस्त है। इसके विकास इतिहास मात्र 35–40 वर्षों का है। इस पर पाश्चात्य साहित्य का बहुत प्रभाव है।"[63] हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ 'प्रसाद' जी की 'एक घूंट' एकांकी से माना जाता है डॉ. रामकुमार वर्मा भुवनेश्वर प्रसाद, सेठ गोविन्ददास उपेन्द्रनाथ 'अश्क' विष्णु प्रभाकर, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, प्रभाकर माचवे, जगदीशचन्द माथुर, भगवतीचरण वर्मा, किशन चन्दर, सदगुरुचरण अवस्थी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश आदि अन्य एकांकीकार से प्रेरित होकर डॉ. विजय ने एकांकी 'सृष्टि का सगुण पक्ष' एकांकिनी लिखकर साहित्य जगत में अपने कुशल एकांकीकार होने का परिचय दिया है।[64]

1.4.7 जीवनी साहित्य और वाग्वैदग्ध्य

"किसी व्यक्ति के जीवन की रसात्मक अभिव्यक्ति जीवनी कहलाती है। इसमें व्यक्ति का जीवन–चरित्र निबद्ध होता है। अतः यहाँ उसके जीवन की छोटी से छोटी घटनाओं और उसकी आदतों का यथार्थ चित्रण गद्य साहित्य में जीवनी में मिलता है। जीवनी लेखन आधुनिक साहित्य की देन है।"[65] "बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा लिखित पं. सत्यनारायण की जीवनी, ब्रजरत्न दास लिखित 'भारतेन्दु' (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी) घनश्याम बिड़ला लिखित 'बापू', श्यामनारायण कपूर लिखित भारतीय वैज्ञानिक, श्री मन्नालाल अग्रवाल लिखित 'सम्राट अशोक' आदि हिन्दी की उल्लेखनीय जीवनी कृतियाँ है।"[66] अमृतराय की 'कलम का सिपाही' विष्णु प्रभाकर की 'आवारा मसीहा' रामविलास शर्मा की निराला की 'साहित्य साधना' हिन्दी की श्रेष्ठ जीवनियाँ है।[67]

1.4.8 आत्म कथा और वाग्वैदग्ध्य

"आत्म कथा स्वयं लेखक द्वारा लिखा गया अपना जीवन वृत्तान्त होता है। परन्तु इसके लिए लेखक में ईमानदारी का होना आवश्यक है। इसमें न तो आत्मश्लाघा होनी चाहिए और न ही अपने व्यक्तिगत दोषों को छिपाने की प्रवृति। इन दोषों से रहित कृति का ही आत्मकथा के अन्तर्गत रखा जा सकता हैं हिन्दी के अनेक प्रख्यात साहित्यकारों की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें श्यामसुन्दर, राहुल सांकृत्यायन, वियोगी हरि, यशपाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, पदुमलाल, पन्ना लाल बक्शी, सेठ गोविन्ददास, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, हरिशंकर परसाई, हरिवंशराय बच्चन, डॉ. रामविलास शर्मा की आत्मकथाएँ आदि इस आत्मकथा जगत में अपना विशेष स्थान रखते हैं।"[68]

1.4.9 पत्र लेखन और वाग्वैदग्ध्य

"गद्य साहित्य की एक स्वतन्त्र विधा है यद्यपि स्वरूप की दृष्टि से इसकी तुलना निबन्धों से की जा सकती है परन्तु गद्य विषय की दृष्टि से इनमें अन्तर है। निबंधों में अनेक भावों का तार्किक निबंधन रहता है। जबकि गद्य काव्य में किसी एक भाव की ही काव्यात्मक एकतानता रहती है।"[69] यद्यपि आज साहित्य से पत्र विद्या लुप्त प्रायः हो गयी है। पत्र लेखन का स्थान सूचना व तकनीकी से ले लिया है। जिसमें मेल/ई मेल, व्हाट्सअप के माध्यम से भाव प्रेषित कर दिये जाते हैं किन्तु उनमें साहित्यिकता का अभाव होता है। ये मात्र संदेश होते हैं। आत्मीय भाव इनमें नहीं पाया जाता।

1.4.10 हिन्दी गद्य काव्य और वाग्वैदग्ध्य

"गद्य काव्य हिन्दी गद्य साहित्य की एक स्वतन्त्र विधा है। यद्यपि स्वरूप की दृष्टि से इसकी तुलना निबन्धों से ही जा सकती है परन्तु विषय की दृष्टि से इसमें अन्तर है। निबंधों में अनेक भावों का तार्किक निबन्धन रहता है जबकि गद्य काव्य में किसी एक भाव की ही काव्यात्मक एकतानता रहती है हिन्दी में गद्य काव्य की दृष्टि से राय कृष्णदास वियोग हरि, अज्ञेय रघुवीर सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय है।[70]

1.4.11 रेखाचित्र और वाग्वैदग्ध्य

रेखाचित्र भी गद्य काव्य और कहानी से मिलती जुलती विधा है बाबू गुलाबराय रेखाचित्र के संबंध में लिखते हैं– "रेखाचित्र भी गद्यकाव्य से मिलती एक विधा है। इसमें वर्णन का प्राधान्य रहता है परन्तु ये वर्णन प्रायः संस्मरणों से सम्बन्ध है। वास्तविकता पर निर्भर वर्तमान साहित्यि में रेखाचित्र रचना की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है उनमें महादेवी का नाम बहुत चर्चित है।"[71]

1.4.12 संस्मरण लेखन और वाग्वैदग्ध्य

"संस्मरण भी रेखाचित्र की भाँति व्यक्ति से ही संबंधित होते है। परन्तु जब हम उस संस्मरण को पढ़ते है तो यह कल्पित प्रतीत होते है। हिन्दी संस्मरण लेखन में महादेवी वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। इनके रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र' संग्रह में संकलित है। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' इनके दो प्रसिद्ध संस्मरण संग्रह है। अज्ञेय कृत 'स्मृति लेखा' के संस्मरण भी उच्च कोटि के हैं।"[73]

1.4.13 रिपोर्ताज लेखन और वाग्वैदग्ध्य

"रिपोर्ताज गद्य की एक साहित्यिक विद्या है जो धीरे–धीरे पाश्चात्य प्रभाव से यहाँ प्रचारित या चर्चित होने लगी है।"[74] यह शब्द फ्रांसिसी भाषा से यहाँ आया। अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' से है। जो घटनाक्रम को सारांश रूप में तैयार कर शब्द की कारीगरी से साहित्य जगत में लिखी गई शैली है।"[75]

"रिपोर्ताज हिन्दी की अत्याधुनिक विधा है अधिकांश रिपोर्ताज साहित्य हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए हैं। इस विद्या को भदन्त, भारती शिव सागर, धर्मवीर भारती, कन्हैयालाल मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, 'श्रीकांत वर्मा' आदि ने अपने लेखन में स्थान दिया है। डॉ. दया कृष्ण विजय ने अपने साहित्यों में रिपोर्ताज शैली का सूक्ष्म प्रयोग किया है।"[76]

1.4.14 हिन्दी का यात्रा–साहित्य और वाग्वैदग्ध्य

साहित्य में यात्रा साहित्य लेखन भी उल्लेखनीय है। यात्राओं के विवरण में लेखकों ने संस्मरण तथा रेखाचित्र दोनों ही प्रकार की शैलियों का व्यवहार किया है। "दूर–दराज क्षेत्रों का स्थान वर्णन, रहन सहन, वेशभूषा, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश डालकर लेखन में नया आयाम डाला है। भगवत शरण उपाध्याय, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती अज्ञेय, मोहन राकेश, अमृत राय, मनोहर श्याम जोशी आदि के नाम उल्लेखनीय है। 'नैनीताल की यात्रा विवरण' पं. विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा लिखित सफल यात्रा वृत्तान्त है।"[77]

1.4.15 साक्षात्कार साहित्य और वाग्वैदग्ध्य

साक्षात्कार आज हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण विद्या बन गयी है इसमें ख्यातनाम साहित्यकारों द्वारा दिये गये साक्षात्कार उनकी दृष्टि व रचनाधर्मिता को स्पष्ट करते ही हैं वरन् हिन्दी साहित्य को समृद्ध भी बनाते हैं। "वर्तमान हिन्दी की पत्र पत्रिकाओं में विभिन्न साहित्यकारों के साक्षात्कार प्रकाशित हो रहे हैं साक्षात्कारों में साहित्यकारों ने अपने साहित्य संबंधी दृष्टिकोण रचना प्रक्रिया या समसामयिक विषयों पर विचार प्रकट किये हैं। लोकप्रिय कृति पदमसिंह शर्मा कमलेश की दो भागों में विरचित 'मैं इनसे मिला' विष्णु प्रभाकर शिवदान सिंह चौहान रामचरण महेन्द्र कैलाश कल्पित सुरेश सिन्हा आदि ने भी इस साहित्यिक विधा को आगे बढ़ाया।"[78]

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने "सम्पादक के रूप में भारतेन्दु समिति के अध्यक्ष के रूप में आदि में अपने साक्षात्कार देकर अपने जीवन परिचय को समाज के सामने परोसा और इनकी जानकारियों से हम भावी पीढ़ी अवगत हो सकी।"[79] अनेक संग्रहों में संकलित इनके साक्षज्ञत्कार साहित्य के विविध स्वरूपों, आयामों व सामाजिक सरोकारों में साहित्यकार जुड़ाव को व्यक्त करते हैं।

1.5 हिन्दी गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य का महत्त्व

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य का अर्थ चातुर्य प्रवीणता के साथ अपनी कलम द्वारा कागज पर उकेरे गये शब्दों का शिल्प कौशल है। जो गद्य विधा में प्रेरक वचन हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति का एक माध्यम सिद्ध हुई।

वाक्+वैदग्ध्य = "वाक का अर्थ सरस्वती माँ के शब्दों का भाषा में उच्चारण 'वैदग्ध्य' उन शब्दों को अभिव्यक्त करने वाली उत्कृष्ट शैली है जो गद्य विधा में प्रेरक वचन व हृदय स्पर्शी अभिव्यक्ति का एक माध्यम सिद्ध हुई।"[80] 'वाग्वैदग्ध्य' शब्द साहित्य जगत में अपनी शब्दों रचित रचना में प्रवीणता, कौशलता शब्दों की कारीगरी द्वारा पाठक के मन में हृदय में अमिट छाप छोड़कर पाठक को पुनः पढ़ने व समझने में पुनः आभासित कर दे। यह विशेषता डॉ. विजय के गद्य साहित्य में दिखाई देती है। "डॉ. विजय के पठित रचना संसार से मन मस्तिष्क में एक छाप छूट जाती है कि शब्दों की पकड़ द्वारा रचना शैली कितनी रोचक हो गई।"

डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य का वाग्वैदग्ध्य अति विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण है, इसमें इन्होंने गद्य की विविध विधाओं के अन्तर्गत अपने कला कौशल, वाक कौशल का प्रयोग करते हुए, भारतीय समाज में फैली विसंगतियों विडम्बनाओं, मानवीय मन की पीड़ाओं, सामाजिक समस्याओं, सामाजिक विश्वास, मान्यताओं को तत्कालीन परिवेश के संदर्भ में लिखा है जब ये रचनाएँ लिखी गई उदाहरणार्थ 'उलझन' कहानी संग्रह 1953 में लिखा गया उसमें संकलित कहानियाँ पैंसठ वर्ष पूर्व की है तब से आज तक के समाज में अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं। तत्कालीन परिवेश में व्याप्त सामाजिक बुराईयाँ जैसे छुआछूत, धार्मिक अंधविश्वास, जाति प्रथा, धार्मिक विश्वास, परम्पराएँ आदि पर केन्द्रीत अनेक कहानियाँ लिखी है। वहीं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नाटकों का सृजन किया है जो हमारी संस्कृति की व्यापकता और विशिष्टता के व्यापक संदर्भ प्रस्तुत करते है। नाटकों में डॉ. विजय ने छत्रपति शिवाजी की वीरता व शोर्य गाथा का वर्णन अपने नाटक में किया है। वही अपने निबन्धों में भारतीय संस्कृति की विविध विशेषताओं भारतीय दर्शन व चिन्तन को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है 'वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण' जैसे निबन्ध संग्रह में डॉ. विजय ने साहित्य व समाज के सम्बन्ध को दर्शाते हुए साहित्यकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला है डॉ. विजय ने अपने निबन्धों में स्पष्ट किया है कि संवेदनशील साहित्यकार अपनी अनुभूत संवेदनाओं को साहित्य सृजन में व्यक्त करता है। यही उसका कौशल व चातुर्य या वाग्वैदग्ध्य कहा जा सकता है।

"निबंधों, उपन्यासों, कहानी, नाटकों, एकांकी आदि सभी के प्रति समर्पण भाव प्राचीन परम्परागत आध्यात्म और सांस्कृतिक धरोहर से जोड़कर भावी पीढ़ी को ज्ञान प्रदान करते हुए वही भारती साहित्य और सामाजिक सरोकार भारतीय साहित्य की परम्परा का अभिन्न अंग माना है।"[83]

डॉ. विजय ने अपनी सृजन यात्रा में विविध गद्य विधाओं में लालित्यपूर्ण, संस्कृतनिष्ठ, प्रांजल भाषा का प्रयोग करते हुए अपना सृजन किया है।

"वाग्वैदग्ध्य की निपूर्णता युक्त डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' की भाषा प्रवाहमय है जिसमें शब्द चयन में कहीं–कहीं स्थानीय शब्दावली का संयोजन भी करते हैं।"[85] तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग अपने विचार पुष्टि के अनुरूप करते हैं कहीं–कहीं चिन्तन के परिवेश में सूक्तिमयी अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। "अभिव्यक्ति या क्रिया का जो सूक्ष्मतम तथा मधुरतम भाव है वही संस्कृति है वाग्वैदग्ध्य की आत्मा का आनन्दमय भाव तत्व रस शिल्प में निवास करते हैं जीवन स्वयं एक अभिव्यक्ति है। वाग्वैदग्ध्य में रचना स्वायत्तता की परिधि शिवत्व ही है।"[86] डॉ. विजय की अभिव्यक्ति में संस्कृति की आत्मा, सामाजिक सरोकार निर्वहन, उच्च आदर्श आदि प्रतिबिम्बित होते हैं। यही इनकी विशिष्टता व वाक् कौशल है।

हिन्दी गद्य साहित्य – एक परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य की महती विशेषता है गद्य की प्रचुरता इसी से यह युग गद्य युग कहा जाता है। पूर्ववर्ती हिन्दी में गद्य का प्रचलन कम था। प्रायः प्रत्येक भाषा के साहित्य में गद्य का प्रचार देर से प्रारम्भ हुआ है। आधुनिक युग में सुव्यवस्थित गद्य के पूर्व हिन्दी की विभिन्न बोलियों में गद्य लेखन के थोड़े से उदाहरण मिलते है। ये तीन रूपों प्राप्त है राजस्थानी गद्य, ब्रज भाषा गद्य और खड़ी–बोली गद्य।

"ग्यारहवी से चौदहवीं शताब्दी तक साहित्यिक क्रियाशीलता का केन्द्र राजस्थान रहा है। राजस्थानी लेखकों ने डिंगल पिंगल और अपभ्रंश से प्रभावापन्न रचनाएँ की है। पद्य के साथ–साथ धर्म, राजनीति, इतिहास, छन्दशास्त्र, गणित ज्योति व इत्यादि की रचनाएँ यहाँ हुई है। प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जाएगा कि राजस्थानी गद्य ब्रज के गद्य से अधिक समृद्ध और वैदिध्यपूर्ण रहा है। राजस्थानी गद्य के उदाहरण दानपत्र, पट्टा–परवाना वार्ता जैन ग्रंथ, इतिहास, धर्मशास्त्र, गणित ज्योतिष, काव्यशास्त्र इत्यादि में उपलब्ध होते है। साहित्य के क्षेत्र में चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध से ब्रज भाषा प्रतिष्ठित हो जाती है इसके पश्चात इसमें गद्य की अनेक रचनाएँ मिलती है। ब्रज लगभग पाँच सौ वर्षों तक हिन्दी–प्रदेश की साहित्यिक भाषा रही है इसी बीच

गद्य के साथ–साथ थोड़ी बहुत गद्यात्मक रचनाएँ भी लिखी गयी है। किन्तु इसमें मूलतः लेखन की सुव्यवस्थित प्रणाली का अभाव था। इसमें पंडिताऊं शैली अधिक है।"[91]

गद्य साहित्य में आज जिस परिनिष्ठित हिन्दी का व्यवहार धड़ल्ले से हो रहा है यह पहले दिल्ली और मेरठ के आस–पास की जनभाषा थी। गद्य की इस धारा को परिवर्तित करने वालों में सन्त कवियों को प्रथम श्रेय जाता है। दिल्ली पर मुस्लिम शासक आ चुके थे राज्य कार्य में दिल्ली के आस–पास की बोली को प्रश्रय मिला था। यद्यपि यह जनभाषा राजभाषा न बनी पर सामान्य आदान–प्रदान की भाषा तो यह थी ही। अंग्रेजी की स्थापना के समय शासक वर्ग यहाँ की किसी भाषा को अपनाना चाहता था जिससे अधिकांश व्यक्तियों से बातचीत हो सके। अस्तु इसके लिए खड़ी बोली ही माध्यम बनी। यही कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थी। जिनसे खड़ी बोली को विकसित होने का पूरा अवसर मिला।

"खड़ी बोली का मूल रूप कहीं बाहर से आयात नहीं किया गया है। यह तो दिल्ली और मेरठ की जनपद की भाषा थी, जिसमें परिस्थिति के अनुरोध से अपना स्वाभाविक विकास किया है। खड़ी बोली गद्य का सबसे पुराना रूप अकबर के दरबारी कवि गंग रचित 'चंद छन्द बरतन की महिमा' में मिलती है। वि. 1768 में लिखित रामप्रसाद निरंजनी की 'भाषा योगवासिष्ठ' की भाषा काफी परिमार्जित है सं. 1818 में दौलतराम ने जैन ग्रंथ 'पद्मपुराण' का भाषानुवाद किया इसकी भाषा त्रुटिपूर्ण है। इसके पश्चात् एक राजस्थानी लेखक का मंडोवर वर्णन मिलता है। इसकी भाषा भी बोलचाल की ही है।"[92]

उपर्युक्त तथ्य इस बात की पुष्टि करते है कि खड़ी बोली की परम्परा अंग्रेजों से नहीं चली इसका प्रचलन समाज में पहले से था। "अंग्रेजों ने यह पहचानने में तनिक भी भूल नहीं की थी कि भारतीय जनता की भाषा कौन सी हो सकती है। शासन की दृढ़ता के लिए कलकत्ता के फोर्ट विलियम्स कॉलेज में हिन्दी और उर्दू की शिक्षा तथा गद्य की पुस्तकों के निर्माण की ओर ध्यान दिया गया। इस समय खड़ी बोली गद्य की दो स्पष्ट धाराएँ मिलती है राजप्रेरित धारा और पूर्वीस्वतन्त्र गद्य धारा। राजप्रेरित धारा के आदर्श हो सदल मिश्र, लल्लू लाल और स्वतन्त्र धारा के आदर्श थे सदासुख लाल और इंशा अल्ला खां। इस युग के ये चारों लेखक लेखक चतुष्टय के नाम से जाने जाते हैं।"[93]

"भारतेन्दु युग की सबसे महान उपलब्धि है गद्य साहित्य। गद्य साहित्य में इस समय अनेक नये–नये मार्ग खुले। इसी से लगभग सभी इतिहासकारों ने इसे गद्य युग कहकर अभिहित किया है। उपन्यास नाटक निबन्ध, समालोचना पत्र–पत्रिकाएँ, जीवनी, साहित्यिक इतिहास इत्यादि

अनेक गद्य रूपों के बीजवपन का यही समय है। गद्य रूपों में स्थिरता भी लगभग इसी काल में हो चली थी जनजीवन से सीधे सम्पर्क में आने के कारण हिन्दी साहित्य में इतिहास, भूगोल, विज्ञान, राजनीति, धर्म इत्यादि विभिन्न विषयों पर तरह–तरह की पुस्तकें उपयोगी साहित्य के रूप में सामने आने लगी। इस काल में अधिकांश लेखक बहुश्रुत थे।"[94] इसी से वे एक ही साथ अनेक प्रकार के विषयों पर समान अधिकार के साथ लेखनी उठाते थे। "प्रमुख गद्यकारों में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' राजा लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीनिवास दास, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', 'राधाकृष्णदास, तोताराम वर्मा, देवकी नन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, पं. प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि के नाम लिये जाते हैं। इन गद्यकारों के समक्ष प्रायः दो बातें ही उग्र रूप में थी नवोदित राष्ट्रीयता के कारण देशोत्थान की भावना और हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार प्रसार।"[95]

"द्विवेदी युग मूलतः गद्य का युग रहा है सन् 1900 ई. में 'सरस्वती पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आचार्य द्विवेदी ने इसका सम्पादन कार्य सन् 1903 ई. में संभाला।"[96]

"हिन्दी गद्य को वास्तविक प्रौढ़ता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल में प्राप्त हुई। स्वयं आचार्य शुक्ल ने हिन्दी समीक्षा को नया आधार प्रदान किया तथा हिन्दी में 'साहित्य के इतिहास' आज भी अमूतपूर्व कृति मानी जाती है। उन्होंने साहित्य तथा मनोविकार संबंधी उच्च कोटि के निबन्ध लिखे। शुक्ल जी के युग से ही हिन्दी में लेखन–कहानी लेखन की परम्परा का सूत्रपात हुआ। तुलसी, सूर, जायसी आदि पर शुक्ल जी ने मौलिक दृष्टि से लिखा। प्रसाद, प्रेमचन्द्र, गुलाबराय, राहुल सांकृत्यायन, राजा रघुवीर सिंह आदि उनके युग के प्रतिनिधि गद्यकार थे।"[97]

1940 के पश्चात हिन्दी गद्य का विकास गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों दृष्टियों से अभूतपूर्व रूप से हुआ है। "जहाँ आलोचना उपन्यास कहानी, नाटक, निबन्ध जैसी प्रचलित विधाओं में विपुल गद्य लिखा गया वहीं ललित निबंध, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र एकांकी डायरी रिपोर्ताज जैसी नयी–नयी विधाओं में श्रेष्ठ किस्म का गद्य लिखा गया है इतना ही नहीं, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति वाणिज्य व्यापार सामयिक संदर्भ जैसे विषयों पर निरन्तर उच्च कोटि का गद्य लिखा जा रहा है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि आधुनिक युग के प्रमुख गद्यकार है। राजस्थान के गद्यकारों में रामकृष्ण शर्मा शिलीमुख डॉ. सोमनाथ गुप्त डॉ. कन्हैयालाल सहल, डॉ. देवराज उपाध्याय, रांगेय राघव, नरोत्तम स्वामी आदि ने हिन्दी गद्य परम्परा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।"[98]

"राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च 'मीरा पुरस्कार' से पुरस्कृत उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'साहित्य भूषण' सम्मान से समादृत पं. दीनदयाल उपाध्याय साहित्य पुरस्कार से विभूषित, विक्रमशीला हिन्दी विद्यापीठ भागलपुर (बिहार) से अपनी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए 'विद्या सागर' (डी.लिट.) की मानद उपाधि प्राप्त एवं राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा सत्र 1994–95 में 'विशिष्ट साहित्यकार' सम्मान से समादृत डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' उत्कृष्ट साहित्यकार, कुशल संपादक, श्रेष्ठ कवि अनेक राष्ट्रीय स्तर की साहित्यक एवं सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्ष राजस्थान विधानसभा के सदस्य एवं और भी कई गतिविधियों से जुड़े रहे हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी व्यवसाय से वकील और ह्रदय से कवि, कथाकार, नाटक, लेखक समीक्षक और निबन्धकार है।"[99] ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से बातचीत करने का भी अपना एक आनन्द है। सफलता के सर्वोच्च शिखर पर बैठे "डॉ. विजय का स्वभाव उतना ही नम्र मृदुल और स्नेहशील है, अहंकार उन्हें तनिक भी स्पर्श नहीं कर पाया। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्य साहित्य का 'वाग्वैदग्ध्य' के बहुत ही मार्मिक ढंग से कलम द्वारा शब्दों को कागज पर उकेरा है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, गजल, गीति, युक्त छंद हाइकु कहानी नाटक, एकांकी निबंध एवं आलोचना अर्थात् लगभग सभी विधाओं में प्रस्तुत किया गया है। सफलता के सर्वोच्च शिखर पर बैठे डॉ. 'विजय'' का गद्य साहित्य बहुत ही परिष्कृत और प्रांजल है।"[100]

डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य साहित्य का संसार

1. कहानी संग्रह – 1. उलझन (सन् 1953 ई.)
   – 2. स्वप्न और सत्य (1979 ई.)
   3. बड़ी मछली (1992 ई.)
   4. एक और क्रांति (1995 ई.)
2. नाटक संग्रह – 1. आदि सम्राट (1974 ई.)
   2. छत्रपति शिवाजी (1975 ई.)
   3. सिंहासन (1989 ई.)
   4. राग से विराग तक (नाटिका 1983)
3. उपन्यास संग्रह – (1) रमताराम (2004 ई.)
   (2) पायसपायी (2008 ई.)
4. निबंध संग्रह – (1) गीता अनुशीलन (1984 ई.)

(2) राजस्थानी काव्य साधना अब और तब (1990 ई.)

(3) विचारों के अमलतास (1995 ई.)"

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' की साहित्यिक प्रतिभा के साथ उनकी वक्तृता–दक्षता भी छात्र जीवन में विकसित हुई अध्ययन काल में कोटा महाविद्यालय (हर्बर्ट कॉलेज) में सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों तथा गोष्ठियों का आयोजन एवं संचालन किया।

हिन्दी गद्य साहित्य की शैली के एक–एक शब्द को डॉ. विजय ने अपने लेखन में मोती की भाँति पिरोकर साहित्य सृजन को नया आयाम प्रदान कर हम भावी विद्यार्थियों को पढ़ने व परिष्कृत कर उसे समाज में पढ़ने व लिखने हेतु प्रेरित किया है।

हम विद्यार्थी गद्य साहित्य के कुछ अंश से डॉ. विजय के लेखन व मार्गदर्शन से कुछ सीख सकें यह हमें प्रेरणा मिली है। "डॉ. विजय का साहित्यिक जीवन भी सम्मान और सफलता के चरम पर रहा है। राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च 'मीरा पुरस्कार' सन् 1980 में (आंजनेय महाकाव्य) के लिए मिला। छोटी खाटू पुस्तकालय का पं. दीनदयाल उपाध्याय साहित्य पुरस्कार सन 1993 में दिया गया। विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ भागलपुर द्वारा विद्या सागर (डी. लिट्.) की मानद उपाधि (1993) से नवाजा गया। राजस्थान साहित्य अकादमी का विशिष्ट साहित्य सम्मान पुरस्कार सन् 1994 सम्पूर्ण साहित्य पर दिया गया। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का साहित्य, भूषण सम्मान पुरस्कार सन् 1997 में दिया गया। अभिनन्दन और सम्मान की इसी श्रृंखला में डॉ. दयाकृष्ण विजय ने भारत में ही नहीं अपितु विदेश में भी गद्य लेखन से अपना परचम लहराया डॉ. विजय को सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम (अमेरिका) में विश्व हिन्दी सम्मान सन् 2003 ई. में प्रदान कर सम्मानित किया गया। यह हम सभी विद्यार्थियों के गौरव का विषय है।"[101]

गद्य लेखन की छवि को और निखारकर डॉ. दयाकृष्ण विजय विविध साहित्यिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में सक्रिय रूप से भागीदार रहे हैं। "सन् 1958 में राजस्थान की प्रसिद्धि साहित्यिक संस्था भारतेन्दु समिति के सदस्य बने उसी वर्ष इन्हें संस्था का प्रधानमंत्री बनाया गया और तीन बार प्रधानमंत्री व एक बार अध्यक्ष चुने गए। डॉ. विजय दो बार गौरवशाली संस्था 'राजस्थान साहित्य अकादमी' अध्यक्ष भारतेन्दु समिति के प्रतिनिधी के रूप में डॉ. विजय दो बार गौरवशाली संस्था सरस्वती सभा व संचालिका के सदस्य रह कर अपना अमूल्य योगदान दिया। गद्य साहित्य के शब्दों को बहुत ही सुन्दर तरीके से पिरोकर साहित्यजगत में योगदान दिया। तेजस्वी प्रफुल्लित सौम्य आकर्षक लेखन के महोहारी व्यक्तित्व डॉ. विजय ने गद्य साहित्यिक को

आत्मसात किया वह महान लेखनी के धनी दिव्य माल पर ललित ललाम बिन्दु शरदिन्दु की आभा को परभूत करता है।"[102]

हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है—

हिन्दी निबंध – "निबंध आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक नवीन विद्या है हिन्दी में इसका विकास आधुनिक युग में अंग्रेजी में Essay के अनुकरण पर हुआ। भारतेन्दु युग से पहले निबंध का कोई उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ तक कि विशाल संस्कृत वाङ्मय में भी इस विद्या का कहीं उल्लेख नहीं है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य की लगभग सभी प्रचलित विधाओं के साथ ही निबंध पर भी अपनी लेखनी उठाई। भारतेन्दु युग के दूसरे प्रसिद्ध निबन्धकार 'बालकृष्ण भट्ट' का नाम प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने वर्णात्मक विचारात्मक और भावात्मक सभी प्रकार के निबंधों की रचना की है।"[103]

"बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग के तीसरे प्रसिद्ध निबंध लेखक हैं। शिवशम्भू का चिट्ठा और खत में निहित निबंधों की पत्रात्मक शैली के लिए ये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। भारतेन्दु युग के चौथे प्रसिद्ध निबंधकार पं. प्रताप नारायण मिश्र है। इन्होंने अत्यन्त साधारण विषयों को लेकर व्यंग्य प्रधान तथा गवेषणात्मक निबंध लिखे। हिन्दी निबंधों का आदर्श रूप द्विवेदी युग में सामने आया। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी डॉ. श्याम सुन्दरदास, पद्म सिंह शर्मा, अध्यापक पूर्णसिंह आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"[104]

"हिन्दी निबंध लेखन एवं शैली का पूर्ण विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों में मिलता है शुक्ल जी के निबंधों की पुष्ट भाषा चुस्त एवं कसी हुई शैली, विचारों की परिपक्यता और उनका क्रम विन्यास सभी कुछ नवीन और हिन्दी निबन्धकारों में बाबू गुलाबराय पदुमलालपन्ना लाल बख्शी परशुराम चतुर्वेदी वियोगी हरि, राय कृष्णदास शांतिप्रिय द्विवेदी तथा वासुदेवशरण अग्रवाल विशेष उल्लेखनीय है।"[105]

"हिन्दी वर्तमान युग निबंधो की दृष्टि से भी उत्कर्ष एवं विस्तार का काल है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी डॉ. नगेन्द्र, महादेवी वर्मा, रामविलास शर्मा प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, डॉ. देवराज आदि इस काल के प्रमुख निबंधकार हैं। इधर 'हिन्दी' में ललित निबंधों के लेखन की परम्परा का भी विकास हुआ है। इस क्षेत्र में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय ठाकुर प्रसाद सिंह, विवेकी राय, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे और डॉ. श्रीराम परिहार का प्रयास स्तुत्य है। डॉ. नगेन्द्र ने भी ललित निबंध लेखन में कुछ योग दिया है। इधर हिन्दी में

हास्य व्यंग्य प्रधान निबंधों की परम्परा भी विकसित हुई है। इस क्षेत्र में बेढव बनारसी हरिशंकर परसाई, केशवचन्द्रसेन वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, भीमसेन त्यागी, शरदजोशी, नरेन्द्र कोहली आदि के नाम उल्लेखनीय है।"[106]

इस प्रथा को अपने लेख में डॉ. विजय के शब्दों में साहित्यिक जगत में निबंध शैली को डॉ. विजय ने आगे बढ़ाया। "डॉ. विजय की निबंध शैली गीता अनुशीलन (1984 ई.) में बहुत ही उत्कृष्ट योगदान दिया डॉ. विद्यानिवास मिश्र तथा डॉ. कुबेरनाथ राय जैसे लब्धप्रतिष्ठ निबंधकारों की पंक्ति में राजस्थान से खड़े होने में समर्थ एवं सक्षम निबंधकारों के रूप में डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का नाम हम निःसंकोच रूप से ले सकते हैं।"[107]

"डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' का तीसरा निबंध संग्रह 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य' धारिका प्रकाशन रोहिणी दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व के उपन्यासों 'विचारों के अमलतास' तथा 'साहित्य संस्कृति और युग बोध' बौद्धिक एवं साहित्यिक धरातल पर खड़े है। वहीं इस निबंध संग्रह में डॉ. विजय वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ हमारे सामने आते हैं। इनकी यह वैचारिकता कहीं से उधार ओढ़ी हुई नहीं है। अपितु भारत की सनातन, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक वैचारिकता है। इसे हम प्रतिबद्धता नहीं कह सकते। यह तो भू–संस्कृति की सौंधी सुगंध है जिससे डॉ. विजय का व्यक्तित्व आपाद सुवासित है सुशोभित है डॉ. विजय का सारा रचना संसार ही हमें भू–संस्कृति की सौंधी गंध से सुगंधित हुआ मिलता है।"[108]

"डॉ. विजय के निबंध संग्रह में वैचारिकता का उन्मेष हमें दो स्तरों पर स्पष्ट हुआ परिलक्षित होता है। वे जहाँ दर्शन की भंगिमा को स्वीकार करते हुए अपने वैचारिक निष्कर्ष को रूपायित करते हैं वहीं वे उस दृष्टि का व्यवहारिक परिणाम भी विवेचित करते हैं। इन्हें मात्र सिद्धांत की खोज की वरेण्य नहीं है उस सिद्धान्त को व्यावहारिक समीक्षा में उपादेय बनाते हुए उसी आधार पर कृति एवं कृतिकार की समीक्षा का प्रयास करते हैं। डॉ. विजय के निबंधों में स्पष्टता, संक्षिप्तता, सूत्रात्मकता, सरलता, सहजता जैसे प्राप्त गुणों ने निबंधों को प्रासंगिकता पर वे विशेष ध्यान देते हैं।"

डॉ. विजय की भाषा प्रांजल है। तत्सम बहुल है, शालीन व शिष्ट है। इसमें जहाँ सरसता है वहीं परिमार्जित सोष्ठव है। यह उनके बहुपठित ज्ञान का सूचक है तर्क संगत शब्दों की बौछार के साथ ये अपने पक्ष को तर्क के विकासात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' के विभिन्न विषयों पर लिखें तेईस निबंधों का संग्रह प्रथम लेख 'भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार' में लेखक के भारत के शास्त्रीय वाङ्मय के विराट अध्ययन उसके मौलिक चिन्तन भारतीयता में अटूट आस्था अद्भूत लेखकीय क्षमता तथा

भाषा पर असाधारण अधिकार के दर्शन होते हैं। यह लेख अत्यन्त समृद्ध सूचनाओं उच्च स्तरीय मौलिक स्थापनाओं तथा भारतीय साहित्य के नैसर्गिक रूप से निहित सर्वजनहिताय के तथ्य की ईमानदारी पड़ताल को लिए अत्यन्त महान् एवं पूर्ण हो गया है। लेखक इस लेख में यह सिद्ध करने में पूरी तरह सफल साहित्य का आनन्द हेतु आत्म चेतना प्रतिष्ठा व लोकमंगल का अधिष्ठान है अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है एवं सत्यम् शिवम् सुन्दरम् इसके उपादान तत्व है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' कवि कथाकार के रूप में राजस्थान के सुपरिचित एवं स्थापित हस्ताक्षर है। शोध आलोचना में में भी डॉ. विजय का अपना अलग अंदाज पढ़ने को मिलता है। निबंधों का यह आलोच्य संग्रह उनके निबन्धकार के ज्ञानात्मक स्वरूप का परिचय देता है। आलोच्य निबंध संग्रह के इन अट्ठारह निबंधों को चार वर्गों में रखा जा सकता है।

प्रथम वर्ग में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और रचनाकार शिक्षा और जीवन मूल्य, अन्रराष्ट्रीयता, साहित्य और संस्कृति भारतीयता और साहित्य (पांच)।

द्वितीय वर्ग में गुप्त जी की युग चेतना पं. गिरधर शर्मा नवरत्न की युगचेतना, सूर का मानववाद (तीन)।

तीसरे वर्ग में साहित्य सर्जन की केन्द्रिय विधाः समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में भारतीय साहित्य में रामकथा की महत्ता काव्य का स्वरूप और उसकी उपयोगिता कस्मैदेवाय हविषाविधेयम् (छः)।

चौथे वर्ग में हाड़ौती अंचल की साहित्यिक परम्परा राजस्थान की संत परम्परा और रामस्नेही स्वामी रामचरण राजस्थान की लोक भाषाएँ और राजस्थानी भाषा की एकरूपता की आवश्यकता (चार) है। डॉ. विजय के प्रथम वर्ग की अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य की विशिष्ट परम्परा के चिन्तनस्त्रोत अवगाहन करती है तो दूसरे वर्ग में तीन साहित्यकारों का मूल्यांकन है। तीसरे वर्ग में साहित्यिक वैविध्य का शास्त्रिय स्वरूप उभरता है और चौथे में हाड़ौती अंचल की लोकभाषा साहित्य एवं संत परम्परा आदि का विश्लेषण मिलता है।

"निबंध वैचारिक चिन्तन की देन है और विविध चिन्तन दृष्टियों का समावेश हो जाना ही उसकी विधात्मक विशेषता होती है। अतः इसी निष्कर्ष पर इन निबन्धों में डॉ. विजय का मनोयोगपूर्ण चिन्तन एवं कथन भंगिमा की नवीनता विद्यमान है। प्राध्यापकीय आलोचना–पद्धति से इन निबंधों की सैद्धान्तिकता भले ही न मिले परन्तु यह अवश्य ही मिलता है कि ये निबंध गम्भीर जीवनानुभूति समाज से गहरा जुड़ाव, वैचारिक जीवन दृष्टि शाश्वत जीवन मूल्य विचार विश्लेषण की गहनता और चिन्तन की सूक्ष्मता विद्यमान है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा रचनाकार

की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि रचनाकार की यह आंतरिक चेतना विराट चिति का अतीव सूक्ष्मांश है।"[109]

"डॉ. विजय इस चिन्तन के परिणत रूप में ही विषय के साथ न्याय करते हैं तथा यह स्पष्ट करते हैं कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है लेकिन इसमें प्रतिबद्ध लेखन को इस स्वतन्त्रता का हरण भी मानते हैं क्योंकि इसे अर्थवती वेग भी मानते हैं कि जब सर्जन मानवीय सम्वेदनाओं से जुड़े, स्वतन्त्रता से विसंगतियों के विरुद्ध जुझारु स्वर उच्चारित करें तथा दुर्बल का पक्ष घर बने लेकिन जब साहित्य सर्जन की केन्द्रिय विधा पर वे चिन्तन करते हैं तो उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में ही समकालीनता पर विस्तार से विचार करते हैं क्योंकि उसके कारण ही यथार्थ जीवन यथार्थ समाज यथार्थ राजनीतिक घटनाचक्रों का जीवन्त दस्तावेज उपन्यास बनता है। निबंध संग्रह के समस्त निबंध की कसौटी पर खरे हैं। भाषा संस्कृत निष्ठ है। यथावसर खंडन–मंडन भी है। युगधर्म कर्म का निर्वहन निबंधकार की कीर्ति को और धवल बनाएगे। विघटन अराजकता दिग्भ्रमिता की परिस्थिति में निबंधों की विषय वस्तु हमें आश्वस्त करती है, आन्दोलित करती है।"[110]

उपन्यास – हिन्दी उपन्यास कला भी आधुनिक युग की देन है। हिन्दी उपन्यासों की रचना का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है परन्तु इसका पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है। 'गोदान' प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों से भिन्न यथार्थवादी दृष्टिकोण से एक भारतीय कृषक की दीन–हीन दशा का चित्रण है।

प्रेमचन्द के साथ या बाद में उपन्यासों की रचना करने वालों में जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय चतुरसेन शास्त्री विश्वम्भर शर्मा, कौशिक बेचेन शर्मा उग्र प्रतापनारायण श्रीवास्तव वृन्दावन लाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, निराला पंत महादेवी वर्मा आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास–कला भी स्वयं को युग की बौद्धिकता के अनुरूप शैली और शिल्प के स्तर पर नवीन करती देखी जा सकती है। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र भगवती चरण वर्मा, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल, सियाराम शरण गुप्त रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त अमृतलाल नागर, नरेन्द्र कोहली आदि इस युग के प्रमुख उपन्यासकार है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के उपन्यास कथा साहित्य की एक विधा है। प्रतिष्ठित कथाकार के रूप में स्वामी रामानंद के जीवन पर उपन्यास 'पायसपायी' लिखा वह उसी प्रकार चरित्र उपन्यास और इतिहास की त्रिवेणी की अवतारणा करता है। उपन्यास की भाषा सहज और सुबोध है यद्यपि

उसमें भक्ति सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का भी प्रसंगगतविवरण है जो कभी आचार्य मुख से कहलवाया गया है।

डॉ. विजय ने उपन्यास के शीर्षक 'पायसपायी' का उत्स भी संकेतित किया है कि उनके मित्र उदय प्रताप सिंह जी ने सुझाया था। इसमें हमें रामानन्द संप्रदाय के एक अन्य परम श्रद्धेय सन्त के नाम के साथ जुड़ा दिलचस्प इतिहास याद आ गया। पायसपायी का शब्दार्थ होता है। दुग्धाहारी (अर्थात खीर पिलाने वाला इसका ही एक पर्याय है पय–आ–हारी दुग्ध का ही आहार करने वाला)। यही अभिधान था रामानन्दाचार्य के प्रधान शिष्य सन्तानन्द के चेले कृष्णदास पयहारी का जो जयपुर में आए थे और जिन्होंने यहाँ संप्रदाय की परम्परा स्थापित की। एक युग प्रवर्तक तथा उत्तर भारत के शिखर स्तर के संत की जीवनी को ललित उपन्यास के लिबास में उतारकर वरिष्ठ लेखक डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने न केवल अपनी सर्जन यात्रा को एक नया पड़ाव दिया है अपितु जगद्गुरु रामानन्दाचार्य को राजस्थान की ओर से विनयपूर्ण श्रद्धांजलि देकर हमसब का गौरव भी बढ़ाया है।

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' के बहु आयामी रचनाकार व्यक्तित्व से हिन्दी जगत सुपरिचित है दूसरा उपन्यास 'रमताराम' की विधानुसार लिख संकल्पित संकल्प को पूरा किया स्वामी रामचरण जी महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय के संस्थापक निर्गुण संत है। संतों, महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर उपन्यास लेखन परम्परा हिन्दी उपन्यास परम्परा में विरल है। अमृतलाल नागर के 'मानस के हंस' एवं खंजननयन में तुलसीदास एवं सूरदास के जीवन को औन्यासिक रंग में रंगने के लिए रचनाकार ने कल्पना और यथार्थ के तानेबाने में जो चरित्र सृष्टि की है उसमें पाठक अपने एवं रचनाकार युग के जीवन संघर्ष को प्रतिबिम्बित पाता है। 'रमताराम' को भी विद्या के तत्त्वों पर परखते हुए इसे उपन्यास की अपेक्षा जीवनी ही कहा जाता तो अधिक युक्ति संगत होता। उपन्यास में यथार्थ और कल्पना का योग अनिवार्य है। वस्तुतः उपन्यास वास्तविक जगत् की काल्पनिक कथा ही है। उपन्यास शैली भी तीन भागों में विभाजित है। 1. प्रेमचन्द्र युग, 2. भारतेन्दु युग, 3. प्रेमचन्द्रोत्तर युग

हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष से परिभाषित उपन्यास थे। आधुनिक उपन्यास में सभी शैली की नयी विचार धाराओं को साथ लेकर लिखा गया और उपन्यास शब्द को नये शब्दों में परिभाषित किया।

'कहानी' लेखन – हिन्दी कहानी लेखन में उपन्यास के बाद आज भी हर विषय पर लिखी जाने वाली कहानी अपने आप में हिन्दी जगत में स्थान बनाये रखती है। उपन्यास की भाँति कहानियों की रचना का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की

पहली कहानी माना जाता है। हिन्दी कहानी का भी चरम उत्कर्ष प्रेमचन्द की लेखनी से हुआ इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य में कहानियों के अभाव की पूर्ति की। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी कला के क्षेत्र में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का योगदान चिरस्मरणीय है। इनकी उसने कहा था कहानी हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है यही इनकी अक्षय कीर्ति का स्तम्भ भी है। जैनेन्द्र जी से हिन्दी कहानियों के वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है।

इसी धारा प्रवाह में बहकर उत्कृष्ट साहित्यकार, कुशल संपादक श्रेष्ठ कवि अनेक राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्ष डॉ. दयाकृष्ण विजय ने सामाजिक सरोकार हेतु अन्य गतिविधियों से जुड़कर कहानियों को अपनी कलम द्वारा कागज पर उकेरा।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का कथा संसार इस प्रकार है–

- उलझन (सन् 1953 ई.)
- स्वप्न और सत्य (1979 ई.)
- बड़ी मछली (1992 ई.)
- एक और क्रांति (1995 ई.)

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने अबतक चार कहानी संग्रह लिखे। 'उलझन' (1953 ई.) में प्रथम साहित्यिक कृति है। जिसमें ग्रामीण परिवेश जीवन की सामान्य घटनाओं अनुभवों और भावनाओं को मार्मिक हृदय स्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है। इस कहानी संग्रह के संबंध में लिखा 'उलझन की पृष्ठभूमि में कुछ मेरे प्राणों की उलझन है तो कुछ सारे सांर के प्राणों की उलझन' डॉ. दयाकृष्ण विजय ने भावुकता, यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख भाव से लिखा है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' द्वारा रचित सभी कहानियों का मर्मस्पर्शीरूप से पाठक के मन को छूते हैं। इस संबंध में डॉ. दयाकृष्ण विजय के कहानी लेखन में कई लेखकों के अपने–अपने मत हैं।

डॉ. देवराज उपाध्याय के अनुसार – "लेखक की प्रतिभा ने आधुनिक कहानी के स्वरू‍ और मर्म को पहचाना है वह दुर्लभ है।"[111]

'नाटक' – हिन्दी नाटकों की परम्परा संस्कृत नाटकों को आधार बनाकर विकसित हुई। राजा लक्ष्मण सिंह ने सं. 1919 में कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलाम्' का अनुवाद हिन्दी में किया। हिन्दी नाटकों की विस्तृत परम्परा का विकास सर्वप्रथम भारतेन्दु युग में हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली' भारत जननी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, सती प्रताप 'विषस्य विषमौषधम' नाटक लिखे। प्रसाद जी हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी के रूप में आते हैं। हिन्दी नाटकों को स्वस्थ,

साहित्यिक, कलापूर्ण, स्वाभाविक मौलिक और स्वाधीन रूप देने का प्रथम श्रेय प्रसादजी की प्रतिभा का है, 'अजात शत्रु' स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य ध्रुव स्वामिनी आदि नाटक इसी युग में लिखे गये। लक्ष्मी नारायण मिश्रा हरिकृष्ण 'प्रेमी' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल मोहनराकेश डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद जगदीश चन्द्र माथुर आदि हिन्दी के प्रमुख नाटककार हैं।

इसी धारा में प्रवाहित होते हुए प्रतिष्ठित लेखक के रूप में अपनी छवि को उभारते हुए डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने भी निम्न 4 नाटक लिखे।

1. आदि सम्राट (1974 ई.)
2. छत्रपति शिवाजी (1975 ई.)
3. सिंहासन (1989 ई.)
4. राग से विराग तक (नाटिका 1983 ई.)

डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'आदि सम्राट' (1974) नाटक 59 पात्रों से सृजित 5 अंक वाला नाटक है। इन्द्र के जीवन की ऋग्वेदोक्त घटनाओं को समविष्ट करके पूर्ण नाटक बनाने का यत्न किया है।

हिन्दी साहित्य की गंगा में दो धारायें प्रवाहित है एक गद्य और दूसरा पद्य मेरी रचना का विषय गद्य संसार है जिसमें डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य के कुछ अंश द्वारा आपका लेखन चातुर्य को उजागर किया है कहानी में विभिन्न चरित्र चित्रण को कौशलपूर्वक चित्रित किया है और साथ ही उपन्यासों में रमता राम में रामचरण जी स्वामी के चित्रण चरित्र की विशेषताओं को उजागर कर लेखन कौशल की प्रेरणा दी है। आपके रचित चार नाटकों में प्रथम 'आदिसम्राट' में इन्द्र के चरित्र को प्रमुख पात्र बनकर 59 पात्रों द्वारा नाटकों को बड़ी ही मार्मिक ढंग से सृजित किया है कि द्वितीय नाटक 'छत्रपतिशिवाजी' के चरित्र को प्रमुख पात्र माना है। 'सिंहासन' तृतीय नाटक है जिसमें अयोध्या में सिंहासन की मूल कहानी राम के चरित्र चित्रण के ईर्द–गिर्द ही घूमती रहती है।

वाग्वैदग्ध्य का अर्थ

'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' शीर्षक में वाग्वैदग्ध्य के अर्थ को परिभाषित किया गया है अपनी बात करने में निपुणता वाणी की अभिव्यक्ति वाणी की कुशलता को बड़ी चातुर्य के साथ अपनी कलम द्वारा कागज पर उकेरा है। एक निपुर्ण कवि साहित्यकार शिल्प में हृदयावर्जक शैली के माधुर्य में भिगोकर प्रस्मुत की गई अनूठी विधा बन गई।

वाक् का अर्थ सरस्वती माँ के शब्दों का भाषा में उच्चारण वैदग्ध्य उन शब्दों को अभिव्यक्त करने वाली उत्कृष्ट शैली है जो गद्य विधा में प्रेरक वचन व ह्रदय स्पर्शी अभिव्यक्ति का एक माध्यम सिद्ध हुई।

वाग्वैदग्ध्य का आभास सर्वप्रथम सूरदास रचित भ्रमरगीत सार में गोपियों व उद्धव के वार्तालाप में गोपियों की अपनी वाणी के चातुर्य से व्यंग्य द्वारा आक्रोश भाव से अपनी बात मनवाने में निपूर्ण रहीं। बड़ी ही सरसता से व्यंग्य व उपालम्भ दोनों समानार्थी होते हुए भी दोनों के भाव में अंतर भी स्पष्ट है उलाहनाभाव से वह श्रीकृष्ण की प्रीत से आत्मसन्तोषी प्रवृत्ति से जवाब देकर स्वयं को श्री कृष्ण प्रेम में आस्क्त रखने के भाव पर कायम रहती है इन्हीं शब्दों का अर्थ 'वाग्वैदग्ध्य' है।

वाग्वैदग्ध्य दक्षतापूर्ण अपनी बात रखना और उस पर अडीग रहने के प्रवीणता को दर्शाकर साहित्य को श्रेष्ठ व जीवन मूल्यों से परिपूर्ण रखना इस शब्द का अर्थ है। इसी भाव का निर्वाह करते हुए डॉ. दया कृष्ण विजय ने अपने साहित्य गद्य के स्वरूप को कलक द्वारा उकेरा है। निबंध में समाज के प्रति समर्पण भाव प्राचीन परम्परा गत आध्यात्म और सांस्कृतिक धरोहर से जोड़कर भावी पीढ़ी को ज्ञान प्रदान करते हैं वहीं कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, एकांकी में भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार पर भारतीय दृष्टि से विचार करते हुए सामाजिक सरोकार भारतीय साहित्य की परंपरा का अभिन्न अंग माना है।

लेखक की वेदना शब्दाश्रित होती है जो ह्यावत है प्रगतिवादी धाराओं से ओतप्रोत भवनाओं का समावेश हमें यहाँ मिलता है।

वाग्वैदग्ध्य की निपूर्णता डॉ. विजय की भाषा प्रवाहमय है जिसमें शब्द चयन में कहीं–कहीं स्थानीय शब्दावली का संयोजन भी वे करते हैं। तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग अपने विचार की पृष्टि के अनुरूप करते है कहीं–कहीं चिन्तन के परिवेश में सूक्तिमयी अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं अभिव्यक्ति या क्रिया जो सूक्ष्मतम तथा मधुरतम भाव है वहीं संस्कृति है 'वाग्वैदग्ध्य' की।

आत्मा का आनन्दमय तत्व, रस, शिल्प में नहीं भाव में निवास करता है। जीवन स्वयं 'एक' अभिव्यक्ति है। वाग्वैदग्ध्य में रचना की स्वायत्तता की परिधि शिवत्व है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के वाग्वैदग्ध्य का चित्रण विविध आयामों द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विश्लेषण करने का मेरा प्रयास रहेगा।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. भ्रमरगीत सार : रामचन्द्र शुक्ल, पृ.–24
2. भ्रमरगीत सार : रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–25
3. डॉ. दयाकृष्ण विजय : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर पृ.सं.–57
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–118
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–119
6. भ्रमरगीत सार : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–28
7. सहस्त्र चन्द दर्शनम् : डॉ. शत्रुधन प्रसाद, पृ.सं.–29
8. डॉ. दयाकृष्ण विजय कृतित्व एवं व्यक्तित्व : शांति उपाध्याय, पृ.सं.–12–13
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–185–186
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–188, 189, 20–23
11. डॉ. दयाकृष्ण विजय कृतित्व एवं व्यक्तित्व : अभिनन्द ग्रंथ, पृ.सं. 182
12. डॉ. दयाकृष्ण विजय कृतित्व एवं व्यक्तित्व : अभिनन्द ग्रंथ, पृ.सं.–26,27
13. सहस्त्र चन्द्र दर्शनम : शत्रुध्न प्रसाद, पृ.सं.–29
14. भार्गव हिन्दी व्याकरण : आर.सी. पाशुर्य, 'वाग्वैदग्ध्य' का हिन्दी व्याकरण
15. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' अभिनन्दन ग्रंथ–डॉ. विजय कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं. 33
16. कृतित्व एवं व्यक्तित्व : गदाधर भट्ट, पृ.सं.–154–155
17. सहस्त्र चन्द्र दर्शनम – वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, पृ.सं.–27
18. भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार : डॉ. दया कृष्ण 'विजय', पृ.सं.–17,18,38,39
19. सहस्त्र चन्द दर्शनम् : डॉ. विमला सिंहल, डॉ. देवर्षि कलानाथ शास्त्री, पृ.सं.–42–43
20. सहस्त्र चन्द दर्शनम् : डॉ. विमला सिंहल, डॉ. देवर्षि कलानाथ शास्त्री, पृ.सं.–15
21. गद्य मंजूषा : डॉ. कृष्ण चन्द गोस्वामी, प्रो. डॉ. प्रहलाद नारायण अग्रवाल, पृ.सं. 128
22. गद्य मंजूषा : डॉ. कृष्ण चन्द गोस्वामी, प्रो. डॉ. प्रहलाद नारायण अग्रवाल, पृ.सं.–18
23. भार्गव हिन्दी व्याकरण : सं. आर.सी. पाठक, पृ.सं., 57–50
24. भार्गव हिन्दी व्याकरण : सं. आर.सी. पाठक, पृ.सं.–57,51,52
25. गद्य मंजूषा : डॉ. कृष्ण चन्द, डॉ. प्रहलाद, पृ.सं.–184
26. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का कृतित्व एवं व्यक्तित्व : शांति उपाध्याय, पृ.सं.–182–183
27. गद्य मंजूषा : डॉ. प्रहलाद, डॉ. कृष्ण चन्द्र, पृ.सं.–184,63,64,65,66
28. गद्य मंजूषा : डॉ. प्रहलाद, डॉ. कृष्ण चन्द्र, 67,68,69,70

29. गद्य मंजूषा : डॉ. प्रहलाद, डॉ. कृष्ण चन्द्र, 71,72,73
30. गद्य मंजूषा : डॉ. प्रहलाद, डॉ. कृष्ण चन्द्र, पृ.सं.–185–186, 74–86
31. भार्गव हिन्दी व्याकरण : सं. आर.सी. पाठक, पृ.सं.–258–59
32. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द शुक्ल, पृ.सं.–283–84
33. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द शुक्ल, पृ.सं.–283–290
34. डॉ. दयाकृष्ण विजय, विचारों के अमलतास, पृ.सं.–23
35. डॉ. दयाकृष्ण विजय, विचारों के अमलतास, पृ.सं.–23
36. डॉ. दयाकृष्ण विजय, विचारों के अमलतास, पृ.सं.–23
37. डॉ. दयाकृष्ण विजय, विचारों के अमलतास, पृ.सं.–23
38. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–11
39. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–11
40. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–11ी
41. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–11
42. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–13
43. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–13
44. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–13
45. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.–22
46. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.–22
47. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.–22
48. उपन्यास 'पायसपायी' डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
49. उपन्यास 'पायसपायी' डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
50. उपन्यास 'पायसपायी' डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
51. उपन्यास 'पायसपायी' डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
52. उपन्यास 'रमताराम', डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–23
53. उपन्यास 'रमताराम', डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–23
54. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.–7
55. उलझन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–3
56. उलझन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–3
57. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.–23

58. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
59. आदि सम्राट, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.—11
60. छत्रपति शिवाजी, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.—8
61. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.—11
62. राग से विराग तक, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.—06
63. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
64. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
65. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
66. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
67. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
68. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
69. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
70. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
71. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
72. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
73. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
74. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
75. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
76. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
77. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
78. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
79. गद्य साहित्य का इतिहास, डॉ. प्रहलाद दुबे, पृ.सं.—23
80. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123
81. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123
82. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123
83. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123
84. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123
85. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123
86. भार्गव शब्दकोश, पृ.सं.—123

87. हिन्दी साहित्य एवं वाग्वैदग्ध्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17
88. हिन्दी साहित्य एवं वाग्वैदग्ध्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17
89. हिन्दी साहित्य एवं वाग्वैदग्ध्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17
90. हिन्दी साहित्य एवं वाग्वैदग्ध्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17
91. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
92. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
93. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
94. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
95. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
96. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
97. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
98. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
99. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–24/25
100. सहस्त्र चन्द्र दर्शनम्, पृ.सं.–13
101. सहस्त्र चन्द्र दर्शनम्, पृ.सं–29
102. सहस्त्र चन्द्र दर्शनम्, पृ.सं–29
103. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–26/27
104. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–26/27
105. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–26/27
106. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–26/27
107. डॉ. दयाकृष्ण विजय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.सं.–52
108. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–28/29
109. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.–122/123
110. डॉ. दयाकृष्ण विजय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.सं.–53
111. डॉ. दयाकृष्ण विजय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.सं.–56

द्वितीय अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का रचना संसार

द्वितीय अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का रचना संसार

"डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' मूलतः कवि हैं लेकिन वे एक अच्छे गद्यकार भी हैं। गद्यकार के रूप में वे एक ओर कथा सर्जक, नाटककार भी हैं साथ ही एक श्रेष्ठ एवं सारस्वतसार के शोधकर्ता के रूप में एक प्रांजल गद्य लेखक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। उनका गद्यकार जहाँ 'प्रसंगवश' लिखकर निबंधकार के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है, इसका प्रमाण गीता अनुशीलन (1984 ई.) है। यह लेखन निरन्तर चलता रहा कभी कथा संग्रहों में और कभी नाटकों में ऐतिहासिक पात्रों की स्थिती को चारित्रिक पक्ष को उभारते हुए रोचकता दिखाई देती है। पात्रों की सजीव चित्रण आँखों के सामने घूमने लगते हैं। डॉ. दयाकृष्ण विजय हाड़ौती अंचल के प्रमुख गद्यकार हैं और हाड़ौती अंचल अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में अपना श्रेष्ठ स्थान रखता है। डॉ. दयाकृष्ण का कथा शिल्प किसी नई शिल्प शैली के रुझान का आग्रही नहीं हैं पर आवश्यकतानुसार उनकी कथा शिल्प में मनोविश्लेषण भी पाई जाती है 'उलझन', 'बड़ी मछली', 'स्वप्न और सत्य', 'एक और क्रांति' आदि सभी मनौवैज्ञानिक लक्षणों से परिपूर्ण इनके कथा संग्रह है।"[1]

डॉ. दयाकृष्ण विजय के नाटकों एवं एकांकियों के उद्देश्य पर विचार किया जाये तो सहज ही ज्ञात होगा कि राष्ट्रीयता भारतीय सांस्कृतिक चेतना का सम्वर्द्धन जीवन मूल्यों का निवर्हन, विश्व कल्याण एवं समन्वयवादी भावनाओं का विकास ही उनके नाट्य कर्म का मूल है।

2.1 कथा संग्रह

"डॉ. दयाकृष्ण विजय प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व की लेखनी से निकले शब्दों में सामाजिक परिवेश के साथ ही मनोवैज्ञानिक पद्धति को अपनाते हुए लिखी है। तीसरे कहानी 3. स्वप्न और सत्य सारी कहानियों में सामाजिक नैतिक आर्थिक सांस्कृतिक परिवेश लिए हुए है। इसमें हर कथा की अपनी विशेषता है उनके पात्रों के अनुसार कथा का अपना सार है। इस कथा संग्रह में यथार्थ और स्वप्न के बीच मन की विश्लेषण अभिन्न व्यक्ति को उजागर किया है। डॉ. विजय ने हमें इस कथा संग्रह में हर कहानी में पात्रों द्वारा सामाजिक परिवेश में रहकर अपने स्वप्न की विशेषता को उजागर किया है। इसमें मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर मानव मन अपने जीवन की कुछ इच्छाएँ जो यथार्थ से जुड़ी है तथा कुछ स्वप्नों की पूर्ति पर होती है। इसी आथवर पर डॉ.

भैरुलाल के अनुसार इस संग्रह की समस्त कहानियाँ लेखक के सामाजिक सरोकार को उद्घाटित करती है तो दूसरी और कथाकार सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पकड़ की ओर अग्रसर प्रतीत होता है, मगर उसमें निरामनोवैज्ञानिक शोध नहीं है बल्कि सोद्देश्यता उभरती दिखाई देती है।"[2]

2.1.1 उलझन

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित कहानी संग्रह उलझन में प्रथम साहित्यिक कृति प्रस्तुत की है जिसमें ग्रामीण जीवन की सामान्य घटनाओं अनुभवों और भावनाओं को मार्मिक हृदय स्पर्शी ढंग से अभिव्यक्त किया है स्वयं डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इस संग्रह के संबंध में लिखा है– 'उलझन' की पृष्ठभूमि में कुछ मेरे प्राणों की उलझन है तो कुछ सारे संसार के प्राणों की उलझन। भावुकता यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख भाव से लिखा है स्वयं डॉ. विजय ने।

डॉ. देवराज उपाध्या के अनुसार – "लेखक की प्रतिभा ने आधुनिक कहानी के स्वरूप और मर्म को पहचाना है वह दुर्लभ है।"

इस संग्रह में आमजन जीवन के युग बोध को उजागर किया है कि जीवन के यथार्थ में मानव मूल्य की उलझन किस प्रकार उलझती रहती है और इसी उधेड़ बुन में मानव जीवन चलता रहता है।

2.1.2 स्वप्न और सत्य (1992)

"सारी कहानियों में सामाजिक नैतिक आर्थिक सांस्कृतिक परिवेश लिए हुए है। इसमें हर कथा का अपनी विशेषता है उनके पात्रों के अनुसार कथा का अपना सार है। इस कथा संग्रह में यथार्थ और स्वप्न के बीच मन की विश्लेषण अभिव्यक्ति को उजागर किया है। डॉ. विजय ने हमें इस कथा संग्रह में हर कहानी में पात्रों द्वारा सामाजिक परिवेश में रहकर अपने स्वप्न की विशेषता को उजागर किया है। इसमें मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर मानव मन अपने जीवन की कुछ इच्छाएँ जो यथार्थ से जुड़ी है तथा कुछ स्वप्नों की पूर्ति पर होती है।"[3] इसी आधर पर "डॉ. भैरुलाल के अनुसर परिभाषा इस संग्रह की समस्त कहानियाँ लेखक के सामाजिक सरोकार को उद्घाटित करती है तो दूसरी ओर कथाकार सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पकड़ की ओर अग्रसर प्रतीत होता है, मगर उसमें निरामनोवैज्ञानिक सोच नहीं है बल्कि सोद्देश्यता उभरती दिखाई देती है।"[4]

2.1.3 बड़ी मछली (1962)

'बड़ी मछली' दयाकृष्ण विजय का तीसरा कहानी संग्रह है। जिसमें 18 कहानियाँ संकलित है। सम्पूर्ण कहानियाँ किसी विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई है तथा समाज को दिशा प्रदान

करती है। कहानी संग्रह में पचपन वर्ष पूर्व के परिवेश व घटनाओं को केन्द्र में रखकर कहानियों का कथ्य व वैसा शिल्प बुना गया है। सम्पूर्ण कहानियों में लोकजीवन की विविध झाँकियाँ प्रतिबिम्बित हुई है। जिनमें ग्रामीण परिवेश है, सामाजिक समस्याएँ है पारिवारिक परिवेश का यथार्थ चित्रण कहानियों में व्यक्त किया गया है। 'संस्कार' श्री विजय का मूल मंत्र है अतः प्रत्येक कहानी संस्कार की सीख अवश्य देती है। कहानियों में संस्कृति व जीवन मूल्य बिखरे पड़े हैं। अतः ये कहानियाँ मूल्यवान है कहा भी गया है कि 'संस्कृति' मनुष्य व समाज की अमूल्य धरोहर होती है। साहित्य मनुष्य के दैनिक व्यवहार भावों व प्रतिक्रिया में रचा जाता है– "साहित्य का कार्य सीधे–सीधे उपदेश देना नहीं है पर वह भावना के माध्यम से पाठक के मन में मानवीय मूल्यों, उदात्त भावनाओं तथा नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है।"[5]

दयाकृष्ण विजय के कहानी संग्रह 'बड़ी मछली' में ये सभी विशेषताएँ मिलती हैं। मूल्य व संस्कृति एक दूसरे के पूरक होते हैं। किसी भी समाज की संस्कृति को समाज के मूल्य, सामाजिक मानदण्ड तथा व्यवहार का स्वीकृत ढंग किसी भी समाज की संस्कृति को निर्धारित करते हैं क्योंकि ये उस संस्कृति का अंग होते है–

"समाज के आदर्श, विश्वास, मान्यताएँ, मानदण्ड, धर्म प्रथाएँ, रुढ़ियाँ आदि सभी सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिम्ब है इन्हीं प्रतिबिम्बों से सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन होता है।"[6]

श्री विजय की कहानियों में ये सभी विशेषताएँ व्यक्त हुई है। अपनी कहानियों के विषय में वे कहते है कि 'बड़ी मछली' उनका तीसरा कथा संग्रह है जिसमें – "घटना कम, विचार, दर्शन, मनोविज्ञान परिस्थिति, नीति, राजनीति अधिक है। इसमें कथाकार को समझने में जहाँ आसानी है, वही कहानी सपाटबयानी न होकर एक पठनीय, मननीय वस्तु हो गई है।"[7]

सभी कहानी में सूक्त वाक्य विशिष्ट संदेश के साथ चित्रित है। प्रथम कहानी 'विवाहिता' में सम्बन्धों की पवित्रता दर्शायी गई है जो आज भी प्रासंगिक है। दशरथ राय अपनी पत्नी वन्दना को छोड़कर कामना की ओर आकृष्ट होते है अंत में चोट लगने पर विवाहिता वन्दना ही उनकी सेवा करती है। कामना उन्हें छोड़कर चली जाती है। दशरथ राय सोचते हैं– "यदि वन्दना नहीं होती तो मुझे जीवन में न जाने कितने कष्ट और उठाने पड़ते। पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि विवाह दांपत्य–सम्बन्ध का नहीं, परस्पर समर्पण का अनूठा अध्याय है।"[8]

यहाँ बताया है कि परस्पर विश्वास और समर्पण भाव ही दाम्पत्य जीवन का आधार होता है जो आज के युग की महती आवश्यकता है। आज सम्बन्ध टूट रहे है बिखर रहे हैं। 'वसीयत' कहानी में पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे की समस्या, रिश्तों की प्रगाढ़ता भाई–भाई का प्रेम अन्त में

सामजंस्य की भावना से समस्या का समाधान सुझाया गया है। जहाँ विश्वेश्र अपने पिता द्वारा लिखी वसीयत को चिता के हवाले कर देता है। जिसमें पिता ने अकेले विश्वेश्वर को सम्पत्ति का वारिस बना दिया था।

"'बड़ी मछली' संग्रह की शीर्षक कथा है जो प्रतीकात्मक है। यह अर्थ प्राधान्य सम्बन्धों की रिक्तता पर आधारित है। अस्तित्ववादी दर्शन से आज 'प्रेम' का भाव तिरोहित हो रहा है मनोहरा व सम्पत्ति एक दूसरे को प्रेम करते हैं विवाह करते है परनतु सम्पत्ति मनोहरा को भूलकर अर्थ के पीछे भागने लगता है। प्रेम की गहराई का पानी सूख–सूखकर उथला लथपथ कीचड़ हो गया था।"[9]

वह अपने धन कमाने में लगा था। मनोहरा स्वयं को उपेक्षित महसूस करती है। वह सोचती है समय बीतने के साथ सम्पत्ति का व्यवहार भी बदल गया– "संपत्ति की आँखों में अब न वह प्यार की मादकता है न अधरों पर स्मित की मदिरता मस्ती का वह मद भरा आलम कपूर हो गया है।"[10]

मनोहरा अन्त में रहती है बड़ी मछली ने छोटी मछली को निगल लिया। बड़ी मछली के लिये वह नोटों की गड्डी की ओर ईशारा करती है। आज भी 'अर्थ' प्रधान संस्कृति ने पति–पत्नी, माता–पिता, पिता–पुत्र आदि रिश्तों को प्रभावित किया है। कहानी आज भी प्रासंगिक है। 'मोहभंग' कहानी में बुजुर्गों की समस्या पर विचार करते हुए समाधान भी सुझाया गया है। कहानी में मुरारीलाल शर्मा अपने पौत्र को अपने पास रखना चाहते है विश्वेन्द्रनारायण वकील है। डॉ. अचलेश्वर अपने पिता को नाराज किये बिना अपने पुत्र को साथ रखना चाहता है। वकील विश्वेन्द्रनारायण बुजुर्गो की समस्या का समाधान करने के लिये उनका मनोविज्ञान पढ़ते हैं उनका कहाना है, वृद्ध मनोविज्ञान को समझ कर व्यावहारिक ज्ञान से समस्या का समाधान हो सकता है वे कहते हैं। "आप रोजाना दिन मे ंकम–से–कम एक बार अवश्य पिताजी के घर जाया करें। कम से कम घण्टे भर बच्चे को खिलाया करें। आप देखेंगे बच्चा आपके साथ जाने की जिद करने लगेगा।"[11]

'ममत्व' कहानी में अन्तर्जातीय विवाह से उपजी समस्या को बताया गया है। कार्तिक की पुत्री प्रतिभा विश्वास आहूजा से विवाह कर लिया है। कार्तिक पुत्री को अपनाने को तैयार नहीं होता। अन्त में प्रतिभा के पुत्र होने पर वह राखी पर अपने पिता के घर बच्चे के साथ आती है। अश्विनी कहता है–"ममत्व स्वाभिमान से अधिक प्रबल संवेग है।"[12]

"'स्वाभिमान' कहानी में माता व पुत्र के बीच के स्वाभिमान की कथा है। कान्ता का पुत्र अनिल है विमल जंमीदार है। मिल मालिक है व कान्ता की मजबूरी का फायदा उठाकर उसके घर आता है। अनिल बड़ा होने पर विमल कुमार का आना बर्दाश्त नहीं करता वह माँ से कहता है कल से यह हमारे घर नहीं आयेगा। माँ कान्ता उसे समझाती है। वह कहता है– माँ तुम नहीं समझती किसी के स्वाभिमान को पहुँची चोट कितनी गहरी होती है।"[13]

'संकल्प' कहानी में जातिगत भेदभाव का चित्रण किया गया है। किशोर रूपा से कहता है। तूने सारे गाँव का पानी भेटा दिया....गाँव वाले अब क्या पीएगें?[14]

कहानी प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुआं' कहानी का स्मरण कराती है। स्त्री विमर्श के विविध अध्याय यह खुलते दिखाई पड़ते हैं जहाँ रूपा संकल्पबद्ध होकर जीर्ण–शीर्ण रुढ़ियों और पोगापंथी मान्यताओं को मिटाकर एक स्वस्थ सुन्दर और समन्वयवादी परम्परा के निर्माण का संकल्प लेती है। नारी स्वतंत्रता का पक्ष रखते हुए रूपा कहती है– "जब तक अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा नहीं होगी तब तक नारी अपने पैरों पर नहीं खड़ी होगी नारी–शिक्षा न केवल दरिद्रता मिटायेगी, बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस देगी तथा नर और नारी के बीच समानता का पक्ष प्रशस्त करेगी।"[15] कहानी तत्कालीन परिवेश की है। परन्तु विचार व समस्याएँ समसामयिक है। नारी शिक्षा, नारी आत्मनिर्भरता की बात, जातिगत भेदभाव को खत्म करना जैसी समस्या कहानी में उठायी गई है। 'भविष्य दृष्टा' कहानी में जीव, दर्शन निर्गुण सगुण आदि की विस्तार से व्याख्या की गई है। शिष्य अश्विनी से बाबा कहते हैं– "परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है उसका कोई रूप नहीं है। वह समान रूप से व्याप्त परम चैतन्य सत्ता है, जो प्रकृति को आवृत भी किए है और प्रकृति से पृथक भी है वह प्रकृति नहीं है।"[16] कहानी में वैराग्य, निष्काम कर्मयोग की व्याख्या की गई है। विनोबा के गीता पर लिखे भाष्य निष्कान कर्मयोग की चर्चा की गई है। बाबा अश्विनी को निष्काम कर्म के विषय में कहते हैं– "बाह्य साधन नहीं है। साधना है। शरीर जितना चाहता है उसकी संपूर्ति का/कर्म करते हुए भी उसमें रमण नहीं/फलेच्छा नहीं/ यही निष्काम कर्म है। संसार में रहकर भी संसार बद्धता नहीं।"[17] कहानी में आत्मा, परमात्मा, निष्काम कर्म आदि की गहन व्याख्या करते हुए चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। 'दास' कहानी में संस्कारों की महत्ता बतायी गयी है। 'आधा परांठा' कहानी में भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ बतायी गई है कहानी में कहा गया है– "प्रफुल्ला की पत्नी माधुरी शहर में रहकर भी ग्रामीण जैसी ही है। उसने परम्पराओं को दृढ़ता से अपनी मुट्ठी में जकड़ रखा है। वह पूरी तरह भारतीय महिला है। पश्चिम की हवा उसे नहीं लगी है।"[18]

'अवतार' कहानी में रैगिंग जैसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है। सम्पूर्ण कथा संग्रह जीवन के विविध सूक्त वाक्यों मुहावरों व कहावतों से युक्त है। जैसे –

– "ममत्व स्वाभिमान से भी अधिक प्रबल संवेग है।"[19]

– "घी पड़ने पर आग अधिक धधकती है।" लकड़ी रगड़ने से आग उगलती है। पत्थर टकराने से चिनगारी निकलती है।[20]

– "विधाता के पूर्वजन्मों के संस्कारों का यह प्रतिफल है।"[21]

– "संस्कार संस्कार ही है वे महिलाओं के माध्यम से एक दूसरे के पास जितनी तेजी से जाते हैं उतने पुरुषों से नहीं।"[22]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है। सम्पूर्ण कहानी संग्रह विविध विषयों के साथ सुन्दर शिल्प में सजकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। जिसमें लोकजीवन है लोक रंग है, लोक विश्वास है मान्यताएँ है, धर्म है, आस्था है। दर्शन की विशद व्याख्या है। बुहारा, नटना, गर्रगर्र, खेजिया जैसे आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी कहानियों में किया गया है। 'बड़ी मछली' कहानी संग्रह दयाकृष्ण विजय के गंभीर चिन्तन को विविध विषयों के साथ विविध कहानियों में चित्रित हुआ है। जो तत्कालीन परिवेश को व्यक्त करने के साथ समाज को सीख व दिशा निर्देश भी प्रदान करता है।

संस्कृति का वागर्थ (2005)

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने 'संस्कृति का वागर्थ' पुस्तक में 'संस्कृति' शब्द को भारतीय परिप्रेक्ष्य में सोदाहरण प्रस्तुत किया है वे कहते हैं– "संस्कृति आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही स्थितियों की दिग्दर्शिका है। सभ्यता बदलती रही है, पर संस्कृति के मूल्य शाश्वत होते हैं वे नहीं बदलते। केवल युगानुसार उनका व्यवहार बदलता है यही संस्कृति की सापेक्षता होती है। संस्कृति जहाँ प्राकृत का परिष्कृत रूप है, वहीं उसमें लोक–हित का भाव भी प्रमुख होता है। इस हेतु संस्कृति शिव कृति है। सत् शिव सुन्दर जहाँ है। वहीं संस्कृति है।"[23]

श्री विजय का सम्पूर्ण साहित्य भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत है इनके सम्पूर्ण साहित्य में भारतीय संस्कृति की अजस्र धारा निर्बाध रूप से प्रवहमान है प्रस्तुत पुस्तक में 'संस्कृति' की विशद व्याख्या प्रस्तुत करते हुए संस्कृति की विशेषताओं को भी व्याख्यायित किया गया है। इसके अन्तर्गत भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति के मूल अन्तर को स्पष्ट किया गया है। 'संस्कृति' की विविध परिभाषाओं में पाणिनी से लेकर डॉ. मंगलदेव शास्त्री, अरविन्द घोष, सर्वपल्ली राधाकृष्णन

की परिभाषाएँ दी गई हैं डॉ. देवराज के अनुसार "संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव और मनोवृत्ति से होता है।"[24]

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल– "हमारे जीवन जीने का ढंग हमारी संस्कृति है।"[25]

निष्कर्ष रूप में कहा गया है कि मानवता की दृष्टि सामाजिक सम्बन्धों में प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि को संस्कृति कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों की भी परिभाषाएँ दी गई है टाईलर कहते हैं– "संस्कृति जटिल तत्व है; जिसमें वे सभी अर्जित संस्कार निहित होते हैं, जिन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"[26] डॉ. दयाकृष्ण पाश्चात्य विद्वानों की संस्कृति सम्बन्धी धारणाओं के विषय में कहते है कि संस्कृति मात्र भौतिक साधनों से व्यक्त नहीं होती वरन् यह अन्तर्निहित शक्ति है जो व्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है। संस्कृति के विविध पक्ष जैसे– व्यक्ति, परिवार व समाज के सम्बन्धों की विशिष्ट धारणा, निति व आदर्श, धर्म व तत्व चिन्तन, गौरवशाली परम्पराएँ एवं विश्वास, कला एवं साहित्य आदि।

इस प्रकार मानव अभिव्यक्ति का सूक्ष्मतर भाव ही संस्कृति है। यही भाव भारतीय संस्कृति को विश्व की अन्य संस्कृतियों से अलग करते हुए विशिष्ट बनाता है। ये सभी संस्कृति तत्व किसी देश जाति, समाज के जीवन दर्शन के निर्णायक होते है। यही हमारी सांस्कृतिक धरोहर होते है। आज तब सांस्कृतिक प्रदूषण बढ़ रहा है। भारतीय संस्कृति को भूलकर मानव पाश्चायीकरण की ओत उन्मुख हो रहा है। ऐसे में संस्कृति की ये विशेषताएँ ऐसे मनुष्यों के लिये मार्गदर्शक बन सकती है। इसलिये यह पुस्तक विशिष्ट महत्त्व रखती है। आज सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर अश्लीलता प्रस्तुत की जा रही है। जबकि 'संस्कृति' तो आनन्द प्रदान करती है और आनन्द आत्म तत्व से जुड़ा होता है। आगे डॉ. विजय भारतीय संस्कृति के प्रमुख उपादान के अन्तर्गत कहा गया है कि आख्या, जन्मान्तरवाद, कर्मफल अवतारवाद तथा बहुदेववाद भारतीय संस्कृति के प्रमुख उपादान है। इसमें, त्याग धर्म, कर्म, अवतार आदि के विषय में विस्तार से व्याख्या की गई हो इसी क्रम मे षोडश संस्कार का महत्व बताया गया है जिसें स्पष्ट है कि– "सोलह संस्कार जीवन को संवारने का या क्रिया को रचनात्मक एवं सार्थक रूप देने का प्रयास है।"[27]

संस्कृति का वैशिष्ट्य व महत्व इस बात में है कि संस्कृति मानव को पशुत्व से मानवत्व की और अग्रसर करती है, मानसिक विकास द्वारा उसे संस्कारित करती है। सामाजिक भाव लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त करती हो लोकसंस्कृति के विषय में डॉ. विजय स्पष्ट करते है कि लोकसंस्कृति स्वाभाविक व सरल होती है। यह अपने भीतर लोकविश्वास व लोक आस्थाएँ समाहित किये होती है। इसमें परम्परा व विश्वास व मान्यताएँ होते है।

परम्परा का प्राचीन रूप इसमें दिखाई देता है। अब आगे प्रश्न उठता है। कि संस्कृति व समाज में पहले कौन बना? स्पष्ट है समाज पहले बना। उसने ही संघर्ष किया और संस्कृति का निर्माण हुआ। संस्कृति व सभ्यता का अन्तर भी पुस्तक में स्पष्ट किया गया है कि संस्कृति आध्यात्मिक होती है सभ्यता यान्त्रिक। संस्कृति जीवन का अन्तरिक सौंदर्य होती है जीवन जीने की दृष्टि बौद्धिक विकास का प्रतीक, शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा, समग्र सार्वदेशिक, सार्वकालिक चिन्तन होती है वही सभ्यता बाह्य सौंदर्य भौतिक विकास का दिग्दर्शन, गतिशील तात्कालीक व क्षणिक चिन्तन होती है। सभ्यता व संस्कृति दोनों की श्रेष्ठता ही हमारी आध्यात्मिक उन्नति का परिचायक होता है। "डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति मानते है।"[28] इस प्रकार संस्कृति का सम्बन्ध आधात्म से है जबकि सभ्यता का सम्बन्ध विलास से है। कहा भी गया है। "सभायां साधवः सम्याः। सभ्यता, जैसा विदित है, सभ्य के आगे 'ता' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। सभाओं में व्यवहार की मधुरता, वचन की शिष्टता तथा व्यक्ति देह की शोभिता सभ्यता की सूचक है। सभ्यता बाह्य परिष्कृति है। संस्कृति आन्तरिक।"[29]

संस्कृति और परम्परा – के विषय में विस्तार से व्याख्या डॉ. विजय करते है। परम्परा में लोकल्याण का भाव निहित होता है। संस्कृति की निरन्तर अनुपालना परम्परा में परिवर्तित हो जाती है। किसी भी परम्परा के पीछे लोक स्वीकृति अनिवार्य होती है और लोकस्वीकृति सदाकाल सापेक्ष होती है– "इस काल सापेक्षता के निकष पर सतत परिमार्जित संशोधित तथा संवर्धित होते रहना ही परम्परा की जीवन्तता है।"[30] कई बार परम्पराएँ रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है। जो मनुष्य के लिये निर्वहन करना कठिन हो जाती है। अतः जिस परम्परा का कालानुरूप परिष्कार, संशोधन एवं परिवर्धन होता हता है। वह दीर्घजीवी होती है। परम्परा जिसे अस्वीकार कर आगे बढ़ जाती है वही रूढ़ि बनती है कालानतर में मृत हो जाती है। उसमें जीवन स्पंदन शेष नहीं रहता।

संस्कृति और धर्म – के विषय में डॉ. विजय का कहना है कि धर्म संस्कृति का नैतिक शास्त्र होते हैं। धर्म संस्कृति की ही जागतिक धारणा शक्ति है। धर्म एक शाश्वत तत्व है। जो शरीर व मन की शुद्धि करता है। धर्म कल्प वृक्ष है। धर्म मानव जीवन की प्रयोगशाला है। और सबसे बड़ा मानव धर्म प्राणी मात्र की सेवा है जो मानव के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृति और दर्शन – दर्शन भी संस्कृति का विशिष्ट अंग है। क्योंकि संस्कृति के चार उपादान में प्रथम अंग आस्था है आस्था दर्शनिक चिन्तन पर आधारित है हमारे यहाँ षटदर्शन है। जिसमें जीवन का सार भरा हुआ है भारतीय जीवन में दर्शन की विकास यात्रा अत्यन्त दीर्घ है। जिसमें ब्रह्मा के मंत्रयोग शिव के तंत्रयोग इन्द्र के यन्त्र योग से लेकर वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक,

उपनिषद गीतात्मक हमें प्रवृत्ति मार्गी के दर्शन होते हैं। भारतीय दर्शन की दो प्रवृत्तियाँ है। निवृति व प्रकृति दोनों धाराएँ वेद प्रसूत है। निवृति में जगत को मिथ्या मान आत्मदर्शन को प्रमुखता दी है। रामानन्द परम्परा के सभी सन्त कबीर, रैदास, पीपा धन्ना जगत मिथ्या मानते हुए। मोह त्यागने की बात करते है। निवृति मार्ग पूर्णतया भारतीय आध्यात्मिक मार्ग है। प्रवृति मार्ग पूर्णतया भारतीय आध्यात्मिक मार्ग है। प्रवृति मार्ग कर्मकाण्ड पर आधारित है जिसमें सांसारिक होकर मानव से लेकर विश्व कल्याण की भावना निहित है।

संस्कृति और जीवन मूल्य – मूल्यहीन समाज व मनुष्य का कोई महत्व नहीं होता आज जीवन शैली में परिवर्तन हुआ है। मूल्य व आदर्श गौण हो गये है 'अर्थ' प्रमुख हो गया है। मूल्यों के सम्बन्ध में नीतिशतककार भर्तृहरि कहते हैं– "येषां न विद्या न तपो न दानं न ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ते मृत्युलोके भूविभारभूताः मनुष्य रूपेण मृगश्चरन्ति।"[31]

अर्थात् जिन व्यक्तियों में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण, धर्म आदि नैतिक गुण नहीं होते, वे लोग धरती पर बोझ स्वरूप है और मनुष्य रूप में पशु ही है। जीवन मूल्य वे होते हैं जो मनुष्य को मनुष्य बनाते है। "मूल्य पूरे मनुष्य जीवन से समाज जीवन से राष्ट्रजीवन से यहाँ तक कि पूरे वैश्विक जीवन से जुड़े होते हैं। इन्हें कई दृष्टियों में विभाजित कर सकते हैं जैसे नये मूल्य व्यैक्तिक मूल्य, चारित्रिक मूल्य नैतिक मानव मूल्य आद।"[32]

भारत के सांस्कृतिक मूल्य न तो संकीर्णता से ग्रसित है न रूढ़िवादिता से भारतीय सांस्कृतिक मूल्य उस अन्तश्चेतना की देन है जिनका एक मात्र उद्‌देश्य है सर्वकल्याण, सर्वअभ्युदय। अपने देश अपने समाज के युग युगानुभूत जीवन यथार्थ और उससे निःसृत पारिणामित सिद्धान्त ही मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।[33]

जीवन मूल्य के बिना मनुष्य पशुवत होता है। भारतीय जीवन मूल्य लोकमंगल लोककल्याण से ओत प्रोत है। आगे सांस्कृतिक चेतना की चर्चा की गई हो सांस्कृतिक चेतना का सम्बन्ध नैतिक मूल्यों से है। जब नैतिक मूल्यों राष्ट्र सम्मान, राष्ट्रअस्मिता पर आक्रमण होता है तब सांस्कृतिक चेतना ही सक्रिय होती है। आगे संस्कृति की विशेषता के विषय में कहा गया है कि संस्कृति एक सतत गतिशील नदी धारा है जो निरन्तर प्रवहमान होती है। अंधविश्वास व रूढ़िवादिता को छोड़ अब हम आगे विज्ञान की ओर अग्रसर हो रहे है।

प्रदूषण से शुद्धता की ओर – के अन्तर्गत डॉ. विजय आधुनिक तकनीकी ज्ञान, व विज्ञान की उन्नति से उत्पन्न प्रदूषण पर चिन्ता व्यक्त करते हैं कि आज औद्योगिकरण व वैज्ञानिक अनुसंधानों से प्रदूषण बढ़ रहा है पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। नदियाँ प्रदूषित हो रही है।

आणविक भट्टियों ने ओजोन परत में छेद कर दिया है कारण सांस्कृतिक मूल्य का भूलना, प्रकृति से सांमजस्य नहीं बिठाना। यह समस्या आज विकराल रूप ले रही है।

भोग से योग की ओर – के विषय में डॉ. विजय कहते हैं। भोग व योग के बीच संतुलन आवश्यक है। इसके लिये पूर्व में आश्रम व्यवस्था निर्धारित की गई थी। अति भोज अति योग योग दोनों उचित नहीं है।

दानवता से मानवता की ओर बढ़ने की बात करते हुए वे कहते हैं देव, दानव, मानव प्राणी की तीन श्रेणियाँ है। अतः जो प्रज्ञा सम्पन्न है वे देव व मानव है। जो प्रज्ञा विहिन है वे राक्षस है। सभी धर्म मानवता की बात करते है। सभी धर्मों का एक ही सार है– उदात्त आचरण, उदात्त आचरण ही सांस्कृतिक मूल्य है, समाज में जागृति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

शोषण से समरसता की ओर के अन्तर्गत डॉ. विजय कहते है शोषण का सम्बन्ध स्वार्थ बुद्धि से है और समरसता का आत्मीय भाव से शोषण के मूल्य में आर्थिक दुर्बलता, बेरोजगारी, पारिवारिक परिस्थितियाँ तथा शोषण का भाव अधिक जाग्रत हुआ है। बालश्रम, अधिकारों का हनन इसी का परिणाम है। जो समाज में विद्रोह अराजकता ही हो सकता है। शोषण की नींव स्वार्थ, लोभ तथा संग्रह पर छोटी है। शोषण एक अपराध है जबकि समरसता, आत्मीयता, कौटुम्बिकता, बंधुत्व आदि सांस्कृतिक गुणों से युक्त होती है। जिसमें सब समान व आत्मीय होते है। समरसता संस्कृति है, शोषण अपसंस्कृति।

प्रेयस से श्रेयस की ओर – मानव जीवन दुर्लभ है मानव में वाक, तर्क, कर्मशक्ति होती है अतः वह विशिष्ट है। प्रेय से श्रेयस की ओर बढ़ना है। जीवन की कला है प्रेय अभ्युदय की कामना करता है। श्रेय निःश्रेयस की। प्रेयस संसार है और श्रेयस संसार में रहते हुए भी मोक्ष की ओर अग्रसर होने का मार्ग है।

यथार्थ से आदर्श की ओर – आँखों से देखा, शरीर से भोगा बुद्धि ने उसे जिस रूप में अनुभूत किया वही यथार्थ है। साहित्य में भी कोरा यथार्थ घटना मात्र बनकर रह जाता है जब तक उसमें हित का भाव नहीं जुड़ पाता। साहित्य वही है जिसमें हित का भाव जुड़ा हो। साहित्य लोकमंगलकारी होता है। केवल मनोरंजन ही साहित्य का उद्देश्य नहीं होता वरन् उसमें सार्थक उपदेश भी होना चाहिये।

अन्तः में भारतीय सांस्कृतिक चेतना की विकास यात्रा में डॉ. विजय ने सांस्कृतिक यात्रा पर विस्तार से प्रकाश डाला है। जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सप्तऋषि तैयार किये। मंत्र इनकी शक्ति थे। इन सातों ऋषियों ने सृष्टि का प्रारम्भ किया। बाद में सातों में संघर्ष प्रारम्भ हुआ।

शोषण की प्रवृति जागृत हो गई परिणाम स्वरूप शिव ने प्रजापतियों के विरुद्ध नाग, कोल किरात भील, निषाद को संगठित किया। युद्ध में प्रजापत सत्ताच्युत हो गये। शिव ने पहली बार व्यवस्थित समाज की व्यवस्था की इस प्रकार सम्पूर्ण कथा का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के विभेदात्मक तत्व – प्रस्तुत शीर्षक में भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति का अन्तर स्पष्ट किया गया है–कि भारतीय हर कर्म को आध्यात्मिक दृष्टि से देखता है वही पश्चिम भौतिक दृष्टि से देखता है। दूसरा भौतिक संसाधन पाश्चात्य संस्कृति में आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में आत्मा, अजन्मा चिरंतन तथा शाश्वत है।

तीसरा भेद वस्तु के संग्रह करने का भाव है। पश्चिम अर्थ संग्रह को प्राथमिकता देता है। वही पूर्व अर्थ को अनर्थ मानता है। भारतीय संस्कृति का चौथा पक्ष त्याग तथा लोककल्याण भावना है। पाँचवा पक्ष काम सम्बन्धों का मूल अन्तर है। जहाँ नारी को पूजा जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहाँ जा सकता है कि जो दयाकृष्ण विजय ने 'संस्कृति का वागर्थ' पुस्तक में भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों को बड़े ही सहज व सरल ढंग से व्याख्या की है। जिसमें भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करते हुए। संस्कृति, धर्म दर्शन, परम्परा, प्रेय व श्रेय, भोग से योग का वर्णन किया है। जिससे सुधि पाठक संस्कृति के गूढ आधार व वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे।

2.1.4 एक और क्रांति (1995)

एक और क्रांति के संदर्भ में डॉ. विजय की इस कहानी में कथ्य के प्रति गहरी सम्वेदनशीलता और सरोकारों के साथ सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति आग्रहशीलता विहित है तथा वे कहते हैं– "कथा का अपना एक सत्य होता है। उसका अपना एक शिव भाव होता है जो कथा में प्रारम्भ से ही प्रकट होने के लिए आतुर रहता है। पाठक को इसका आभास मिले या न मिले लेकिन कथा में वर्णित विद्रूपताओं विकृतियों विसंगतियों, मूल्यहीनताओं, अनैतिक व्यापारों तथा चरित्रिक गिरावटों की पृष्ठभूमि में यही शिव भाव कार्यरत रहता है, जो अंत तक जाते–जाते अचानक प्रकट हो पाठक को भावविभोर कर रसमय कर देता है।"[34] (आत्म कथा : एक और क्रांति) इसी संदर्भ में डॉ. कृष्णवीर सिंह चौहान ने एक लेख में कहानी कला पर विचार करते हुए लिखा– "कथाकार दयाकृष्ण विजय ने जहाँ कथ्य के प्रति विविधता एवं सशक्त अभिव्यक्ति का निरन्तर विकास परिलक्षित होता है, वहीं विचारात्मक सघनता की परिणति में सूक्ष्ममयता आती गई है। लेकिन सपाट बयानी ने उनके चार कथा संग्रहों का आश्रय लिया है पर जीवन मूल्यों के स्थैर्य और सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण कहानियाँ पाठक को अभिभूत करती है। भले ही आलोचकों की

दृष्टि में शिल्पगत और आधुनिक कथाशिल्प के निकष पर वे सही न दिखाई देते हो लेकिन शिल्प कहानी की अभिव्यंजकता और समसामयिक संदर्भों में कहानी शिल्प की समानान्तरता से दयाकृष्ण विजय की कहानियाँ पीछे छूटती दिखाई, पर अपने कथ्य की सार्थकता और उद्देश्य की समग्रता में ये सभी कहानियाँ कथ्य के औचित्य से सम्पन्न दिखाई देती है।"[35]

2.2 नाटक संग्रह

2.2.1 सिंहासन

"डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित नाटकों में एक नवीन विधा एवं एक नवीन दृष्टि के पुरस्कर्ता माने जाने लगे हैं। डॉ. विजय के सभी नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत किये गये हैं। शृंगार भावना के ओत–प्रोत के साथ ही सात्विक मर्यादा के साथ नाटकों की रचना की है। चौथे स्थान पर रचित सिंहासन नाटक में 3 भागों में रचित है। कथावस्तु ऐतिहासिकता, पात्रों की चारित्रिक विशेषता की तारतम्य इस नाटक में पढ़ने को मिलती है। भौगोलिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थिति तीन भागों में प्रथम भाग निष्क्रमण है। साधना निष्पत्ति यह तीनों ही अंक के पात्रों द्वारा संवाद की वाग्वैदग्ध्यता हमें पढ़ने को मिलती है। पुरुष पात्रों में–[36]

विद्ल्ल	:	अयोध्या के राजमंत्री
सुदर्शन	:	अयोध्या का राजकुमार
भारद्वाज	:	एक विख्यात ऋषि
भुधाजित	:	उन्जयिनी नरेश
सुवाह	:	काशीराज
प्रफुल्ल	:	पटरानी मनोरमा का प्रतिहार के सैनिक, परिचायक आदि।

स्त्री पात्र

मनोरमा	:	अयोध्या की पटरानी (महाराज ध्रुवसंधि की प्रथम पत्नि)
वैदर्भी	:	काशी की महानी महाराज सुबाहु की पत्नी
शशिकला	:	काशी की राजकुमारी महाराज सुबाहु की पुत्री आश्रमिका
तपस्विका	:	आश्रम कन्याएँ
सुभाषिणा	:	शशिकला की सेविका

अयोध्या के राज सूर्यवंशी पुष्य पुत्र के पुत्र ध्रुवसंधि राज्य के राजकुमार दो रानियाँ मृगया का अत्यधिक व्यसन है। हम इस नाटक में राजा मृत्यु के बाद सिंहासन की शासन में क्या भूमिका होती है उसी पर आधारित है। इसमें प्रत्येक पात्र की अपनी भूमिका होती है और इसी द्वारा इस नाटक का वाग्वैदग्ध्य प्रत्येक पात्रों के संवादों में मिलता है चरित्र चित्रण भी बहुत ही मार्मिक है। आदि सभी में सिंहासन का महत्त्व पढ़ने को मिलता है। सिंहासन नाटक में जनप्रसिद्धि प्राप्त करने का सामर्थ्य शायद इसलिए नहीं रहा इस विषय ने डॉ. विजय स्वयं लिखते हैं– "मैं नहीं कहा सकता, पर देवी भागवतकार ने देवी महात्म्य बताने के प्रसंग में दूसरे संदर्भ में कथा के रूप में अवश्य ग्रहण किया है। इसे वृत्त से पुरागाथिक नाटक कहा जा सकता है। अयोध्या के किसी ऐतिहासिक सूत्र को जोड़ने के लिए सांस्कृतिक ऐतिहासिक विकास यात्रा के योग के मार्ग इस नाटक का मूल्य समकालीनता के संदर्भ में सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना कहा जा सकता है।"[37]

2.2.2 आदि सम्राट (1974)

डॉ. दयाकृष्ण विजय का 'आदि सम्राट' (1974) में प्रकाशित नाटक है इसमें वर्तमान नाटकों की भांति त्रयांक सिद्धान्त पर आधारित रचना नहीं वरन् 34 दृश्यों वाला 5 अंकों से सुशोभित नाट्य रचना है। इसको लिखने में दस वर्ष का समय डॉ. दयाकृष्ण विजय के निरन्तर प्रयास के फलस्वरूप का ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित रचना है। ऐतिहासिक सत्यता को पुनः स्थापित करने हेतु ऋग्वेद को ही साक्षी बनाया जाये। इस नाटक में नये प्रयोगों के साथ कुछ 'इन्द्र के जीवन की ऋग्वेदोक्त घटनाओं को ही समाविष्ट किया।"[38]

डॉ. विजय के इन नाटकों में रंगशिल्प का परिदृश्य परिष्कृत रूप में देखा जा सकता है। वे यथा स्थान उचित रंगमंची निर्देश देते हैं। इस नाटक में सांस्कृतिक संदर्भ परक तो है ही साथ ही राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण इसमें पढ़ने को मिलता है कथानक पात्रों के संवादों में पुरागाथिक कथ्य के मेल के साथ कल्पना सृजित भी कर नाटक में रोचकता का अनुभव हमें पढ़ने को मिलता हैं इस नाटक में इन्द्र को पात्रों में प्रमुखता देते हुए ऋग्वेद की बिखरी ऋचाओं में से इन्द्र विषयक कथासूत्र खोजकर 'आदि सम्राट' के वृहत्तर कथानक का चयन किया है। 'आदि सम्राट' नाटक में पूर्णरूप से ऋग्वेद पर आधारित नहीं वरन् डॉ. विजय ने अपनी कवि कल्पना के मौलिक प्रयोग से अनेक नवीन उद्भावनाएँ की है। "इस नाटक में मौलिक उद्भावनाओं के साथ ही सृजन प्रवृत्ति को पात्रों द्वारा निखार दिया गया है। इसमें समानता के भाव से बालिकाओं को भी पौरुष बल के समान हथियार चलाना तथा सैन्य प्रशिक्षण से सम्बन्धित

है। डॉ. विजय की मौलिक कल्पना का बड़ा ही रोचक गुण वाग्वैदग्ध्यता से साथ हमें यहाँ पढ़ने को मिलता है।"[39]

2.2.3 छत्रपति शिवाजी

"डॉ. विजय ने त्र्यांक में बंधा हुए यह नाटक है। जिसमें छत्रपति शिवाजी के चरित्र चित्रण को एक कथासार में जोड़ते हुए लिखा है। शिवाजी के वीर भावनाओं को ऐतिहासिक परिवेश में सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर नाटक के स्वरूप में रोचकता का आभास होता है। चरित्र चित्रण संवादों में पात्रों के अनुरूप बड़ी ही कौशलता से पढ़ने का समा बँध जाता है। शिवाजी की गौरिल्ला नीति से शत्रु को परास्त करने का गुण इसी में था। डॉ. दयाकृष्ण विजय मानते हैं– "शिवाजी के चरित्र में राम की सी मर्यादा, कृष्ण की सी चतुरता दूरदर्शिता तथा प्रताप की सौराष्ट्रभक्तिपूर्ण सहिष्णुता धीरोदात्त नायकत्व एवं महापुरुषत्व देखते हैं। (दो शब्द) वीरभावात्मक शैली में रचित इस निबंध का उद्देश्य भारत के वीर पुरुष के नाटक द्वारा जीवन मूल्यपरक सांस्कृतिक प्रयोजननिहित है। भावी पीढ़ी को शिवाजी जैसे चरित्र को ज्ञान, शौर्य की वीर गाथा से परिचित कराना है। विकास तथा विविधता के विभिन्न आयामों को बड़ी ही निपूणता से तारतम्यता दी गई है।"[40]

2.2.4 राग से विराग तक

डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'राग से विराग तक' में जैन परम्परा को एक कथानक के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। कथावस्तु को इच्छा, ज्ञान, क्रिया शीर्षकों में बाँटा गया है 'कोशा' नामक नर्तकी का जीवन से विरक्ति लेकर श्रवण धर्म की दिक्षा लेने का बहुत ही गरिमा रौचकता के साथ लेखन किया गया है चरित्रों की स्वाभाविकता संवादों की कसावट शैली बद्धता आदि का पौराणिक आधार पर रचित यह नाटक सांसारिक से आध्यात्म की ओर उन्मुख करने वाला परिवेश इस नाटक में मिला है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित एकांकी संग्रह

दो एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए 'एकांकीनी' में ग्यारह एकांकी है।

1. एकांकी में अठारह एकांकियों में से पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक तीनों वर्गों में रखा जा सकता है।
2. सृष्टि – इसमें सात एकांकी है–
1. एकांकीनी पौराणिक एकांकियों में ऋत्ध्वज, मदालसा, सागरोत्पलमयी, त्यागवीर देवदत्त महाकवि कालिदास, मृत्यु की मृत्यु संदेहों के घेरे, ललाट पर खिंची रेखाएँ, सुखांत सेवा,

सृष्टि का सगुण, पक्ष नेपथ्य में, सुलगती आग है। सामाजिक एकांकियों में, गठबंधन, चार मास्टर जी, अच्छा नमस्ते, आते हैं और ऐतिहासिक एकांकियों में सौन्दर्य दर्शन, पितृभक्त, हिम्मत सिंह और अमर बलिदान है तथा इन सभी एकांकियों में कथ्य की सबलता और रंग शिल्प को प्रचुरता मिलती है।

2. **सृष्टि –** डॉ. विजय रचित इस एकांकी में पृथ्वी पर समाज में स्थिति मानवीय जीवन को सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक पक्ष से सम्बंधित समस्याओं का सरोकार है। हास्यपरक, दहेज समस्या परक, सामाजिक समस्या परक, महाकवि कालिदास का हास्यपरक चित्रण प्रस्तुत किया है। चार चरण सामाजिक समस्यापरक (दहेज पर) है। समाज की ज्वलन्त समस्याओं को डॉ. विजय ने इन एकांकियों में बड़ी ही चातुर्यता के साथ संदेश देने के उद्देश्य से रचना की है। इसमें दहेज समस्या पर प्रहार कर मानव मूल्यों को उजागर किया है। इस सभी एकांकियों में सौन्दर्य दर्शन, पितृभक्त हिम्मत सिंह अमर बलिदान है।"[41]

2.3 उपन्यास

2.3.1 रमता राम (2004)

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने वाक्चातुर्य से अपनी कलम से शब्दों में उकेरकर 'रमता राम' उपन्यास में स्वामी रामचरण जी के पात्र पर आधारित उपन्यास की रचना की है। श्रीरामचरण जी महाराज के जीवन को समर्पित यह उपन्यास 18वीं शताब्दी के राजस्थान के सुप्रसिद्ध निर्गुण संत स्वामी रामचरण की महाराज के जीवन को समर्पित है। इनकी जीवन गाथा समाज के उद्धार तथा जनकल्याणकारी कार्यों को सम्पादित किया गया है। इनके शिष्यों ने भीलवाड़ा में 'रामस्नेही' सम्प्रदाय की स्थापना कर स्थायी रामद्वारा बनाया। स्वामी जी स्वभाव से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर जनकल्याण हेतु उपदेश देकर उनके कल्याण की कामना करते थे। अतः वह स्वयं यही कहते की मैं तो रमता राम हूँ आ जाऊँगा मैं तो रमता राम हूँ इसी से प्रेरित होकर डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने उपन्यास का नाम 'रमता राम' रखा।

इसमें रामानन्दी गुरु परम्परा का निर्वाह किया है यह परम्परा आत्मवादी परम्परा है उस परम ब्रह्म को रामनाम से पुकारने वाली परम्परा में ज्ञान भक्ति वैराग्य और प्रेम का सामंजस्य है। प्रेम की अद्भुत शक्ति को परिभाषित करते हुए डॉ. दयाकृष्ण विजय ने "शून्य को आगे अंक लग जाये तो उसकी महत्ता बढ़ जाती है उसी प्रकार श्वास के साथ नाम जुड़ जाए तो श्वास भी धन्य हो जाती है। 'रमता राम' में सत्रह परिच्छेदों में रख कथा को संजोया है परिच्छेद चार तक बनवाड़ी वासी कापड़ी गोत्रीय भक्तराम विजयवर्गीय के घर कन फटे योगी के आशीर्वाद से जन्में

रामकृष्ण की शिक्षा दीक्षा विवाह एवं मालपुरा के नायब से मुसद्दी बनने एवं दो बच्चों के पिता बनने के बाद वैराग्य जगने तक की कथा को उक्त चार परिच्छेदों में समेटा गया है। इसके बाद 13 परिच्छेदों में उनके दांतड़ा के गूदड़ पंथी संत कृपाराम का शिष्य बनकर अपनी साधना के बलबूते पर समाजहित कामना से पृथक रामस्नेही सम्प्रदाय की स्थापना तक की कथा एवं तदन्तर फूलडोल मेले के रूप में रामस्नेही सम्प्रदाय की संत परम्परा एवं पंथ विस्तार की कथा के बाद उनका रमते रमाते शाहपुरा (भीलवाड़ा) पहुँचकर छतरियों में निवास उनकी साधना तथा स्वामी जी के चमत्कारों एवं लोक कल्याणार्थ किये गये पंथ विस्तारी कार्यों का बहुत ही प्रामाणिक एवं तथ्यात्मक विवरण प्रवाहपूर्ण सरस भाषा में व्यक्त किया गया है। डॉ. विजय जी की प्रौढ़ लेखनी ने जीवन की साधना के चौथे सोपान पर पहुँचने की महत्तती आकांक्षा से इस रचना को जन्म दिया है।

रामस्नेही सम्प्रदाय का सम्बन्ध श्री सम्प्रदाय की रामानन्दी परम्परा से जोड़ते हुए निर्गुण संत साधना को भक्ति एवं योग के समन्वय से उत्पन्न समाज के सभी वर्गों में समन्वय स्थापना की आकांक्षा से प्रचारित हुई साधना के रूप में प्रस्तुत करते हुए डॉ. विजयी जी ने निर्गुण भक्ति परम्परा को समझने की एक दृष्टि दी है। रामस्नेही सम्प्रदाय के आधार ग्रंथ 'अण भैवाणी' को आधार बनाकर स्वामी जी के समाज प्रबोधक प्रवचनों को रमताराम ने रामद्वारा स्थापना एवं फूलडोल उत्सव के अवसर पर कथा के स्थान पर प्रस्तुत किया है। भाषा के प्रवाह में तात्विक गहन विवेचन पठनीय बन गया है। रामस्नेही सम्प्रदाय के बहुचर्चित एवं समाज से जुड़े पांच दिवसीय फूलडोल में लोक क्रमानुसार विवेचन के क्रम में पृष्ठ सं. 91, 113, 135 एवं 154 पर संवत् संबंधी त्रुटी है पर विजयी जी ने जीवन के 76वें वर्ष में अपनी जिस संकल्पनात्मक एवं रचनात्मक ऊर्जा का प्रमाण दिया है वह समाज को उल्लसित करने वाली है। डॉ. विजय के समाज उत्साहित लेखन सर्वकल्याणकारी और ज्ञानप्रदायी है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने आगे चलकर लिखा कि – "स्वामी रामचरण जी के प्रवचनों में सर्वत्र समन्वयी सहिष्णु दृष्टि रहती थी। नाम लेकर कहीं बहु दैववाद का विरोध नहीं किया अपना पक्ष वे सकारात्मक दृष्टि से ही रखते रहे" लेखन ने स्वामी जी की समन्वयवादी दृष्टि इस रूप में व्यक्त की है कि 'स्वामी जी के लिए जात–पात का कोई प्रश्न था ही नहीं।'[42] वे तो सबको रामरूप ही देखते थे अस्पृश्यता को वे एक बड़ी बुराई मानते थे। साहित्य और वैराग्य में भी स्वामी जी समन्वय करके चले वे जहाँ शिष्यों के वैराग्य पर बल देते थे, वहीं सामाजिकों को गृहस्थ जीवन जीते हुए नैतिकता और समभजन पर ही बल देते थे। इस कारण गृहस्थ ही उनके अधिक अनुयायी बन रहे थे। वे भोग और योग का संतुलित समायोजन करके चलते थे। वे अपनी हत्था

करने का प्रयत्न करने वाले के प्रति भी क्षमाशील रहते थे। वे सबके प्रति रागद्वेष से परे समदर्शी थे। समदर्शी ही समन्वयकारी हो सकता है जो वे स्वयं थे। राम स्नेही सम्प्रदाय की ओर से संतों और शिष्यों के लिए बत्तीस नियम बनाये गये थे उनमें से एक नियम यह था कि 'सम दृष्टि रखें। सबको समान मानें।'

इस संदर्भ में डॉ. दयाकृष्ण विजय ने लिखा है कि– "आध्यात्मक के एक मंच पर हम आ सकते है पर कटारवादी पंडे, मौलवी, पादरी आदि प्रतिष्ठा सुविधा एवं पूँजी छिनने के भय से एक मार्ग पर समाज को आने ही नहीं देते कोई यह नहीं कहता कि मोक्ष नहीं चाहिए। पर मोक्ष के पथ का विरोध करने में अविवेकपूर्ण तरीके से सब आगे है। कोई यह नहीं कहता भौतिक अच्छी है हमें ईश्वर नहीं चाहिए न मोक्ष चाहिए। सबको भौतिकता व आध्यात्मिकता का समन्वय ही अच्छा लगता है।" स्वामी जी के लिए राजा और रंक भी एक थे उनके लिए उनके मन में कोई भेद नहीं था उनक सम्प्रदाय भी सबको एक दृष्टि से देखता था। राम नाम ही उसके लिए निराकार सकार, निर्गुण–सगुण दोनों है सारे द्वन्द्वों सभी पक्षी दुर्दम्य मोहों को त्याग वह राम नाम को ही सर्वस्व उसे ही परमबह्य मान उसी की साधना में लगा स्वर्ग, नरक, पाप पुण्य, धर्म अधर्म सबके परे, शुद्ध–बुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म होना चाहता है।[43]

सहिष्णुता, सहनशीलता और समन्वय ही उनका भाव पथ और कर्म पथ बना रहा। इसी कारण अनुयायियों और भक्तों में गृहस्थ और विरक्त राज और सामान्य जन धनी और निर्धन स्त्री और पुरुष, युवा और वृद्ध सभी अपार संख्या में थे। रामस्नेही सम्प्रदाय का विस्तार राष्ट्र की सीमाओं से आगे बढ़कर विदेशों तक हो गया वैशाख कृष्णा पंचमी संवत् 1855 को ब्रह्मलीन हुए स्वामी रामचरण जी, समन्वयवादीसंत परम्परा में संत परम्परा में अपने जीवन और काव्य की वीणा पर समन्वय के एक उत्कृष्ठ गायक थे जिसके उदात्त स्वर यत्र–तत्र सुनाई पड़ते इस उपन्यास 'रमता राम' में स्वामी जी के समन्वय के उन स्वरों में उपन्यासकार डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपना भी स्वर मिलाकर संत और साहित्यकार का अद्वैत स्थापित किया है।

2.3.2 पायसपायी (2008)

उपन्यास कथा साहित्य की एक विधा है। जीवन चरित्र या जीवन पृथक विधा है, किन्तु किसी महापुरुष के जीवन को औपन्यासिक शिल्प में हृदयावर्जक शैली के माधुर्य में भिगोकर प्रस्तुत किया जाए, तो वह एक तीसरी अनूठी विधा ही बन जाएगी।

उपन्यास का आरम्भ प्रयाग में पुण्यसदन शर्मा के घर से होता है जहाँ बालक रामदत्त अत्यन्त छोटी आयु में दक्षिणावर्त शंख बजाकर सबको चकित कर देता है। इस बालक में स्वयं

राम ने अवतार लिया है यह स्वप्न पुण्यसदन को आता है। यही बालक विधार्जन कर काशी में रामानन्द बनता है किन्तु दक्षिणावर्त शंख बजाने का चमत्कार पूरे जीवन भर स्वामी रामानन्द के साथ रहता है। इस प्रतीक को लेखक ने समूचे उपन्यास में सब जगह गूँथ कर कथा शैली को विशिष्ट आयाम दिया है। ऐसा ही अन्य आयाम है रामानन्द का पर्दा खींचकर अपने कक्ष से निकलना और घटना विशेष की सृष्टि करना। उपन्यास पढ़ने से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि लेखक का आधार उन तथ्यों को समाहित किये हुए रामानन्द की वह जीवनी रही है जिसमें धन्ना, पीपा, कबीर, अनन्तानन्द आदि संतों पर रामानन्द ने किसा प्रकार की बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के रामदत्त किशोरावस्था में काशी में राघवानन्द के शिष्य हो गए हैं यही उनका नया नामकरण भी हुआ रामानन्द। उपन्यास की विशेषता है कि इसमें युग के सम्पूर्ण परिवेश को रखने की कोशिश की है युग की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ सामने आ गयी है। वैष्णवों, शैवोशाक्य तांत्रिकों, जैनों, सूफियों सबकी स्थिति और सबके टकराव सामने आये हैं। समाज का निम्न वर्ग अपने ही समाज एवं धर्माचार्यों से उपेक्षित था। कुछ तो अस्पृश्य थे धर्मांतरण हो रहा था। भक्ति आन्दोलन ने भक्ति का अधिकार दिया था लेकिन आचार्य श्री रामानन्द ने श्रेष्ठता एवं हीनता के द्वन्द्व का शमन किया है। यह लेखक डॉ. दया कृष्ण विजय की आधुनिक भारतीय प्रगतिशील चिन्तन की शुभ परिणति है। आचार्य श्री का व्यक्तित्व भी क्रांतिकारी था।

'पायसपायी' में लेखक ने श्रीमह एवं श्री सम्प्रदाय में उपलब्ध जीवन संबंधी ग्रंथों को आधार पर इस उपन्यास के कथानक को गणित किया है बचपन से मृत्यु तक की सभी घटनाओं का इसमें समावेश है। दक्षिणा वर्त शंख की आध्यात्मिक ध्वनि सभी विरोधियों प्रतिद्वन्दियों तथा संशयग्रस्त पुरुषों के अंतःकरण में परिवर्तन ला देती है। शंख का आध्यात्मिक प्रभाव सर्वमान्य है। पर इस उपन्यास में यह प्रभाव अपूर्व और अद्भुत है। कभी लगता है कि आचार्य श्री की विद्वता उच्चतम चरित्र, राय भक्ति पुरुषोत्तम व्यवहार शूद्र–अतिशूद्र के प्रति मानवीय सांस्कृतिक संवेदना तथा युग के प्रति पूर्ण जागरुकता का प्रभाव डालने में समर्थ रही है। संवत् 1515 की चैत्र नवमी के दिन रामानन्द ने परलोकगमन किया। डॉ. दयाकृष्ण विजय के अनुसार यह ऐसा करुण दृश्य था कि जिसे देखकर करुणा को भी करुणा हो आए 'पायसपायी' में स्वामी रामानन्द का जीवन और चिन्तन तो है लेकिन प्रासंगिक चमत्कारों की भीड़ में अन्य चरित्रों को फैलने उभरने का अवसर नहीं मिला है। उस बेचारी साल्वी का व्यक्तित्व भी बेहद अधखिला रह गया है जिसमें रामानन्द के लिए आजन्म कौमार्य व्रत ले लिया अपनी कथा योजना में डॉ. दया कृष्ण विजय ने मध्यकालीन इतिहास के विलक्षण प्रभावशाली आचार्य रामानन्द की चरितावली और विचारधारा का सजग उपन्यासीकरण किया है। इसलिए यह उपन्यास पठनीय और महत्त्वपूर्ण है।

2.4 निबंध संग्रह

1. गीता अनुशीलन (1984 ई.)
2. राजस्थानी काव्य साधना अब और तब (1996 ई.)
3. विचारों के अमलतास (1995 ई.)
4. साहित्य संस्कृति और युगबोध (2000 ई.)
5. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना (2000 ई.)
6. हिन्दी भाषा और महाकाव्य (2005 ई.)
7. सांस्कृतिक का वागर्थ (2006 ई.)
8. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य (2006 ई.)
9. वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका (2007 ई.)

कथा संग्रह

1. उलझन (1953 ई.)
2. स्वप्न और सत्य (1979 ई.)
3. बड़ी मछली (1992 ई.)
4. एक और क्रांति (1995 ई.)

नाटक

1. आदि सम्राट (1974 ई.)
2. छत्रपति शिवाजी (1975 ई.)
3. सिंहासन (1989 ई.)
4. राग से विराग तक (1983 ई.)

उपन्यास

1. रमता राम (2004 ई.)
2. पायसपायी (2008 ई.)

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के निबंध संग्रह से उनके विचारों के सुलझेपन तथा निष्कर्ष, सम्मत समाधान और अतिबुद्धीवादी शास्त्रीयता से परे बोधगम्य चिन्तन की सरलतम विश्लेषण परम्परा की अभिव्यक्ति में उनकी निबंध शैली की क्षमता उपलब्ध होती है। डॉ. विजय के निबंधों को चार वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में समीक्षात्मक वर्ग के निबंधों का संग्रह है। दूसरे वर्ग में विवेचनात्मक वर्ग तथा तीसरे वर्ग में चिन्तन प्रधान तथा चौथे वर्ग में आंचलिक साहित्यपरक निबंधों का समूह है।

2.4.1 गीता अनुशीलन (1984)

"गीता एक ऐसी कृति है जिसका भाष्य निरन्तर किया जाता रहा है। डॉ. दयाकृष्ण विजय के गीता अनुशीलन (1984) में सांस्कृतिक परिवेश एवं भारतीयता के मूलस्वर की अभिव्यक्ति इस गद्य रचना में मिलती है। 'गीता अनुशीलन' इन्हीं गणनीय भाष्यों के क्रम में स्थान रखता है यह अनुशीलन–भाष्य चिन्तनपरक तथ्यों का सतर्क प्रस्तुतीकरण है। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने गीता में बुद्धि योग के रूप में आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त एवं प्राप्ति उपायों का व्यवस्थित प्रतिपादन हुआ है। इस शोधात्मक चिन्तन के प्रस्ताविक में लिखा है– निश्चित धारणाओं वाले साम्प्रदायिकों ने गीता को अपने साम्प्रदायिक दर्शन में खींचने की कोशिश की है। इस अनुशीलन का आधार यह है कि डॉ. विजय ने जैसा स्वयं गीता को समझा है वैसा ही स्वयं अपने वाग्वैदग्ध्य द्वारा परिभाषित भी किया है। 'अर्जुन के ब्याज से भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से वेद व्यास जी ने कर्मयोग का भारतीय मनीषा का महान सन्देश समस्त विश्व के जन–जन को दिया है। सचमुच में वास्तविक ज्ञान के उदय का प्रकल्प ही गीता का सन्देश है। अर्थात बुद्धियोग से कर्मयोग की ओर बढ़कर परिवार समाज एवं राष्ट्र तथा विश्व कल्याण आदि भावनाओं से ओत–प्रोत यह निबंध संग्रह है जिसमें मनुष्य के कर्मों द्वारा ही जीवन का भावार्थ समझा जा सकता है।"[44]

इसी के मत में "डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली का मत है कि– श्री विजय की दृष्टि विश्लेषणात्मक है। विविध प्रश्नों के माध्यम से चिन्तन के मुद्दे तय करके उन पर एक–एक करके विचार किया गया है।............दृष्टि यही रही है कि पाठक के लिए गीता की विचार निगूढ़ता कुछ हल्की हो जाए और निर्णय लेने की दिशा की पकड़ कुछ अधिक सरल और सहज हो जाए। डॉ. विजय की लेखन की प्रगाढ़ अभिव्यक्ति का यह सहज सा उदाहरण हमें इस निबंध संग्रह में पढ़ने को मिला है। गीता अनुशीलन में भी अपनी शोधपरक विश्लेषण प्रतिभा का परिचय दिया है। गीता को बहुत ही मार्मिक ढंग से अपनी भाषा में लिखकर संस्कृति परिवेश की प्रगाढ़ अनुभूति का परिचय हमें यहाँ मिलता है। गीता के कर्म सिद्धांत को अपनाते हुए ज्ञान व कर्मशील प्रवृति का मिला–जुला प्रारूप हमें इस ग्रंथ में पढ़ने को मिला है। आत्मा परमात्मा की दार्शनिक अभिव्यक्ति का परिचय भी हमें यहीं से मिलता है। सांस्कृतिक परिवेश तथा भारतीयता के मूलस्वर की अभिव्यक्ति गीता अनुशीलन में हमें पढ़ने को मिली। आत्मा परमात्मा के मिलन तथा दार्शनिक अनुभूतियों के लिप्त यह कृति आमजन के लिए कुशल लेखन का परिचय देती है।"[45]

2.4.2 राजस्थानी काव्य साधना अब और तब (1990)

"डॉ. दयाकृष्ण विजय की कृति के अन्तर्गत अनुभूति लिए हुए है। राजस्थानी काव्य श्रृंगार भावना का विकास, श्रृंगार भावना के विकास में सहयोगी तत्व का उल्लेख है। 170 पृष्ठीय इस राजस्थानी नई कविता वीसलदेव रासौ में विप्रलम्भ, वेलिक्रिसन रुक्मिणी में श्रृंगार निरूपण का मार्मिक भाव ढोलामारु रा दूहा में श्रृंगार में भावना का विकास श्रृंगार पक्ष में संयोग श्रृंगार का सुन्दर मिलन हो या फिर वियोग भाव में मार्मिक वर्णन हो यह सब इस कृति की विशेषता लिए हुए है। साठोत्तरी कविताओं में प्रतीक विधान बिम्ब विधान को समेटकर शब्दों कि अभिव्यक्ति शैली का प्रमाण है। राजस्थानी मेवाड़ी मारवाड़ी भाषा की अभिव्यक्ति में युद्ध प्रमाण का औजस्वी स्वर भी हमें पढ़ने को मिलता है। युद्ध भूमि पर श्रृंगार का औजस्वी स्वर गूंजता है और उसी प्रकार उसके वियोग में बैठी नायिका उसके आने की बाट जोहती हुई भावनाओं को इसमें बहुत ही सुनहरे शब्दों में परिभाषित किया है। राजस्थान की आन बान का बढ़चढ़ कर बखान होता था तथा युद्ध भूमि की यथा स्थिति सम्पूर्ण वर्णन हमें यहाँ पढ़ने को मिला युद्ध भूमि की भूरि–भूरि प्रशंसा से रानी के मन में राजा के प्रति आकर्षण भाव वीरता का भाव होता था आदि सबका प्रमाण हमें यहाँ पढ़ने को मिलता है। इस ग्रंथ के सभी अध्यायों में स्वतन्त्रत चिन्तन दिशा का परिचय हमें पढ़ने को मिला है।"[46] लेखनी को शब्दों की बाह्यता नहीं है लेखन का कौशल अपनी अभिव्यक्ति द्वारा ही सिद्ध हुआ है। इसी सम्बन्ध में डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली ने कहा है– "कवि ने राजस्थान के प्राचीन और अर्वाचीन काव्यों का परिचय दिया है। यह कथन अक्षरशः चरितार्थ होता है, जिसमें चिन्तन की गहरी पैठ है। इस प्रकार डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने राजस्थानी काव्य साधना अब और तब में दोनों ही समय की अन्तराल तथा राजस्थानी काव्य की श्रृंगार भावना का विस्तार के साथ विधिवत् विवेचन प्रस्तुत किया गया है। निबंध लेखन की सरलतम विश्लेषण परम्परा की अभिव्यक्ति इस निबंध संग्रह में व्याप्त है।"[47]

2.4.3 विचारों के अमलतास (1995 ई.)

"डॉ. दयाकृष्ण विजय मूलतः कवि है लेकिन गद्यकार के रूप में अपनी अमिट छाप छोड़ते हुए इन्होंने समकालीन लेखकों के मध्य अपनी कलम की चतुराई को निखारा है। प्रांजल गद्य लेखक के रूप में भी वे हमारे सामने आते हैं। निबंध संग्रह विचारों के अमलताश (1995) में प्रकाशित हुआ है। जिसमें 18 निबंध संकलित हैं। इन 18 निबंधों को चार वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में समीक्षात्मक निबंध है। दूसरे वर्ग में विवेचनात्मक निबंध लिखे हैं। तीसरे वर्ग में चिन्तन प्रधान तथा चौथे वर्ग में आंचलिक साहित्यपरक निबंधों का संग्रह है। डॉ. विजय के विचारों का यह अमतलास अपने प्रथम रूप में गुप्त जी युगचेतना, पं. गिरधर शर्मा नवरत्न की युग

चेतना और सूर के मानववाद पर लिखित निबंध हैं जिसमें उनकी समीक्षात्मक दृष्टि का उल्लेख हमें दिखाई देता है। इन निबन्धों में सभी कवियों के युग की समीक्षा करते हुए जीवन मूल्यों का उल्लेख बड़ी ही रोचक दृष्टि से हमें पढ़ने को मिलता है। दूसरे वर्ग में लेखक के अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और रचनाकार शिक्षा और जीवनमूल्य अन्तरराष्ट्रीयता बनाम भारतीयता, साहित्य और संस्कृति, भारतीयता और साहित्य, निबंध आते हैं। इनमें जीवन मूल्यों के परिपार्श्व में विवेचना प्रस्तुत करते है। अतः इन्हें विवेचनात्मक गुणवत्ता से युक्त निबंध माना जाता है।"[48] डॉ. विजय की साहित्य सर्जन की केन्द्रीय विधाः समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चेतना के जागरण में भारतीय साहित्य, राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में भारतीय भाषाओं के लिए समान लिपि की आवश्यकता को उजागर किया है। "भारतीय साहित्य में सर्जन की केन्द्रीय विधाः समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चेतना के जागरण में भारतीय साहित्य रामकथा की महत्ता काव्य का स्वरूप और उसकी उपयोगिता, कस्मै देवाय हविषा जैसे निबंधों का प्रारूप हमें इस वर्ग के निबंधों में पढ़ने को मिला है।"[49] तीसरा चिन्तनप्रधान वर्ग है जो "डॉ. दयाकृष्ण विजय के चिन्तन के परिदृश्यों का विशद परिचय देते हैं और इस आधार पर, चिंतन एवं गवेषणापरक दृष्टिकोण का परिचय ही मिलता है। एक कुशल कलम के धनी के रूप में श्रेष्ठ निबंधकार का सुन्दर परिचय देते हुए निबंधों का लेखन किया है।"[50] "इसी प्रकार चौथे वर्ग के निबंध में हाड़ौती अंचल की अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में अपना श्रेष्ठ स्थान रखता है। चौथे वर्ग के निबंध आंचलिकतापरक निबंधों का योग महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। हाड़ौती अंचल की साहित्यिक परम्पराओं का सुन्दर वर्णन राजस्थान की लोक भाषाएँ जो लोक जीवन के सुन्दर परिदृश्य हमें दिखाती है। राजस्थान की संत परम्पराओं का विश्लेषण व समाज में उनकी भूमिका का वर्णन मिलता है। जिससे राजस्थान की भूरि–भूरि सुगंध हमें महसूस होती है। संतों द्वारा समाज उद्धार जनकल्याण की भावना से राजस्थान की रीति रिवाज का निर्वहन भी मिलता है। रामस्नेही स्वामी रामचरण के अतिरिक्त राजस्थान की भाषा की एकरूपता की आवश्यकता मिलती है।"[51] "तत्कालीन राजस्थान का सुन्दर शाश्वत परिचय हमें पढ़ने को मिलता है। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने इस निबंध संग्रह में निबंध विधा पर विचार करते हुए कहा है कि– आज जिन्हें निबंध कहकर अभिहित किया जा रहा है वे प्राचीन निबंधों से अवश्य थोड़े हैं। आज बौद्धिक गम्भीरता का स्थान वैचारिकता ने ले लिया है। कहीं यह वैचारिकता प्रतिबद्धता की परिधि से घिरी है तो कहीं नितान्त उन्मुक्तता के दर्शन कराती मिलती है। राजस्थान की साहित्यिक समृद्धि का व्यापक परिचय देते हैं। आज इस प्रकार के प्रति क्षेत्रीय प्रतिबद्धता स्थानीय प्रतिभाओं का परिचय देकर राजस्थान की साहित्य सर्जना के प्रतिमान स्थापित कराने में अपनी भूमिका से महत्त्वपूर्ण परिणाम देख सकती है।

विभिन्न विचार धाराओं से प्रवाहित इस निबंध संग्रह में डॉ. विजय की विचार प्रवाह को बहुत ही बौद्धिक तथा सटीक रूप में यहाँ पढ़ने को हमें मिलती है।"[52]

2.4.4 साहित्य संस्कृति और युगबोध (2000 ई.)

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध संग्रह में सांस्कृतिक एवं मूल्यपरक विचारसम्पन्न दृष्टि यहाँ देखी जा सकती है। साहित्य भारतीय साहित्यों में संस्कृति का वास हमें प्रकाण्ड कवियों लेखकों द्वारा तत्कालीन लेखकों ने अपने–अपने विचारों द्वारा हमें ज्ञान प्रदान करने का निरन्तर प्रयास कर हमें साहित्य की शुरूआत से वर्तमान के परिवेश से जोड़ा हुआ है। जब हम भारतीय साहित्य का उल्लेख करते हैं तब भारतीय साहित्यकारों का किसी भी भाषा में लिखा साहित्य ही अभिप्रत होता है। साहित्य भी संस्कृति की इसी विकासमान दृष्टि को हृदयसंगम रखकर सृजन प्रवृत होता है। संस्कृतकाल में साहित्य की समस्त विधाएँ काव्य शब्द में समाहित थी। काव्य के दो भेद थे। 1. प्रेक्ष्य (दृश्य) और श्रव्य प्रेक्ष्य की परिधि में केवल एक नाटक विधा आती थी। श्रव्य के तीन भेद थे। 1. गद्य 2. पद्य 3. चंपू में हमें पढ़ने के मिला। संस्कृति मानव की अमूल्य निधि होती है इसे परिभाषित करना आसान नहीं होता, जो भी परिस्थितियाँ मानव को प्रभावित करती हैं संस्कृति कहलाती है। साहित्य हमारे जीवन की व्याख्या है। जिसमें जीवन मूल्य अनायास ही अवतीर्ण हो जाते है। डॉ. विजय ने इसी को व्याख्यायित करते हुए अपनी पुस्तक साहित्य संस्कृति और युगबोध पर प्रकाश डाला है। "संस्कृति में सामान्यतया बदलाव नहीं आता। संस्कृति की तरह परम्परा का बाह्य बदल सकता है परन्तु आंतरिक भाव यथावत बना रहता है। परम्परा इसलिए है क्योंकि यह अपने में लोकमंगल की उदात्त कामना सहेजे होती है। परम्परा श्रेष्ठता की द्योतक है, निकृष्टता की नहीं संस्कृति की परम्परा ही लोक स्वीकृति की परिपाटी है। विकृतियों की कोई परम्परा नहीं होती। इसलिए कभी–कभी संस्कृति और परम्परा को एक मानने की भूल हो जाती है। परम्परा तो श्रेष्ठ आचरण की पीठिका है अतः परम्परा से ही समाज माना जाता है। समाज और परम्परा का इस नाते अभिन्न संबंध है। परम्परा ही समाज की ऊर्जा तथा प्रेरणा शक्ति है जिसके सहयोग से समाज सतत् अग्रसर और गतिमान रहता है।"[53]

लोक रीति या प्रथा की अपेक्षा परम्परा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। "लोकरीतियाँ तथा प्रथाएँ समाज द्वारा स्वीकृत विचारों और कार्य करने के ढंग से संबंधित होती है जबकि परम्परा में दार्शनिक विश्वासों तथा कलापूर्ण पद्धतियों को भी शामिल कर लेते है। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।"[54]

प्रो. ड्रेवर के अनुसार – "परम्परा, कानून प्रथा, कहानी और पौराणिक कथाओं का वह संग्रह है, जो मौखिक रूप से एक पीढ़ि द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है।"[55]

प्रो. ग्रिन्सवर्ग ने अपने विचार इस प्रकट करें है– "परम्परा का अर्थ चिन्तन और विश्वास करने की विधि का संचरण है, परम्परा एक भावात्मक, विशेषता की ओर संकेत करती है यदि हम कहें कि भारत में गुरुजनों का सम्मान शांति के प्रति प्रेम ऐसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी मिलते हैं अतः इन्हें हम प्रथा या लोक रीति न कहकर इस देश की परम्परा ही कहेंगे।"[56]

इसी प्रकार धर्म का शास्त्रों ने विशद् विवेचन प्रस्तुत किया है, क्योंकि आचरण से इसका सीधा संबंध है। तुलसी ने धर्म की बड़ी सरल व्याख्या प्रस्तुत की है 'परहित सरिस धरम नाहिं भाई पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'। एक बात यहाँ अवश्य जोड़ी जा सकती है कि अपवाद धर्म को दुर्बल बनाते हैं। धर्म राज युधिष्ठिर जब कहते है। "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो तब शास्त्रों ने ही उनके कथन पर प्रश्नवाचक लगा दिया स्वयं धर्मराज की आत्मा उन्हें कचोटती रही। 'सत्यवाद' यह धर्म का आप्त कथन है। सत्य बोलो। सत्य संदेह में लपेटकर मत कहो।"[57]

संस्कृति और साहित्य – साहित्य गतिशील सांस्कृतिक प्रवाह का अंग है। सामाजिक विकास से सांस्कृतिक विकास जुड़ा है और सांस्कृतिक विकास से साहित्य का विकास। इसका कारण यह है कि साहित्यकार भी उसी समाज का अभिन्न अंग है जिस समाज का संचालन संस्कृति करती है। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने इस निबंध शैली को दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग में पूर्णतया साहित्यिक और सांस्कृतिक वर्ग में दूसरा वर्ग युग धर्म पर आधारित है। इसमें डॉ. विजय ने सदाचार नियमों, कठोपनिषद्, भगवतगीता आदि से सार लेते हुए निबंधों की रचना की है। मनुष्य जीवन में सभी धर्मों का निर्वाह करता है। नीति अनीति धर्म अधर्म सत्य असत्यों के संघर्ष से लिप्त जीवन में सदा सन्मार्ग की ओर प्रशस्त होने की प्रक्रिया को इसमें समझाया है।

2.4.5 राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना (2005)

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित निबंध "राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना निबंध संग्रह में राजस्थान के परिदृश्यों को छूते हुए महाकाव्यों द्वारा राजस्थान की वेशभूषा, भाषा परम्परा, रीति–रिवाज, लोकसाहित्यों का ज्ञानार्जन हमें इस निबंध संग्रह में मिलता है। साहित्य मानव समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है किसी काल विशेष के साहित्य की जानकारी से तद्युगीन मानव समाज को समग्रतः माना जा सकता है। राजस्थान के वीर रस से अपना वर्चस्व बना रखा था। तत्कालीन राजस्थान में अपना वर्चस्व बना रखा था।"[58] तत्कालीन राजनीति परिस्थिति धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक व सांस्कृतिक

परिस्थितियों का संपूर्ण अध्ययन इस समय के ग्रंथों महाकाव्यों में हमें पढ़ने को मिला। साहित्य में रासो काव्य ग्रंथों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता इन सभी निबंधों में पढ़ने को मिली।

महाकाव्य से अभिप्राय – "महाकाव्य शब्द काव्य के आगे महा विशेषण लगकर निष्पन्न हुआ है। जिसका अभिधा में अर्थ हुआ बृहद् काव्य या महान काव्य। आज हम पद्यबद्ध रचना को काव्य कहते है। वैसे अतुकांत छंदहीन नई कविता भी आज काव्य के अन्तर्गत परिगणित है। संस्कृत काल से हिन्दी काल तक आते–आते काव्य शब्द बाहुयाश निश्चित रूप से संकुचित हुआ है। संस्कृत काल में साहित्य की समस्त विधाएँ काव्य शब्द में समाहित थी। काव्य के केवल दो भेद थे। 1. प्रेक्ष्य (दृश्य) और श्रव्य 'प्रेक्ष्य की परिधि' में केवल एक नाटक विधा आती थी। श्रव्य के तीन भेद थे। 1.गद्य 2. पद्य 3. चंपू गद्य के दो भेद माने जाते थे। 1. कथा गद्य 2. आख्यायिका। कथा के भी चार भेद थे। 1. युग्मक 2. संदामितक 3. कलापक तथा 4. कुलक काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भामह ने काव्य की परिभाषा करते हुए उसके गद्य और पद्य नाम से ही भेद माने है।"[59]

2.4.6 हिन्दी भाषा और महाकाव्य

हिन्दी के प्रयोग व भविष्य पर विस्तार से प्रकाश डाला है। डॉ. विजय ने अपने प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में हिन्दी महाकाव्यों में चित्रित सांस्कृतिक चेतना विस्तार से प्रकाश डाला है। इसमें इन्होंने राजस्थानी परिवेश, भाषा, रीति–रिवाज तथा राजस्थानी संस्कृति का चित्रण बड़े ही सुन्दर व सूक्ष्मता के साथ किया है।

डॉ. विजय द्वारा रचित इस निबंध में हिन्दी अपनी अस्मिता को बनाए रखने हेतु इस कठोर प्रतिस्पर्धा के जटित युग से गुजर रही है। "डॉ. विजय इस विषय में लिखते हैं कि हिन्दी भाषा के सामने मुख्यतः ये तीन ही प्रश्न है। अपने अस्तित्व की रक्षा 2 अपने सौन्दर्य को बनाए रखने की चिंता 3. विश्व मंच पर अपने को प्रतिष्ठित करने की व्यग्रता। हिन्दी भाषा तीनों ही मोर्चों पर सफलता के साथ जूझ रही है।"[60]

"हिन्दी कौरवी भाषा की कोख से खड़ी बोली के नाम से जग ले आकार ग्रहण किया। कौरवी भाषा 'शौरसेनी अपभ्रंश की एक दुहिता थी शूरसेन प्रदेश की शौरसेनी भाषा मेरठ से दिल्ली तक और दिल्ली से आगरा तक विस्तृत थी। खड़ी बोली हिन्दी को ईरान के बादशाह नौशेरखाँ ने सन् 531–589 में पंचतन्त्र का हकीम बजरोया से अनुवाद किया यह अनुवाद जवान–ए–हिन्दी में किया गया है। दिल्ली व आस–पास की भाषा को मुसलमान शासकों ने

जुबान–ए–हिन्दी नाम दे दिया प्रारम्भ में हिन्दी भाषा में अरबी–फारसी शब्दों का खूब प्रयोग होता था। 1825 में लार्ड एम्सहर्ट ने हिन्दी को हिन्दुओं हिन्दी भाषा के महत्त्व व उसके राष्ट्र भाषा बनने तक किये गये प्रयासों की डॉ. विजय ने अपने निबन्ध में इसके उद्‌भव व प्रयोग को स्पष्ट करते हुए तत्कालीन परिस्थितियों व हिन्दी भाषा के संदर्भ में केन्द्रीय विषय हिन्दी के महत्त्व पर विस्तार दिया है तथा अपने विचार प्रस्तुत किये है। की भाषा कहकर अरबी फारसी शब्दों से मुक्त करा दी।"[61]

1936 में देश में प्रगतिशील लेखक संघ के नाम से मार्क्सवाद आ गया। इसने भाषा को सुचारू रूप देने हेतु हर संभव प्रयास कर हिन्दी भाषा के स्वरूप को भारत का भविष्य बनाने पर भी जोर दिया गया। लार्ड एम्सहर्ट ने सन् 1825 में जिस हिन्दी का विकास किया मुम्बई के चीफ जस्टिस सर एरस्किन पेरी के 1835 में अखबार के अंक में जो रॉयल एशियाटिक सोसायटी के पेपर में छपा था। 1857 में इसे स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ मान्यता दी गई। इसके व्यवहार क्षेत्र को भी बृहद् विस्तार दे दिया। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और राजस्थान ने हिन्दी का शंखनाद गुँजा दिया। पं. मदन मोहन मालवीय तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने नेतृत्व सँभाल कर सन् 1893 में काशी में स्थापित नागरी प्रचारिणी सभा स्वतः इनसे जुड़ गयी सन् 1910 में प्रयाग में मालवीय जी की अध्यक्षता ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। टण्डन जी इसके मंत्री बने महात्मा गाँधी ने 1914 में दक्षिण अफ्रीका से लौटते ही घोषणा कर दी कि– 'मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न तो स्वराज्य का प्रश्न है' 1936 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया गया। 14 अगस्त 1950 को संवैधानिक मान्यता प्राप्त कर हिन्दी का गौरव और बढ़ गया। हिन्दी आज विश्व मंच पर अपना अनूठा स्थान प्राप्त कर चुकी है यह भारत ही नहीं वरन् पूर्ण विश्व में प्रमुख स्थान हिन्दी विश्व के 120 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। अमेरिका के 38 पश्चिमी जर्मनी के 17 तथा रूस के 7 विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षण की स्तरीय व्यवस्था है ब्रिटेन बेल्जियम, स्वीडन, पेरिस, पौलेण्ड के भारतीय अध्ययन विभाग में हिन्दी शिक्षण की स्तरीय व्यवस्था है। अकेले मॉरीशस में 300 प्राथमिक एवं माध्यमिक पाठशालाओं में त्रिनिटाड और टोवेगो में 27 संस्थाओं में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन तथा प्रचार कार्य हो रहा है। भारत सरकार ने अपने समझौतों के माध्यम से सूरीनाम, गुथाना, रोमानिया बल्गारिया चीन आदि देशों में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था की है। भारत के प्रधानमंत्री दो बार संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में बोल चुके हैं। एक अरब के भारत की संवैधानिक राज्यभाषा हिन्दी है। यही विचार मुझे डॉ. विजय के बहुत ही सुंदर लगे की हिन्दी भाषा को विश्वभाषा के रूप में इसमें पढ़ने को हमें मिला।

2.4.7 संस्कृति का वागर्थ (2006)

डॉ. विजय ने अपने इस निबन्ध में साहित्य व संस्कृति को स्पष्ट करते हुए संस्कृति व सभ्यता के निर्माण में सूर, तुलसी से लेकर कबीर रैदास आदि संतों के योगदान की चर्चा इस निबन्ध में की है। वे लिखते हैं– "साहित्य, संस्कृति का आचरण शरीर है। साहित्य का धर्म है कि वह अपनी सनातन संस्कृति के औदात्य को भी दृष्टि ओझल न करे, साथ ही एक कुशल सैनिक की भांति अपनी लेखनी की धार अपसंस्कृति के आक्रमण के परखच्चे उड़ा दे। साहित्य संस्कृति की जीवन्तता है और संस्कृति साहित्य का अधिष्ठान।"[62] भारत विश्व का एक अतीव प्राचीन राष्ट्र है। भारत पर अरबी फारसी मुगल आक्रमण होते रहे पर भरत अपने संस्कृति व सभ्यता को समेटे हुए था। भाषा सभ्यता संस्कार अपना गौरव वेशभूषा परिधान आदि सभी में निरन्तर गति से भारत दर्शन के भाव को निखार कर हमारे समाज को उन्नति के मार्ग में बनाये रखने में प्रमुख था भारत। हमारा भारत दकियानूसी बकवास से अधिक आगे निकल चुका था। भारत में समाज सुधारों द्वारा भारत की संस्कृति को विभिन्न आन्दोलनों द्वारा निखारा जा रहा था। 1857 की मंगल पाण्डे की सैनिक क्रांति ने सगुण एवं निर्गुण दोनों स्तरों पर आक्रांताओं का सामना किया। देश व समाज को अपनी संस्कृति से अपने धर्म से अपने संस्कारों से जोड़े रखा। यह आक्रमणात्मक या परिवर्तनात्मक क्रांति धर्म नहीं थी, प्रतिरक्षात्मक क्रांति थी। सगुण स्तर पर अष्टछाप के कर्णधार सूर, तथा तुलसी जैसे शिरोमणि थे वही निर्गुण स्तर की कमान रामानन्द, रैदास और कबीर ने संभाली नामदेव संत ज्ञानेश्वर और संत रामदास ने यह कमान संभाली जयदेव ने भी इसका नेतृत्व किया। गोरांग प्रभु, गुरुनानक आदि संतों ने संस्कृति सभ्यता की कमान संभालते हुए भारत का इतिहास संस्कार सभ्यताओं से भर दिया। मीरा की भक्ति, तुलसी का दास्यभाव, सूर का सखाभाव आदि से भरपूर साहित्य समाज निर्माण में बहुत ही कारगार साबित हुए। डॉ. विजय ने इस निबंध में संस्कृति तथा साहित्य का महत्त्व बताते हुए भारत की भूरि–भूरि प्रशंसा कर संस्कृति के प्रति अपने प्रेम भाव को प्रस्तुत किया है।

अनादिकाल से आज तक भारत का स्वातन्त्रय भाव

डॉ. विजय रचित इस निबंध में हमें भारत के अस्तित्व गौरव गाथा का भाव पढ़ने को मिला है अनादि काल से भारत धीरे–धीरे परिवर्तन के साथ आगे बढ़ा। स्वतन्त्रत भाव के विचारों का पालन कर अपने राष्ट्र के निर्माण में मानव भाव को भी महत्त्वपूर्ण मानते है। वे प्रस्तुत निबन्ध में स्वातंत्र्य भाव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं। "भारत की जिजीविषा अनादिकाल से सचेतन संघर्षशील तथा संप्रभुता बनाये रखने को सचेष्ट रही है। चेहरे बदले हैं। किसी भी रूप में जो आया है वह स्वातंत्र्यभाव के प्रतिफल से ही आया है। स्वतन्त्र भाव मानव जीवन की प्रमुख

रूप रेखा रही है मन से स्वतन्त्र व्यक्ति विकासशील भाव से उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ता है और जीवन बहुत ही सुन्दर भाव से प्रगति करता है।"[63] यही भाव वाग्वैदग्ध्य का सूचक है जो हमें यहाँ पढ़ने को मिला है। डॉ. विजय द्वारा रचित इस निबन्ध में हमें स्वातन्त्रय भाव से प्रगतिशील मानव की प्रक्रिया के बारे में पढ़ने को मिला है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा

डॉ. दयाकृष्ण विजय इस निबंध में लिखते हैं स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय काव्य की चार मुख्यधाराएँ प्रवहमान थी। एक तो राष्ट्रीय काव्यधारा, दूसरी मार्क्सवादी काव्यधारा, तीसरी छायावादी रहस्यवादी काव्यधारा तथा चौथी प्रयोगवादी काव्यधारा। स्व. बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल, चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, डॉ. सुधीन्द्र आदि सभी ने उस समय की परिस्थितियों पर लेखनी चलाकर स्वतन्त्रोत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थितियों को प्रस्तुत किया। इन साहित्यकारों ने समाज के निर्माण में लेखन कर समाज की स्थिति को बहुत उच्च स्तर तक पहुँचाने का कार्य किया। भारत की स्थिति छायावादी, रहस्यवादी, प्रयोगवादी, प्रगतिवादी लेखकों ने लिखा कि भारत की नई पीढ़ी नवनिर्माण में लग जाये भारत आगे बढ़े जीवनधारा का निर्माण बहुत अच्छी तरह से होने लगे। 1943 में तारसप्तक प्रयोगवादी लेखकों का एक समूह रूप में भारत निर्माण की काव्यधारा निकल पड़ी और लेखकों ने जीवन की आजादी का महत्त्व समझाते हुए व्यक्ति विशेष पर केन्द्रीत साहित्य सृजन किया और असंख्य निबंध नाटक, कहानी उपन्यास व कविताओं की रचना कर साहित्य की दुनिया में अपना स्थान रखा। तत्कालीन साहित्यकार व कवि भारतीय कविता का भविष्य और समुज्ज्वल समझते हुए समाज को नई दिशा देकर भारत देश की दशा को बदलने में लगे थे। यह शब्द डॉ. विजय के वाग्वैदग्ध्य का परिचय देते है कि भारत में समाज के भाव और विचार का समन्वय, यथार्थ और आदर्श का संबंध, सत्यं शिवं सुन्दरमं का भाव की लेखनी से एक नया इतिहास लिखने को लालायित ये लेखक अपने सृजन धर्म का निर्वहन बड़ी ईमानदारी के साथ कर रहे थे।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

प्रस्तुत निबन्ध में डॉ. विजय ने भारत की गौरवगाथा का वर्णन बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के रूप में इस प्रकार किया भारत एक राष्ट्र है तब सम्मुख नगाधिराज हिमालय से लेकर उदधि पर्यन्त तक का भूगोल ही नहीं इसकी सनातन संस्कृति की अविछिन्न परम्परा, इसका गौरवशाली इतिहास तथा इसके वे सभी महापुरुष, राजा, राजर्षि, देव, देवर्षि तथा इसकी रक्षा में प्राण न्यौछावर करने वाले हूतात्मा तक आते हैं। राष्ट्र के इस त्रिभुज में आबद्ध होने के बाद भूमि, मिट्टी का लोथ भर न रहकर 'स्वर्गादपि गरीयसी' मातृभूमि हो जाती है। जन हाड़

माँस के पुतले न रहकर कौडम्बि सूत्र में बंधे आत्मीयबंध हो जाते हैं। ये सभी अपनी एक पवित्र संस्कृति की उदात्त परम्परा का अनुसरण करने में गौरव का अनुभव करते हैं।

डॉ. विजय लिखते हैं कि– "1916 में लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस का अधिवेशन क्या हुआ 'नवीन' जी को मैथेलीशरण गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी जैसे ख्यतिलब्ध कवियों से निकट परिचय प्राप्त करने का सुअवसर मिल गया। 1920 में वे महात्मा गांधी के आह्वान पर कॉलेज छोड़ स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े।"[64]

इसी बीच 'प्राणार्पण' काव्य भी लिखा जो बहुत ही प्रेरित था। सन 1939 में उनकी दूसरी काव्यकृति 'कुंकुम' प्रकाश में आई। 'कुंकुम' राष्ट्र ने स्वतन्त्रता संग्राम में एक हलचल ला दी कवि के गीत गली गली गाये जाने लगे।

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं जिससे उथल–पुथल मच जाये एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये", नवीन की यह पंक्तियाँ क्रांतिकारी कवि के रूप में पढ़े व पढ़ाये जाने लगे। 1951 में दूसरा प्रसिद्ध काव्यकृति 'रश्मिरेखा' जिसमें उनका गीत 'हम अनिकेतन'

"कौन बनाये आज घरौंदा, हाथों चुनचुन कंकड़ माटी
ठाठ फकीराना है अपना
वाधांबर सोहे अपने तन?
हम रमता बन बिचरे
पर हमें भिक्षु समझे जग के जन।
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन"[65]

तीसरा संग्रह 'अपलक', से 'नवीन' जी साहित्य इतिहास के जगमगाते तारे के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

"आज इतिश्री हो जाने दो, मेरी कसक कहानी की
अब विस्मृत हो जाने दो सब, भूले विगत कहानी ही।"[66]

1952 में दार्शनिक विचारधारा की 'क्वासि' लिखकर अतीत का गौरवगान किया।

"उठो उठो ओ नंगों भूखों ओ मजदूर किसान उठो।
लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दे आग आज ।।"[67]

इस दुनिया भर को आध्यात्म की और उन्मुख 'नवीन' जी भौतिकवाद की भर्त्सना करते हुए कहते हैं।

"जड़ पदार्थ से, अंध शक्ति से किससे चेतन भाव जना

भौतिकवाद चेतना विरहित वह निपट निराशावाद।।"[68]

फैले अहंकार भावना मिटे संकुचित सीमा बंधन 'प्रतयंकार' में नवीन जी की वे स्फुट रचनाएँ हैं जिन्हें उन्होंने शायद पहले लिखी थी। इस प्रकार इस निबंध में ओजस्वी भाव की रचनाओं द्वारा भारत की आजादी के महत्त्व को सामान्यजन तक पहुँचाने का कार्य नवीन जी ने किया है। इस प्रकार बाल कृष्ण शर्मा नवीन के काव्य का मुखर स्वर राष्ट्रीय चेतना, व भारतीय गौरवशाली परम्परा को समर्पित था।

स्वातंत्र्य प्रेमी महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित यह निबंध सूर्यमल्ल मिश्रण को स्वतन्त्रता प्रेम की लेखनी को समर्पित है। 1872 में बूँदी में कीर्तिमयी धरा पर भावना की कोख तथा चण्डीदान के अंश से साहित्य के आंगन में जन्म लिया। सूर्यमल्ल मिश्र ने जब लेखन शुरु किया तब से ही औजस्वी लेखन कर राजा की वीरगाथा तथा रानियों के जौहर की काव्यधारा अपने लेखन में प्रवाहित रखी।

"रण खेती रजपूतरी वीर न भूले बाळ।

बारह बरसां बापरा लहै वैर लंकार।।"[69]

एक ऐसी वीरांगना की गाथा है भिणाय की महारानी ने कवि के पास मूल्य आंकने हेतु चुनरी भिजवाई। तब इस कवि ने एक ही बात कहलाई कि वह इन चुनरी का मोल तभी आँकेगा जब वे उसे पहनकर अपने पति के साथ सती होगी और इसी पर कवि ने अपने लेखन की कलम द्वारा 'सती चरित्र' की रचना की। सूर्यमल्लमिश्रण का सितार प्रेम अधिक होने से वहाँ के राजा रत्नसिंह ने उन्हें दो सितार भेंट किये और 'नट नागर विनोद' की रचना भी की।

"सुन्दर सतारी पढ़ाई रतनैस जै

बजै तै पंचवान की कमान कसनीसी है।"[70]

सूर्यमल्ल मिश्रण का कला प्रेम बहुत ही मार्मिक हुआ हर जगह अपनी अनूठी छाप छोड़ी 10 वर्ष की आयु में उन्होंने 'राम रंजाट' काव्य जिसमें राजा रामसिंह के दोनों विवाहों का विस्तार से वर्णन लिखा है यह कवि 'पृथ्वीराज रासो' की टक्कर की कृति है। 'छन्द मयूख' तथा 'धातु रूपावली' उनके व्याकरण एवं शब्द शास्त्र के ज्ञान की अलग ही पहचान बन चुकी है। 'बलवन्तविलास' रतलाम के राजा बलवंत सिंह की स्मृति में लिखा काव्य है। 'वंश भास्कर', 'वीर सतसई' दोनों ही राजस्थान की अनूठी रचनाएँ है।

सूर्यमल्ल मिश्रण बड़े ही सनकी प्रवृत्ति के व्यक्तित्व थे सूर्यमल्ल मिश्रण अपने साथ आठ लिपिकों के साथ 1897 के बैशाख माह में प्रारम्भ किया था राजा रामसिंह के व्यवहार सूर्यमल्ल मिश्रण के साथ तालमेल नहीं मिल पाया और यह ग्रंथ पूर्ण नहीं हो पाया। इस अनूठे कवि ने सदा ही अक्खड़ स्वभाव की वजह से अलग व्यक्तिव बना और उनका कृतित्व भी अनूठा ही रहा 'वीर सतसई' के कुछ अंश इस प्रकार है।

"इला न देवी आपणी, हालरिया हुलराय
पूत सिखाये पालणे मरण बड़ाई माय।
जिण बन भूल जावता, गेंद गवय गिड़राज।
तिण बन जंबुक तारवड़ा ऊधम मंडे आज।।"[71]

इसी प्रकार वीर सूर्यमल्ल मिश्रण के व्यक्तित्व की गौरव गाथा हमें इस निबन्ध में दिखाई देती है।

राजभाषा हिन्दी का स्वर्णजयन्ती वर्ष

डॉ. विजय रचित इस निबंध में हिन्दी भाषा राजभाषा के सफर में किस प्रकार निकलते हुए अपनी पहचान बनाने में सफल रही। "संविधान की धारा 343 (2) में इसे रखा गया और 14 सितम्बर 1949 को देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भाषा को भारतीय संघ की राजभाषा स्वीकार लिया। 26 जनवरी 1950 को संविधान को स्वीकृति प्रदान करते हुए राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा हिन्दी को देश की राजभाषा कुछ अपवादों के साथ स्वीकार लिया।"[72]

"हिन्दी को सरकारी भाषा बनाने हेतु सदैव ही आन्दोलन चलते रहे और हिन्दी अन्ततः आँचलिक भाषाओं से अलग अपनी पहचान भारत में बनाने में सफल रही। विभिन्न बोलियों के इस देश की भाषा को अपने अनूठे सफर से गुजर कर भारत में गौरान्वित भाषा बनी अंग्रेजी भाषा प्रतिष्ठित भाषा के रूप में बनने की वजह से तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दी 8 राज्यों में सिमट गई 18 राज्य द्विभाषी राज्य है। परन्तु बाद में निरन्तर प्रयासों से राज्यों में परिवर्तन आया और भाषा निजभाषा को सम्मानीय भाव से बोलने को प्रेरित किया गया शिव प्रसाद, भारतेन्दु, बालकृष्ण 'नवीन' लक्ष्मण प्रसाद, लल्लू सितारे हिन्द, लल्लूलाल आदि के प्रयासों से फोर्ट विलियम्स कॉलेज में हिन्दी अस्तित्व में आई। इसमें आदिकाल, वीरगाथाकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल तक के सफर में परिष्कृत करने हेतु असंख्यक लेखकों का योगदान रहा आज हिन्दी भारत में ही नहीं वरन् विश्व में 130 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। विदेश में भी हिन्दी ने अपना परचम फैला रखा है।"[73]

पं. दीनदयान उपाध्याय और उनके उपन्यास

डॉ. विजय रचित यह निबंध उपाध्याय जी की व्यक्तित्व व कृतित्व का अनूठा परिचायक है। "पण्डित दीनदयान उपाध्याय ने पूर्ण रूप से भारत के सेवक भारत पुत्र के रूप में अपनी अलग ही छाप बनाई। पण्डित दीनदयाल भारत व भारतवासियों के प्रति प्रेम, दया समर्पण एकता बलिदान आदि से पूर्ण रूप से भारतवासियों को समर्पित व्यक्तित्व थे अतः देश के प्रति उनका भाव ही हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस विषय में डॉ. विजय लिखते हैं 'पं. दीनदयाल जी का साहित्य लेखन सरोकारों' से सीधा संबंध रखते हैं। पं. जी का साहित्य लेखन 'यश से अर्थ कृते' से परे था जिसमें राष्ट्र निर्माण का भाव सतह पर ही लहरों सा किल्लोल करता हमें मिलता है। उपन्यास 'टू प्लांस' लिख अर्थ नीति की तत्कालीन नीतियों को उजागर किया। 'भारतीय अर्थनीतिः दशा और दिशा' लिखकर देश की स्थिति की आर्थिक मीमांसा की है। पं. जी की लेखनी से निकले शब्द सिर्फ उपन्यास तक ही सीमित न थे बल्कि पत्रकारिता के क्षेत्र में एक कुशल सम्पादक का परिचय भी उन्होंने देकर देश को बौद्धिक ज्ञान प्रदान किया। 'राष्ट्रधर्म', पांचजन्य, स्वदेश जैसे दैनिकों साप्तहिकों में और मासिकों में निबंधों द्वारा सुधीजनों साथ ही आमजन को राजनीति, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक निबंधों पर उत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया। इन सभी निबंधों का संकलन हमें राष्ट्र जीव की दिशा में मिलता है। पं. दीनदयान उपाध्याय ने 'सम्राट चन्द्रगुप्त' तथा 'जगदगुरु श्री शंकराचार्य' लिखकर साहित्य संस्कृति सभ्यता का अनूठा प्रमाण हमें दिया है।"[74]

'सम्राट चन्द्रगुप्त' उपन्यास में उपन्यासकार भारत की तत्कालीन सामाजिक स्थिति को निरुपित करते हुए कहा कि उस समय समाज असंगठित, विश्रृंखल, व्यक्ति निष्ठ था परन्तु इस प्रकार महापद्मनंद की वंश परम्परा में अंतिम राजा घनानन्द की विलासिता का जो चित्र उपस्थित किया है उसे पढ़ने के बाद लगता है कि चन्द्रगुप्त ने उसका वधकर कोई अपराध नहीं किया प्रजानुरंजन के कारण ही राजा का नाम राज पड़ा है। इसी समाज को जिस राजा से उसका मंत्री भी इतने महत्त्व के कार्य के लिए समय पर नहीं मिल सकता वह राजा भारत के इस महान राज्य के योग्य कदापि नहीं है। स्वयं उपाध्याय जी के जीवन दर्शन के ही बोल 'भारत का सम्राट तो निस्वार्थ वृत्ति से संयम एवं दृढ़तापूर्वकजनता की सेवा करने वाला व्यक्ति चाहिए।'

इसी प्रकार जब चन्द्रगुप्त के सिंहासनारुढ़ होने के समय हुई दीपमालिका को इंगित करते हुए चाणक्य कहते हैं–"दीप से दूसरा दीप जलकर वह प्रलयंकारी ज्वालाप्रकट हो, जिसमें समस्त नंदवंश भस्मीभूत हो जाये।"[75]

सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया। भारत यूनान का दामाद बन गया अंत में पंडित जी ने चाणक्य से यह कहलावाकर 'न त्वेवार्यस्य दास्य भावः' (अर्थात् आर्य कभी भी गुलाम नहीं बनाया जा सकता)। अपने उपन्यास का उपसंहार किया। पं. जी का दूसरा उपन्यास 'जगद्गुरु शंकराचार्य' पर आधारित उपन्यास है। यह भाषा, भाव अनुभूतियों से परिपूर्ण है उसमें प्रेम समर्पण भाव को काव्यात्मक ढंग से पं. जी ने पेश किया है। 'नदी में स्नान करते जाते समय जब बच्चों को अपने हाथों की चारों अंगुलियाँ बंद करके एक गली खुली छोड़ देता परन्तु दूसरे ही क्षण लज्जा के सारे उत्तरीय के आँचल में हाथ छिपा लेता मानो निरलम्ब अंगुली टूटकर गिरना चाहती है। बड़ा ही मार्मिक ढंग से पं. जी का शंकराचार्य जी के जीवन का भाव कलम द्वारा उकेरा है।

अतः दोनों ही उपन्यासों में डॉ. विजय ने पं. दीन दयाल उपाध्याय के उपान्यासों को विशेषता को परिभाषित किया है। शब्दों की कारीगरी को भारत की सभ्यता को त्याग, समर्पण प्रेम, भाव आदि द्वारा अपने उपन्यासों में लिखा डॉ. विजय ने अपने इस निबंध में बहुत ही मार्मिक ढंग से उपन्यासों के ज्ञान से हमें लाभान्वित किया है तथा मेरा ध्येय यही है कि इस निबंध की बारीक बौद्धिक ज्ञान हम सभी प्राप्त कर सकें।

राम लौकिक एवं अलौकिक के अद्भुत समन्वय है

डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित इस "निबंध में विष्णु भगवान सनातन धर्म के देव के स्वरूप राम भगवान के दर्शन की आत्मिक अनुभूति का ज्ञान हमें मिलता है। "राम भगवान के स्वरूप में दया, करुणा, प्रेम, कर्त्तव्यपरायणता, कर्म, निष्ठा, मर्यादा पुरुषोत्तम होने के गुण बहुत ही शील सुन्दर के समन्वय का परिचायक है। राम के लौकिक रूप में धर्नुधारी राम की धर्म निष्ठा को बहुत ही सुन्दर स्वरूप में हमें ज्ञान मिलता है।"[76] अतः इस निबंध में डॉ. दयाकृष्ण विजय अपने भगवान राम के लौकिक स्वरूप में शील, सुन्दर प्रेमकरुणा के अवतार रूप संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान से भरपूर है इस निबंध में राम भगवान के विराट शौर्य की अमर गाथा है जिसमें अपने पिता माता भाई आदि सभी रिश्तों की मर्यादा निभाते हुए हमारे समाज को दिशा प्रदान करते हैं, अपने मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। लौकिक अलौकिक ज्ञान की अतुलनीय है यह प्रेम पूर्ण बहुत ही गौरवपूर्ण गाथा है जो हमें मिलते हैं।

सूर्य लोक के प्रथम यात्री द्वय : सम्पत्ति और जटायु

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध में सूर्य की महिमा की गाथा है जिसमें सौर मण्डल के ग्रहों की प्रथम अभिव्यक्ति सूर्य है जिसकी रोशनी तेज का ब्रह्मण पर अलौकिक महत्त्व को

दशार्या है इसमें सूर्य देव के निकटस्थ होने वाले दो जीव मात्र की गाथा है जो पौराणिक मान्यताओं के अनुसार हमें वेदों पुराणों में पढ़ने को मिलती है। सम्पत्ति और जटायु दोनों ही भाई जब वहाँ पहुँचते है तब सूर्य देव उन्हें अपनी बात कहते हैं वह डॉ. दयाकृष्ण ने अपने इस निबंध में लिखा है– "वाल्मीकिय रामायण के किष्किन्धा कांड के षष्टम सर्ग से ही प्रस्तुत करता हूँ। निशाकर मुनि सम्पत्ति से कहते हैं, सम्पत्ति मैं तुम्हें पहचान गया तुम उन दो भाईयों में से बड़े हो मनुष्य रूप धारण करके मेरा चरण स्पर्श किया करते थे। जटायु तुम्हारा छोटा भाई था।"[77]

"ज्येष्ठोऽपितस्त्वं सम्पाते जटायुरनुजस्त्व।
मानुषं रूप मा स्थाय गृहीतां चरणौं मम।।"[78]

अतः यहाँ डॉ. विजय ने गिद्ध को मनुष्य रूप में चित्रित कर हमें पौराणिक गाथाओं से जोड़कर पक्षी के अतुलनीय प्रेम को यहाँ मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। सूर्यदेव के प्रकाश को बड़ा ही तेजस्वी रूप प्रदान कर ज्वलंत प्रभाव को दर्शाया है।

मीरां की माधुर्य भक्ति का मूलाधार 'दाम्पत्यभाव'

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित इस निबंध में माधुर्यपूर्ण भक्ति का विवेचन किया गया है मीरां द्वारा कृष्ण की भक्ति प्रेम करुणा के रूप में मिलती है। श्रीकृष्ण भक्त में मीरा के हर प्रहर में कृष्ण रटन ही चलता है उसके प्रेम में कृष्ण और वेदना में भी कृष्ण ही है। मीरां ने समाज की लोक लाज तक छोड़कर अपने कृष्ण के लिए तो यहाँ तक कह दिया था–

"मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोय।
जाके सिर पर मोर मुकुट मेरो पति सोय।।"[79]

अतः परिवार समाज की मर्यादा को लाँघते हुए श्री कृष्ण के प्रति प्रेमभाव को पति रूप में स्वीकार करके लौकिक पति राजा रतन सेन का त्याग कर अलौकिक प्रेम के पति श्रीकृष्ण से प्रेम भाव व समर्पण है। श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति मीरां के प्रेम भाव में ही हमें पढ़ने को मिलती है। डॉ. विजय ने इस निबंध में "माधुर्य भक्ति के तीन रूपों का वर्णन किया है। 1. रूप वर्णन 2. विरह वर्णन 3. पूर्णतया आत्म समर्पण।

रूप वर्णन में श्री कृष्ण के रूप का वर्णन है जिसमें बाल रूप यौवन रूप का माधुर्यपूर्ण वर्णन है गोपियों का श्री कृष्ण के प्रति प्रेम, राधा का प्रेम यशोदा माँ नंद देव आदि सभी मित्रों व गोकुलवासियों के रूप वर्णन प्रेम को बड़ी ही सुन्दरता से व्याख्यित किया गया है। कृष्ण का पालने में झूलना, घुटरून चलना, माखन खाना, मुख की कोमलता, बालों की सुन्दरता आदि सभी का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से हमें पढ़ने को मिलता है। वही भाव भक्ति में राधा के प्रेम, गोपियों

के प्रेम आदि सभी की सोच में मिलता है। **विरह वर्णन** श्रीकृष्ण के विरह का वर्णन गोकुलवासियों में सब पढ़ने को मिला तब तिनके–तिनके आदि सभी में विरह की भावना को कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम का भाव चित्रित होता है। विरह की अनुभूति को हर कवि ने अपने शब्दों में लिखकर मीरां, कबीर, सूरदास, महाकवि देव आदि सभी ने कृष्ण के माधुर्यपूर्ण विरह वर्णन को अपने शब्दों में ऐसा जुड़ा है जैसे सुनार गहनों की कारीगरी कर बारीकी से हमारे गहनों का निर्माण कर हमारे शरीर की शोभा बढ़ाते है उसी प्रकार आत्मानुभूति को अपने कलम द्वारा शस्त्रों से कागज पर उकेरा है।

पूर्णतया आत्मसमर्पण – भक्त और भगवान के अन्तर्गत संबंध को पूर्णतया आत्म समर्पण के भाव से जोड़ा गया है इस माधुर्य भाव में इसमें हमें आत्मा का परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण भाव की अनुभूति मिलती है। मीरा अपने कृष्ण को प्रिय के रूप में सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहती है। कृष्ण से ही एक भाव से पति रूप में मानकर संसार के प्रति मोह, माया, त्याग कर आनन्दमय प्रेम की अनुभूति करना मीरा का भाव रहा है। मींरा कृष्ण को अपने प्रिय की भाँति प्रेम भाव से भक्ति करती थी और पूर्ण तन्मयता से समाज, परिवार का बहिष्कार कर कृष्ण प्रेम में रत हो गयी। भगवान श्री कृष्ण के लिए उनके मुख से निकले इन शब्दों को डॉ. विजय ने बड़ी सुन्दरता से इस निबंध में लिखा है–

मीरा का कृष्ण भक्ति का भाव दामपत्य भाव से परिपूर्ण है मीरा का विरह भाव श्री कृष्ण के प्रति प्रेम करुणा और तन्मयता से परिपूर्ण है श्री कृष्ण से मिलने को मीरा की आत्मा विरह भाव से अधीर हो जाती है और यह संदेश प्रेषण करती है।"[80]

"प्रीतम की पतियाँ लिख कउवा तू ले जाई,
प्रीतम जू सूं यो कहरे विरहणी धान न खाई।"[81]

"मीरा के प्रभु के इस स्वरूप पर विचार करते हुए हमें मीरा की भक्ति दार्शनिकता पर चिन्तन करने पर विवश होना पड़ता है।"[82] यहाँ डॉ. विजय मींरा की भक्ति भावना व कृष्ण के प्रति त्याग व समर्पण भाव को दर्शाते हुए सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करते हैं जो उनके वाग्वैद्ग्धता को दर्शाता है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित इस निबंध में 20वीं शती के समय "हिन्दी के काल में राजस्थान साहित्य ने भी अपना एक अलग ही स्थान बना लिया था जो बहुत ही अनूठा स्थान बनाकर साहित्यिक दशा और दिशा को नया आयाम दिया। राजस्थान साहित्य जगत में डिंगल और पिंगल भाषाओं में कवियों ने अपने काव्यों में विशेष स्थान प्रदान कर तत्कालीन राजाओं महाराजाओं की यौद्धा व्यक्तित्व की बहुत ही अनूठी मशाल देकर साहित्यिक रचनाएँ की है।

समाज में जाति विशेष के लोगों द्वारा राजाओं के आश्रय में रहकर अपने प्रकाण्ड काव्यों से राजाओं तथा वहाँ से राज्य की सामाजिक सांस्कृतिक रचनाएँ करना शुरु किया चारण, ढोली, मोतीसर, ढांढी आदि राज्य के राजाओं के 'आश्रित' कवि थे और वह राजाओं पर चरित काव्यों की रचना कर राज्य व राजा का प्रशंसापूर्ण चित्रित प्रस्तुत करते थे। साहित्यिक रचनाओं में उनके चित्रण को अतुलनीय स्थान भी प्राप्त हुआ है जो आज तक समाज में अपना अलग ही स्थान बनाए हुए है। इस क्रम में डॉ. विजय राजस्थानी साहित्य का विस्तार से परिचय देते हुए लिखते हैं– "चारण शैली में रचित काव्यों का साहित्य इतिहास में अनूठा स्थान माना जाता है। चारण काव्यों को अलग, संत काव्यों को अलग स्थान प्राप्त था; संत समाज ने भी तत्कालीन उद्धार हेतु समाज का निर्माण करना शुरु कर दिया धमाल, पवाड़ा, फाग आदि मंदिरों में संतों द्वारा गाये जाते और आमजन उन सभी ज्ञान को आत्मसात करता था। रामचरण दास, दयालदास, दादूदयाल आदि सभी ने मूर्तिपूजा कर्मकाण्ड व बाह्यआडम्बर का विरोध किया आत्मा का परमात्मा से मिलन का ज्ञान प्रदान किया और समाज में सर्व जाति का आदर करते हुए समानता का भाव भी जाग्रत किया।"[83]

जैन समुदाय के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं– "जैन समुदाय भी अपना स्थान विशेष बनाये हुए हैं इसमें जैन शैली प्राकृत भाषा में रचित काव्यों ने भी जैन समुदाय की अलग पहचान बनाई इसमें मानव जीवन एक नियमों में सात्विक जीवन जीने लगा था। आस्तेय आपरिग्रह के जीवन से बंधा यह समुदाय मंदिरों में चरित काव्यों के निर्माण में भी बना रहा।"[84]

दोहा, चौपाई शैली में भी तत्कालीन कवियों ने अपने काव्यों से समाज का निर्माण करके अपभ्रंश शैली में काव्यों की रचना की लौकिक शैली में लोक काव्यों का निर्माण किया गया। भाषाओं का नया ज्ञान जीवन शैली के साथ आमजन की भाषाओं में भी आने लगा और यह भाषाएँ डिंगल, पिंगल भाषाओं में ब्रजभाषा राजस्थानी भाषा, में अपना स्थान विशेष बनाये रखा। सूर्यमल्ल मिश्रण ने परम्परागत काव्य शैली को वीर रस से भरपूर लिखा हुआ है। राजस्थान वीर वीरांगनाओं की भूमि के रूप में अपना विशेष स्थान रखती है। सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वंश भास्कर', 'वीर सतसई' और 'बलवंत विलास', 'छन्द मयूख' लिखा यह अपना अनूठा स्थान बनाये रखता है। ब्रज में तथा राजस्थानी भाषा में अपने काव्यों की रचना कर काव्यों को नया आयाम प्रदान किया था।

इस निबंध में डॉ. विजय ने सूर्यमल्ल मिश्रण के काव्यों का साहित्यिक महत्त्व दर्शाते हुए विशेष ग्रंथों का उल्लेख किया है। ब्रजभाषा और राजस्थानी के काव्य प्रकाश, रसोत्पत्ति, स्वरूप, यश प्रकाश, शम्भूयश प्रकाश, सज्जन यश प्रकाश, फतह यश प्रकाश, सज्जन चित्र चन्द्रिका,

संचारी व अन्योक्ति प्रकाश, सामंत यश प्रकाश और रागिनियों की पुस्तक के हर प्रकाश इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य है जो सं. 1936 में लिखा गया है।

संत शैली के उत्कृष्ट उदाहरण भी डॉ. विजय ने बड़ी ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किये है। उर्दू की गजलों एवं रुबाइयों का भी साहित्य में महत्त्व बड़ा ही रौचक व आकर्षक रहा जिसमें गद्य के साथ पद्य का भी महत्त्व बनाये रखा।

हाड़ाती अंचल में हिन्दी की प्रारम्भिक साहित्य साधना

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध में हाड़ौती में हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप व तत्कालीन साहित्यकारों द्वारा सृजित साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस निबन्ध में दूसरे स्तर तक आगे बढ़ते रहने की एक अनूठी प्रथा के रूप में आज हम सबके लिए महत्त्वपूर्ण रूप से साहित्य का ज्ञान प्रदान कर रही है। हिन्दी का महत्त्व तत्कालीन समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्यों, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आगमन तथा 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन में खड़ी बोली को हिन्दी की शुद्ध परिमार्जित भाषा के रूप में हिन्दी को निखार कर प्रस्तुत किया। तत्कालीन राजाओं ने खड़ी बोली तथा संस्कृत, ब्रज आदि सभी भाषाओं में सृजन किया। 1864 से 1867 तक महाराजा मदनसिंह झालावाड़ के राज पर कवि श्री लोचन ने 'लोचन' ग्रंथ लक्षण भाषा में लिखकर कविताओं की रचना की।

"रवि पीठ दीन्ही रमनि रतन महल के बीच।
मुख पावत प्रीतम सुलखि, मुख प्रतिबिम्ब मरीच।।
नूर तूने नाहक जनम गवांयो।
काम क्रोध अरु लोभ मोह में फंसि फंसि पाप कमायो।।"[85]

द्विवेदी जी के युग में हिन्दी का परिष्कृत रूप सामने आया। 1893 से 1918 तक द्विवेदी युग ने हिन्दी की शैली में निखार लाकर हिन्दी साहित्य जगत में बड़ी उपलब्धि हांसिल कर लेखकों को 1898 में से 1929 तक का समय और शुद्ध भाषा रचना होने लगी। रविन्द्रनाथ टेगोर रचित गीतांजलि का हिन्दी अनुवाद श्री गिरधर शर्मा 'नवरत्न' ने किया। नवरत्न जी ने कोटा, बारां, झालावाड़, बूंदी आदि सभी जगह को अनूठा ज्ञान प्रदान किया। अनुवाद द्वारा साहित्य सृजन भी इस युग में किया गया।

डॉ. विजय ने इस निबंध में गीतांजली के अनुवाद का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है–

"पूजा पाठ भजन आराधना साधन सारे दूर हटा।
द्वार बंद कर देवालय के कोने में क्या है बैठा।

अंधकार में छिप मन ही मन किसे पूजता है चुपचाप।
आंख खोल घर देख यहाँ पर कहाँ देव बैठा है आप।
वह तो जा पहुँचा उस थल पर भूमि सुधारे जहाँ किसान
मार्ग ठीक करने को त्यों ही पत्थर फोड़े श्रमी महान।
गर्मी सर्दी में उनके संग मिट्टी में करता है काम
तभी वसन छोड़ शुचि सारे आजा तज कर निज आराम।।[86]

नवरत्न जी ने स्फुट कविताएँ भी बड़ी ज्ञान प्रदायिनी लिखी हैं। "हिन्दी साहित्य की शुद्ध भाषा का निर्माण कर पं. गिरधर शर्मा नवरत्न ने झालरापाटन, झालावाड़ स्थानों पर लेखनी चला, श्रीराम निवास 'सौरभ' अपनी लेखनी में लिखा है। यह खड़ी भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण है। 1925 में कोटा में हाड़ौती की सबसे बड़ी संस्थान का निर्माण किया गया। श्री हनुमान प्रसाद जी ने राजस्थान की सुप्रसिद्ध संस्थान की रचना की है। राजस्थान का सबसे बड़ा पुस्तकालय भीमसिंह सार्वजनिक पुस्तकालय का निर्माण कोटा में उम्मेद सिंह जी द्वारा किया गया। राजस्थान में साहित्य की रचना विपुल रूप में हुई उपन्यास कथा साहित्य आदि सभी 1917 से 1925 के बीच रचनाएँ हुई। **'धूर्त रसिकलाल', 'सुशीला विधवा', 'बिगड़े सुधारे'** आदि उपन्यास राजस्थान के हाड़ौती अंचल की रचनाएँ बड़ी उपलब्धि बनीं। चरित्र चित्रण का निर्माण भी इस समय किया गया 'उम्मेद सिंह चरित्र' 'आप बीती', 'जुझार तेजा', शराबी चरित्र आदि चरित्र हमें पढ़ने को मिले। लज्जाराम मेहता द्वारा रचित रचनाएँ उपरोक्त लिखी हुई है। राजस्थान के महान लेखकों जिन्होंने हाड़ौती की शान पूरे साहित्य जगत में स्थापित की उनमें पं. गिरधर शर्मा, पं. राम निवास 'सौरभ' तथा श्री लज्जाराम मेहता प्रमुख लेखक है। हाड़ौती के कोटा, बूंदी, झालावाड़ में उर्दू लिपि में कार्य होता था पर बूंदी में दीवान गंगा प्रसाद जी ने कोटा में, सर रघुनाथदासजी चौबे तथा झालावाड़ में श्री परमानन्द जी चौबे ने उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि को प्रशासन के कार्य में लिया गया।"[87]

अतः डॉ. विजय ने हाड़ौती का हिन्दी जगत की गाथा का बखान कर अपने वाग्वैदग्ध्य यह उनकी चहुँमुखी प्रतिभा का द्यौतक है।

अचलदास खींची री वचनिका : सृजन की पृष्ठभूमि

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित इस निबंध में झालावाड़ के गागरोन किले की मार्मिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत किए हैं। "खींची क्षत्रियों का वीर रस से परिपूर्ण जीवनशैली का बखान इस निबंध में हमें पढ़ने को मिला। क्षत्रिय जाति का गागरोनगढ़ पर अपने वैभव से आन–बान की रक्षा करने वाले अचलदास खींची का सुशासन की अतुलनीय अपराजित क्षत्रिय के मान में हमने

पढ़ी है। होशंगाशाह गौरी नाम के नवाब काबिज ने बड़ी ही घटिया हरकत कर क्षत्रिय धर्म को चुनौति देने का कार्य किया। इस अपराजयगढ़ की भव्यता व सौन्दर्य बड़ा ही अनूठा है।"[88] डॉ. विजय ने इस निबंध में खींची क्षत्रियों के शौर्य तथा अपने धर्म के प्रति अडिग रहने की प्रतिबद्धता को दर्शाया है। "गागरोन राज्य में होशंगशाह ने आक्रमण करना चाहा पर उसके मंसूबे पूरे नहीं हो पाये और वह अपनी हार बरदार्शत नहीं कर पाया तो गढ़ के जलकुण्ड में गायों को मारकर उनका रक्त उसमें मिला दिया और क्षत्रिय अपने धर्म के प्रति अडिग वह किले को न भेद सके इसलिए क्षत्रियों ने प्राण त्यागना धर्म के प्रति न्यायोश्रित माना पर कामर की तरह मरना कभी नहीं स्वीकारा।"[89] डॉ. विजय ने इस निबंध में अनेक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किये है– डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने इस युद्ध का समय अपनी पुस्तक 'डिंगल में वीर रस तथा राजस्थानी भाषा और साहित्य' के अनुसार क्रमशः संवत् 1470 वि. तथा 1485 वि. मानते हैं। 1485 विक्रमी का समर्थन खिलचीपुर राज्य की ख्यात से भी होता है। उस समय गागरोनगढ़ में राजकवि के रूप में शिवदास गाडवा (चारण) सुशोभित थे। वे डिंगल के कवि थे कवि ने खींची राजा को सेना कम होने की चिंता न करते हुए गौरी से खुले में युद्ध करने का सुझाव देते हुए कहा यदि आप युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये तो मैं अपनी काव्यकृति से आपके इस महामरण को अमर कर दूंगा। कुछ क्षत्रिय सरदारों ने सुझाव दिया युद्ध से पूर्व मारवाड़ और मेवाड़ को भी सेना के साथ आने की सूचना भेज देना चाहिए। अतः यह सेना मिलने के लिए गागरोन की ओर चल पड़ी पर रास्ते में ही खानपुर तहसील के ग्रामी बेघर में होशंग ने अपने चाचा द्वारा उन पर आक्रमण कराकर उन्हें राणा मोकल को वहीं मार गिराया था 1490 विक्रमी में मारे जाने का वृतांत श्रीजगदीश गहलोत के 'राजपूताने के इतिहास' तथा 'नैणसी री ख्यात' में मिलता है। गागरोन का अमर जौहर हाड़ौती का ऐतिहासिक यशस्वी प्रसंग है जब जलापूर्ति नहीं हो पाई और खींची अचलदास गढ़ की उपलब्ध सेना को लेकर ही युद्ध स्थल में कूद पड़े परिणाम पूर्व में पता थे, अतः दोनों रानियों ने चंदन की चिताएँ जलाकर क्षत्रिय महिलाओं के साथ केसरिया बाना पहन जौहर करने का निश्चय किया। उनपर कूद स्वर्गारोहण कर गई। अतः गागरोनगढ़ को अमर गाथा को बखान क्षत्रियों का आत्मसम्मान तथा शौर्य की गाथा का ज्ञान हमें इस निबंध में मिलता है।

2.4.8 राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य

डॉ. विजय रचित इस निबंध के साहित्य की विपुल उपलब्धियों के साथ ही इनके एकांकी लेखन का ज्ञान भी हमें प्राप्त हुआ है। नाटक का एक रूप एकांकी है जो चरित्र चित्रण के साथ पात्रों की विशेषता से हमें ज्ञान प्रदान करती है। राजस्थान राज्य का दक्षिणी भाग हाड़ौती अंचल

का एक अनूठा स्थान है जहाँ सभ्यता, संस्कृति, रीति–रिवाज, भाषा, खान–पान आदि का अपना ही महत्त्व है। लोकरीति नीति का ज्ञान भी यहाँ मिलता है। लोक नाट्यों के ख्याल एवं लीला नाम से दो विकसित रूप में मिलते हैं। इन दोनों की गणना मंचीय नाटकों में होती है। ख्याल–हाड़ौती के नृत्य नाटिका एवं गीति का सम्मिलित स्वरूप है। संगीत का महत्त्व, नृत्य एवं नाट्य तीनों का ही संगम इसमें मिलता है। डॉ. विजय ने इस निबंध में ख्याल की व्याख्या की है। "यह त्रिकोण प्रेम पर आधारित नाट्य है जिसमें दो नायिका और एक नायक है अतः दोनों नायिकाओं द्वारा प्रेम नायक के प्रति आकर्षण भाव है जिसमें एक नायक को प्राप्त करने के लिए नायिका खलनायिका का रूप धारण कर लेती है तथा नायक अपने ज्ञान से उस खलनायिका से बच निकलता है ऐसे ख्यालों में ढोला मरवण हीर रांझा, फूलांदे खेवरा और सेवरा का उल्लेख डॉ. विजय ने ज्ञान प्रद रूप में इस निबंध में किया है। हास्य व्यंग्य प्रधान ख्यालों में कठपुतलियों के खेल नोटंकी के नृत्य चाचा बोहरा जैसे प्रहसन तथा काबू जी की पद्य आदि आते है।"[90] हाड़ौती अंचल में लीला गान भी अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है, जो अत्यन्त ज्ञानवर्धक व मनोरंजक है।

लीला – "लीला आध्यात्म से जोड़कर लिखी गई रचनाएँ हैं जिसमें श्रीराम कृष्ण, गोरधन लीला, नरसिंह लीला बहुत प्रसिद्ध लीलाएँ रही है। इसमें भक्त और भगवान के साक्षात मिलन का भाव जाग्रत होता है भक्त के रूप में दर्शक श्रद्धाभाव से चरित्रों का चित्रण आन्दोलित करता है। इसने कुछ प्रसिद्ध लेखकों के नाम अम्बरीष, गोपीचन्द भरतरी, सत्य हरिश्चन्द, भक्त प्रहलाद, मोरध्वज लीला आदि।"[91] हाड़ौती अंचल में स्वांग भी महत्त्वपूर्ण मंचीय एकांकी है। जिसमें विविध स्वांग भरकर विविध चरित्रों की प्रस्तुति की जाती है।

स्वांग – "हाड़ौती अंचल के लोकनाट्यों में भाडों नटों के प्रदर्शन न्हाण के तमाशों के साथ–साथ महिलाओं द्वारा विवाहाभिनय 'टूट्या' भी स्वांग की श्रेणी में आते हैं। सांगोद का न्हाण इन्हीं तमाशों के कारण प्रसिद्ध है। जो होली के समय मंचित किया जाता है। अनेक प्रकार की सवारियाँ इस न्हाण के अवसर पर निकाली जाती है। यह अतिरिक्त व अविकसित परम्परा है जो पूर्णतः मौखिक कंठस्थ होती है तथा एक पीढ़ी से दूसरी, पीढ़ी में इसका गमन करना अनुवांशिकता का परिचायक है। यह प्रथा परम्परागत चलती आ रही है।"[92]

संस्कृत नाटक – "डॉ. विजय ने यह निबंध संस्कृत नाटकों का परिचय देते हुए श्री बालकृष्ण दीक्षित का 'प्रद्युम्नविजय' नाटक संस्कृत का बड़ा ही रोचक नाटक है श्रीकृष्ण डालवाणी का 'सान्द्र कुतुहल' मुरारी कवि की क्लिष्ट नाटक 'अनर्धराघव' की संस्कृत टीका भी बहुत प्रसिद्ध रही है।"[93]

हिन्दी नाटक – "हाड़ौती अंचल के हिन्दी नाटक की प्रारम्भिक अवस्था गुजरात भाषा के रूप में श्री उद्धव जी हरि जी राठौड़ के पीतल ऑफिस से माना जाता है पूर्व में नाटकों में उर्दू भाषा का ही वर्चस्व था भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग में उर्दू को लेखन में स्थान प्राप्त था। हाड़ौती के तत्कालीन लेखक हनुमान प्रसाद जी ने मौलिक एकांकी द्वारा रंगमंच पर एक अनूठी पहचान बन सकी उसी समय समाचार पत्रों में भी एकांकियों ने स्थान बना लिया। जयहिंद, लोकसेवक, दीनबंधु, दिव्य संदेश, नान्दीमुख ब्राह्मण आदि एकांकी छपकर आमजन जीवन में रोचकता का स्थान ले चुके थे कोटा में भारतेन्दु समिति तथा झालावाड़ में श्री भवानी नाट्यशाला की स्थापना हुई एक साहित्यकार पोषित थी दूसरी राज्याश्रित। श्री भारतेन्दु समिति के मंच पर 'ईश्वरभक्ति', 'मतवाली मीरा', 'वीर अभिमन्यु', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'कुणाल' जैसे लोक नाट्यों का मंचन हुआ। भारतीयता से ओत–प्रोत राष्ट्रीय ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक, यथार्थवादी, हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकी नाट्य शैलियों में प्रमुख थी। भारतीय सभ्यता और संस्कृति से परिपूर्ण यह एकांकी डॉ. सुधीन्द्र द्वारा गांधीवादी विचारधारा को मंच पर लाने की कोशिश थी, 'ज्वाला और ज्योति' एक विचार प्रधान एकांकी है। 'राम रहमान' देशप्रेम, धार्मिक सहिष्णुता से परिपूर्ण तथा 'खून की होली' नाटक पुलिस प्रशासन का अंग्रेजी हुकुमत में आमजन का यातनाओं देने से सम्बन्धित है। 'राखी' एकांकी में पराधिनता की बेडियों को त्यागने का संदेश है। 'नया वर्ष नया संदेश' में नारियों के आत्म सम्मान स्वतन्त्रता आदि में बसकर सहयोग देने से सम्बन्धित संदेश देकर डॉ. विजय ने इस निबंध ने हाड़ौती के महान लेखक की लेखनी का परिचय दिया है। यह गीत भी प्रेरणा स्पद है।"[94]

"नयी आज नारी लिखेगी कहानी
रहेगा भरा आँख में अब न पानी।।"[95]

अतः नारी विशेष के उत्थान हेतु सुधीन्द्र ने लेखन कार्य किया। मत्स्य गंधा, हरि, सेवा आदि सभी एकांकी हैं। श्री राजेन्द्र सक्सेना ने दो एकांकी लिखी, 'दिमाग की गर्मी', 'नवयुग का प्रारम्भ' देवी–चरण के एकांकियों का परिवेश, 'खट्टी डकारें', 'रिश्वत', 'पंचायती न्याय', 'छुआछूत', 'अनपढ़ों की दुर्दशा' आदि 'सर्वोदय की ओर' तथा 'जय चम्बल' आदि नाटक लिखे। किसान के आँसू मिलावटी, कालाबाजार डॉ. विजय ने स्वयं रचित एकांकियों का ऋत्ध्वज मदालसा, सगरोत्पलवती त्याग वीर देवव्रत तथा महाकवि कालिदास प्रमुख है।

चन्द्रशेखर भट्ट रचित ऐतिहासिक एकांकी ऐसे अनगिनत नाम हैं जो हाड़ौती में तत्कालीन लेखन में अपना लोहा मनवा चुके थे। डॉ. रामचरण महेन्द्र, डॉ. चन्द्रशेखर, डॉ. भट्ट रचित 'धागे की करामात' में कर्मवती की राखी का प्रसंग अमिट निशानी अमर प्रेम चुनौती 'मनोत्सर्ग' तलवार

का धनी, पन्नाधाय आदि में राजस्थान की गौरवगाथा का इतिहास है। डॉ. भट्ट की 'धरती जागी', 'प्रथम पूजा' एकांकी सांस्कृतिक मूल्यों का इतिहास की अभिव्यक्ति है। श्री ओम प्रकाश गुप्ता इंजीनियर थे और लेखन की कला उनमें स्वतः विकसित हुई 80 से अधिक एकांकी में ग्रामीण जनजीवन औद्योगिक जीवन सहकारिता राष्ट्रप्रेम हास्य, व्यंग्य के सम्मिश्रण से लेखन कार्य किया। कुएँ पर आज की बात, 'बदलता वक्त' नया टैक्स, पढ़ी लिखी बहू, मार्गदर्शन आदि एकांकियों ने आमजन की मानोरंजन और ज्ञान दोनों को ही बनाए रखा।"[96]

श्री गुप्ता जी की रचनाएँ हाड़ौती में धूम मचा रही थीं तभी श्री प्रेमचन्द विजय वर्गीय ने 'मोम की नाक' में एक सफल रेडियों रूपक की रचना की। दहेज प्रथा पर आधारित यह एकांकी है। राम भाऊ का चरित्र उभर कर आता है। मीरां व सूरदास के पदों की रचना रेडियों रूपक के रूप में कर भक्ति परम्परा को रेडियों के प्रति मनोरंजनात्मक कदम साबित हुआ। श्री नन्द चतुर्वेदी, रमेश कमल, रघुराजसिंह हाडा, अब्दुल गफूर सेलानी आदि के नाम है। परम्परागत नाट्य शिल्प डॉ. रामचरण, महेन्द्र का 'तलवार की आँच' राजेन्द्र सक्सेना का 'संकल्प' तथा कु. शम्भूसिंह हाड़ा का 'बात की बात' में विशेष उल्लेखनीय है। 'अन्नदाता' डॉ. महेन्द्र का शौर्य पर आधारित है।"[97]

डॉ. दयाकृष्ण विजय, "डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली, डॉ. अचल का एकांकी बड़ा ही डॉ. अचल 'विष कन्या' डॉ. विजय 'राग से विराग तक' आदि रेडियो स्टेशन पर प्रसिद्धि की चरम सीमा पर थे। डॉ. विजय रचित इस निबंध संग्रह में सामाजिक आर्थिक पौराणिक सांस्कृतिक सम्बन्धों के ताने बानों से रचित निबंधों का संग्रह है जिसमें मुझे हर क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त हुआ इससे समाज की रीति रिवाज परम्परा संस्कृति आदि सभी का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ।"[98]

2.4.9 वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका (2007)

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध संग्रह में समाज का विकासशील होना तथा रीति रिवाजों परम्पराओं में आधुनिकीकरण का समावेश होना समाज की भक्ति परम्परा से संस्कृति सभ्यता का विकास होना भारतीय साहित्य और धरोहर के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हुआ है। 23 निबंधों के इस संग्रह में भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार पर निबंध, भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विभिन्न दृष्टिकोण होने पर भी एकता और अखण्डता का ज्ञान मिलता है। इन निबन्ध में नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, पौराणिक विभिन्नता वाले भारत देश का ज्ञान है। इसमें विभिन्न शैली में विभिन्न प्रान्तों में बसे हिन्दुत्व का ज्ञान है धार्मिक सामाजिक, सरोकारों में भाषा, संस्कृति धर्म का मिलन है। हमारे संतों का ज्ञान तुलसी, सूर, मीरां, की भक्ति

संस्कृति का ज्ञान मिलता है साथ ही प्रसाद, पंत, निराला के प्रकृति चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है। समाज निर्माण में इन संतों लेखकों के लेखन से आई क्रांति का आध्यात्मिक, साहित्यिक ज्ञान हमें मिलता है। सामाजिक जीवन में धार्मिक मार्ग अपनाते हुए जीवन में अनुशासन देने की प्रेरणा से इस निबंध का लेखन डॉ. विजय ने किया इसमें रामायण, महाभारत जैसे महान ग्रंथ का हमारे समाज के व्यक्तित्व के चरित्र पर पड़ने के प्रभाव को समझाया है। परिवार समाज राष्ट्र और विश्व निर्माण में संस्कृति सभ्यता का प्रभाव हमें पढ़ने को मिला। वेदों, उपनिषदों आख्यानों, भागवत द्वारा शब्दबद्ध छन्दबद्ध ज्ञान की प्रेरणा बनी और समाज निर्माण में होने वाले विकास का ज्ञान हमें इसमें मिला। दूसरे निबंध में मीरां बाई के प्रसिद्ध सगुण निर्गुण ज्ञान का समावेश है। कृष्ण भक्ति में लीन माधुर्य भाव से जीने वाली मीरा का भक्त रूप भी अनूठा ही साबित हुआ परिवार समाज की लोकलाज त्याग कर पूर्वजन्म को आधार मानकर श्रीकृष्ण से मिलन पति रूप में भक्ति आदि गुणों का भाव है।

"राणा जी म्हारी प्रिती पुरबली मैं काई करुं।
पूरबजनम की प्रीत हमारी अब नहीं जात निवारी।"[99]

श्री कृष्ण भक्ति का पति रूप में भक्ति गिरधर नागर के प्रेम का बखान मीरा के हर पदावली में पढ़ने को मिलता है। विष्णु भगवान् के अवतार श्री कृष्ण का प्रेम हमें यहाँ दिखाई देता है कृष्ण सौन्दर्य के प्रति आकर्षण भाव मीरा के लिए अलग ही था।

"सुन्दर बदन जोवते सचमे प्रीत भई छै म्हारी।
या मोहन के मैं रूप लुभानी
भाई म्हाने सुपणे में परण गया जगदीश
सुपणें में तोरण बांध्यो सुपणे में आई जाण।
मीरां को गिरधर मिल्या जी पूर्व जन्म के भाग।"[100]

मीरां की वेदानुभूति का आभास व सूक्ष्म विवेचन हमें डॉ. विजय रचित निबंध में दिखाई देता है। श्रीकृष्ण के सगुण रूप में पति का आभास तथा निर्गुण रूप में आत्मा का परमात्मा से मिलन भाव इस निबंध में व्यक्त हुआ है।

स्वाधीन भारत में भारतीय साहित्य चिन्तन परम्परा से राज्य का रिश्ता डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित चौथे निबंध संग्रह में यह निबंध तीसरे स्थान पर रचित है इसमें भारतीय परम्परा सभ्यता संस्कार का मेल है इसमें एकता अखण्डता का भाव है अलग–अलग प्रान्तों की विभिन्न वेशभूषा परम्परा सभ्यता खान–पान आदि सभी का ताना–बाना है मनुष्य जीवन चार आश्रयों में बँटा है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की भावना से अपना जीवन निर्वाह करता है। मानवता को

भारत की एकता में सर्वजनप्रिय स्वरूप में तथा वसुधैव कुटुम्बकम क भाव हमें दिखाई देता है। कहा गया है–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामया
सर्वे पश्यन्तु भद्राणि मा कश्चिद दुःख भाग भवेत।"[101]

पृथ्वी पर मानव जीवन का विकास एक लम्बी यात्रा का परिणाम है जहाँ सदियों से विकास होकर मानव का निर्माण हुआ और वह है भारत जहाँ वेदों उपनिषदों का सार है मानव सभ्यता का विकास विभिन्न सभ्यता से होकर गुजरा है जहाँ आर्य, द्रविडों के साथ सिकन्दर, मुगलों के आक्रमणों की गाथा है। हमारे विकास में पुराणों युगों का भी पूर्ण सहयोग समाज का विकास एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक का एक सफल रूप है मानव जीवन में पीढ़ी दर पीढ़ी विकास होना स्वाभाविक है, इसमें साहित्य, विज्ञान, सामाजिक विकास आदि सभी का महत्त्व है। साहित्य में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग, शुक्लकाल शुक्लोत्तर काल आदि में ज्ञान का विकास हमारी परम्परा हिन्दी संस्कृति के विकास का रूप है। समाज सुधारकों ने समाज सुधार प्रवृत्ति से समाज की कुरीतियों पर प्रहार कर स्वाधीन भारत का निर्माण किया। ब्रिटिश शासन से मुक्ति के लिए 1857 की अमर क्रांति की गाथा भी इसी स्वतन्त्र भारत की सीढ़ी थी। राजाराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि सभी ने सुधारवादी आन्दोलन चलाया और भारत में आकर भारत निर्माण में अपना सहयोग देने लगे। डॉ. विजय ने इस निबंध में विभिन्न लेखकों के उल्लेख देकर अपने भारत के विकास की यात्रा को समझाया है। जिसमें भारत के साथ अमेरिका यूरोप के विकास की यात्रा व सम्बन्धों को समझाया है जिसमें भारत के साथ अमेरिका यूरोप के विकास में भी वहाँ के लेखक, मार्क्स, हीगेल के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को एक नया आयाम दिया था। दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा अभिव्यंजनावाद अस्तित्ववाद, प्रयोगवाद जैसे सिद्धान्तों द्वारा अभिव्यंजनावाद, अस्तित्ववाद, प्रयोगवाद जैसे सिद्धान्तों से समाज निर्माण का नया रूप उभर कर आ सका। भारतीय परम्परा का अद्भुत ज्ञान हमें इस निबंध में प्राप्त हुआ है।

वेद पूर्व देव युग – डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इस निबंध में हमारे भारतीय सभ्यता और संस्कृति में वेदों का ज्ञान व उनकी महत्ता को समझाया है। इसमें ऋग्वेद का ज्ञान जिसमें 33 देवताओं पृथ्वी स्वानीय11 अंतरिक्ष स्थानीय तथा ध्रुवस्थानीय 11 देवता हैं। ऋग्वेद में 3339 देवताओं का भी दो मंत्रों (371.9 व 1292.6) में उल्लेख किया है। देवता एक परमात्मा के विविध भाग है। समुदाय रूप से सब एक है– "एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गाविभवन्ति (निरुक्त दैवत काण्ड 7.5) अध्याय हिन्दु पुराणों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश का वृत्तांत भी अनन्त ही है हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता है। शब्दों में ईश्वरीय रूप की गणना जो डॉ. विजय ने इस निबंध में की है वह अतुल्य है। वेदों,

उपनिषदों में देवों की गाथा ऋग्वेद में सर्वाधिक मंत्र 3500 अकेले इन्द्र पर है। सारे ही मंत्रों में देवतत्व शक्ति मिहित है। श्री व्ही.जीः अंगल, के अनुसार ब्रह्मा ने अपनी सृष्टि ब्रह्मदेश (म्यांमार) के ब्राह्मणस्पति शिखर पर जिसे बर्मी भाषा में 'बर्व' कहते हैं रची थी। आदि पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने आषाढ़ मास के प्रथम दिन कृत युग का आरम्भ किया तथा पहले प्रजापति बने कहा भी है–

"युगादि बह्माणा तेन यदित्थम् स कृतीयुग
ततः कृत युग नाम्ना तम पुराण विदो विदुः।
आषाढ़ मास बहुल प्रतिपदि दिवसे कृते
कृत्वा कृत युगारम्भं प्राजापत्यमुपेथिवान।।"[102]

इसी प्रकार मंत्रों की शक्तियों का शाश्वत उदाहरण भी उनकी तन्त्र शक्तियों में निहित है। 12 ज्योर्तिलिंगों में शिव की महिमा का ज्ञान (विश्वनाथ काशी) बैजनाथ (बिहार) पशुपतिनाथ (नेपाल) केदारनाथ (उत्तराखण्ड) नागेश्वरनाथ (जम्मू) सोमनाथ (गुजरात) महाकालेश्वर (मध्यप्रदेश) रामेश्वर एवं मल्लिकार्जुन (तमिलनाडु) घूष्णेश्वर (राजस्थान) भुवनेश्वर (उड़ीसा) तथा मक्केश्वर आदि स्थानों पर शिव शक्ति की अपरम्पार ज्ञान भक्ति का स्थान भारत ही है। ऋग्वेद में गायत्री मंत्रों का भी श्रेष्ठ उदाहरण "गायतत्त्रायते हि गायत्री" आत्मज्ञान पर बल देते हुए–

"कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पादान जनैर्धुतः
सत्यं दया तपो दान मिति पादा विभोर्तृप।
संतुष्टः करुणा मेत्राः शान्ताः दात्तास्तितिक्षवः
आत्मा रामाः समदृशः प्रायशः श्रमणाजनाः।"[103]

पुराणों में ज्ञान का भण्डार बह्म पुराण शिव पुराण तथ गणेश पुराण आदि सभी में गाया जा सकता है।

अतः ज्ञान के विपुल भण्डार के रूप में इस निबंध में हमें डॉ. विजय ने इस निबंध में लिखा है।

'संस्कृति और सभ्यता का शास्त्रीय अंतर' डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध में संस्कृति और सभ्यता का शास्त्रों में अंतर को बहुत ही सरल तरीके से इस निबंध में समझाया है। 'शास' धातु में ष्टज् प्रत्यय लगकर शास्त्र शब्द बना है। 'शास्ति इति शकात्रः' जिसके द्वारा शासित हो। जो शासन समर्थ है वह शास्त्र है। संस्कृति शब्द को भी 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में सुट आगम सहित 'क्तिन' प्रत्यय के योग से हुई है।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र जैसे 'संस्कृति' शब्द प्राचीन भारतीय साहित्य में नहीं मिलता वह बाद ये कल्चर शब्द की अर्थ संगति से गढ़ा गया है, सहमत नहीं हुआ जा सकता। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार 'संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को समृद्ध एवं परिष्कृत बनाते हैं। भारतीय संस्कृति को अनूठी देन है अवतारवाद। जब पृथ्वी पर दुष्टों के अत्याचार बढ़ जाते हैं तथा गौ ब्राह्मण, साधु, संत त्राहि–त्राहि कर उठे तब परमात्मा स्वयं शरीर धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। ऋग्वेद में विराट पुरुष में ही इन चारों वर्णों की स्थिति बताई।

"बाह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहु राजन्यकृतः
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायतः।।"[104]

संस्कृति चेतना मनुष्य के विकास का ही प्रारुप है। डॉ. विजय ने संस्कृति एवं सभ्यता की विभिन्नताओं को तालिकाबद्ध आलेखित किया है।

संस्कृति – **"जीवन का आंतरिक सौन्दर्य है।**
जीवन जीने की दृष्टि है।
बौद्धिक विकास की प्रतीक है।[105]

मन बुद्धि एवं स्वभावगत प्रवृत्तियों का आंतरिक विकास है। बहुरूपा है। दिव्यता की वाहक समन्वय मानवकल्याण, गतिशील विश्वात्यक भाव तथा सतचित आनन्द से जुडाव अहम से वयम् तथा वयम् से ओत तत्सत की ओर ले जाने वाली है।

सभ्यता – **"शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ण है।**
समरा सार्वदेशिक सार्वकालिक चिंतन है।
राष्ट्रीय सौन्दर्य है।
आत्मभाव अर्थात् मानवीय भाव है
मूल्यपरक है।
"जीवन का बाह्य सौन्दर्य है।
सामाजिक विधि निषेध है।
भौतिक विकास का दिग्दर्शन है।
बाह्य शिष्टाचार से सम्बन्धित बाह्य प्रदर्शन है।
नामरूप से जुड़ाव है।
गतिशील है।
व्यवहारिक मूल्यों की जनक है।

पारिवेशिक सौन्दर्य है।

व्यक्तिवादिता है।

भावपरक है।"[106]

अतः इस निबंध में संस्कृति और सभ्यता का शास्त्रीय अंतर हमें विस्तार से बताया गया है।

शिक्षा नीति और साहित्य – साहित्य समाज में शिक्षा के बाद ही स्थान रखते ही मानव मूल्यों में निहित ज्ञान शिक्षा है और उसका साहित्य की संवेदना तथा चितस्थ अनुभूतियों का सम्मिश्रण है। 'सर्वजन हिताय' से ही साहित्य की अनुभूतियों का उल्लेख नैतिक मूल्यों का शाश्वत ज्ञान भी हमें यहीं मिलता है। भाषा लिपि परम्पराओं मान्यताओं धारणाओं तक ही सीमित नहीं भाषा साहित्य काव्य साहित्य, शास्त्र सामग्री वाङ्मयादि अलग–अलग शब्दों अलग–अलग अर्थों के पुंज से निर्मित ज्ञान के भण्डार है। शिक्षा किसी विद्यालय या किसी कक्षा तक ही सीमित नहीं वरन जन्म से आखरी सांस तक ज्ञान का अर्जन करना ही शिक्षा है। अतः ज्ञान श्रम से निर्मित है। मनुष्य के ज्ञान को ओर अधिक सिंचित करने की प्रवृत्ति ही ज्ञान है।

हमारी कलाओं में संस्कार परिरक्षण निबन्ध में "डॉ. विजय ने परिभाषित किया है। 'सा कला या विमुक्त ये प्रसिद्ध उक्ति में मानव जीवन पुरुषार्थ की चरम उपलब्धि बताई है। कला शब्द निष्पत्ति कल+अच+टाप धातु एवं प्रत्यय के संयोग से हुई है। क शब्द सौंदर्य जनित प्रसंगता का वहीं 'ल' शब्द लेना अर्थ का द्योतक है। कला सौन्दर्य जनित प्रसन्नता देने वाला शब्द हम यहाँ परिभाषित करते हैं। हमारी सभी कलायें भाव, रंग एवं रूप के त्रित्व पर आधारित है।[107] डॉ. विजय ने कलाओं के विषय में लिखा 'आत्मवत सर्व भूतेषु यः पश्यति स पश्यति' अंयमिजः परावेति गणना लघुचेतसाम, 'उदारचरितानाम तु वासुधैवकुटुम्बकम' सर्व भवन्तु सुखिनः सर्वे संतुनिरामया सर्वे पश्यन्तु भद्राणि, मा कश्चिदुःख भाग भवेत मानव जीवन सोलह संस्कारों से बंधा है। संस्कृति से पहले संस्कार हमारी संस्कृति की नींव है। संगीत, कला, चित्रकला आदि कलाओं से ओत–प्रोत मानव जीवन सुन्दर व सुखमय बन गया है कलाओं से मानव जीवन का निरन्तर विकास हुआ और वह अविष्कारों द्वारा आगे ही बढ़ता चला गया। कलाएँ हमारी संस्कृति परम्पराओं मूल्यों का पूर्वपत परिरक्षण कर सकें और विश्व मंच पर हमारी पहचान बन सकी है।"[108]

हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव – डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध में संस्कृत भाषा का महत्त्व एक जननी के रूप में है, सभी भाषाओं का विकास संस्कृत से ही हुआ जो सदैव साहित्य पर अपनी पहचान बना सकी संस्कृत–हिन्दी माँ बेटी की संबंधी है। हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य का ही प्रतिफल है। रामायण का सृजन संस्कृत भाषा की प्रथम अभिव्यक्ति थी और कालिदास रचित रघुवंश तथा भवभूति 'उत्तररामचरितम्' लिखी संस्कृत का दूसरा ग्रंथ

महाभारत वेदव्यास रचित ग्रंथ में लोकविश्रुत कथाओं को लिपिबद्ध किया। "हिन्दी भाषा संस्कृत की ही आत्मजा है जिसमें ज्ञान का भण्डार है व्याकरण कला, ज्ञान का भव सागर है जिससे साहित्यों की भाषा में परिष्कृत होते ही चले जा रहे थे। आज के लेखकों में भी प्रसाद, पंत, निराला ने प्रकृति चित्रण पर काव्य लिखकर जीवन के मूल्यों को निखारा है। हिन्दी साहित्य संस्कृत सहित्य भारतीय संस्कृति सभ्यता और भावी पीढ़ी को निरन्तर आगे बढ़ते ही जायेगे अतः यह ज्ञान बड़ा ही ज्ञान भाव व संस्कृति का परिचायक है।"[109]

भाषा तक पहुँचती वाक् की लोक यात्रा – डॉ. विजय ने इस निबंध में जीव की भाषा अभिव्यक्ति को आमजन तक की लोक यात्रा में दर्शाया है। इसमें प्रत्येक जीव की अपनी वाणी, शैली द्वारा भाषा ज्ञान धर्म दृष्टि को प्रत्येक प्राणी की अभिव्यक्ति बताई है। भर्तृहरि ने अपनी व्याकरण में कहा है–

"आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत पशुभिः नराणां,
धर्मों ही तेषा एको विशेष; धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।"[110]

मानव में अपनी भाषा का अभिव्यक्ति की शैली भाषिक एवं सांकेतीक दोनों ही रूप में है मौखिक रूप से मानव अपनी मातृ भाषा में अपनी अभिव्यक्ति करता है। भाषा आ, आ, इ, ई, ए, ऐ, ओ, औ, अं, इन शैली ये से ज्ञान का निरन्तर प्रगतिशील है और हमारी भाषा को परिष्कृत करने में भी सहायक है। शब्दों की उत्पत्ति स्वर, अक्षर वर्णादि के योग से हुई है। व्याकरण भृर्तहरि ने आध्यात्म के स्तर पर शब्द शक्ति की बड़ी महिमा गायी है। वे कहते हैं– "एकोऽपि शब्दः सुज्ञातः सम्यक् प्रयुक्तः स्वर्गलोके काम धुक भवति" अर्थात् सुज्ञात एक शब्द का भी यदि सम्यक प्रयोग किया जाये तो वह इस लोक में लोक ही नहीं स्वर्गलोक तक की कामनाओं की सम्पूर्ति कर देता है। शब्द की महिमा करते हुए वे कहते हैं– अनादि निधन बह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरं विवर्तताऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो पतः। अर्थात् जिसका न आदि है न अंत न जो आगे पीछे कभी उत्पन्न होने कला है जो अर्थ रूप में भाषित होता है जिसमें जगत की प्रक्रिया चलती है वह पश्यंती वाक् रूप ही ब्रह्म है।"[111]

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रंथ काव्यादर्श में कहा है यदि शब्दरूपी गहरे अंधकार में ही डूबा रहता है। इदयन्धतयः कृतस्न जायते भुवन त्रयम् यदि शब्दस्यायं ज्योतिः संसारे न दीप्यते शब्दों में परमात्मा का वास है अतः जीभ से निकले शब्दों की शक्ति को समझना चाहिए।

भाषा, बोली का ही परिष्कृत एवं लिखित रूप है। "भाषा शब्द 'भाष' (भ्वादिगणी) धातु से हुई है 'भाष्यते व्यक्त वाग्रूपेण अभिव्यंजते इति भाषा।' व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति हो उसे भाषा कहते हैं। भाषा में सर्वनाम विशेषण क्रियापद आदि का संयोजन मनुष्य के उर्वर

मस्तिष्क की ही उपज है। भाषा और संस्कृति के बीच कार्यकारण संबंध होता है वेदांग के छः अंग है 11 व्याकरण 2 शिक्षा 3 निरुक्त 4 छंद 5 कल्प 6 ज्योतिष शब्द भाषा ज्ञान लोक व्यवहार का ही रूप है। प्रस्तुत निबन्ध जीव की वाक यात्रा, विकास यात्रा व उसके जनमानस व समाज पर प्रभाव को विस्तार दिया गया है।

वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका – डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इस निबंध में हमारे समाज की विभिन्नता में एकता को दर्शाया है जिसमें भाषा, रूप, रंग, बेलियाँ, खान–पान नस्ल आदि सभी विभिन्न होने पर भी हम सब एक ही हैं। समाज में स्थायी एवं सुदृढ़ समाज की निर्मिति में उसका सांस्कृतिक आध्यात्मिक अधिष्ठान ही मुख्य है। साहित्य हमारे विचारों की परिशुद्धी पर लिखा हुआ शास्त्र है जो भावी पीढ़ी को ज्ञान देकर श्रेष्ठ चरित्रों का निर्माण करने में सहायक है। साहित्य सत युग हो, भारतेन्दु युग हो या द्विवेदी युग, शुक्ल युग यह सभी पीढ़ी दर पीढ़ी अपने निरन्तर विकास का ही परिणाम है। वेद रामायण, महाभारत भागवत पुराणों छन्दों आदि सभी में राष्ट्र निर्माण का ही ज्ञान निहित है। डॉ. विजय ने राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती ही इसका श्रेष्ठतम उदाहरण कहा गया है।

"हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होगें अभी,
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी
भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो
हे पुण्य भूमि कहाँ गई है वह तुम्हारी श्री कहो।"[112]

हमारी संस्कृति का यशोगान प्रसाद, पंत, निराला, मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी तक ही हमें पढ़ने को मिला है। 50वें दशक तक प्रगतिशील, प्रगतिवाद, जनवाद जैसे मात्र लुभावने नाम अपना प्रभाव बनाये हुए थे। गद्यात्मक व पद्यात्मक शैली का लेखन निरन्तर आगे ही बढ़ता चला जा रहा था।

गतिशील समाज में वर्तमान साहित्य ने अपनी पकड़ बना ली और साहित्य से समाज का निर्माण हो सका।

कृष्ण भक्ति और मीरा का माधुर्य भाव – डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इस निबंध में मीरां का भक्ति से ज्यादा माधुर्य भाव से कृष्ण भक्ति के भाव को उजागर किया है। इसमें भक्ति शब्द की निष्पत्ति 'भज' धातु से हुई है। जिसका अर्थ भजन करना, नाम स्मरण करना, सेवा पूजा करना आदि। सर्वप्रथम ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षि नारद ने 'भक्ति सूत्र' लिख यह सिद्ध किया कि भक्ति प्रेम रूपा तथा अमृत स्वरूपा है। मींरा का प्रेम श्री कृष्ण के प्रति पति परमेश्वर रूप में ही बना रहा। श्री कृष्ण बाल रूप से ही पूरे नंद गाँव का मन मोह लिया था और उनके रूप रंग पर गोपियाँ

बड़ी ही बावली हुए जा रही थीं। किशोरावस्था में माखन चुराकर अपने मित्रों को खिलाना आदि सभी क्रियाएँ श्री कृष्ण के प्रेम सौन्दर्य का परिचायक है। श्रीकृष्ण के लोकरंजक तथा लोकरंजक के रूप में भी और लोकरक्षक समाज परिवार की लोकलाज तज मीरा का प्रेम परवान चढ़ता है तो इन सभी आलोचनाओं से बचने के लिए श्रीकृष्ण लोक रक्षक रूप में भी मीरा के पति रहते हैं। मीरा अपने श्री कृष्ण को स्वप्न पूर्व जन्मों की मीरा की कृष्ण भक्ति की अवश्य पुष्टि करता है।

"पूरव जनम री प्रीत पुराणी जावै ना गिरधारी
म्हारा जनम जनम रा साथी
जनम जनम री सोची"[113]

स्वप्न को अपूर्ण मानसिक कामनाओं की संपूर्ति का हेतु माना जाता है। मीरा के मन में कवांरेपन में ही श्रीकृष्ण को पति रूप में वरने की कामना जाग उठी थी इसलिए उसकी अपूर्ण इच्छा स्वप्न विवाह में पूर्ण हुई ऐसी बात उसने स्वयं अपनी माँ से कही है।

"माई म्हाने सुपणा में परण्या दीना नाथ।
सुपना मां तौरण बांध्या री, सुपना मां गहया हाय
सुपना मां म्हाने परण गया, पाया अचल सुहाग।
मीरा ने गिरधर मिल्या री पूरब जमन रो भाग।।"[114]

मीरा का प्रेम श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों की भाव में बराबर रहा है। मीरा की वेदानाभिव्यक्ति को कृष्ण प्रेम से जोड़कर कहने पर अधिक से अधिक आधुनिक शैली में रहस्यवादी अभिव्यक्ति क्यों न माने मीरा का संयोग जनिक अभिव्यक्तियाँ ही उसे भक्ति दिव्य गौरव प्रदान कर देती है। जब वह कहती है

"साजन म्हारे घर आया हो।
जुंगा जुंगा री वाट जोवता विरहन पिव पाया हो।
पिया आया म्हारे सांवरा अंग आंणद साजा हो।
सेज संवारी प्रिय घर आस्यां सखियां संग गास्यां
स्याम म्हारी बांहडिया जा गही।"[115]

अतः डॉ. विजय ने इस निबंध में प्रेम की करुणा के सागर श्री कृष्ण की भक्ति मीरा की वेदना की अनुभूति को व्यक्त किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : एक आकलन – डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध में "स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय मुख्यतया चार धाराओं में प्रवाहित काव्य जगत है। छायावादी, रहस्यवादी, प्रयोगवादी, प्रगतिवादी (मार्क्सवादी) काव्यधारा। समाज के विकास के लिए समाजवादी विचारधारा

ने तत्कालिन देशवासियों के मन में अपने विकास का भाव जगाकर पूँजीपति वर्ग और शोषित वर्ग के बीच की कड़ी को जाग्रत किया। नरम दल गरम दल के रूप में समाज की सोच विकसित हुई अतः तत्कालीन नेताओं समाज सुधारकों आदि ने साहित्य से कविता में ओजस्वी भाव भरकर आमजन की पीड़ा को समझा। इसमें नेहरू जी, भगतसिंह, तेग बहादुर, गुरुदेव, राजगुरु से लेकर सुभाष बोस तक तथा रामधारी सिंह दिनकर बालकृष्ण शर्मा नवीन, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ तथा छायावादी प्रसाद पंत, निराला, महादेवी वर्मा आदि ने अपने काव्य से लेखन की दशा और दिशा को नये आयामों से जोड़ा। डॉ. विजय ने इस निबंध में हिन्दी कविताओं से देश का परिवर्तन के दौर का आभास कराया है। इसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की झलक हमें देखने को मिलती है।"[116]

प्रखर राष्ट्रभाव : देश की संजीवनी – डॉ. विजय रचित इस निबंध में राष्ट्र भाव को एक भावात्मक सत्ता सामाजिक तथा राष्ट्रीय भाव का निर्माण है। भारत एक राष्ट्र है। इसमें भौगोलिक परिवेश सभ्यता संस्कृति तथा नागरिकता एवं राष्ट्रीयता का भाव है। नागरिक और राष्ट्रीयता दोनों ही आवश्यक है। राष्ट्रभाव सम्पन्न व्यक्ति ही आदर्श नागरिक होता है। भारत में पूजा पद्धति अपनाने की सबको स्वतन्त्रता रही है। 'एक सद विप्रा बहुधा वदन्ति' यही भारत ने कहा। डॉ. विजय ने यहाँ व्यक्त किया है। धर्म किसी किताब पर आधारित नहीं होता। वह तो स्थिर न होकर एक गतिमान विवेकपूर्ण समय सापेक्ष लोक कल्याणकारी कर्म अतः भारत में विभिन्न धर्म विभिन्न भाषाओं तथा सभ्यताओं के एक पूंज रूप में हमें भारत मिलता है। इस निबंध में विभिन्नता में एकता का भाव राष्ट्र प्रेम तथा उसके कर्त्तव्यों के निर्वाह का ज्ञान मिलता है।[117]

व्यक्ति समाज और राष्ट्र : एक विवेचन – डॉ. विजय रचित इस निबंध में व्यक्ति के शरीर का निर्माण मन प्राण तथा पंचतत्त्वों के मिलन से शरीर का निर्माण हो सका। पंचभूतात्मक, त्रिगुणात्मक एवं आण्विक चेतना सम्पन्न होने से परमात्मा का दुर्लभ वरदान है।

"मानुष योनि भाग्य से मिलती, जनम, जनम का तप फल कहिये,
चली न अब यह जाये इसको बांध धर्म डोरी से रखिये।"[118]

डॉ. विजय ने मोक्ष की आकांक्षा, मानव की ज्ञानात्मक संचेत ना का अंतिम सत्य है यह मन सहित बाह्य मोहक इन्द्रियों पर ज्ञान की सकारात्मक विजय है लिखा है।

"ले लो तन की सब सुन्दरता, मन के तप त्याग सभी ले लो।
पर दे दो मेरा मोक्ष मुझे, जीवन मधुर राग सभी लेख्यो
चाहे हो काम जनक जग का, हो धर्म धारित्री को धारे
वाहक हो अर्थ सभ्यता का है एक मोक्ष पर सब धारे।।"[119]

शरीर का निर्माण सभी जीवों से अलग मनुष्य रूप पृथ्वी पर एक समाज का निर्माण करता है। जो हमारे राष्ट्र में परिवर्तित होता है। भारत में मानव और उसकी सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक स्थिति सभी का विकास क्रम प्रस्तुत निबन्ध में वर्णित हुआ है।

प्रम्लोचा : श्रेष्ठ सांस्कृतिक काव्य

डॉ. विजय रचित इस निबंध में साहित्य और संस्कृति का बेजोड़ मेल बताया है इसमें साहित्य ही संस्कृति का वाहक शब्द लिखकर डॉ. विजय ने भारतीय संस्कृति अपने सनातन साहित्य वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत और महा भागवतादि ग्रंथों को अथ से ही अपना उपजीव्य बनाकर चली आ रही है। भारतीय वेद उपनिषद सभी धार्मिक ग्रंथों की रचना ऋषि मुनियों ने की है जो अपने ज्ञान अनुभवों मंत्रों से परिपूर्ण है। डॉ. अम्बाशंकर नागर विरचित 'प्रम्लोचा' एक सांस्कृतिक काव्य है। प्रम्लोचा स्वर्ग की अप्सरा है। नन्दराचल गौतमी तट पर आश्रम बना कछुए की भाँति वृत्तियों को समेटे तपस्या रत रहते है मुनि कुण्ड को मोन भंगकर तपस्या को भंग कर देती है वह इन्द्र देव द्वारा पृथ्वी पर भेजी जाती है ताकि मुनी कुण्ड तपस्या में लीन न रह सकें पर प्राम्लोचा मुनि कुण्ड के साथ प्रेमपूर्वक पत्नी रूप में उनके आश्रय में रहने लगती है और पुत्री के जन्म पर मारीषा नामक पुत्री को मुनि कुण्ड को देकर लौट जाती है पर मुनी के मन में प्रेम भाव जाग्रत होने से मोह माया बढ़ जाती है। मुनि को अपनी स्थिति का ज्ञात होने पर वे पुरुषोत्तम पथ पर चल पड़ते हैं– 'बहुजन सुखाय बहुजन हिताय काव्य' का प्रारम्भ निसर्ग की कोरव से होता है खर, खर बज, उबे खडाऊँ निर्मम पगडंडी पर एक ओर जहाँ यह नाद सौन्दर्य का आनन्द दे रहा है वहीं काव्य के विकास का संकेत भी कर रहा है कवि का प्रभातकालीन ज्ञान मुख बोल रहा है सूर्योदय की वेला का चित्रण–

> **"जैसे कोई चतुर श्यामफलक पर/फेर रहा है तूली**
> **विधि रंगों की पहले लाल, लाल पर पीली/नारंगी सिंदुरी**
> **स्वर्णिम/परिपार्श्व में कहीं कहीं/नीली मटमैली।।"**[120]

मन की प्रणयानुभूति का भाव में कवि के अध्ययन मनन एवं चिंतन की प्रौढ़ता प्रकट हैं। उदाहरण–

> **"प्रेम तो/संसार के/सुनसान बियाबानों में खिला/एक अलौकिक पुष्प है**
>
> **प्रेम में/विस्तृत होती है/मनोवृत्तियाँ/परिष्कृत होती है/रूचियाँ/विगलित होती है/कुणाएँ/विमोचित होती है/ग्रंथियाँ।"**[121]

यहाँ प्रेम के स्वरूप का विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कवि ने कथा को जो वागर्थ प्रदान किया है। वह अप्रितम है। इस वागर्थ ने काव्य को ऊर्जा और औदात्य दोनों से अभिमंडित कर लोकोपयोगी बना दिया है। अतः डॉ. विजय द्वारा रचित इस निबंध का ज्ञान संस्कृति का अनछुआ पहलु के रूप में है।

द्विरेक का 'मीरा' महाकाव्य – डॉ. विजय रचित इस निबंध में द्विरेक का 'मीरां' महाकाव्य एक सांस्कृतिक चेतना औदात्य का मानदण्ड है। पवित्रता की लेखनी से लिखा जागतिक कर्मों का संविधान है। उच्चासन पर विराजमान, सारस्वतमूर्ति संत का सम्भाषण है। "यह निष्क्रियता की नहीं सामाजिक सेवा की दानवता से मानवता की ओर प्रस्थान की सौम्य एवं सात्विक भूमिका है यह अभ्युदय का विज्ञान और निःश्रेयस का ज्ञान है। नैष्कर्म्य का उपनिषद तथा जीवन मुक्ति का आरण्यक है माधुर्य की भागवत ही नहीं कर्म की गीता भी है। जीवन का सत ही नहीं सुष्टि का ऋत भी है। सुख का श्वास ही नहीं सिद्धी का विन्यास भी है।"[122]

कवि के अन्तर्मन की संकल्पात्मक अनुभूति की तीव्रता ही है, जो उसे सत, शिव, सुन्दर की संसिद्धि की ओर मोड़ लेती है। ऐसी ही सांस्कृतिक एवं काव्य चेतना की तीव्रता को सहेजे राजस्थान में कवयित्री महीयसी मीरां हुई है जो मेड़ता की बेटी तथा चित्तौड़ की युवरानी थी। श्रीपरमेश्वर 'द्विरेक' ने इन्हीं मीरां को काव्य नायिका बना, अपने यशस्वी महाकाव्य 'मीरा' का प्रणयन किया है। महाकाव्य 14 सर्गों विभाजित है। इसका प्रकाशन 1957 में हुआ था। यह शेखावटी के प्रसिद्ध लेखक थे श्री हिरेक चिड़ावा (झुन्झुनु) के थे। गीतकार अच्छे थे दो गीत संग्रह लिखे 'मरु के टीले' तथा 'धुल के फूल' प्रकृति की सुकोमलता इनके गीतों में मिलती। 3 बड़े प्रबंध काव्य 'मीरा' युग सृष्टा प्रेमचन्द तथा कमला मीरां और युगसृष्टा प्रेमचन्द महाकाव्य है। मीरां श्री कृष्ण भक्त बचपन से ही थी यौवन आने पर विवाहोपरान्त वैधव्य जीवन की विरहानुभूति को दूर करने हेतु समाज सेवा में लगी रहती तथा श्री कृष्णभक्ति में भी आगे बढ़ती रहीं। मीरां महाकाव्य में द्विरेक कवि ने मीरां महाकाव्य में मीरां के जीवन का यथार्थ उदाहरण यहाँ ऐसे दिया–

"आँगन में रज संकुल भू पर
बालिका एक लघु सुन्दर
क्रीडन तल्लीन (1/1)
बोली माँ उसका कर चुम्बन
भर लिया सभी मिट्टी में तन क्यों बेटी
धरती पर ऐसी क्या उमंग जो लेटी।"[123] (1/4)

मीरां को आधुनिक बोध से सुसज्जित कर रूढ़ियों के विरुद्ध जिस नव्य, भव्य, दिव्य सांस्कृतिक चेतना का कवि ने उससे सिंहनाद करवाया वह स्पृहणीय है।

"मैं नहीं कूप मंडूक न झूँठी शर्म लाज (13/261)
जीवन का सत्य पिंजर (13/261)
रे जाग जगाने आई हूँ। जग जाग जगाकर जाऊंगी।"[124] (13/262)

इस निबंध में द्विरेक की दार्शनिक दृष्टि से महाकाव्य को स्वस्थ भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान से अभिमंडित किया है। इससे ज्ञान, शांति आध्यात्मक का भाव मिलता है। डॉ. विजय ने इस निबंध में द्विरेक, कवि द्वारा मीरा का वैयक्तित्व को दार्शनिक, आध्यात्मिक, भौतिक तीनों ही भाव से निरण है।

जीने के लिए : एक अध्ययन – डॉ. विजय रचित निबंध में 'जीने के लिए' कृति पर अध्ययन कर काव्य के दोनों पहलुओं पर जोर दिया है। कवि महेन्द्र भटनागर रचित इस कृति में मनुष्य जीवन के उत्तात प्रेम अनुभव आदर्श, यथार्थ, लोकहित आदि शब्दों में शब्द बद्ध करते हुए 'लोक हितकारी' दृष्टि को उजागर किया है। परन्तु जीवन के उतार चढ़ाव में मानव मन की छटपटाहट सभ्यता को ताक पर रख कर पशुवत बना देती है। यहाँ वही व्यक्त हुआ है।

"आदमी को मत करो मजबूरः
इतना कि बेइंसाफियों को झेलते–
वह जानवर बन जायः
या बेइंतिहा दर्द की अनुभूतियों को भोगते–
वह खण्डर बन जायेः
आदमी को मत करो मजबूर इतना कि
उसको जिन्दगी लगने लगे
चुभता हुआ, रिसता हुआ नासूरः
आदमी को मत करो यों इस कदर मजबूरः[82]

इसी प्रकार कवि ने मानव मन की अनुभूतियों को 'कामना' रचना में जिन्दगी के गुणों का बखान किया है जिसमें चारित्रिक नैतिक गिरावट बढ़ रही है। मानव में स्वभाव में स्वार्थ प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह पीड़ा कवि इस प्रकार अपने काव्य में व्यक्त करता है–

"कभी तो ऐसा हो कि
जो सकें हय जिन्दगी सहज
कृत्रिम मुस्कान का मुखौटा उतार कर

बेहद तरस गया है आदमी

सच्चे क़हक़हों के लिए:।"[125]

जीने के लिए कविता एक उन्मुक्त भाव से प्रगतिवादी सोच की धारा में प्रवाहित कविता है। इसमें मार्क्सवादी विचार धारा का भाव है। आतंक के घेरे में 'धर्म यज्ञ', आरजू, 'नए इन्सानों से', 'दूसरा मन्वन्तर', इतिहास स्रष्टाओं, 'दरिद्रनारायण' आदि रचनाएँ मानवीय एकता और प्रेम की बात कर मानवतावादी राष्ट्रीय सांस्कृतिक सोच से मानवीय भावना को बढ़ाया है। महेन्द्र भटनागर की विरचित 'जीने के लिए कविता संग्रह में भावभूमि विचारभूमि तथा कला भूमि के स्तर महनीय कृति है।'

डॉ. विजय ने इस निबंध में उदयभानु 'हंस' साहित्य जगत के उर्दू भाषा के गजलकार जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व 1944 में गजले लिखीं। 1948 की बात में हिन्दी साहित्य जगत में 'रुबाई सम्राट' के नाम विख्यात हो गए। श्री हंस रचित संपूर्ण गद्य–पद्य साहित्य 'उदयभानु हंस रत्नावली' चार खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। दो खण्डों में रचित इस कविता में दूसरे खण्ड में 'दर्द की बांसुरी' स्वतन्त्रता पूर्व रचित है। 1944 एक गजल उर्दू लिपि में ही मुद्रित है। 'तीसरे स्वर' संग्रह में गजल है। भाषा वस्तु अभिव्यक्ति को लेकर उर्दू की अपनी ही पहचान रही है। प्रस्तुत है श्री हंस की एक ग़ज़ल–

"जी रहे है लोग कैसे आज के वातावरण में

सोच में दिन डूब जाता रात कटती जागरण में

शब्द की महिमा घटी है, अर्थ का भी अर्थ बदला

'संधि' कम 'विग्रह' अधिक है जिन्दगी के व्याकरण में।"[126]

अर्थ के लिए थोड़ा विवेक को ख़ुजलाना पड़ेगा–

"मूल्य जीवन के क्या कुँवारे थे?

उनके क्यों वंशधर नहीं होते।"[127]

हिन्दी में उर्दू की सुन्दर कारीगरी से लिखे इस लेख में डॉ. विजय ने हिन्दी और उर्दू ग़ज़लों की लेखन कला को विश्लेषित किया है। श्री हंस जी ने शब्दावली में नये ढंग से भी ग़ज़ले कहीं है उनका स्वर वर्तमान का है–

"हर धर्म की रामायण युग युग से ये कहती है,

सोने का हिरन लोगे सीता का हरण होगा।

मान के मंदिर की देवी थी, जो आज कोठों की शोभा बनी

जैसे पूजा की थाली कोई पान की तश्तरी हो गई।

जब से चाणक्य महलों में रहने लगा

नींव के पत्थर भी झट सीढ़ियाँ हो गये।"[128]

श्री हंस जी ने नई ग़जलों में प्रगतिवादी प्रेम को शालिनता से शब्दों में पिरोया है। दोनों ही भाषाओं में लिखकर उत्कृष्ट लेखन का परिचय दिया है।

हिन्दी ग़जल की श्री वृद्धी करती कृति : 'नचिकेता नहीं कोई' – डॉ. विजय रचित इस निबंध में कविता की मूल अभिव्यक्ति हिन्दी से ही संभव है उसी प्रकार गजल में उर्दू लिपि से ही गजलों का रूप उभरता है। भाषायी विभेद ही एक मात्र है अन्यथा सहज भाव से शिल्प संवेदना और औचित्य की दृष्टि से इसका लेखन एकसा ही है उर्दू और हिन्दी दोनों ही पात्रता योग्यता व काव्य रूप में समान धर्मी है। इस पर डॉ. विजय लिखते हैं– "डॉ. अनन्तराम मिश्रा 'अनंत' ने अपना सद्य प्रकाशित एवं मारवाड़ी सम्मेलन द्वारा पुरस्कृत गजल संग्रह 'नचिकेता कोई नहीं' भेजा है। यह तत्सम प्रधान रसों वाला संग्रह है। प्रासादिकता काव्य का एक बड़ा गुण है। प्रसाद गुण का अर्थ शब्द और अर्थ दोनों सहज बोधगम्य हो सीधे ह्रदय में उतर जायें। रसाप्लावित करे दें।"

उदाहरण – **"प्रीति की कन्या न इसके साथ ब्याही,**

बंधुवर विश्वास का वर मंगली है।

x x x x x x

क्रौंच क्या, मानव हनन पर भी न द्रवते छन्द

आदि कवि के अब नहीं वंशज रहे हैं लोग।"[129]

समाज की संवेदनहीन स्थितियों का सीधा प्रहार करती शोषित वर्ग की पीड़ा को उभारता है।

"झुग्गीयों तुम यहाँ सर न पटको

यह किला पत्थरों का किला है।"[130]

यथार्थ के साथ–साथ प्रगतिवादी नैतिक मूल्यों को भी स्थान दिया है, जहाँ मानव मूल्यों की निरन्तर प्रगति भी है तो साजिशों का भी प्रमाण हमें पढ़ने को मिलता है।

"हैं पवन के चलन साजिशों से भरे

पहरुवों के नयन भी मदिर हो गये।"[131]

यहाँ नारी की पीड़ा को भी बहुत ही मार्मिक ढंग से अनंत ने लिखा है।

"हुई कुछ दृष्टि ऐसी भोगवादी

कि पैसे को पिता हम मान बैठे।

राग दरबारी हुए हैं लोग बुझकर
अग्निपथ के बन सके धावक नहीं है।"

भारतीय नैतिक मूल्यों में नचिकेता में पिता से पिता है कहने की क्षमता नहीं थी, जीवन के सत्य को खोजने की अदम्य लालसा भी थी। यही लालसा और निर्भिकता हमें कवि बंधु अनंत की इन गजलों में मिला है।

"भीड़ कायर गीदडों के आत्मजों की
एक भी वनराज का शावक नहीं है।
x x x x x
ओ राजमरालो मुझको समझाओ
युग के बगुलों को नयन करुँ कैसे?"[132]

कवि में अक्रोश है यह भाव डॉ. विजय ने अपने इस निबंध में बड़ी ही रोचकता से हमें समझायी है।

वैदुष्य एवं वाग्निता के प्रतिमान–आचार्य विष्णुकांत शास्त्री – डॉ. विजय रचित इस निबंध में जीव यात्र की आत्मा से परमात्मा से मिलन का भाव है। इसमें मानव प्राथी जन्म से मृत्यु तक के सभी भावों की यात्रा है। इसमें धर्म, अर्थ, काम मोक्ष जैसे पुरुषार्थों से मुक्ति से मोक्ष कामना की है। यह मानव योगी हमें विवेकपूर्ण जीवन जीने हेतु मिला है। आचार्य विष्णुकांत भी इसी प्रकार के प्राणी मात्र थे जो रामभक्त थे और राम जी के चरणों में ही अपना जीवन अर्पित कर चुके थे। स्वयं लिखा है–

"सौंप जब तुमको दिया इस जिन्दगी का भार रघुवर ,
तब मुझे क्या सोचना है, जीत हो या हार रघुवर।"[133]

शास्त्री जी का जन्म–2 मई 1929 को कोलकाता में हुआ। माता रूपेश्वरी देवी पं. नरोत्तम शास्त्री पिता बड़े ही संस्कृत विद्वान थे शास्त्री जी एन.ए.एल.एल.बी की और ये मेधावी प्रवृत्ति की वजह से ही सेठ आनन्दराम जयपुरिया कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक हो गये। 1953 में हिन्दी में ख्याति अर्जित करने वाले राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर का अध्यक्ष (1990–93) में जब "डॉ. विजय ने पहली बार व्याख्यान माला में शास्त्री जी को प्रकाश 'आतुर व्याख्यान माला' के लिए आमन्त्रित किया तीन सत्रों ने चली व्याख्यान माला में श्री गुप्त जी, श्री निराला एवं श्री अज्ञेय की असंख्य कविताएँ बिना किसी पुस्तकीय सहयोग सुनाकर सबको अचम्भित कर दिया। शास्त्री जी का साहित्यिक परिचय 15 मौलिक 3 अनुवादित तथा 7 सम्पादित पुस्तकें दी। 'ज्ञान

और कर्म' कृति में औपनिषदिक ज्ञान का निकष मिलता है। तुलसीदास के प्रति श्रद्धा उनके काव्य तुलसी के हियहेरि (1990) भक्ति और शरणागति इसके प्रमाण है।"[134]

कुछ चन्दन की कुछ' कपूर की आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार से वहाँ से पुरस्कृत हुई। उनकी कृति बांग्लादेश के संदर्भ में स्मरण को पाथेय बनने दो को भी सम्मानित कर संस्थान स्वयं सम्मानित हुआ 'साहित्य भूषण सम्मान' व डॉ. राममोहन लोहिया सम्मान देकर वाग्देवी का ही अभिनन्दन किया है। स्वभाव से निर्मल उदार प्रेमी, देश विदेश में बहुत प्रसिद्ध हुए अपने ज्ञान से सभी को लाभान्वित किया। 17 अप्रेल को प्रातः गीता पर अपना व्याख्यान देने पटना जाते समय निश्छल व्यक्तित्व हमारे बीच से उठ गया। डॉ. विजय के इस ज्ञानवर्धन निबंध में हमें श्री विष्णु कान्त शास्त्री जी की प्रतिभा कौशल व उनकी विद्वता से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

आत्मचेतना एवं मनोविश्लेषण के पुरोधा उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र कुमार – डॉ. दयाकृष्ण विजय ने श्री जैनेन्द्र कुमार ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने चरित्रप्रधान उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक विचार धारा को अपने शब्दों में बहुत ही उम्दा तरीके से लिखा है। जैसे "प्रेमचन्द प्रसाद भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा आदि पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के कथ्य एवं शिल्प से भिन्न आत्म चेतनावादी एवं मनोविश्लेषणवादी साहित्यिक चेतना का भारतीय हिन्दी उपन्यास जगत में संचार किया। पाश्चात्य उपन्याकारों में विशेष की विशेषता को उभारा है। गाँधीवादी विचारधारा से सम्बन्धित विचारधारा वाले व्यक्तित्व के धनी जैनेन्द्र ने प्रथम उपन्यास परख और अंतिम अनाम स्वामी ने लिखा डॉ. विजय ने जैनेन्द्र से मिलकर दिल्ली में उनके निवास पर आत्मीयता से अपने लेखक के साथ एक सामान्य व्यक्ति का भी परिचय दिया। 'त्यागपत्र' उपन्यास पर फिल्म बनी बड़े पर्दे पर उपन्यास का आना जैनेन्द्र कुमार के लिए उत्साहित करने वाला था। जब डॉ. विजय और जैनेन्द्र कुमार दोनों जब निर्देशक से मिलने जाते हैं। उपन्यासकार की 'त्यागपत्र' कहानी में निर्देशक ने भावनाओं की उपेक्षा अवहेलना तथा तिरस्कार कर देते हैं। पर कथा में वह दृश्य 'अच्छा लगा' था जब मृणाल कोयले वाले बनिये के यहाँ काम करती है लेकिन जैनेन्द्र विचलित हो रहे थे। उनसे रहा नहीं गया। बोल उठे– "निर्देशक ने भावनाओं की उपेक्षा, अवहेलना तथा तिरस्कार कर देते हैं। पर कथा में वह दृश्य 'अच्छा लगा' था जब मृणाल कोयले वाले बनिये के यहाँ काम करती है लेकिन जैनेन्द्र विचलित हो रहे थे। उनसे रहा नहीं गया। बोल उठे निर्देशक किस तरह कथा की हत्या कर देते है। चलो बाहर चलते हैं और डॉ. विजय और जैनेन्द्र दोनों 'हॉल' से बाहर आ गये।"[135]

इस तरह का वाक्या डॉ. विजय ने यहाँ भी भारतीय साहित्य परिषद् के पुर्नगठन के समय श्री रतन सिंह शांडिल्य ने 29 अक्टूबर 1966 को जब भारतीय साहित्य परिषद् का गठन कर

10–11 फरवरी 1967 को अखिल भारतीय अधिवेशन दिल्ली में किया अध्यक्षता बड़े ही प्रतिभा के धनी श्री जैनेन्द्र हमारे साहित्य की अनोखी मिसाल थे। सामान्य परिवार के लेखक महान लेखक के साथ ही सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में गाँधी जी के साथ देश की स्वतन्त्रता के लिए भी अपना सहयोग दिया थी जैनेन्द्र ने देश की सेवा के लिए जेल में 7 माह की सजा भी मिली लाठियाँ तथा जेल यात्रा से परेशान होकर क्षीण सी काया पर पुलिस के डण्डों के प्रहार से राजनीति को अंतिम विदाई 1932 में ही दे दी। 20 से अधिक निबंध लिखने वाले 10 कहानी संग्रहों में भी बड़ा ही सुन्दर परिचय दिया। इसी पर भूरिभूरि प्रशंसा करते हुए डॉ. विजय श्री जैनेन्द्र के विषय में लिखकर इस निबंध की इतिश्री करते हैं। कि मुझे अपने 'आंजनेय' महाकाव्य की ये पंक्तियाँ सहज स्मरण हो रही है–

"बिरले ही होते जो कृति से गौरवमय इतिहास बनाते
बन आदर्श स्वयं संसृति को नैतिकता का पाठ पढ़ाते।"[136]

उस महान कथाकार उपन्यासकार तथा निबंधकार को जिसमें अपने साहित्य को आकृयात्म के श्रेयस तथा दर्शन की नवीन उदात्तता को समर्पित किया है। मेरा 'शत शर्त नमन'।

निष्कर्ष

अतः इस अध्याय में मेरा उद्देश्य डॉ. विजय रचित सभी रचनाओं से सुधिजनों को परिचित कराना है तथा डॉ. विजय के नाटकों कहानियों, उपन्यासों आदि सभी में ज्ञानवर्द्धक रोचकतापूर्ण लेखन पढ़ने को मिला। इसमें डॉ. विजय के नाटक चारों ही ऐतिहासिक संदर्भ के साथ वर्तमान परिवेश की जागरुकता को उभारते हैं। निबंधों में डॉ. विजय का लेखन बड़ा ही विपुल भण्डार के रूप में हमें पढ़ने को मिला इसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद वर्तमान साहित्य, हिन्दी भाषा काव्यों का हमारे साहित्य में किस प्रकार प्रभाव पड़ता है इसकी बड़ी ही कुशलता से महत्त्व को परिभाषित किया है। आम–जीवन पर उपन्यासों की महत्त्वपूर्णता को भी बड़ी ही वाग्वैदग्ध्यता से लिखा है 1. रमताराम, 2. पायसपायी दोनों ही संत जीवन पर आधारित उपन्यास हैं। जो सनातन धर्म का घोतक है। हिन्दू धर्म की सभ्यता व संस्कृति तथा वैष्णव पंत के अनुयायी संतों की वाणी मुखर होती है। इसमें स्वामी रामचरण जी के चरित्रचित्रण को कुशल लेखक का परिचय देते हुए उनके साधुत्व को परिभाषित किया है जो हमें उपन्यास के प्रमुख रूप से उभरकर वाग्वैदग्ध्य का परिचय देती है। इसी प्रकार कहानियों में उलझन, बड़ी मछली, स्वप्न और सत्य, एक और क्रांति इन सभी में सामाजिक परिवेश की कहानियों के संग्रह है जिसमें पात्रों के अनुरूप संवादों से मार्मिक चेतना जाग्रत होती है। कलम के धनी डॉ. दयाकृष्ण विजय अपने लेखन के क्षेत्र में अमीट छाप छोड़ी

है। जिससे हम भावी पीढ़ी को साहित्य के क्षेत्र में कुछ अलग महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्रदान कर सकने में सक्षम हो सकें।

इसी भावना से मैंने डॉ. विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य विषय में गद्य रचित सभी रचनाओं में अध्याय में शामिल करके कथासंग्रहों, नाटकों, उपन्यासों, निबंधों तथा एकांकी आदि सभी में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, राष्ट्रवादी पक्ष को ध्यान में रखकर लिखे गये सभी गद्य साहित्य में भाषा का प्रवाहमय है तत्सम तद्भव शब्दों की उपयोगिता उनके पात्रों में संवादों में रोचकता प्रदान करते है। सूक्ष्मतम तथा मधुरतम भाव है वहीं संस्कृति है वाग्वैदग्ध्य की अतः यह अध्याय मेरी छोटी सी कौशिश है जिसमें मैंने डॉ. विजय के रचित गद्य साहित्य पर सूक्ष्मतम भाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. डॉ. विजय के कृतित्व एवं व्यक्तित्व, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–26/27
2. वैदुष्य एवं वाग्निता के प्रतिमान–आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, डॉ. विजय, पृ.सं.–169
3. राजस्थान साहित्य अकादमी–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–33
4. राजस्थान साहित्य अकादमी–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–33
5. संस्कृति और साहित्य–डॉ. हेतु भारद्वाज, पृ.सं.–15
6. हिन्दी साहित्य कोश–सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं.–587
7. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–9
8. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–20
9. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–31
10. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–32
11. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–48
12. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–60
13. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–68
14. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–70
15. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–78
16. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–83
17. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–85
18. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–154
19. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–151
20. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–16
21. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–21
22. बड़ी मछली–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–145
23. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–5
24. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–8
25. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–9
26. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–9
27. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–22
28. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–33
29. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–32
30. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–35
31. भर्तृहरि नीतिश्लोक/श्लोक/13
32. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–42

33. संस्कृति का वागर्थ–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–43
34. राजस्थान साहित्य अकादमी–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–33
35. राजस्थान साहित्य अकादमी–डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–33
36. कथा संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–25/26
37. एक और क्रांति, कहानी संग्रह, पृ.सं.–123/124
38. सिंहासन 'नाटक संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7–8
39. आदि सम्राट, नाटक संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–15
40. छत्रपति शिवाज, नाटक संग्रह, वही, पृ.सं.–19–20
41. छत्रपति शिवाज, नाटक संग्रह, वही, पृ.सं.–19–20
42. रमता राम, दयाकृष्ण 'विजय', उपन्यास, पृ.–58
43. रमता राम, दयाकृष्ण 'विजय', उपन्यास, पृ.–60
44. डॉ. विजय के कृतित्व एवं व्यक्तित्व, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–27/28
45. डॉ. विजय के कृतित्व एवं व्यक्तित्व, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–27/28
46. राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, डॉ. दया कृष्ण विजय, पृ.सं.–68
47. राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, डॉ. दया कृष्ण विजय, पृ.सं.–68
48. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
49. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
50. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
51. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
52. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–7
53. साहित्य संस्कृति और युगबोध, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17/18
54. साहित्य संस्कृति और युगबोध, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17/18
55. साहित्य संस्कृति और युगबोध, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17/18
56. साहित्य संस्कृति और युगबोध, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–17/18
57. संस्कृति और साहित्य, पृ.सं.–103
58. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. दया कृष्ण विजय, पृ.सं.–13
59. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. दया कृष्ण विजय, पृ.सं.–13
60. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. दया कृष्ण विजय, पृ.सं.–13
61. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. दया कृष्ण विजय, पृ.सं.–13
62. भारत में सांस्कृतिक क्रांतियाँ और साहित्य, पृ.सं.–23
63. अनादिकाल से आज तक भारत का स्वतन्त्रय भाव, पृ.सं.–7

64. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
65. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
66. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
67. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
68. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
69. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
70. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
71. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृ.सं.–29
72. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
73. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
74. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
75. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
76. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
77. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
78. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
79. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
80. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
81. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
82. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
83. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, पृ.सं.–57
84. हाड़ौती अंचल में प्रारम्भिक साहित्य साधना, पृ.सृ.–129
85. हाड़ौती अंचल में प्रारम्भिक साहित्य साधना, पृ.सं.–143
86. हाड़ौती अंचल में प्रारम्भिक साहित्य साधना, पृ.सं.–143
87. अचलदास खींचीरी वचनिका : सृजन की पृष्ठ भूमि, 'निबन्ध' डॉ. विजय, पृ.सं.–129
88. अचलदास खींचीरी वचनिका : सृजन की पृष्ठ भूमि, 'निबन्ध' डॉ. विजय, पृ.सं.–129
89. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
90. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
91. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
92. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
93. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62

94. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
95. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
96. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
97. राजस्थान के हाड़ौती अंचल का एकांकी साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–62
98. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–49/50
99. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–49/50
100. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–49/50
101. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–16.189.9
102. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–123 28–19
103. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
104. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
105. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
106. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
107. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
108. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
109. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
110. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–10.9.12
111. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–57/58
112. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–42/47
113. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–म.प.म. 30
114. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–म.प.म. 21
115. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : एक आकलन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–69
116. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : एक आकलन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–69
117. व्यक्ति समाज और राष्ट्र : एक विवेचन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–53
118. व्यक्ति समाज और राष्ट्र : एक विवेचन, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–53
119. प्रम्लोचा : श्रेष्ठ सांस्कृतिक काव्य, निबन्ध संग्रह, डॉ. विजय, पृ.सं.–64
120. प्रम्लोचा : श्रेष्ठ सांस्कृतिक काव्य, निबन्ध संग्रह, डॉ. विजय, पृ.सं.–65
121. प्रम्लोचा : श्रेष्ठ सांस्कृतिक काव्य, निबन्ध संग्रह, डॉ. विजय, पृ.सं.–65
122. द्विरेक का 'मीरा' महाकाव्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–40
123. द्विरेक का 'मीरा' महाकाव्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–42

124. द्विरेक का 'मीरा' महाकाव्य, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–42

125. जीने के लिए : एक अध्ययन डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–63/64

126. जीने के लिए : एक अध्ययन डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–63/64

127. जीने के लिए : एक अध्ययन डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–63/64

128. जीने के लिए : एक अध्ययन डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–63/64

129. जीने के लिए : एक अध्ययन डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–63/64

130. हिन्दी ग़ज़ल की श्री वृद्धि करती कृति : नचिकेता नहीं कोई, पृ.सं.–123/124

131. हिन्दी ग़ज़ल की श्री वृद्धि करती कृति : नचिकेता नहीं कोई, पृ.सं.–123/124

132. हिन्दी ग़ज़ल की श्री वृद्धि करती कृति : नचिकेता नहीं कोई, पृ.सं.–123/124

133. हिन्दी ग़ज़ल की श्री वृद्धि करती कृति : नचिकेता नहीं कोई, पृ.सं.–123/124

134. हिन्दी ग़ज़ल की श्री वृद्धि करती कृति : नचिकेता नहीं कोई, पृ.सं.–123/124

135. वैदुष्य एवं वाग्निता के प्रतिमान–आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, डॉ. विजय, पृ.सं.–169

136. वैदुष्य एवं वाग्निता के प्रतिमान–आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, डॉ. विजय, पृ.सं.–169

तृतीय अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य

तृतीय अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित गद्य साहित्य कथा संग्रह नाटक उपन्यास, निबन्ध संग्रह, एकांकी आदि सभी रचनाएँ इनके वाकचातुर्य, वाक् कौशल का परिचय देती है। किसी भी लेखक का लेखन किसी न किसी संवेदना पर आधारित होता है। कथाओं में प्रत्येक पात्रों के अनूरूप उनके संवादों में कथा की संवेदना झलकती है। सभी नाटकों में पात्रों द्वारा व्यक्त संवादों में संवेदना समाहित है, जो इनके नाटकों में प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है। इसी प्रकार उपन्यासों में 'रमताराम', 'पायसपायी' आदि सभी में उनके लेखन की मूल संवेदना उनके चरित्र चित्रण में प्रतिबिम्बित है। इसी प्रकार उनके निबंधों की तारतम्यता प्रत्येक निबंध की मूल संवेदना निबंधों को पढ़ने पर उसका सार तत्त्व रूप में मिलती है। 'गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य' का बड़ा ही रोचक रूप हमें उनके कथा संग्रह उलझन, 'बड़ी मछली', 'स्वप्न और सत्य एक और क्रांति में दिखाई देता है। हमें प्रत्येक कहानी के पात्रों द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की शैली व कौशल' संवादों में पढ़ने को मिली। नाटकों में आदि सम्राट्, छत्रपति शिवाजी, सिंहासन, राग से विराग तक इन सभी में प्रकृति और परिवेश को स्थान–स्थान पर व्यक्त किया गया है जिससे हमें रचनाओं के तत्कालीन परिवेश व प्रकृति का ज्ञान मिलता है।

3.1 प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' रचित कथासंग्रहों में जैसे उलझन, बड़ी मछली, स्वप्न और सत्य, एक और क्रांति कथा संग्रहों में कथा के आधार पर उसकी प्रकृति को उभार कर कथा की महत्ता को बड़ा दिया है। एक कुशल लेखक डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने प्रकृति को बड़ी ही कुशलता से परिभाषित कर अपने गद्य की चेतना को व्यक्त किया है।

प्रकृति – "किसी भी वस्तु प्राणी पशु पक्षी आदि सभी की उत्पत्ति पर प्रकृति का महत्त्व बहुत माना जाता है। प्रकृति वह वातावरण है जहाँ उसी वस्तु की उत्पत्ति हुई है चाहे वह जीव जगत की वस्तु हो या साहित्य जगत की। उसकी उत्पत्ति उसकी प्रकृति पर ही आधारित होती है।"[1]

परिभाषा – "प्र+कृ+क्तिन=प्रकृति शब्द की व्युत्पित्त हुई है। जिसमें पृथ्वी जगत हो मानव जगत हो या साहित्य जगत वस्तु मानव या साहित्य में गद्य की किसी भी प्रकार की रचना इस पर निर्भर

करती है कि उसकी उत्पत्ति के प्रथम गुण क्या थे। अतः प्रकृति में पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि, हवा इन सभी तत्त्वों से एक प्रकृति की रचना हुई है।"[1] साहित्य जगत में व्याकरण लक्षणा, व्यंजना शब्द शक्ति आदि सभी का और भरक कथा की प्रथम शब्दों से रचना कर एक सार रूप देना कथा की प्रकृति है।"[2]

प्रकृति के विषय में डॉ. दयाकृष्ण विजय ने "स्वयं 'गीता अनुशीलन' में श्लोक के माध्यम से परिभाषित किया है। कृष्ण ने भी सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति का मूल प्रकृति को स्थिर करते हुए उसके जड़ और दो रूपों का विवेचन किया है। जिसमें जड़ रूप के अन्तर्गत–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धी और अहंकार आदि इन आठों रूपों में विभक्त होने वाली अवरा प्रकृति तथा उससे दूर जीव रूप अर्थात् चेतन प्रकृति है। इसने अन्तः प्रकृति (मन, चित्त, बुद्धी, अहंकार) और बाह्य प्रकृति (पंच तत्त्व समुद्र, पृथ्वी, आकाश) व उनमें संयुक्त सनत पदार्थ तथा उक्त दोनों के योग से प्रसूत समस्त प्रपंच समाहित है।"[3] वस्तुतः व्यवहार में प्रकृति को इतने विस्तृत अर्थों में ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्रकृति का निर्माण समस्त से हुआ है। अतः इसी प्रकार डॉ. विधानिवास मिश्र द्वारा परिभाषित विश्व के प्रपंच में वस्तुतः तीन सत्ताएँ है– मनुष्य द्वारा निर्मित समाज, संस्कृति और सभ्यता के संस्थान मनुष्य का अंत और शेष वह समस्त चर–अचर, जगत जिसके निर्माण में मनुष्य का योग न होते हुए भी उसे साथ मनुष्य का जन्म से ही किसी न किसी प्रकार रागात्मक संबंध स्थापित हो जाता है। अतः इसकी तीसरी सत्ता को हम प्रकृति कहते हैं। मानवेतर वह समस्त दृश्य जगत जिसमें पशु पक्षी, वनस्पतियाँ आदि अपने मौलिक या स्वाभाविक रूप में दिखाई देती है तथ जिनके निर्माण में मानव का योग नहीं होता प्रकृति कहलाती है।

"हिन्दी साहित्य में प्रकृति के इस नवीन उत्कर्ष के लेखक स्वयं डॉ. दयाकृष्ण विजय हैं–गद्य साहित्य में कथा संग्रह नाटक उपन्यास निबंध संग्रह आदि सभी में हमें पात्रों के अनुरूप उसकी रचना की प्रकृति हमें भली–भांति समझ में आती है। **'उलझन'** कथा संग्रह में आमजन की पीड़ा से संबंधित सामाजिक सरोकार को जोड़कर इसकी रचना की गई है। उसी प्रकार उससे सम्बन्धित सभी कहानियों में उसका परिवेश भी उसकी प्रकृति पर निर्भर है। जिस प्रकार **बड़ी मछली** कथा संग्रह में त्रिकोण प्रेम पर आधारित कहानी में पात्रों का परिवेश उनकी प्रकृति के अनुरूप है। पात्रों की संवाद योजना अर्न्तमन व्यथा तथा अपने चारों ओर बिखरे परिवेश में स्वयं को हनने जैसी प्रकृति हमें यहाँ पढ़ने को मिलती है। 'एक और क्रांति' में समाज में समानता के भाव को रखने हेतु इसकी रचना की गई है। कथा में व्यक्त है कि हरिजन समाज का स्वयं के अधिकार के लिए समाज के उच्च वर्ग की जाति के प्रति विरोध की भावना इसी प्रकृति की परिचायक है जिसमें मानव की समानता के भाव को बनाए रखने की प्रकृति उभरती है। संवाद से

यह व्यक्त होता है। मंदिर तो जैसे उच्च जाति के वर्गों की बपोती है और निम्न वर्ग मंदिर की सीढ़ियाँ तक न चढ़ पाये? क्योंकि वह निम्न वर्ग से हैं? उनका जन्म निम्न जाति में हुआ है, और वह अछूत की श्रेणी में आ गये यह कैसा न्याय है ईश्वर के मंदिर में?"[4] अतः इन सभी बातों का ध्यान रखते हुए डॉ. विजय की यह कथा सामाजिक परिवेश में प्रकृति की विशेषताओं को उभारती है जिसमें मानव को मानव से बाँट दिया। उनके बीच असमानता, भेद छूआछूत की दिवारें खड़ी कर दी गई हैं।

स्वप्न और सत्य – प्रकृति और परिवेश में डॉ. विजय ने "समाज के प्रत्येक पुरुष–स्त्री के अन्तर्मन को प्रकट किया है इसमें सभी कथाएँ आत्म विश्लेषण पर आधारित है। इस कथा संग्रह में भी व्यक्ति विशेष की 'यथार्थ' और स्वप्न के बीच झूलते हुए तथा विपरीत स्थितियों पर आधारित कथा है जो सामाजिक परिवेश का कटु यथार्थ है। यह सामान्य वर्ग की व्यथा इसमें मानवीय मूल्यों को उजागर किया है। पात्रों के अनुरूप अपने जीवन की सत्यता को निभाते हुए स्वप्न की पूर्ति हेतु भी अपने जीवन की सत्यता और स्वप्न की अर्न्तमन की गाथा को गुथकर लिखी गई कथाएँ हैं।"[5]

नाटक – 'आदि सम्राट्' में प्रकृति और परिवेश

इस नाटक में प्रकृति और परिवेश के अन्तर्गत "डॉ. विजय ने स्वर्ग लोक की प्रकृति को परिभाषित करते हैं। नाटक में इन्द्र लोक की प्रकृति तथा 59 पात्रों की संवाद योजना को बड़ा ही रोचक नाटक की शैली में रखा है। स्वर्ग की प्रवृत्ति में राजा इन्द्र का साम, दाम, दण्ड, भेद तथा छल से अपने पद पर आसीन रहना उनकी एक सम्पूर्ण देवत्व की परिचायक है और यह प्रवृत्ति स्वर्ग में एक छत्र शासन की नीति की प्रवृत्ति को उजागर करती है। शासन के प्रति राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक कर्त्तव्य आदि सभी का समायोजन इन्द्र देव की शासन की प्रकृति को समझाती है। डॉ. विजय ने इस नाटक की प्रकृति को बड़ी ही सरलता से ऋग्वेदोक्त घटनाओं को समविष्ट करके रचना की है।"[6]

छत्रपति शिवाजी नाटक में प्रकृति और परिवेश की ऐतिहासिक छवि है इसमें डॉ. विजय ने "शिवाजी के चरित्र–चित्रण की प्रकृति एक शौर्यवीर मराठा के रूप में हमें पढ़ने को मिली शिवाजी की मुगलों के प्रति प्रकृति शुरु से ही घृणित रही शिवाजी की प्रकृति हिन्दु मराठा की रही। ऐतिहासिक परिवेश को इसकी प्रकृति के रूप में इसकी रचना की गई है।"[7]

शिवाजी की शौर्य, वीरता, बलिदान, कर्त्तव्य परायणता के गुण उनकी अल्प आयु में ही माँ की शिक्षा का परिणाम था। यह शिवा की प्रकृति का द्योतक थी। "शूरवीर हिन्दु सेना बाल्यकाल से ही अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा लोक मुगलों से लोहा लेने को तैयार हो रहे थे। तब इस वीर यौद्धा में देश भक्ति प्रकृति से पनप रही थी तत्कालीन भारत में मराठा का अस्तित्व बनाने तथा हिन्दुत्व

का गौरव कायम रखना इनकी प्रमुख प्रवृत्ति थी। हिन्दुत्व की प्रकृति खून में ही अपने वंशजों से प्राप्त थी अतः इस नाटक की प्रकृति में सभी पात्रों द्वारा उनकी प्रकृति का चित्रण इस नाटक की मौलिकता पर निर्भर करता है।"[8]

नाटक 'सिंहासन' में प्रकृति और परिवेश में वाग्वैदग्ध्य – डॉ. विजय रचित इस नाटक में "देश पर शासन तभी कायम है जब तक की शासन पर कोई आसीन हो चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। अतः साम्राज्य की बागडोर भी इसी बात को तय करती है कि शासन किस प्रकार चलेगा। सिंहासन में ही महत्ता तथा उस पर यह पुरागायिक नाटक है इसमें ऐतिहासिक सूत्र में सांस्कृतिक–ऐतिहासिक विकास की प्रकृति को चित्रित किया है। सिंहासन की प्रकृति पात्रों के महत्त्वपूर्ण संवादों से उभरकर व्यक्ति विशेष की विशेषता को उजागर करती है। नूतन कथ्य समसामयिक परिवेश की गाथा से निर्मित नाटक इसकी प्रमुख प्रकृति का द्योतक है।"[9]

"**'राग से विराग तक'** नाटक की प्रकृति सांसारिक में प्रकृति और परिवेश मोहमाया को छोड़कर आध्यात्मिक की ओर बहने का संदेश देती है। इस नाटिका में स्थूलपद का दिशा ग्रहण करने पर कोशा भी अपने सारे सुख त्यागकर प्रेमवश संन्यास धारण कर लेती है और संसार का प्रेम, सुख भोग विलास आदि सभी छोड़कर संसार से विरक्त हो जाती है। संभूति विजय मुनी से शिक्षा लेकर वह प्रेम, अनुराग, मोह का मार्ग छोड़कर संसार से विरक्त हो जाती है। संभूति व कोशा विजय मुनी से दीक्षा लेकर मोह का मार्ग छोड़कर संमार्ग की ओर बढ़ते हैं। इस नाटक की प्रकृति सांसारिक मोह को छोड़कर आध्यात्मिक की और बढ़ने की प्रकृति है जिसमें जनसेवा करना ही त्याग तपस्या से आगे बढ़ने की प्रकृति है।"[10]

उपन्यास में प्रकृति और परिवेश में वाग्वैदग्ध्य

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित दोनों उपन्यास में उनके लेखन के विषय में लिखना सूर्य को दिया दिखाने जैसा लग रहा है अतः लब्ध प्रतिष्ठित लेखन के धनी डॉ. दयाकृष्ण विजय ने "संत जीवन की बहुत ही सुन्दर चित्रित कर उपन्यासों के प्रति उनकी प्रकृति को उभारकर पाठक के मानस पर उभारता है।"[11]

रमताराम – "डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस उपन्यास की श्रीरामचरण स्वामी जी की संत प्रकृति से समाज कल्याण का भाव अन्तनिर्हित है इसमें राम भगवान का सैव्य श्रीरामचरण स्वामी को संत समाज का विराट व्यक्तित्व हमें पढ़ने को मिलता है प्रस्तुत उपन्यास में समाज में समानता की प्रकृति से मानव सेवा में अपने को पूर्ण समर्पित करने वाली प्रकृति से ओत–प्रोत लेखन है। समाज तत्कालीन समय में उच्च और निम्न वर्ग में बँटा हुआ था और छूआछूत के भाव को देखकर श्रीरामचरण जी ने महसूस किया मानव की जब प्रकृति समान है, तो जन्म के आधार पर

उसे अछूत क्यों कहा जा रहा है उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग को समान जीने के भाव को, मन में अपने जीवन की आराधना मानकर, भक्ति के मार्ग में सभी के लिए द्वार खोल दिये। इन संत प्रकृति से ही संसार का उद्धार करने की सेवा लेकर हमें भी भक्ति की नई राह दिखाई। समाज की बुराई कुरीतियों को समाप्त कर स्त्री–पुरुष की विचारधारा में परिवर्तन कर समाज का उद्धार करने से मानव जीवन की प्रकृति धन्य होगी और वह सबका उद्धार कर सकेगा आमजन एक दूसरे से प्रेम सहयोग की भावना से आगे बढ़ सकेगा। कुरीतियाँ जो वर्षों से समाज में व्याप्त थी वह अब कम होने लगी और समाज में भाई चारे समानता का भाव आया। समाज की प्रकृति व परिवेश इस प्रकार परिवर्तित हुए की हमारे देश की बुराईयाँ, छुआछूत, पर्दाप्रथा स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आया वह समान भाव से पुरुष के साथ घर की चौखट से बाहर निकलने लगी जाति प्रथा में समानता का भाव सब व्यक्ति में पनपने लगा। एकता, अखण्डता के सूत्र में आमजन की विचारधारा बंधने लगी। इस समाज में श्रीरामचरण जी स्वामी द्वारा सभी को समान भाव से भक्ति के मार्ग खोलने की प्रकृति को बड़ी ही चातुर्य शैली से अभिव्यक्ति देते हुए डॉ. दयाकृष्ण विजय का वाग्वैदग्ध्य गुण उभरकर सुधीजन के मानस पटल पर केन्द्रित होता है।"[12]

पायस पायी में प्रकृति और परिवेश

जीवन के यथार्थ को समझने हेतु इस उपन्यास की रचना रामानन्द जिनका बचपन का नाम रामदत्त था। वह श्रीराम के भक्त होने की उस प्रकृति का परिचय अत्यन्त छोटी आयु में ही दक्षिणावर्त शंख बजाकर दे दिया था। परिवार में भक्ति का वातावरण उन्हें वंश में मिला हुआ था। भक्ति भाव से ओत–प्रोत रामानन्द की कृपा सदैव ज्ञानात्मक भाव से संतों की सेवा करने में रही। रामानन्दाचार्य में तीर्थ स्थानों की यात्राएँ कर जीवन के यथार्थ को समझकर संतों को ज्ञान दिया। आत्मा से परमात्मा के मिलन का भाव भी हमें दार्शनिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति का सूचक है। ग्यारह अध्याय में जीवन के महत्त्व में दार्शनिक भाव है। 'पायसपायी' शब्द का अर्थ दुग्धाहारी (दूध का आहार करने वाला) रामानन्दाचार्य ने जीवन का अस्तित्व बताते हुए मानवीय मूल्यों में समानता के भाव को जोड़ा है। अतः भेदभाव युक्त समाज में जातिगत भेदभाव हटाकर प्रेम का संदेश दिया है। सामाजिक उन्नति का भाव प्रत्येक व्यक्ति प्रेम भाईचारे से सन्मार्ग की ओर नैतिक मूल्यों का निर्वहन कर सके। उपन्यास में व प्रकृति में ऐसा ही परिवेश दिया गया है। इसी लेखन की शैली में कुशाल मार्मिक शब्दों से संत चरित्र की व्याख्या की है। "रामानन्दाचार्य ने समाज की शैली में बदलाव लाकर देश उद्धार का कार्य किया इसक विवरण डॉ. दयाकृष्ण विजय ने बड़ी ही निपूर्णता से दिया है। कुशल कारीगरी से रामानन्द के व्यक्तित्व को महीम शैली में उभारने की कला डॉ. दयाकृष्ण विजय की वाग्वैदग्ध्य का परिचय देता है।"[13]

निबंध में प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित निबंध संग्रह का परिवेश सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों से ओत–प्रोत रहा है। इसमें राष्ट्रवाद तथा समाज उन्नति का भाव हमें दिखाई देता है। गहन वैचारिक चिंतन प्रत्येक निबंध में मिलता है।

गीता अनुशीलन का प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित "गीता अनुशीलन ऋग्वैदोक्त रचित प्रेरणा से लिखित है। गीता भारतीय जीवन में कर्मण्यता की दिशा सूचक है। डॉ. विजय ने गीता अनुशीलन की प्रकृति भाष्य चिंतनपरक तथ्यों का सतर्क प्रस्तुतिकरण किया है। अर्जुन के लिए श्री कृष्ण द्वारा दिये गये संदेश आत्मोत्तति का सूचक है। कर्म की प्रधानता मानते हुए जीवन को सार्थक बनाए। ज्ञान का वास्तविक सार से उदय का प्राकल्प ही गीता का संदेश है। इसी प्रकृति से विचार निर्गूढता को हल्का कर ज्ञान की दिशा में अधिक सरल और सहजता यहाँ व्यक्त है। मानव जीवन की महत्ता को समझकर सामाजिक रिश्ते, नाते, प्रेम, द्वेष आदि सभी भाव से ऊपर उठकर जीवन के सत्य को समझना जरुरी है। श्री कृष्ण के इसी संदेश को 'गीता अनुशीलन' में डॉ. दयाकृष्ण विजय ने बड़ी ही सरल, रोचक व मार्मिक ढंग से लेखबद्ध किया है। इस लेखन से शब्दों की पकड़ आम जन को बड़ी ही मार्मिक लगती है और यही उसका परिचायक है। सामाजिक परिवेश में रचित इसी निबंध संग्रह में गीता का सार समाज समाज के उद्धार तथा नैतिक मूल्यों के भाव से मिलकर किया गया है। अतः इसके लेखन में शब्दबद्ध रूप में संदेश मिलता है।"[14] यह डॉ. विजय के लेखन का वाग्वैदग्ध्य का परिचय देते हुए गीता के मर्म को सरल शब्दों में समझाया है।

"कर्मण्यवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन का भाव यहाँ गहराई से व्यक्त है आत्मा संबंधी सिद्धान्त एवं प्राप्ति उपायों का व्यवस्थित प्रतिपादन हुआ है।"[15]

इसमें वे लिखते है कि गीता को आत्मसात करके मानव जन्म सफल बनाना चाहिये वे कहते है– "अतः मनुष्य से जन्म लेने वाली जीव आत्मा को अपने मस्तिष्क की ज्ञानेन्द्रियों से कर्म करके जीवन को धन्य बनाने में लगे। मानव परोपकारी भावना के साथ आगे बढ़े। डॉ. दयाकृष्ण विजय का गीता अनुशीलन निबंध संग्रह में इस बात का बोध होता है कि मानव की प्रकृति सामाजिक है वह अपने कर्म से ही अपना उद्धार कर सकता है और यह अनमोल चिन्तन वाला प्राणी मानव ही है इसी परिवेश में वाग्वैदग्ध्यपूर्ण लेखन डॉ. विजय का यह परिचय देता है कि गीता अनुशीलन ज्ञान व बौद्धिक चिंतन से लब्ध है।"[16]

राजस्थानी काव्य साधना अब और तब की प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस "निबंध संग्रह की प्रकृति वीर तथा श्रृंगार रस से ओत–प्रोत है। श्रृंगार रस के दोनों रूपों से लब्ध है इसमें संयोग पक्ष भी है और वियोग पक्ष की भी नायक नायिका के आधार पर रचना की है। नायक के गुण वीर भाव से पूर्ण है तथा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन उसके सौन्दर्य गुण को प्रदीप्त करता है। नखशिख वर्णन द्वारा सौन्दर्य का 'वेली रुक्मिणी री में श्रृंगार निरूपण' किया है। श्रृंगार भावना के विकास में नायक–नायिका के अतिरिक्त प्रेम सौन्दर्य को उत्सर्जित करने में शुक, कपोत हंस आदि को प्रेम सहायक की उपाधि दी गई है। ऐतिहासिक परिवेश को आधार बनाकर रचित इस निबंध में राजस्थानी काव्य सृजन के तत्कालीन परिवेश को चित्रित किया है तथा राजस्थानी आन, बान, शान व शोर्य का परिचय भी यहाँ वर्णित है।।"[17]

विचारों के अमलतास – डॉ. विजय रचित इस "निबंध संग्रह में विचारों के पुष्प कुंज से है। इन निबंधों में गंभीर जीवनानुभूति, समाज से गहरा जुड़ाव, वैचारिक जीवन दृष्टि, शाश्वत जीवन मूल्य विचार विश्लेषण की गहनता और चिन्तन की सूक्ष्मता की प्रकृति की धारा में प्रवाहित है। वैचारिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सौम्य स्पर्श इन शब्दों में अभिव्यक्त होता है। विचारों के अमलतास में डॉ. विजय रचित विषय में मनोयोग पूर्ण चिन्तन एवं कथन–भंगिमा की नवीनता विद्यमान है। प्राध्यापकीय आलोचना पद्धति से इन निबंधों की सैद्धान्तिक भले ही न मिले, परन्तु यह अवश्य ही मिलता है। कि इन निबंधों में गम्भीर जीवनानुभूति, समाज से गहरा जुड़ाव, वैचारिक जीवन दृष्टि, शाश्वत जीवन मूल्य विचार विश्लेषण की गहनता और चिन्तन की सूक्ष्मता विद्यमान है। यहाँ अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मिलती है। रचनाकार की इस कृति के विषय में 'रचनाकार की यह आंतरिक चेतना विराट चित्ति का अतीव सूक्ष्मांश है। रचनाकार अपनी रचना प्रक्रिया से प्रजापति की विराट सृष्टि योजना की पूर्णता में सहायक बनता है।

इस सर्जन की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रकृति को परिभाषित करते हुए डॉ. विजय के इस लेखन से उनके वाग्वैदग्ध्य की प्रकृति का परिचय मिलता है कि जब सर्जन मानवीय संवेदनाओं से जुड़े, स्वतंत्रता से विसंगतियों के विरुद्ध जुझारू स्वर उच्चारित करे तथा दुर्बल का पक्षधर बने। लेकिन जब साहित्य सर्जन की केन्द्रीय विधा पर वे चिन्तन करते हैं तो उपन्यास के परिपेक्ष्य में ही समकालीनता पर विस्तार से विचार करते हैं क्योंकि उसके कारण ही यथार्थ जीवन, यथार्थ, समाज यथार्थ राजनीतिक घटना चक्रों का जीवन्त दस्तावेज उपन्यास बनता है।"[18]

"इसी क्रम को बढ़ाते हुए गुप्तजी की युग चेतना पर विचार करते हुए वे साकेत में उनकी सजगता को स्वदेश मुक्ति का जागरण ध्वनित होते पाते हैं इस प्रकृति में गुप्त जी के विचारों की

प्रकृति का स्वदेश प्रेम के भाव को उजागर करता है। गुप्त के विचारों पर डॉ. विजय लिखते हैं "कि गुप्त ही सोचते थे आज की विभ्रान्त एवं राष्ट्रीय शून्य पीढ़ी की विदेशाक्रांत मानसिकता को भारतीयता की ओर मोड़ना तथा फिर से गौरवशाली भारत का सजीव चित्र उनके सन्मुख साहित्य के माध्यम से उपस्थित करना आवश्यक हो गया है।"[19] इन सभी विचारों से ओत–प्रोत इस निबंध की प्रकृति तथा समाज उन्नति हेतु विकास की प्रवृत्ति को उजागर किया है। इस वाग्वैदग्ध्य पूर्ण लेखन की शैली से लेखकों की रचना की प्रकृति से हमें अवगत कराया है। अतः यह हमें यहाँ बड़ी ही शिक्षाप्रद ज्ञानात्मक रूप में प्रकृति परिवेश का ज्ञान मिला है।

गुप्त जी की युग चेतना, पं. गिरधर शर्मा नवरत्न की युगचेतना और सूर के मानववाद पर लिखित निबंध लिखे हैं।

साहित्य संस्कृति और युगबोध (2000 ई.) में प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इन निबंध संग्रह में "भारतीय संस्कृति सभ्यता का साहित्यिक, सांस्कृतिक संदर्भों को पूर्ण समर्पण देकर साहित्यिक सांस्कृतिक परम्परा को गति प्रदान की है। दो भागों में रचित इस निबंध में साहित्यिक संदर्भों के साथ–साथ लोक जीवन की विसंगतियों का खुलासा किया है। यही नहीं वर्तमान संदर्भों में पनप रही दिशाहीनता को उजागर कर राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहलू को उभारने का सफल प्रयास किया है। इन निबंधों में डॉ. विजय की लेखन की प्रकृति में सृजन वैशिष्ट्य हो या समकालीन साहित्य 'पुनर्विचार की अपेक्षा', 'साहित्य साहित्यकार राजनीति हो या लोक विश्वास की प्रासंगिकता इत्यादि निबंधों में सांस्कृतिक संचेतना ओर लोक जुम्बिश का स्वर भरकर सामने आया है इसी निपूर्णता से लेखन की प्रकृति डॉ. विजय के लेखन में वाग्वैदग्ध्य गुण को उजागर करता है। इन निबंधों का विश्लेषणात्मकता तथा व्याख्यान लेखन की विशेषता तथा वाग्वैदग्ध्य शैली का सूचक है।"[20] इस प्रकार डॉ. विजय ने प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में साहित्य संस्कृति व युगबोध पर विस्तार से चिन्तन प्रस्तुत किया है।

राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना में प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस निबंध संग्रह में "राजस्थान के कवियों द्वारा रचित हिन्दी महाकाव्यों जैसे **बिसलदेवरासो, परमालरासो, पद्मावतरासो, आल्हण दे** आदि हैं। महाकाव्यों में हिन्दी साहित्य में अवधी भाषा की महत्ता तथा रासो ग्रंथों की प्रमुखता को उजागर किया है। इसमें डॉ. विजय ने राजस्थान की हिन्दी साहित्य की महिम से सांस्कृतिक मूल्यों को उजागर कर राजस्थान की मारु ढोला आल्हण दे आदि मारवाड़ी मेवाड़ी, हाड़ौती आदि सभी सभ्यता को सांस्कृतिक परिवेश को चित्रित किया है। राजस्थान की काव्य प्रतिभा व गद्य प्रकृति के दर्शन तथा राजस्थानी कवियों की चेतना से तत्कालीन सभ्यता को उजागर किया है। यहाँ व्यक्त है कि

राजाओं के आश्रय में कवियों ने राजस्थानी काव्यों की रचना की है। जिसमें हमें राजस्थान के राजाओं तथा वहाँ की रियासतों की संस्कृति, सभ्यता का बड़ा ही रोचक ज्ञान मिला। जिससे रियासतों में बंटे राजस्थान के राजपूतों के विभिन्न परिवेश से सम्बन्धित ज्ञान डॉ. विजय के इन निबंधों में मिलता है। हम इनके निबन्धों से तत्कालीन राजस्थानी रीति रिवाज, परम्पराओं, रहन सहन, आस्था विश्वास आदि से परिचित होते हैं।"[21]

हिन्दी भाषा और महाकाव्य (2005 ई.) में प्रकृति और परिवेश

"डॉ. विजय रचित इस निबंध संग्रह में हिन्दी भाषा की प्रकृति तथा हिन्दी भाषा के महत्व को उजागर किया है। हमारी हिन्दी भाषा हिन्दुस्तान की परम्परा, सभ्यता, संस्कृति की परिचायक है। अतः भारत के विकास में हिन्दी भाषा मातृभाषा के रूप में धीरे–धीरे विकसित हुई। शिवप्रसाद सितारे हिन्द, लक्ष्मण लाल, प्रेम सागर तथा भारतेन्दु, द्विवेदी, शुक्ल तथा छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता तथा आधुनिक युग आदि सभी में लिखित हिन्दी के विकास का क्रम व विकास यात्रा से हम परिचित होते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी युग की विशेषता को कालों में विभाजित कर हमारी हिन्दी के पठन पाठन की परिभाषा को बड़ी ही सरल रूप में उजागर किया है।

1. वीरगाथा काल
2. भक्तिकाल
3. रीतिकाल
4. गद्यकाल (आधुनिक काल)

हिन्दी भाषा और महाकाव्य जो इन कालों में विभिन्न लेखकों के द्वारा रचित किये गये उनके पाठन में उनके काल का बोध होता है। जिस काल में रचित है उसी काल की प्रकृति का बोध हमें मिलता है। जैसे वीर गाथा कालीन रचनाएँ तत्कालीन राजाओं के आश्रय में रचित ग्रंथों से कवियों ने उनके राज्य और राजा की गाथा को अपने शब्दों में उजागर किया है। वीरगाथा काल में रचित सभी महाकाव्यों की भूमिका परिवेश प्रकृति तत्कालीन सभ्यता संस्कृति के परिचायक हैं डॉ. विजय ने उस सभी काल परिवेश को अपने निबंधों में बड़ी ही कुशलता से गुंथा है। भक्तिकाल की गाथा तत्कालीन परिवेश में वीरगाथा से ऊबकर लगातार युद्ध और अधिपत्य से उभरने की गाथा है। लगातार आक्रमणों और अधिपत्यों से आम जन–जीवन बहुत ही दुःखी हो चुका और अपनी मानसिक दुर्बल प्रवृत्ति से उभरकर ईश्वर के मार्ग की ओर बढ़ने की प्रकृति तत्कालीन परिस्थितियों की माँग होने लगी। फिर धीरे–धीरे भक्ति से उभरकर मानव मन रीति की ओर आकर्षित होने लगा सुरा व सुन्दरी की ओर आमजन का लगाव इस काल की विशेषता

बताता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। भटकते मानव मन ने अपने परिवेश में परिवर्तन किया और परिवेश में आमजन की मानसिकता के परिवर्तन में गद्य लेखन की प्रमुखता उभरने लगी जिसमें कहानी, नाटक, उपन्यास आदि सभी में जीवन के रहस्य को समझा। जीवन से जुड़ी हर संभव सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों से उभारा।"[22] परिवर्तित परिवेश, मानसिकता व अन्तर्द्वन्द्व को यहाँ विस्तार से व्यक्त किया गया है।

संस्कृति का वागर्थ (2006 ई.) की प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण एवं विजय रचित इस निबंध संग्रह में सांस्कृतिक परिवेश एवं संस्कृति की संस्कारित, सम्यक कृति और दूसरा सम्यक कृति के रूप में इसकी विशेषता है। संस्कृति साहित्य की शब्दों के गठने की कला का एक अनूठा रूप है। यह हमारे परिवेश की संस्कृति को उभारती है। संस्कृति किसी धर्म विशेष की कट्टरता में नहीं बंधना चाहिए जिससे मानव–मानव का दुश्मन बनकर कट्टरवादि विचार धारा का अनुगमन करने लगे। मानव को इस संस्कृति को छोड़कर समान भाव से इस कट्टरता का विरोध करना चाहिए। भारत की संस्कृति को ऋषियों इन शब्दों में कहा–

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्
उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इसका निबंध संग्रह में भी इस बात पर जोर दिया है कि संस्कृति मानवता का पयार्य औद का कल्पतरु तथा सर्वहित की चिन्तामणि बन जाता है। संस्कृति की प्रभविष्णुता अतिसूक्ष्म किन्तु अतितीव्र होती है ऐसे समय में वह साहित्य को ही नहीं समय को भी नियन्त्रित करती है। संस्कृति की यह प्रभविष्णुता कभी प्रत्यक्ष दिखती है तो कभी नहीं। अतः भारतीय परिवेश में लिप्त संस्कृति में मान भाव प्रेम दया करुणा आदि का होना आवश्यक है। इस मूल प्रकृति से इस निबंध संग्रह में अपने लेखन की कौशलता का परिचय दिया और संस्कृति में परिचायक है। सम+कृति=संस्कृति शब्द में 'ठक' प्रत्य लगकर कितिच सूत्रानुसार सांस्कृतिक शब्द बनता है इसे हम संस्कृति का भाववाचीकरण कहते हैं। संस्कृति संस्कार युक्त सम्भूय कृति है। संस्कार सामाजिक, विद्रुपताओं के साथ मनीषियों के बौद्धिक संघर्ष का सुपरिणाम है।

संस्कृति के बचाव में आज हम सभी को समान रूप से आगे आना होगा। जिसमें राष्ट्र की एकता, अनेकता तथा विश्व की मानवता को हम कायम रख सके अन्यथा संस्कृति स्खलन के कारण ही विश्व के अनेक राष्ट्र मिट गये।

इकबाल ने कहा भी है–

"यूनान मिश्र रोम सबमिट गये जहाँ से/ अब तक मगर है बाकी नामोनिशां हमारा/ कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी/ सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा। अतः संस्कृति से साथ अटूट जुड़ाव ही है इसी से अनेकों झंझावतों के बीच भारत तरणी विपत्ति समुद्र को पार करने में सक्षम एवं समर्थ सिद्ध हुई है।"[23]

हमारी संस्कृति ही हमारी धरोहर है अतः इसके लिए आज हम सभी को संस्कृति से जुड़कर परिवार, समाज एवं राष्ट्र में विश्व को एक परिवार रूप में बनाये रखने में हम सभी सक्षम हो सकेगें।

इस भाव की प्रकृति संस्कृति के परिवेश में इसकी रचना कर डॉ. विजय ने संस्कृति की सौम्यता से हम सभी को जोड़कर रखने के प्रयत्न से ही इस निबंध की रचना की है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य (2006 ई.) में प्रकृति और परिवेश

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस सनिबंध संग्रह का हमारी सभ्यता संस्कृति हमारे परिवेश की एक नव जागरण का शंखनाद ही नहीं प्रगति एवं समृद्धि का पाञ्य जन्य भी है। संस्कृति जहाँ आध्यात्मिक मूल्य वहाँ सभ्यता भौतिक मूल्य है। संस्कृति जहाँ शाश्वत सत्यों को सहेजे हैं वहाँ सभ्यता भौतिक सभ्यता भौतिक मूल्य है।

मानवीय जीवन मूल्य बन जाते हैं। कह सकते हैं मानव के जीवनानुभवों का नवनीत ही संस्कृति मानवता को उजागर करने वाला साहित्य ही साहित्य मनुष्य और समाज की मनोभावना को शब्द के स्तर पर प्रमासित करता हुआ मानवीय आदर्श की प्रतिष्ठापना करता है। "साहित्य संस्कृति का संवाहक हो कर भी सदैव संस्कृत्योन्मुख रहता है। संस्कृति विमुख साहित्य की स्थिति उस रोगी की तरह होती है जिसे मृत्यु–मुख में जाने से कोई उपचार नहीं रोक पाता जब भी साहित्य संस्कृति विमुख हुआ है। वह या तो दिग्भ्रम की स्थिति जीने लगा है अथवा मृत्यु का ग्रास बना है।

इसी संस्कृति राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य में हमारी प्रकृति और परिवेश की संस्कार सभ्यता रीति रिवाज की प्रकृति को उजागर किया है। भारत की भारतीय परम्परा में बंधे राष्ट्रवाद की प्रकृति है। डॉ. विजय ने इसमें बड़ी ही गंभीरता से उजागर कर प्रत्येक निबंध में राष्ट्रवादी धारणा व सांस्कृतिक मूल्यों का ज्ञान हमें मिलता है। इसी निपूर्णता से अपनी लेखनी से डॉ. विजय ने इस निबंध वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया है।"[24]

वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका में प्रकृति और परिवेश

डॉ. विजय लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार है। "जिनकी प्रत्येक रचना किसी न किसी रूप में भिन्न प्रकृति की परिचायक है। प्रस्तुत निबंध में भी डॉ. विजय ने वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका में राष्ट्रवादी विचारक रही है। भारत का साहित्य, सामाजिक सरोकारों का ही साहित्य है। नैतिकता, सामाजिकता तथा राष्ट्रीयता के प्रचार–प्रसार की पृष्ठभूमि में भी साहित्य ही होता है। भारत में ही उपनिषदों, वेदों, महाभारत, गीता आदि सभी के ज्ञान से ओत–प्रोत भारत की मिट्टी की संस्कृति भी अपनी अहम् भूमिका निभाती है। साहित्य तत्कालीन समाज की परिचायक होते हैं। जिसमें आध्यात्मिक सांस्कृतिक चिंतन का ज्ञान मिला होता है। आदि काल से वर्तमान गद्य साहित्य तक भारतीय साहित्य धारायें प्रवाहित है।

साहित्यकार वर्तमान परिवेश में समाज की तत्कालीन विचार धाराओं से लेखन करते हैं। समाज की प्रकृति आदि काल के परिवेश को तत्कालीन राजाओं के वीर भावों को समाज के सामने रखती है। वेद पुराणों में देवदर्शन की प्राचीन आध्यात्मिक शैली मिलती है। जर्मन विद्वान कांट के अनुसार–"सभ्यता बाह्य व्यवहार वस्तु है। इसतरह कल्चर एवं सिविलीजेशन दोनों ही शब्द संस्कृति के मूलार्थ के निकट नहीं है।"

इसी परिभाषा में संस्कृति धर्म संस्कृत दोनों का उद्देश्य व्यष्टि, समष्टि तथा सृष्टि की धारणा है। भारतीय संस्कृति का दूसरा उपादान तत्व है। भारतीय संस्कृति की प्रकृति भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में अपनी सभ्यता की परिचायक है। भारत के गौरवपूर्ण इतिहास के पीछे संस्कृति सभ्य साहित्य का अतुल्य योगदान रहा है। रीतिकाल के साहित्य से समाज में व्याप्त रीति प्रकृति का चारों ओर होना पाया जाता है रीति संस्कृति सभ्यता और संस्कृति की परिचायक ही है। भक्तिकाल में तुलसीदास, सूरदास, कबीर, रहीम, धन्ना, पीपा रामानन्द आदि रचित दोहे आज भी हमारी सभ्यता और संस्कृति को उजागर करते हैं। वर्तमान गद्यकाल भारतेन्दु से लेकर आधुनिक काल तक का लेखन हमारे समाज में प्रगतिशील विचारधारा लाया है। प्रगतिवाद प्रयोगवाद नई कविता आदि सभी में भारत की तत्कालीन प्रकृति को परिभाषित करती है। समाज का प्रमुख रूप से विकास इसी बात पर आधारित था। अतः डॉ. विजय रचित इन सभी नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी में भारत की प्रकृति झलकती है। हमारे भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व में अपनी पहचान बनाये हुए है। अतः ज्ञान और लेखन कौशल से भरपूर प्रवृत्ति का ज्ञान हमें यहाँ पढ़ने को मिलता है।"[25]

3.2 आदर्शवाद

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित सभी नाटकों, कहानी, उपन्यास, निबंध में गद्य का आदर्श उभरकर हमें नया ज्ञान प्रदान करता है।

"आदर्शवाद–शब्द विचारवाद या प्रत्ययवाद, आदर्शवाद शब्दों से उच्चरित किया जाता है। अंग्रेजी शब्द Ideal = विचार या प्रत्यय उन विचारों और मान्यताओं की समेकित विचारधारा है जिनके अनुसार इस जगत की समस्त वस्तुएँ विचार (Idea) या चेतना (Covos Ciousness) की अभिव्यक्ति है।"[26]

"सृष्टि का सारतत्त्व जड़पदार्थ (Matter) नहीं अपितु चेतना है। आदर्शवाद जड़ता या भौतिकवाद का विपरीत रूप प्रस्तुत करता है।"[27]

यह आत्मिक–अभौतिक के प्राथमिक होने तथा भौतिक के द्वितीयक होने के सिद्धान्त को अपना आधार बनाता है जो उसे देशकाल में जगत की परिमितता और जगत की ईश्वर द्वारा रचना के विषय में धर्म के जड़सूत्रों के निकट पहुँचाना है। आदर्शवाद चेतना को प्रकृति से अलम करके देखता है। जिसके फलस्वरूप वह मानव चेतना और संज्ञान की प्रक्रिया को अनिवार्यतः रहस्यमय बनाता है और अक्सर संशयवाद तथा अज्ञेयवाद की तरफ बढ़ने लगता है।

आदर्श और प्रत्यय – "इस संदर्भ में कुछ विचारकों के अनुसार मनुष्य और अन्य प्राणियों में प्रमुख भेद यह है कि मनुष्य प्रत्ययों का प्रयोग कर सकता है और अन्य प्राणियों में यह क्षमता विद्यमान नहीं है। कुत्ता दो मनुष्यों को देखता है परन्तु 2 को उसने कभी नहीं देखा। प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं। वैज्ञानिक और नैतिक संख्या गुण, मात्रा आदि वैज्ञानिक प्रत्ययों का अस्तित्व तो असंदिग्ध है परन्तु नैतिक प्रत्ययों का अस्तित्व विवाद का विषय बना रहा है। हम कहते हैं–आज मौसम बहुत अच्छा है। यहाँ हम अच्छेपन का वर्णन करते हैं और इसके साथ अच्छेपन का वर्णन करते है और अच्छाई के अधिक न्यून होने की ओर संकेत करते हैं।"[28]

निःश्रेयस का स्वरूप – "निःश्रेयस या सर्वोच्च आदर्श के स्वरूप के संबंध में सभी इससे सहमत है कि यह चेतना से संबंद्ध है, परन्तु ज्यों ही हम जानना चाहते हैं कि चेतना में कौन सा अंश साध्यमूल्य है, क्योंकि मतभेद प्रस्तुत हो जाता है।"[29]

आदर्शवाद की मान्य धारणाएँ– "मूल्यों का अस्तित्व उनमें श्रेष्ठता का भेद ओर सर्वश्रेष्ठ मूल्य का अस्तित्व आदर्शवाद की मौलिक धारणा है। इससे संबंद्ध कुछ अन्य धारणाएँ भी आदर्शवादियों के लिए माना है। इनमें से हम यहाँ तीन पर विचार करेंगे।

1. सामान्य का पद विशेष से ऊँचा है। प्रत्येक बुद्धिवंत होने के नाते भद्र में भाग लेगे का अधिकारी है।
2. आध्यात्मिक भद्र का मूल्य प्राकृतिक भद्र से अधिक है।
3. बुद्धीवंत प्राणी में भद्र को सिद्ध करने की क्षमता है। मनुष्य स्वाधीनकर्ता है।

शिक्षा में आदर्शवाद – शिक्षा आदिकाल ही विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं से प्रभावित होती चली आ रही है किन्तु इस पर सबसे अधिक प्रभाव आदर्शवाद का पड़ा है। शिक्षा के क्षेत्र में आदर्शवाद को प्रमुखता देने वालों में सर्वप्रथम प्लेटो, कॉमेनियस पेस्टालॉजी तबा के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा एक 'चेतना' अथवा बौद्धिक प्रक्रिया है जो कि बालक में सद्‌गुणों का विकास कर उसे एक प्राकृतिक प्राणी से आध्यात्मिक प्राणी बनाती है। सांस्कृतिक परम्परायें एवं ज्ञान इस क्रिया को सम्पन्न करने का साधन है।

इस क्रिया का 'साध्य का लक्ष्य' छात्र को आत्मानुभूति करने का अवसर प्रदान करना तथा उनका चरित्र निर्माण करना होता है। इस प्रकार आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा वह चेतनापूर्ण एवं बालिक प्रक्रिया है जिसमें गुरु के द्वारा शिष्य को आत्मानुभूति करायी जाती है। शिक्षा की इस अवधारणा से पता चलता है कि शिक्षा कोई एकांगी प्रक्रिया नहीं है अपितु दो ध्रुव के मध्य चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें एक ध्रुव शिक्षार्थी है जिसकी मूल प्रकृति का परिष्कार किया जाता है तथा ध्रुव शिक्षक होता है जो बालक की मूल प्रकृति का 'शोधन' एवं मार्गान्तरीकरण कर उसे शाश्वत मूल्यों एवं आदर्शों से अवगत कराता है ताकि वह प्राकृतिक प्राणी से आध्यात्मिक प्राणी में परिवर्तित हो सके।"[30]

शिक्षा के उद्देश्य तथा आदर्शवाद – "आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मा परमात्मा के चरम स्वरूप को जानना है। इसी को आत्मानुभूति आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति ईश्वर की प्राप्ति तथा परम आनन्द की प्राप्ति कहा जाता है। आत्मा–परमात्मा के हर स्वरूप को जानने के लिए आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य को चार सोपान पार करने होते हैं। प्रथम सोपान पर उसे अपने 'प्राकृतिक स्व' का विकास करना होता है। दूसरे सोपान पर उसे अपने 'सामाजिक स्व' का विकास करना होता है। तीसरे सोपान पर उसे अपने मानसिक स्व का विकास करना होता है तथा अंतिम सोपान पर उसे आध्यात्मिक स्व का विकास करना होता है।

"आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार मानव प्राणी ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है जिसका उसने असीमित शक्तियाँ प्रदान की। इन्हीं विभिन्न शक्तियों एवं क्षमताओं के योग से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए आदर्शवादी विचारक व्यक्ति को ऊँचा उठाना अथवा उसमें निहित

विभिन्न सर्वोच्च शक्तियों एवं क्षमताओं का प्रकटीकरण एवं अच्छे मार्ग की ओर ले जाना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। स्पष्ट है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण होता है और व्यक्ति के भौतिक शरीर की अपेक्षा 'आत्मा' का विशेष महत्त्व होता है। इसलिए आदर्शवाद के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य इसी 'आत्मा' का बोध करना है।"[31]

"आत्मानुभूति के लिए आत्म प्रकाशन भी आवश्यक है। आत्म प्रकाश के लिए 'सामाजिक स्व' को विकसित करना आवश्यक है। सामाजिक स्व के विकास का अर्थ है मनुष्य समाज द्वारा स्वीकृत नियमों का पालन करता है उसकी पसन्द सामाजिक स्वीकृति अस्वीकृति पर निर्भर करती है। आदर्शवादी यह मानते हैं कि मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संस्कृति है। रहन—सहन रीति—रिवाज, भाषा साहित्य, कला संगीत एवं मूल्य है। ये ही उसे प्राकृतिक 'स्व' से सामाजिक स्व की ओर अग्रसर करते हैं। समाज एवं वातावरण के साथ भली—भाँति समायोजन स्थापित करने के लिए व्यक्ति को आत्म प्रकाशन का अवसर मिलना आवश्यक है।"[32]

"आत्म प्रकाशन के लिए 'बौद्धिक स्व' का विकास आवश्यक है। यह वह स्थिति होती है जब मनुष्य का व्यवहार सामाजिक स्वीकृति अस्वीकृति से नियमित होता है। प्लेटो के विचारानुसार—

मनुष्य की बुद्धी एवं विवेक उसके समस्त आदर्शों, कृतयों एवं आध्यात्मिक चेष्टाओं का आधार होते हैं। बिना बुद्धि के ज्ञान नहीं हो सकता बिना ज्ञान के विवेक नहीं हो सकता और बिना विवेक के सत्य—असत्य शिव अशिव एवं सुन्दर असुन्दर में भेद नहीं किया जा सकता है तथा सत्यं शिवं सुन्दरम् की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

आत्मानुभूति से हम वास्तविक सत्य का दर्शन करते है। आदर्शवादियों का विश्वास है कि जब मनुष्य अपने प्राकृतिक स्व एवं 'सामाजिक स्व' से ऊपर उठकर अपने 'बैद्धिक स्व' में नियंत्रित होने लगता है तो वह धीरे—धीरे स्वतः 'आध्यात्मिक स्व' के क्षेत्र में प्रवेश करने लगता है।

प्लेटो के अनुसार — "मनुष्य की प्रवृत्ति सत्यं शिवं तथा सुन्दरम् की तरफ झुकी होती है। वह सदैव सत्य की खोज में तत्पर रहता है और जो कल्याणकारी एवं सुन्दर नहीं उसका त्याग करता है। आदर्शवादी मनुष्य को इस प्रक्रिया में प्रशिक्षित करने पर बल देते हैं।"

उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शनैः शनैः दृष्टि कोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है। इस भौतिक जगत के नानात्व से मुक्ति ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए अतः कहा भी यही गया है। सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या (ज्ञान) वह है जो मुक्ति प्रदान करे। इससे स्पष्ट हो जाता है। कि ऐसे व्यक्तित्व का चरम विकास ही आदर्शवादी शिक्षा का उद्देश्य है जिसमें व्यक्ति

आत्मानुभूति कर सत्यं शिवं तथा सुन्दरं की प्राप्ति करके। आत्मानुभूति का बोध प्राकृतिक देन नहीं है इसलिए व्यक्ति को सतत् अभ्यास एवं प्रयत्न द्वारा इसे प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।"[33] यही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। शिक्षा हमें संस्कारित कर अनेक बंधनों से मुक्त कर व्यक्तित्व का चहुंमुँखी विकास करती है।

शिक्षक तथा आदर्शवादी

प्रकृतिवादी शिक्षक को शिक्षण प्रक्रिया में नगण्य समझते हैं और उन्हें पर्दे के पीछे ही रहने का परामर्श देते हैं। आदर्शवादी विचारक ठीक इसके विपरीत कहते हैं।

"आदर्शवादी के अनुसार शिक्षक का स्थान शिक्षण प्रक्रिया में सर्वोपरी है बालक जो अन्नतः व्यक्ति है न कि शरीर उसका विकास प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा ही सम्भव है। इसलिए शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। जन्म के समय बालक में अनेक शक्तियाँ सुषुप्त होती है। शिक्षक का कार्य इन सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करना है।"[34]

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य में आदर्शवाद

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने अपने लेखन के कौशल की छवि इस प्रकार बिखेरी है। कि उसकी आभा हर क्षेत्र में "हमें ज्ञान रूप सागर के रूप में मिलती है। वैसे तो डॉ. विजय का लेखन हमें किसी न किसी रूप में एक पहलु का ज्ञान मिलता है वह इस बिन्दु में मैंने लिखने का प्रयास किया है। इनके गद्य साहित्य में 'वाक्वैदग्ध्य' और आदर्शवाद बड़ा ही रोचक रूप उभरकर आया है।

कथासंग्रह उपन्यास, नाटक, निबंध आदि सभी में बड़ी ही अनूठी ज्ञान माला मिली है। इसके कुछ मोतीयें की चमक से हम लाभान्वित हो सकेंगे।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य में वाग्वैदग्ध्य और आदर्शवाद

डॉ. विजय रचित कहानियों में आदर्शवादी प्रवृत्ति का रूप बड़ी ही रौचक एवं मार्मिकता लिए हुए है।"[35] **उलझन** कथा संग्रह में डॉ. विजय ने "जीवन की आमजन पीड़ा को अपनी शैली में लिखा है। इसमें बहुत सी कहानियों में आदर्शवादी प्रवृत्ति उभरकर पात्रों के संवादों में झलकती है। इसमें जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक छोटी–बड़ी समस्याओं का विवरण पात्रों के द्वारा कहानी में पिरोया है। जीवन के यथार्थ में हर कठिन परिस्थितियों से जूझना है जीवन के लक्ष्य प्राप्त के लिए अपना अमूल्य जीवन में एक आदर्शवादी रूप को उभारा है। आदर्शवादी परिवेश पर रचित इस कथा संग्रह में डॉ. विजय के लेखन का यथार्थवादी रूप में सीधी सच्ची सपाट बयानी है। इसके अनुभव के साथ संवेदना सौन्दर्य बोध जनित कथावस्तु का प्राधान्य होता

है। स्वयं समाज में रहकर मनोवैज्ञानिक आधार पर सभी कहानियों की रचना की है। उलझन कहानी संग्रह में प्रत्येक कहानी का मर्म बड़ा ही ह्रदयस्पर्शी है। संवादों में पात्रों की आदर्शवादी विचारधारा बड़ी ही सरलता से उभरती है।"[36]

स्वप्न और सत्य कथा संग्रह में आदर्शवाद और वाग्वैदग्ध्य

"डॉ. विजय रचित 'स्वप्न और सत्य' कथा संग्रह में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है। इसमें मानव जीवन के सामाजिक परिवेश के साथ संजोये हुए स्वप्न की गाथा है। इसमें मानवीय विचारों के साथ बुद्धि है। आदर्श और यथार्थ पर केन्द्रित है। मनोविज्ञान है और दार्शनिकता का समावेश भी मिलता है। प्रत्येक कहानी का स्वरूप पात्रों की सहजता बनाये हुए हैं। इसमें संवादों द्वारा पात्र अपने भाव और विचारों को प्रकट करते हैं। शिल्प की दृष्टि से भी हर पात्र की कथोपकथन को आदर्शवादी रूप में प्रकट किया है। भारतीय जनजीवन के मध्यमवर्गीय जीवन की गाथा में रचित कहानियाँ है। मानव मन कल्पनाओं से अपने सपनों को सजोता है। सपनों को पूर्ण करने की चाह में जीता रहता है और जीवन का मर्म अंत में यथार्थ के रूप में हमारे सामने आता है। परिस्थितियों से झूजकर अपने जीवन की भाग दौड़ करता रहता है। यही आदर्शवादी लेखन डॉ. विजय की लेखन कौशल का परिचायक है। आदर्शवादी स्वरूप हमारे जीवन की गाथा के ताने–बाने में रचित स्वप्न और सत्य के बीच की कृति है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक शिल्प में लिखित वस्तु पक्ष है। आदर्शवादी स्वरूप को उभरकर सामने आता है।"[37]

'एक और क्रांति' में आदर्शवाद और वाग्वैदग्ध्य

एक और क्रांति डॉ. विजय रचित आदर्शवादी लेखन की प्रमुख कथा है। इसमें भारत की वर्णव्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज की गाथा है। डॉ. विजय की यह कहानी एक आदर्शवादी कहानी है। जो समाज में समानता के भाव पर केन्द्रीत है।

"डॉ. अम्बेडकर समिति के अध्यक्ष श्री परमेन्द्र कुमार मेहतरे के नेतृत्व में हरिजन समाज का जुलूस निकाला। महात्मा गांधी की जय। हरिजन एकता जिन्दाबाद। जो हमसे टकरायेगा चूर–चूर हो जायेगा। इसी प्रकार के नारे लगाता हुआ मंदिर प्रवेश का जुलूस नगर के मुख्य बाजारों से निकल रहा था। सभी के मुख पर उल्लास और आनन्द की मुस्कान खेल रही थी। एक अपूर्ण उत्साह था। एक दीर्घकाल के आन्दोलन के बाद प्रशासन ने स्वयं आगे रहकर इस आयोजन का नियोजन किया था। वैसे प्रशासन सामने नहीं था। लेकिन प्रशासन ने प्रच्छन्न रूप से मंदिर की व्यवस्था समिति को इस बात के लिए मना लिया था कि वे मंदिर में हरिजन प्रवेश का विरोध नहीं करेंगे। हरिजनों ने भी बात को मान लिया था कि वे नहा–धोकर पूरी शुद्धता के

साथ मंदिर में जायेंगे। मंदिर अविकारियों ने आज सौ दिन से भी अधिक मंदिर को सजाया था भगवान की मूर्ति का सुगन्धित फूलों और पीत रेशमी वस्त्रों से बड़ा मनमोहन श्रृंगार किया था। एक विस्मयी जिज्ञासा मंदिर के पुजारियों कारिन्दों तथा सेवकों की आँखों में खेल रही थी मंदिर द्वार से लेकर ठेठ भीतर तक अच्छी तरह धुला था। स्वच्छता मुख से बोल रही थी। एक सहज आकर्षण बाह्य कलेवर देखते ही मंदिर और दर्शनों के प्रति जग रहा था।"[38] यहाँ सामाजिक समानता व एकता स्थापित करने का भाव प्रमुखता से व्यक्त है।

डॉ. विजय के लेखन में समाज के प्रति समानता के भाव के आधार इसमें मिलता है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित हमारे समाज में सभ्यता रीति–रिवाज बने हुए हैं। इसमें जीवन की शैली वर्षों पुरानी आडम्बर प्रथा का भी खण्डन किया है। हरिजन व पुजारियों के भाव में बदलाव की शैली पनप रही है। यह भावी समाज के लिए एक आदर्शवादी विचारधारा का उदाहरण है। "हिन्दुओं में ही एक बड़ा समूह दूसरी दृष्टि से इसका समर्थन कर रहा था उनका कहना था हम हरिजनों को अपने से अलग कर हिन्दू समाज को दुर्बल बना रहे हैं। इस समय संगठित हिन्दु समाज की आवश्यकता है जो बाह्य और आंतरिक आक्रमणों का सामना कर सके। अपनी संस्कृति की रक्षा का शंखनाद खुलकर कर सके। समय आ गया है। जब सारे विरोधों को भुलाकर सारे हिन्दुओं को एक हो जाना चाहिए। सांस्कृतिक अधिष्ठान पर एक संगठित भारत को खड़ा करना चाहिए। ऐसे कहने वाले जुलूस में भी थे और बाहर से भी जुलूस का समर्थन कर रहे थे। जुलूस में सर्वोदयी गांधीवादी भी थे। वे खाड़ी के नये, धुले तथा प्रेस हुए कपड़े पहने थे। गाँधी टोपी सिर पर लगाये थे। हरिजोत्थान के प्रति उनकी भावना के स्पष्ट दर्शन हो रहे थे। हरिजन जहाँ इसे अपनी जीत मान रहे थे वहीं सर्वोदयी तथा गाँधीवादी इसे गांधीवाद के जीत के रूप में ले रहे थे। सबके सहयोग के होते हुए भी पुलिस सावधान थी कट्टर पंथी अशिक्षितों के उग्रवाद के प्रति सर्तक थी। जुलूस के आगे–पीछे अपना कर्त्तव्य निभा रहे थे। कहने को यह एक सामाजिक आन्दोलन था किन्तु प्रशासन के लिए यह एक सरकारी आयोजन था मुख्यमंत्री के निर्देश पर आयोजित था जिला कलेक्टर पर भारी जिम्मेदारी डाली कि वह इस आयोजन को पूरी तरह सफल बनाया। इसलिए जिला कलेक्टर ने पूर्व में ही सभी को अपने ढंग से अनुकूल कर लिया था।"[39]

इसी प्रकार इस कहानी में आदर्शवादी भाव मुझे इस वाक्य को पढ़कर लगा। "हरिजन नेता श्री परमेन्द्र कुमार मेहतर पीछे रह गये थे। वे आगे आकर खड़े हो गये। दर्शन कर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए जैसे ही एक दीर्घ श्वास लिया मूर्ति के श्रृंगार में लगे गुलाब और

मोगरे के फूलों की सुगंध से हृदय आल्हादित हो उठा। उन्हें लगा वे स्वर्ग में आ गये हैं।"[40] कहानी में अस्पृश्यता की समस्या को बड़ी प्रमुखता के साथ व्यक्त किया गया है।

इस वाक्य में पीढ़ी दर पीढ़ी अस्पृश्यता का भाव झेलने वाले इस समुदाय को जब मंदिर में प्रवेश मिला तब प्रेम से ईश्वर के दर्शन कर स्वर्ग का भाव इस मानवजन को मिला जो वर्षों से उपेक्षित थी पंडितों के अछूत भाव को झेल रही थी वह सभी ने मंदिर में झुककर साष्टांग प्रणाम किया। सभी बहुत प्रसन्न थे क्योंकि उनके लिए प्रभु दर्शन का मार्ग खुल गया है। इस सब आयोजन में पुलिस प्रशासन मुख्य आदि सभी का भाव था की मंदिर में पुजारी महन्त जी आदि सभी समान भाव से हरिजन समाज के मंदिर प्रवेश में शांतिपूर्ण सहयोगी भाव से कार्यक्रम को संपादित करवायें। अंत में जब पत्रकारों ने जनसम्पर्क अधिकारी आदि की बातों से झुंझलाकर श्री परमेन्द्र कुमार ने दूसरे दिन अखबारों के प्रथम पृष्ठ पर अपने मंदिर प्रवेश की गाथा पढ़ी तथा एकाधिकारवाद से व्यथित हो उठे और दूसरे दिन फिर मंदिर में गये जैसे ही वे सिंहद्वार में घुसने लगे कट्टर पंथियों ने उन्हें रोक दिया। धक्के देकर बाहर निकाल दिया वे बड़बड़ाते रहे।

"आज मंदिर महन्तों की निजी संपत्ति हो गये हैं। धर्म ग्रंथों पण्डितों के यहाँ धरोहर रखे हैं। अद्वैत भाव को भूल सब अपने–अपने स्वार्थ में डूबे हैं। एक और क्रांति इनके विरुद्ध होना अभी शेष है अब समस्या जस की तस ही है। डॉ. विजय की सभी कहानियाँ सामाजिक, आदर्शवाद से सराबोर है और ये कहानियाँ आज भी समसामयिक संदर्भों में प्रासंगिक हैं।"[41]

डॉ. दयाकृष्ण विजय क नाटकों में आदर्शवाद और वाग्वैदग्ध्य

डॉ. दयाकृष्ण विजय के नाटकों के लेखन में समाजोद्धार की भूमिका मिलती है जिसमें 'आदि सम्राट' नाटक में समाज को प्रेमत्याग, समर्पण के भाव से आदर्शवाद का पदार्पण किया है। इन नाटकों के संदर्भ में डॉ. विजय ने स्वयं परिभाषित किया है कि– "नाटक जन, मन का एक सर्वग्राही प्रकार है। वह अपने में जीवन और जगत की चित्ताकर्षक घटनाओं एवं चेष्टाओं को समेटे चलता है। मानव जीवन के उज्ज्वल एवं अनुज्ज्वल पृष्ठों को उद्घाटित कर, यह न केवल मनोरंजन ही करता है, अपितु सुखद भविष्य के लिए सत्यपथ का दिशा निर्देश भी करता है।" अतः नाटक एक यथार्थ के साथ आदर्श रूप लिए भी होता है।

1. **आदि सम्राट** – "इस नाटक में डॉ. विजय ने इन्द्र के जीवन वृत्त की अधिकतम ऋग्वेदिय घटनाओं के आधार पर नाटक की सर्जना की है और इसके पीछे डॉ. विजय की की प्रेरणा का मूल है कि इन्होंने प्रस्तुत नाटक में भारतीय सांस्कृतिक विकास के इतिहास में इन्द्र की देवतारूप में पूजा, ऋग्वेद की बिखरी ऋचाओं में से इन्द्र विषयक कथासूत्र खोजकर, 'आदि सम्राट्' के वृहत्तर कथानक का चयन किया है। इस नाटक में पूर्ण रूप से ऐतिहासिकता

सत्यता को पुनः स्थापित करने हेतु ऋग्वेद को ही साक्षी बनाया है। इन्द्र के जीवन की ऋग्वेदोक्त घटनाओं को ही समाविष्ट किया है।"[42]

डॉ. विजय के इस नाटक में मुझे आदर्शवाद का आभास हुआ कि– अपने काल सन्दर्भपरक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का चित्रण इसमें समाविष्ट किया है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख हो गया है। पुरागाथिक कथ्य और कल्पना सृजित कथ्य के साथ भी 'आदि सम्राट' अपना आदर्श रूप लिए हुए हैं।

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस नाटक में प्रत्येक विषय वस्तु के अनुसार रंगशिल्प की दृष्टि से एक प्रौढ़ कृति के रूप में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय भावभूमि से विचार तथा आदर्श अभिव्यक्त किया है। इस नाटक में डॉ. विजय ने ऋषिमुनियों आश्रमों के प्रति अनुराग रखते हुए अयोध्या की पृष्ठभूमि को आधार बनाया है। इस नाटक में पात्रों के अनुरूप पुरुष पात्रों के चरित्र–चित्रण संवादों आदि द्वारा नाटक का ओज भाव ज्ञात होता है।

प्रथम अंक : निष्क्रमण

महाराज ध्रुवसंधि की मृगया खेलते समय, झाड़ी में छिपे आहत मृगराज द्वारा अचानक आक्रमण कर देने से वहीं निविड़ वन में मृत्यु हो जाती है। ज्योंकि अन्तःपुर में यह समाचार पहुँचता है अन्तःपुर शोक के अथाह समुद्र में डूब जाता है। संवेदना व्यक्त करने सभी सम्बन्धीजन जिनमें प्रमुख हैं कलिंगाधिपति वीरसेन तथा उज्जयिनी नरेश युधाजित अयोध्या आये हुए है। मनोरमा : अयोध्या की पटरानी (महाराज ध्रुवसंधि) की प्रथम पत्नी :– सिंहासन कभी रिक्त नहीं रहता। आँखों से सतत बहती पतिशोक की सरिता सूखी भी नहीं सिंहासन की व्यूह रचना प्रारम्भ हो गई। राजमंत्र कितना क्रूर है। रुदन के राजमहल में राजकुमार का अभिषेक हाय कितनी बड़ी विडम्बना है। विधि। तेरी माया बड़ी विचित्र है। आंसुओं से आंचल भिगोऊं या सिंहासन की दुरभिसंधियों से जूझूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा है...

"इसी प्रकार पात्र विद्ल्ल द्वारा कहा गया संवाद तत्कालीन परिवेश को चित्रित करता : पर पटरानी जी जिसकी आँखों पर स्वार्थ की पट्टी बंधी हो उसे अच्छी बात भी कब सुहाती है। महाराज युधाजित ने श्रेष्ठियों और मंत्रियों को भी बहुत बुरा भला कहा कहने लगे आप सुदर्शन को सिंहासन पर बैठाकर राज्य को हड़प लेना चाहते हैं। राजगद्दी पर शत्रु ही बैठकर रहेगा चाहे तलवार ही मुझे क्यों न उठानी पड़े।

मनोरमा : शक्ति के बल पर यदि राज्य की स्वीकृत परम्परायें तोड़ी गई तो कलह और विनाश के अतिरिक्त शेष क्या रहने वाला है।

विदल्ल : आपका कथन अक्षरशः सत्य है पर जिसके सिर पर स्वार्थ और अन्याय का भूत सवार हो उसे सत्य कब प्रिय लगता है। आपके पिताजी ने जब उन्हें यह कहा कि राज्य का अधिकारी पटरानी का पुत्र ही होता है तो युधाजित आपे से बाहर हो गये। दोनों राजाओं में भीषण विवाद छिड़ गया। अन्त में दोनों राजाओं ने युद्ध के द्वारा ही इसका निर्णय करने की घोषणा कर दी श्रेष्ठि जन तथा मंत्रीगण इस भयावह स्थिति को देखकर बड़े उद्विग्न हो वहाँ से उठकर चले आये।

मनोरमा : विदल्ल जी, आपने यह तो बड़ा ही दुखद संवाद किया है। हे भगवान! अब क्या होगा युगद्ध पिपासुओं ने जनमत की कब चिन्ता की है। निरंकुश पशुबल पर लोक विवेक न जाने कब प्रभावी होगा? उपर्युक्त संवादों से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिवेश हमारे समक्ष जीवन्त हो उठता है।"[43]

अतः सिंहासन की लालसा परिवारिक कलह का कारण बन जाता है और अंत में निष्पत्ति अंक में यही निष्कर्ष निकलता है कि सत्ता की लोलुपता से सामाजिक मूल्यों का हास ही होता है। जीवन में मानवीय मूल्यों का पतन हो जाता है यही आदर्शवाद का गुण डॉ. विजय के इस नाटक में हमें पढ़ने को मिला और लेखन की वाग्वैदग्ध्य का गुण उभरकर सामने आया है।

छत्रपति शिवाजी

"डॉ. दयाकृष्ण विजय ने छत्रपति शिवाजी के जीवन की अमर गाथा को इस नाटक में वर्णित किया है। इसमें उनके मराठा जीवन शैली तथा मातृभूमि के प्रति लगाव आदि के गुण व खान है। छत्रपति शिवाजी की गौरिल्ला युद्ध नीति से मराठा को मुगलों से बचाने की नीति बड़ी ही आदर्शवादी नीति थी इसमें आमजन के प्रति लगाव तथा युद्ध द्वारा शत्रु पर विजय प्राप्त करने की नीति है। राष्ट्रप्रेम के प्रति शिवाजी का व्यक्तित्व सदैव ही इतिहास में स्वर्णिम शब्दों में रचित है। डॉ. विजय ने अपने नाटक में इसकी पृष्ठभूमि पौराणिक आधार पर शिवाजी की जीवन में सामाजिक आर्थिक राजनैतिक आदि सभी शैलियों का वर्णन है। शिवाजी चरित्र चित्रण में संवादों की औजस्वी शैली मराठा भूमि के प्रति लगाव को दर्शाती है और यही शैली आदर्शवाद रचना की श्रेणी में आई है। डॉ. विजय की यह रचना हमारे ज्ञान की प्रमुखता में गुणों को भी दर्शाती है।"[44]

राग से विराग डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित इस नाटक में "'राग से विराग' तक में नर्तकी कोशा को प्रमुख पात्र के आधार पर दर्शाया है। इसमें 'कोशा' नर्तकी जैन परम्परा के एक कथानक को लेकर लिखा है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि शीर्षकों में विभाजन किया है। मानवीय 'इच्छा' जन्म से लेकर मरण तक की कोशा पर प्रभाव जमाये रहती है। पर जब इच्छाओं पर काबू किया तब ज्ञान ने जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया और संसार की इच्छाओं का दमनकर क्रियाओं से विरक्त

होकर धर्म की ओर अपने जीवन को लगा दिया। अतः धर्म की शिक्षा–दीक्षा लेकर जीवन का मर्म ईश्वर प्राप्ति में लगा दिया। संवादों की शैली सरस व प्रभावोत्पादक है। नाटक में कोशा नर्तकी ने जीवन के सांसारिक जीवन का त्याग कर ईश्वर की प्राप्ति तथा मार्ग में उन्नति की ओर अग्रसर होने की यात्रा का वर्णन किया गया है।"[45]

"डॉ. विजय ने अपने चारों ही नाटकों में आदर्शवादी लेखन को दर्शाया है, इसमें चारों नाटकों को पात्रों की संवादशैली कथानक में कसावट तथा शिल्प की दृष्टि से भी प्रौढ़ माना गया है। कथानक पौराणिक तथा ऐतिहासिक, पृष्ठभूमि पर आधारित है और पात्रों की संवाद, चरित्र, चित्रण आदि सभी में नाटकों की रोचक शैली को उजागर करती है। इससे आदर्शवादी रचना का प्रमाण हमें पढ़ने को मिलता है। आदर्शवादी पात्रों से ही डॉ. विजय की रचना शैली में भारतीयता, सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीयता का बीजवपन मिलता है। हाड़ौती के प्रमुख लेखकों में डॉ. विजय का लेखन गरिमामयी रहा है। रंगमंची दृष्टि से नये कथ्य और सामयिक संदर्भों में नाटक जीवन आदर्श प्रस्तुत करता है।"[46]

3.3 'राष्ट्रीयता'

डॉ. विजय का साहित्य राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण है। इनमें राष्ट्रीय भावना प्रमुखता से विद्यमान है।

राष्ट्रीयता का अर्थ– "किसी व्यक्ति और किसी संप्रभु राज्य के बीच के कानूनी संबंध को बोलते हैं। राष्ट्रीयता उस राज्य को उस व्यक्ति के ऊपर कुछ अधिकार देती है और बदले में उस व्यक्ति को राज्य सुरक्षा व अन्य सुविधाएँ लेने का अधिकार देता है। अधिकारों की परिभाषा अलग–अलग राज्यों में भिन्न होती है।"[47]

"आम तौर पर परम्परा व अन्तरराष्ट्रीय समझौते हर राज्य को यह तय करने का अधिकार देते हैं कि कौन व्यक्ति उस राज्य की राष्ट्रीयता रखता है और कौन नहीं। साधारणतया राष्ट्रीयता निर्धारिता करने के नियम राष्ट्रीयता कानून में लिखे जाते हैं।"[48] स्थानियता, राष्ट्रीयता और वैश्विकता के आयाम परस्परपूरक भूमिका निभाते चलते हैं। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अपनी जन्मभूमि या भूखण्ड के प्रति प्रेम की इसी अभिव्यक्ति से राष्ट्र की अवधारणा में जन्म लिया। हमारे वेद यजुर्वेद इसी राष्ट्र के प्रति जागरुक होने का आवाहान करता है।

"व्यं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः।"[49]

राष्ट्र–निर्माण के लिए जरुरी घटकों में देश, जाति, धर्म, संस्कृति और भाषा मान्यता दी जाती है। देश से आशय उसके अपने भूगोल से है जाति वहाँ रहने वाले जनसमुदाय की बोधक

है और फिर सबको धारण करने वाले धर्म का होना भी जरुरी है ये सब विशेषताएँ राष्ट्रीयता के लिए बेहद जरुरी है– "राष्ट्रवाद से एक साझी साम्प्रदायिक पहचान समावेशित है। यह एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में अभिव्यक्त होता है, जो किसी क्षेत्र पर साम्प्रदायिक स्वायत्तता और कभी–कभी सम्प्रभुता हांसिल करने और बनाए रखने की ओर उन्मुख हैं। इसके अतिरिक्त, साझी, विशेषताओं जिनमें आम तौर पर संस्कृति, भाषा, धर्म, राजनीतिलक्ष्य और आम साम्प्रदायिक पहचान के विकास और रख–रखाव की ओर यह और उन्मुख है।"[50]

राष्ट्रनिर्माण के लिए जरुरी घटकों में देश, जाति, धर्म, संस्कृति और भाषा को मान्यता दी जाती है। डॉ. विजय के सृजन में राष्ट्रीयता का भाव प्रमुख रूप से उद्घाटित है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' राजस्थान के सरस्वती साधकों की परम्परा में आने वाले एक प्रतिष्ठित साहित्यकार है। साहित्य उनका मुख्य कर्मस्थल है और इनमें उनकी प्रतिष्ठा राष्ट्रीय धरातल पर है। साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अर्थात् 'भारतीयता' का सबल प्रमाण है। हमारी संस्कृति आध्यात्म प्रधान है, जिसमें आत्मिक उन्नयन सर्वोपरि है। हमारी संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम का भाव सर्वोपरि है।

राष्ट्र की परिभाषाओं में गिनाये बाह्य काल (मंत्रकाल) शिवकाल (तंत्र काल) और इन्द्र विष्णु काल (यंत्र काल) है ये हमारी भारतीयता के प्राण तत्व है। इसमें भूमि और जनमानस के साथ जहाँ संस्कृति की एकात्मकता सुनिश्चित होती है वहाँ राष्ट्र का स्थायित्व सुस्थिर होता है। संस्कृति की अपनी एक सुदीर्घ सुस्थापित परम्परा होती है उस परम्परा का अपना एक इतिहास विशेष होता है। उस इतिहास के निर्माण में अनेक राष्ट्र पुरुषों की लोक हितैषी शक्तियों का सन्निवेश होता है। वे राष्ट्र पुरुष बार–बार उद्धरणीय एवं स्मरणीय होते हैं। मातृभूमि के प्रति भक्ति तथा जन के प्रति आत्मीयता का भाव सांस्कृतिक मूल्य है। यहीं तीनों मिलकर राष्ट्र को राष्ट्र बनाते हैं। राष्ट्र किन्हीं सम्प्रदायों तथा जनसमूहों का समुच्चय न होकर एक जीवमान ईकाई है। "राष्ट्रवादी सोच मानवमात्र के हित को अपने राष्ट्र हित से पृथक नहीं मानता वे भूल जाते हैं, राष्ट्रवादी भारत के तन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने ही माना है। 'माता भूमि पुत्रोऽह्य पृथिव्याः।' इन्होंने ही वासुधैव कुटुम्बकम् तथा सर्वेभवन्तु सुखिनः जैसे विश्वात्मक वैश्विक मंत्र दिये हैं। सारा विश्व राष्ट्रों में बँटा है। हर राष्ट्र की अपनी संस्कृति है। हर राष्ट्र की अपनी भाषा है। जिन राष्ट्रों ने परकीय भाषा एवं संस्कृति अपना रखी है। वे पूर्व में उस राष्ट्र के प्रभुत्व में पराधीन रह चुके हैं वे राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र होकर भी संस्कृति एवं भाषाई दृष्टि से आज भी पराधीन ही है। जिन राष्ट्रों की अपनी भाषा एवं संस्कृति नहीं होती निश्चय ही वे राष्ट्र कहलाने योग्य पात्र नहीं है।"[51]

डॉ. विजय ने राष्ट्रीय एकता को अपने साहित्य में स्वाभिमान एवं गौरव के भाव के साथ अभिव्यक्त किया है। मातृभूमि एवं जन के प्रतिभाव तथा संस्कृति के गौरवगाान में राष्ट्रीयता के मूल तत्व विद्यमान रहते हैं। इन्हीं तत्वों का जहाँ भी जिस रूप में भी हम प्रकटीकरण हुआ पाते हैं उसे हम राष्ट्रीय सांस्कृतिक कर्म की संज्ञा दे सकते हैं। ऐसा आचरण जीने वाले वहाँ की संस्कृति है। हमारा संस्कृति का यह उदार चरित्र हमारी राष्ट्रीय एकता को आध्यात्मिक धरातल पर खड़ा करता है। हमारी राष्ट्रीयता में कट्टरता या आतंक के लिए कोई स्थान नहीं है। डॉ. 'विजय' "अपने निबन्ध में राष्ट्रीयता को व्याख्यायित करते हुए कहते है कि– "हर में पित गौरी मात, स्वदेश, भुवन त्रयम्।" तीनों लोक मेरे लिए स्वदेश हैं। कहाँ है कोई दुरावः काई संकोचः, कोई क्षुद्र दौर्बल्य।

भारत एक अतीव प्राचीन राष्ट्र है। इसकी राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप राजनैतिक नहीं सांस्कृतिक है। अनेकों राजनैतिक परिवर्तनों के आते भी भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता अविच्छिन्न रूप से आज तक चली आ रही है। न तो कोई राजनैतिक आँधी उस पवित्र कल्पतरु को हिला सकी है न आतंक का कोई बवंडर उस चिंतामणी के महत्त्व को मिटा सका है। संस्कृति की नींव पर खड़ा भारतीय राष्ट्रीयता का वह भवन उसी जीवन्तता तथा उसी ऊर्जा के साथ आज भी जगमगा रहा है। उन्नति एवं प्रगति की ओर सतत् गतिशीलता के साथ अग्रसर है। इसके सर्वात्मवादी सोच ने ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' जैसा उदात्त उद्घोष दिया। उपनिषदों ने लिखा 'आत्मवेत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः।' वेदों ने 'संगच्छध्व सं वदहवे सं वो मनांसि जानतामं' का ही मंत्रपाठ किया है, यही इसकी राष्ट्रीय तथा संगमनी शक्ति है। तुलसीदास रचित रामचरितमानस में यही गाता रहा। 'सियाराम मय सब जग जानी करहुँ है। प्रणाम जोरि जुग पानी' उसने सृष्टि को पुरुष प्रकृति की संहिति ही माना तथा युति को ही प्रणाम किया है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सदैव ही साहित्य का प्राणतत्व रही है। पराधीनता के काल में भी इसी कारण संस्कृति की प्रधानता रही।"[52]

"बाह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहुराजन्यः कृतः
उरु तदस्य यद्वैश्यं पद्मयां शूद्रो अजायत।"[53]

अर्थात् राष्ट्र पुरुष का मुख ब्राह्मण, बाहुराजन्य, उरु वैश्य तथा पाद शूद्र है। चारों वर्णों के संघात से ही राष्ट्रपुरुष का निर्माण होता रहा है। समाजजीवन के चार प्रकार की मनुष्य प्रकृतियाँ कार्यरत है। बुद्धी, शक्ति, अर्थ तथा श्रम प्रवृति। बुद्धी ज्ञान का पथ प्रशस्त करती है। शक्ति सीमाओं की रक्षा करती है। आन्तरिक अराजकता का शमन करती है। अर्थ औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास का हेतु है तथा श्रम विकास की योजनाओं की सम्पूर्ति का एकमेव साधन है।

भारतीय राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण विवरण डॉ. विजय रचित निबंध संग्रहों में अधिकांश दिखाई देता है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय के निबंध संग्रह

1. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य – प्रस्तुत निबन्ध में डॉ. विजय ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की मूल चेतना पर विस्तार से प्रकाश डाला है। भारतीय राष्ट्रीय एकता के स्वरूप का जितना स्पष्ट दर्शन हमें अबाध एवं अविच्छिन्न प्रवाहित संस्कृतिधारा में होता है उतना राजनैतिक धारा में नहीं मिलता। सप्तद्वीपी साम्राज्य ब्रह्मा के मानस पुत्रों का कहा जाता है, फिर भी आर्यावर्त उत्तर भारत में बताया जाता है। शैव साम्राज्य के प्रमाण विश्व में आज भी खनन में प्राप्त हो रहे हैं तो भी मानचित्र में उसे कहीं कोई स्थान दिया हम नहीं देखते। भारत का अतीत गान ही स्वतन्त्रता संग्राम में राष्ट्रीय एकता का भाव जगाने वाला रहा है और यही अतीत गान आज भी भ्रमित चिन्तनीय अवस्था में आलोक स्तम्भ का काम कर सकता है। हमारी राष्ट्रीय एकता हमारी विराट पवित्र सांस्कृतिक परम्परा पर प्रहार पर प्रहार का खण्डित करने के प्रयत्न हजार वर्षों से निरन्तर हो रहे हैं। किन्तु इसके अधिष्ठान की सुदृढ़ता देखें, प्रतिबद्ध प्रयत्न ही टूटे, भारत की परम्परा की लड़ी नहीं टूटी उन्हीं के गगन चुम्बी शिखर देह मेरी संस्कृति आज भी अपसंस्कृति के प्रवाह को रोकने में ही नहीं उन्हें भी सद्संस्कृति से उपकृत करने हेतु कृत निश्चयी लगती है। क्षुद्र, संकुचित, साम्प्रदायिक, जातीय कट्टरता नहीं उदार व्यापक विश्व दृष्टि ही अन्ततः विजयिनी होगी। भौतिकता के विनाशकारी दानवी मुख को आध्यात्म का चंदन लेप ही सौन्दर्य प्रदान करेगा। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपने नाट्य गीत में कितना सार्थक तथ्य सत्यता के साथ कहा है–

> **"अरुण यह मधुमय देश हमारा।**
> **जहाँ पहुँच, अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।"**[54]

प्रसाद ने देश को मधुमय कहा, प्रगतिशील नहीं मधुमय भूमिका आध्यात्म की अंतिम सीढ़ी है। साहित्य की प्राण है। विश्व के अहम ग्रस्त क्षितिजों को प्रसाद ने कितनी सरलता सहजता से अनजान अर्थात् अज्ञानी कह दिया। साथ ही यह भी कह दिया अन्ततः उन्हें भारत में ही अपने सुखद भविष्य के लिए सहारा मिलेगा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त 'भारत भारती' ने नवजागरण का तुर्य जिस शक्ति के साथ फूँका वैसी पुस्तक उस समय दूसरी थी ही कहाँ। वे युगधर्म से पहले राष्ट्रधर्म के प्रवक्ता थे। कलम और कर्म दोनों से स्वतन्त्रता सेनानी थे। उनमें जातीय गौरव का सकारात्मक अभिमान था। गाँधीदर्शन को उन्होंने शब्द ही नहीं दिये, उसे पूरी निष्ठा से जीवन में जिया।

'डॉ. दयाकृष्ण विजय' ने राष्ट्रीयता के प्रति अपने लेखन में पूर्ण समपर्ण भाव दिया है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य "निबंध के प्राक्कथन में डॉ. विजय 'राष्ट्रवाद' को एक राजनैतिक अवधारणा बताया है। वस्तुतः राष्ट्र व धारणा एक भू सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है।" उसमें सरलता एवं संवेदनशीलता है। कोई भी राष्ट्र साहित्य के माध्यम से अपनी 'चिति' को व्यक्त करता है। चिति राष्ट्रीयचित्त की अभिव्यंजना है। यही अभिव्यंजना अभिव्यंजित है। भारतीय भू–संस्कृति की सौंधी सुगंध को महकाते इन निबंधों का अभिनन्दन एवं निबंधकरण का अभिवादन इसी प्रकार डॉ. दयाकृष्ण रचित निबंध संग्रह 'वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका' में निबंध, 'प्रखर राष्ट्रभाव देश की संजीवनी' निबंध आदि में राष्ट्रभाव की विवेचना से पूर्व, "राष्ट्र शब्द का वागर्थ जान लेना आवश्यक है। निश्चित भूमि, निश्चित जन तथा एक निश्चित संस्कृति का सम्मुच्य राष्ट्र का बोध कराता है। भूमि विशेष के प्रति रागात्मक भाव रख एक संस्कृति–सूत्र में बँधा जन विशेष जहाँ बन्धुत्व भाव से जीवनयापन करता है, वह भू–भाग राष्ट्र की संज्ञा से अभिसिक्त होता है। राष्ट्र को आधार बनाकर किया गया हित चिंतन राष्ट्रीय चेतना है।"

"राष्ट्रभाव का अर्थ है नागरिक की निष्ठायें देश के बाहर न हों। देशभक्ति के लिए देश के प्रति अनन्य निष्ठा का भाव आवश्यक है। कोरी भौगोलिक निष्ठा नहीं होती सांस्कृतिक निष्ठा तथा जन के प्रति आत्मीयता का होना भी आवश्यक है। तीनों की संहिति ही नागरिक को वहाँ का राष्ट्रीय बनाती है। राष्ट्रभाव सम्पन्न व्यक्ति ही आदर्श नागरिक होता है।"[55]

राष्ट्रीयता एक सांस्कृतिक अनुष्ठान है यह साहित्य में व्यक्त होती है। धर्म किसी किताब पर आधारित नहीं होता। वह तो स्थिर न होकर एक गतिमान विवेकपूर्ण समय सापेक्ष लोककल्याणकारी कर्म है। वह लोकाराधन का लोकनीति सम्मत सोपान है। राष्ट्रभाव पूजा पद्धतियों से ऊपर है जिसने इस सत्य को जान लिया, वह अपनी भिन्न पूजा पद्धति के होते हुए भी सच्चा राष्ट्रीय सिद्ध हुआ है और उसने देश एवं समाज के लिए अपने प्राणों तक को हमने तनिक संकोच नहीं किया है। लोकतंत्र एक जीवन पद्धति है, उसे राष्ट्रभाव नहीं कह सकते। "लोकतांत्रिक मूल्य केवल परस्पर के व्यवहार का आचरण निर्धारित करते है। वे व्यक्ति के संविधान प्रदत्त नागरिक अधिकारों का संरक्षण करते हैं। जिन्हें हम मानवाधिकार कह सकते हैं। इसी तरह न्याय पद्धति भी राष्ट्रीयता नहीं न्याय व्यवस्था मानवाधिकारों की संरक्षिका भर है। व्यक्ति के न्यायिक हितों के रक्षण के लिए आवश्यक भी समाज एवं देश शांति तथा व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व ही नहीं सामाजिक एवं संवैधानिक नागरिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व ही नहीं सामाजिक एवं संवैधानिक नागरिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व भी न्याय व्यवस्था पर होता है।"[56]

डॉ. विजय यहाँ परिभाषित करते हैं कि प्रखर राष्ट्रभाव ही आज देश की एक मात्र संजीवनी है इसके बिना विद्रुपताएँ, विसंगतियाँ तथा अवमानकारी, वृत्तियाँ समाप्त नहीं होने वाली है। राष्ट्रभाव जगाएँ यह सनातन राष्ट्र जाग्रत, जीवित एवं चैतन्यमय हो उठ खड़ा होगा।

राष्ट्र एक व्यापक शब्द प्रयोग है। यह भूमि जन एवं संस्कृति की जीवन्त एकता का प्रतीक शब्द प्रयोग है। निश्चित भू–भाग पर एक समान सांस्कृति परम्पराओं को जीने वाला जन वहाँ का राष्ट्रीय कहा जाता है। राष्ट्र में व्यक्ति और समाज दोनों समाहित है। राष्ट्र के इस त्रिभुज में आबद्ध होने के बाद भूमि मिट्टी का लोथ भर न रहकर। स्वर्गादपि गरीयसी तथा जनमात्र नागरिक न रहकर कौटुम्बिक सूत्र में बंधा आत्मीय जन हो जाता है। सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था जनित निष्ठा ही जन को राष्ट्रीय बनाती है। आत्मीयता के अधिष्ठान पर खड़ा बंधुत्व भाव ही राष्ट्र की नींव बनता है। राष्ट्र किन्हीं सम्पदाओं अथवा जनसमूहों का सम्मुच्च न होकर एक जीवमान ईकाई है।

जब हम यह कहते हैं भारत एक राष्ट्र है तब हमारे सम्मुख भारत का भूगोल ही नहीं, सनातन संस्कृति की अविछिन्न परम्परा गौरवशाली इतिहास सभी महापुरुष तथा देश पर प्राण न्यौछावर कर देश और समाज की रक्षा करने वाले सारे हुतात्मा आ जाते है। समाज और संस्कृति दोनों ही राष्ट्र के अभिन्न है। समाज और संस्कृति दोनों ही राष्ट्र के अभिन्न अंग है। समाज स्वीकृत सांस्कृतिक दृष्टि ही एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से पृथक करती है। पृथकता की यह स्वीकृति ही राष्ट्रवाद को जन्म देती है। राष्ट्रवादी अपने राष्ट्र का हित ही प्रथम देखता है। संस्कृति उसके चिंतन का अधिष्ठान बनाती है। अभिव्यक्ति या क्रिया का जो सहमतम तथा मधुरतमद भाव है, वही संस्कृति है। देश की सीमाएँ जब आक्रांता होती है तब राष्ट्रभाव जगकर देश रक्षार्थ खड़ा हो जाता है। भूमि के प्रति जन की अनन्य भक्ति सहसा चेतना सम्पन्न हो मर मिटने तक को प्रस्तुत हो जाती है। संस्कृति के आप्त हुतात्मा पुरुषों का प्रेरणास्पद इतिहास जन प्राणों में सर्वस्व होने का बलिदानी भाव जगा, नवीन ऊर्जा का संचार करने लगता है। राष्ट्रीय चेतना ऐसी भावात्मक सत्ता है जिसके सम्मुख भूमिजन एवं संस्कृति की रक्षा का भाव ही प्रमुख रहता है यह सही है रक्षा का रूप तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल नवीन–नवीन स्वरूपों में सामने आता है लेकिन सभी स्वरूपों की आत्मा राष्ट्र भावापन्न ही होती है। देश भक्ति तो एक शाश्वत भाव है। निरन्तर रहने वाली सोच है हर स्थिति में राष्ट्र आराधन, देश स्तवन तथा संस्कृति कीर्तन का भावजन बना रहता है। वह यही गाता रहता है।

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"[57]

राष्ट्र भाव ही बंकिम बाबू से 'वन्देमातरम्' लिखवाता है, राष्ट्र भाव ही माखन लाल चतुर्वेदी को बलिपथ पर पहुँचने वाली सर्वे समर्पित शब्दाभिव्यक्ति देता है।

"मुझे तोड देना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाये वीर अनेक।"[58]

इसी भाव को डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने राष्ट्रीयता के भाव को गया प्रसाद शुक्ल सनेही युवा हृदयों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाते हुए बोल उठते हैं–

"जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।"[59]

राष्ट्र कवि पं. सोहनलाल द्विवेदी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी की भावनाओं को ही आगे बढ़ाते हुए गा उठते है–

"वन्दना के इस स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो,
हो जहाँ बलि शीश अगणित एक सिर मेरा मिला लो।।"[60]

सुभद्रा कुमारी चौहान ने बुन्देलखण्ड के गौरवशाली इतिहास को जिन पंक्तियों से मुखरित किया, वह जय घोष जन–जन का कण्ठहार स्वतन्त्रता काल में बन गया था–

"बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह जो झांसी वाली रानी थी।"[61]

शत्रु के मन में प्राणों के लाले पटकने वाले बालकृष्ण शर्मा नवीन की हिलोरे ऐसी उठी कि हर स्वतन्त्रता सेनानी उन्हें दुहराने लगा था–

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जाये।"[62]

डॉ. विजय के कवि हृदय में राष्ट्रीय भावना का भाव बड़ा ही उन्मत्ता के साथ उनके निबंध लेखन में हमें मिला बूँदी के राज कवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने तो उन्नीसवीं सदी में ही राष्ट्रभक्ति जगाने वाली वीर सतसई का प्रणयन कर भारत भक्ति का भाव जनता में जगा दिया था–

"इला न देनी आपणी हालरिये हुलराय
पूत सिखावे पालणे, मरण बढ़ाई माय।"[63]

माताएँ मातृभूमि पर मरण की महत्ता पुत्रों को पालने में सिखाने लग गई थी। भले ही प्राण चले जायें परन्तु अपनी धरती शत्रु को नहीं देनी है कानपुर के डॉ. विश्वास शुक्ल का गीत–

"हम करें राष्ट्र आराधन
तन से मन से जन मन धन जीवन से
हम करें राष्ट्र आराधन।"[64]

आज भी स्थान–स्थान पर राष्ट्र आराधना का भाव जन–जन में जग रहा है। डॉ. विजय कहते हैं मैंने अपने खण्ड काव्य 'एक अधूरा अश्वमेघ' में राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान को उद्घोष इन शब्दों में किया है–हम ब्राह्मण नाग आर्य कोई सब एक राष्ट्र की संताने। एक हाइकु में मातृभूमि पर पग धरने के लिए भी इन शब्दों से मैंने क्षमा माँगी है–

"हे मातृभूमि
मेरा पांव धरना
क्षमा करना।"[65]

यहाँ संक्षिप्त शब्दों में गागर में सागर समहित है। राष्ट्र प्रेम की झलक डॉ. विजय के शब्दों में हमें मिलती है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र तथा राष्ट्र की 'सृष्टि पूर्ण मणियों के रूप में सम्पूर्ण विश्व में चमकती है। सामंजस्य तथा समन्वय ही शांति एवं सुख के वाहक है, न तो व्यक्ति के बिना समाज है, न समाज के बिना राष्ट्र का अस्तित्व है तीनों की अपनी स्वतंत्र सत्ता भी है और एक दूसरे के पूरक के रूप में ये तीनों कार्यरत हैं। संस्कृति जो राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग है, उसकी सिद्धि भी इसकी एकता में ही निहित है आत्मीय भाव का जागरण सांस्कृतिक एकता पर ही निर्भर करता है, अन्यथा देश विभाजन तथा आंतकवाद के विषाणु पनपकर राष्ट्र की नींवे हिलाकर रख देंगे। देश को खंड–खंड कर देंगे।

भारतीय सोच में एकात्मकता का भाव प्रमुख रहा है। उसमें व्यक्ति, परिवार समाज राष्ट्र एवं सृष्टि से लेकर परमेष्टी तक का निरन्तरता में विचार किया है। संस्कृति ही व्यक्ति और राष्ट्र की नैतिक पूंजी। डॉ. विजय एक हाइकू में कहते हैं–

"जुगनू बोला, पंथी चिंता न कर मैं तेरे साथ।"[66]

अतः राष्ट्र भाव की शैली डॉ. विजय के निबंध संग्रहों में बढ़ी ही आत्मीयता के साथ विविध विषयों के साथ व्यक्त हुई है।

3.4 मानवीय मूल्य व उपन्यास

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के लेखन में मानवीय मूल्य विविध रूपों में उद्घाटित हुए हैं। व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार के मूल्यों का भाव तत्त्व मानव की मानवीयता पर ही निर्भर करता है। कड़ी से कड़ी जोड़कर मानव धारा को जोड़ा है। इसमें जीवन का प्रेम राग है। करुणा, प्रेम, दया, परोपकार, भावना द्वारा ही जीवन की राग माला चलती है। मानव जीवन परस्पर प्रेम द्वारा ही बँधा है। साहित्य का प्रयोजन अत्यन्त व्यापक है। साहित्य मानव संस्कृति, सभ्यता तथा मानवीय चरित्र की अभिव्यक्ति करता है। मानव मूल्यों के अभाव में कोई भी साहित्य निरुद्देश्य ही होता है।

"किसी भी रचना की श्रेष्ठता और सफलता उसके उदात्त विचारों और सघन संवेदनाओं का परिष्कृत आस्था के उन केन्द्र बिन्दुओं की स्तुतियाँ है, जीवन मूल्यों की दिशा का संकेत देते है। वाग्देवी सरस्वती का स्तवन हो अथवा विष्णु प्रिया लक्ष्मी की वंदना, ज्ञान और लालित्य से मंडित होकर उच्चतर मानवीय मूल्यों के विकास को सूचित करने वाली प्रतिमाएँ है।" विकसित और उन्नत जीवन की अभीष्ट सिद्धियों का मार्ग इनके माध्यम से प्रशस्त होता है। आदि कवि से लेकर व्यास, कालिदास, मध्यकाल में शंकराचार्य, चारों वैष्णव आचार्यों, जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी आधुनिक कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, सुब्रह्मण्यम भारती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रसाद, पंत, निराला सभी ने अपनी वाणी को इनके प्रसाद से धन्य किया है। डॉ. 'विजय' इस उज्जवल थाती को सहेजते हैं तो परम्परा का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य में मानवता प्रेम एवं विश्व बन्धुत्व की भावना को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। 'वसुधैव कुटम्बकम' का उद्घोष करता हुआ इनका गद्य साहित्य सम्पूर्ण विश्व को अद्वैत भाव से देखता है। मानवता एवं सेवा के अधिष्ठान पर खड़ा यह भवन ज्ञान के प्रकाश से आलोकित है जिसमें कहीं भी संकुचितता क्षुद्रता तथा विभेदात्मकता लेशमात्र भी नहीं दिखायी देती है। डॉ. विजय ने समरसता के सिद्धान्त की भी प्रतिष्ठा की है वस्तुतः मानव के सांस्कृतिक उत्थान की अवस्था में वर्ग, वर्ण, राष्ट्र आदि के बंधन टूट जाते हैं तथा ईर्ष्या द्वेष संघर्ष के स्थान पर ममता, वात्सल्य, स्नेह की स्थापना होती है। इस प्रकार समरस आनन्द तक पहुँचने वाली शक्ति मानव की अन्तर्रात्मा का स्वर ही उसकी जीवनावस्था है। संस्कृति और प्रकृति की विविध छटाओं में दीप्त देश के गौरव को रेखांकित करने के पश्चात् लेखक की भाव धारा में मानवीय भाव का नया मोड़ आता है। इसमें कवि व्यक्ति सत्ता को जनोन्मुख करते हुए अपने देशवासियों के रागात्मक संबंधों उनके सुख, दुःख, आशा, निराशा, गति, अगति, आदर्श यथार्थ आदि से जुड़े प्रसंगों पर अपनी चिंता को प्रक्षिप्त करता है। इनमें हम जीवन के विभिन्न रूपों के साथ कवि के

तादात्म्य को देख पाते हैं। गहरी राष्ट्रीय चेतना, जनसाधारण के प्रति लगाव राजनीति, जागरुकता, स्वाधीन राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता और स्वतन्त्रता के प्रति अटूट निष्ठा कर सकते हैं। विकास के पथ पर चलते हुए आजादी का दुरुपयोग कर गुमराह करने वाली शक्तियों के प्रति सावधान सुचिंतित अभिप्राय कवि के दायित्व बोध की सूचना देते हैं। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने शब्दों को औजार बनाकर वह अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए जहाँ चाहते हैं चोट कर सकते हैं इसी से उनके लेखन का गंभीर भाव प्रकट होता है।

"डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित निबंध संग्रह 'वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका' में रचित निबंध 'एकात्म मानववाद और हिन्दुत्व' में भारतीय जीवन दृष्टि पर विचार कर लेना होना, कि भारतीय जीवन दृष्टि भवन, अद्वैत वेदान्त की एकात्मकता के अधिष्ठान पर खड़ा है। भारतीय अद्वैत वेदान्त ज्ञान की खोज का अंतिम सोपान है। एक परम चेतन सत्ता ही अखिल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कारण तत्व है। सृष्टि उसकी इच्छा का ही परिणाम है। डॉ. विजय के अनुसार यहाँ सृष्टि का उदय और विलय दोनों उसी में है। जड़ चेतन केवल नाम भेद भर है। यह एकात्मकता ही परम भाव के रूप में भारतीय तत्त्व चिंतन में सर्वदा अवस्थित रही है।"[67]

"सर्वे भवन्तु सुखिन का विचार लेकर चला है। सर्व ही उसकी एकात्मकता का विस्तार है। भारत के इस अद्वैत चिन्तन को विचक्षुण मनीषियों ने आध्यात्म कहा है। आत्म का सर्वांगीण समग्र परिज्ञान ही आध्यात्म है। भारतीय जीवन दृष्टि की आध्यात्मिकता उसका स्वभाव है। उसके चिन्तन का अधिष्ठान तथा सोच का आधार है। वह अपने व्यवहारिक जीवन के हर विचार एवं आचरण को आध्यात्मिक एकात्यता के निकष पर कसकर ही निर्णीत तथा व्यवहृत करता है।"[68]

मानव–मानव के बीच के सम्बन्धों को जब इस आध्यात्मिक एकात्मकता की कसौटी पर कसकर विचारा एवं आचारा जाता है, तब वह सामूहिक चिन्तन तथा निरन्तर आचरित आचरण अन्ततःवाद का रूप ले लेता है। 'वाद' भाषिक दृष्टि से एक नवीन शब्द है। यह 'नीति' का पर्याय कहा जा सकता है। मानव, मानव के बीच के संबंधों को 'मानववाद' इस संज्ञा से अभिहित किया जाता है। बाल की खाल खींचने वाले तथाकथित पश्चिमी दार्शनिका ने मानवतावाद को बड़ी संकुचित व्याख्या कर सुपरमेन की और कल्पना कर डाली है। परिणामतः बुद्धी शक्ति और अर्थ बल के आधार पर उन्होंने मानव मानव के बीच की दीवार खड़ी कर दी। सबल को निर्बल के शोषण तक का अधिकार दे दिया। ऐसी विभेदक बुद्धी का प्रतिकार बाद में तत्व मनीषियों ने 'मानवतावाद' कहकर किया।

"मानवतावाद, आध्यात्म को व्याख्यायित या संदर्भित करने में असमर्थ है। अध्यात्म एक जीवन दृष्टि है। विश्व की एकात्मता के सोच की सीमा है। इसी सीमा पर खड़े होकर ही नीति

का निर्धारण किया जाता है। तथा यहीं से नैतिक मानुष भाव का प्रारम्भ होता है। सृजनतया का उदय होता है। मानवता आध्यात्मिक सोच का परिणाम है। इस संदर्भ में एकात्म मानववाद, अध्यात्म के अधिक निकट है। अकेला मानववाद वह अर्थ नहीं दे सकता है जो एकात्म के आगे जुड़ जाने पर उत्पन्न होता है। एकात्म मानववाद कहने पर मानव मानव के बीच न तो विभेद की कल्पना शेष रहती है न शोषण की तब सृष्टि ही एक कुटुम्ब एक नीड़ रहती है। न वहाँ कोई श्रेष्ठ है न कोई निकृष्ट। सब एक अभिन्न और एकात्म है। जहाँ एकात्मता का भाव है वहाँ दया, ममता, करुणा, सहानुभूति, परोपकार, दान, त्याग जैसे नैतिक भाव सहज उद्भूत हो आते हैं। वहाँ शोषण वंचना जैसे दुर्भाव जन्म ही नहीं लेते। सही एकात्म मानववाद की विशुद्ध परिकल्पना है।"[69]

समाज में शांति व्यवस्था रहे। अराजकता, विद्रोह, आतंकवाद आदि न रहे। शासन ने उसके लिए विधि बनाकर दण्ड का प्रावधान किया है।

अभ्यास स्वभाव की नींव है। इसलिए विद्वानों ने निरंतर सत्संग की बात कही है। अभ्यास एवं वातावरण स्वभाव के अधिष्ठान है। मन के संयम की सहज विधि है। जिस दिन संयम स्वभाव बन जाता है, मन की चंचलता स्थिरता वर लेती है, तब वह स्वतः आध्यात्मिक औदात्य की ओर अग्रसर होने का सन्नद्ध हो जाती है भारतीय सोच ने इसलिए दण्ड से अधिक संस्कार को महत्त्व दिया है। अतः मानव जीवन की व्याख्या डॉ. विजय ने करते हुए बताया है कि मानवीय संवेदना मानव व मानव के बीच की कड़ी है।

मानव से मानव जुड़कर परिवार, परिवार से समाज तथा समाज से राष्ट्र का निर्माण हुआ है। मानव–मानव के बीच के मधुर सात्विक एवं न्यायिक संबंधों को निर्धारित करने में भी पूरी तरह सक्षम एवं समर्थ है। यूरोपीय मानववाद अथवा मानवतावाद दोनों को अपनी व्यापकता के आगे बौना सिद्ध कर देता है। दण्ड की तो कोई सत्ता वहाँ रहती ही नहीं दण्डविहिन राज्य तक इसी से पहुँचा जा सकता है। आध्यात्मिक दृष्टि भारतीय दृष्टि है, भारतीय इसी आध्यात्मिक दृष्टि के निकष पर प्रत्येक आगत समस्या को कस भले बुरे का, देशकाल का विचार कर, विधि निषेध का, निर्धारण करता है। जो कर्म मानव के विकास, उन्नति एवं अभ्युदय के साथ–साथ उसके निःश्रेयस का भी विचार कर निष्पन्न होता है वह आध्यात्मिक कर्म है। नैतिक कर्म है। अन्ततः यही मानव धर्म बनता है। धर्म का संबंध न तो किसी जाति से है न किसी सम्प्रदाय से है। यह तो परिस्थिति विशेष में विचारित, मानव द्वारा सम्पूर्ण मानवता के हित साधन के लिए किया गया कार्य है। इसमें परिस्थितियों का ही नहीं मानवता की संरक्षा का भाव सन्निहित होता है। मानवता के हित में अधर्म तथा अन्याय के समूल विनाश के लिए की गई हिंसा भी तब धर्म बन जाती है। इस तरह

धर्माधारित कर्म ही व्यापक परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक नैतिक तथा पुण्य का कार्य है। भारत के संदर्भ में यही भारतीयता है।

डॉ. विजय ने मानवीय व्यवस्था, शांति प्रेम द्वारा ही स्थापित करने की बात कही है। अभ्यास एवं वातावरण स्वभाव के अधिष्ठान है। मन के संयम की सहज विधि है। जिस दिन संयम स्वभाव बन जाता है। मन की चंचलता स्थिरता वर लेती है, तब वह स्वतः आध्यात्मिक औदात्य की ओर अग्रसर होने का सन्नद्ध हो जाती है। 'एकात्म मानवतावाद और हिन्दुत्व' में डॉ. विजय ने इस गद्यांश में एकात्म मानववाद पर भारत की आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के लिए प्रयुक्त सही सम्बोधन है। यह आध्यात्मक आध्यात्मिक सोच तथा मानव संबंधों की सही परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करता है। यह मानव मानव के बीच के मधुर सात्त्विक एवं न्यायिक संबंधों को निर्धारित करने में भी पूरी तरह सक्षम एवं समर्थ है।

एकात्ममानववादी दृष्टि भारतीयता की या हिन्दुत्व की गुणात्मक शक्ति की ही परिचायिका है। भारत के व्यापक सोच को एकात्म मानववाद अपने में समेटे हैं। भारती आध्यात्मिक दृष्टि की उदार, व्यापक तथा उदात्त चेतना को पूर्णतः परिभाषित करता है। ऐसा सार्थक शब्द है जो मानववाद के आगे जुड़कर यूरोपीय मानववाद की संकुचितता को एक व्यापक आयाम तथा एक विस्तृत उदार फलक प्रदान करता है। मानव समुदाय को आत्मीयता को बाहुपाश में बाँध लेता है। यही भारतीयता का या हिन्दुत्व का वैशिष्ट्य है यह एक शब्द यूरोप की आधी अधूरी धारणाओं को पूर्णतः देने में सक्षम है।

कहानियों में मानवीय संवेदना – दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य लेखन की मानवीय उद्गार यहाँ प्रकट हुई अब कहानियों में कुछ विश्लेषणात्मक रूप में 'बड़ी मछली' कहानी संग्रह में मानवीय उद्गार 'विवाहिता' कहानी में द्रष्टव्य है– "दशरथ ने वंदना से भले रिश्ता खत्म कर लिया पर पतिपरायण स्त्री ने पति के प्रति प्रगाढ़भाव को इस प्रकार प्रकट किया, तार पहुँचते ही नकुल ने वंदना को पहली प्राप्त हवाई सेवा से रवाना कर दिया। वह भी चलने को तैयार हुआ तो वंदना ने यह कहकर रोक दिया कि में अकेली ही चली जाऊँगी। हवाई अड्डे से निकलते ही वह ट्रेन पकड़कर सीधी घर पहुँची घर में पैर रखते ही उसकी आँखें आँसुओं से भर गईं। दशरथ राय के पास पहुँचते–पहुँचते तो रोने ही लगीं सामान पटककर दशरथराय के पास जाकर उनसे लिपट गई।"

निम्न संवाद संवेदना से पूण है–"यह कैसे क्या हो गया? मैं रास्ते भर चिंता में डूबी रही आप अब कोई चिंता न करे, जल्दी ही ठीक हो जाएगें। दशरथ राय की भी आँखे भर आई गला भर आया करवट ले नहीं सकते थे। गर्दन दूसरी ओर करते हुए सुबकने लगे। अपने आँचल से आँसुओं को पोंछते हुए वंदना ने कहा 'रोते क्यों हो? मैं आ गई हूँ। आपको कोई कष्ट नहीं होने

दूँगी।"[70] ओर हुआ भी यही। वंदना ने दशरथराय की सेवा शुश्रुषा में अपने को झोंक दिया। वह समय पर सारा नित्य कर्म करवाती। कपड़े बदलती। तेल लगाती, बाल सँवारती। कपड़े धोती। समय पर नाश्ता, चाय, पानी देती। कामना वंदना की सेवा से और चिढ़ गई। दशरथराय भी कामना के प्रति उतने अनुकूल नहीं रहे। उसे कम बुलाते आती तो बोलते नहीं, मुँह फेर लेते। कामना भी दशरथराय के भाव ताड़ गई और अपने पीहर में हो रही शादी का बहाना करके वहाँ चली गई। दशरथ जब स्वस्थ हुए तब उन्हें पहली बार अनुभव हुआ कि विवाह दाम्पत्य–संबंध का नहीं परस्पर समर्पण का एक अनूठा अध्याय है। पति परायण पत्नी के मानवीय व्यवहार को यहाँ वंदना द्वारा परिभाषित किया गया है।

'वसीयत' कहानी में भाईयों द्वारा घर–परिवार की हिस्सेदारी की सामान्य कहानी है। भाई–भाई की प्रेम मानवीय संबंधों की प्रगाढ़ता उस समय दिखती है। जब पिता का देहान्त हो जाता है इसमें कमलेश्वर बड़ा बेटा है और विश्वेश्वर छोटा बेटा है पिता के देहान्त की अंतिम क्रिया कर्म चलता है। तब कमलेश्वर अपने खून के प्रति समर्पण भाव से वहाँ पहुँचता हैं। कमलेश्वर उसके पास गया। उदास मन वहाँ आ रहा है। बड़ा लड़का होते हुए भी "कमलेश्वर के वहाँ नहीं आने पर तरह–तरह की चर्चाएँ हो रही थी। अर्थी को कंधा नहीं दिया तो न ही दाग में पिता को तो लकड़ी तो दे देता है। उसके आने से प्रसन्नता की एक हल्की सी सरसराहट फैल गई।"[71]

कमलेश्वर के आते ही विश्वेश्वर उसके पास गया। उसके सीने पर सिर धरकर रोने लगा। उपस्थित लोगों ने विश्वेश्वर की महत्ता की चर्चा करना प्रारम्भ कर दिया उसके सात्विक ह्रदय की प्रशंसा होने लगी। तभी चिता के पास खड़े लोगों से एक वृद्ध ने कहा– 'कपाल का समय आ गया है।' विश्वेश्वर कमलेश्वर को लेकर गया। दोनों ने कपाल क्रिया की। चिता की परिक्रमा की। उपस्थित लोगों ने चंदन की लकड़ियाँ चिता को अर्पित की जाने का उपक्रम होने लगा, तभी विश्वेश्वर ने अपनी जेब से वसीयत निकाली और कहा, 'सज्जनों पिताजी ने अपनी सम्पत्ति मुझ अकेले के नाम वसीयत कर दी थी। मैं आज आप सबके सामने इसे फाड़कर चिता को समर्पित कर रहा हूँ यह कहते हुए उसने वसीयत फाड़कर चिता में फेंक दी।[72]

दोनों भाई फूट–फूटकर गले मिलकर रोने लगे। यहाँ संवेदना की गहन अनुभूति व्यक्त हुई है।

बड़ी मछली कहानी संग्रह में– 'बड़ी मछली' कहानी में पति–पत्नि के आपसी प्रेम में बाहरी द्वेष की भावना उत्पन्न होने मनोहरा का पति संपत्ति अपनी संपूर्ण शक्ति व समय लगाकर फैक्टरी खड़ी कर ली है। वह प्रसन्न है, पर मनोहरा संपत्ति की विरति से उब चुकी है। "गर्भवती महिला जब एकांत मन से रहती है तो उसमें पति के प्रति क्रोध भावना उत्पन्न होती है कि क्या वजह है,

जो दिन–रात प्रेम करने वाला पति की अब धीरे–धीरे दूरियां बढ़ने लगीं है। उसका सारा प्यार व प्रेमिल स्वभाव न जाने कहाँ तिरोहित हो गया है। उसे जहाँ उस कमरे का एक–एक क्षण उमंग व उत्साह से भरा, मीठा व उन्मादी लगता था, अब भारी जहर बुझा व कडुवां कडुवां लगने लगा है। क्रोध का ज्वार आकाश छू रहा है। वह सोचती है तब संपत्ति मुझे चाहता ही नहीं तो मेरा उसके साथ रहना व्यर्थ है। मुझे चले जाना चाहिए।"[73] अपने ही मन की उधेड़ बुन में चलती हुई मनोरमा की भावनाएँ हैं। यही मानवीय संवेदना इसमें मिलती है।

मोहभंग – कहानी में मानवीय संवेदना मुरारी लाल जी अपने पोते के साथ पुश्तैनी मकान में रहते हैं। उनकी अपने पौत्र के प्रति अगाध प्रेम का भाव डॉ. 'विजय' की इस कहानी में यहाँ मिलता है। "मुरारी लाल जी बच्चे को विस्तार योजना के मकान में ले जाने की अचलेश्वर की मांग को अनुचित मानते थे। जब बच्चा ढाई साल से दादाजी के पास रह रहा है तो वह बच्चे को अपने पास ही रखना चाहते हैं। जब बच्चे के पिता (अचलेश्वर) को मुरारी लाल जी डॉक्टर बना सकते हैं तो पौत्र को अपने पास रखकर डॉक्टर क्यों नहीं बना सकते।"[74]

दादाजी का अपने पोते के प्रति अगाध प्रेम डॉ. दयाकृष्ण विजय ने इस वाक्य के माध्यम से व्यक्त कर मानवीय संवेदना को व्यक्त किया है। इसमें प्रेम मूल से ज्यादा ब्याज के प्रति दर्शाया गया है। प्रेम नव पीढ़ी के प्रति इतना अगाढ़ है कि अपने पुत्र के भी वह आक्रोशित हो जाते हैं। कि– मुरारी लाल जी पुरी तरह वकील साहब के प्रभाव तंत्र के नीचे आ चुके थे। उनका मन चुपचाप भीतर की चेतना को खोजने लगा था। मुरारीलाल सोचने लगते है। डॉ. विजय यहाँ अन्तर्मन से सत्य को समझने की बात कहते है– "मूर्ति पत्थर की है, सब जानते हैं। यह भी जानते हैं, जड़ से चेतन की कोई अपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन जड़ मूर्ति ही भक्ति के मार्ग की पहली सीढ़ी है, उसी मूर्ति में भक्त परमात्मा की छवि देखने लगता है वे चेतत्य बाहर नहीं है अपने भीतर है। एक प्रकाश खिल उठता है। माया मोह का परदा जो उस चेतना को ढके था, जैसे वह घटता है चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश भागने लगता है। यही मोक्षावस्था है। बाहर कुछ नहीं है जो कुछ है वह अपने भीतर है। उसे पहचानने की आवश्यकता है। लड़का–लड़की, भाई, पत्नी, मामा, नाना, काका, ताऊ, फूफा सब व्यवहार भर है। कोई काम नहीं देता साथ देता है अपने भीतर बैठी चेतना का प्रस्फुटन। यही सत्य है इसी सत्य को जानने की बात सारे वेदों, उपनिषदों ब्राह्मण आदि ग्रंथों में कही गई है।"[75]

डॉ. अंचलेश्वर जब वकील साहब से कानूनी रूप से बच्चे को अपने पिताजी से लेने के पक्ष में जाता है तब वकील साहब सलाह देते हैं कि कम से कम एक बार अपने पिताजी के घर अवश्य जाये और एक घण्टा अपने बच्चे के साथ बिताये इससे बच्चे का लगाव आपके प्रति

उत्पन्न होने लगेगा और पिताजी भी प्रेम से आपके और बच्चे के रिश्ते को समझेगें तब डॉ. अचलेश्वर वकील साहब से कहता है कि– "मैं आपकी बात मानकर ऐसा कर लेता हूँ। वैसे हमारा पक्ष तो मजबूत है। बच्चे प्राकृतिक संरक्षक माता–पिता होते हैं। बच्चा हमें मिल जाएगा। बच्चा तो आपको मिल जाएगा, डॉ. साहब पर आपके पिताजी का दिल टूट जाएगा। क्या आप चाहेंगे कि पिताजी का साया उठ जाए?"[76]

– "नहीं नहीं वकील साहब, ऐसा तो मैं सोच भी नहीं सकता। तो फिर व्यवहारिक पक्ष पर ही आना पड़ेगा न। कानून बड़ा निर्दयी है। डॉ. साहब परिवार की शांति तथा मन की शांति के लिए कानून का नहीं उचित व्यवहार का आश्रय चाहिए।"

– "15 दिन हुए होंगे। वकील साहब अपने कार्यालय में बैठे हैं। अचानक डॉ. अचलेश्वर आते हैं। उनके हाथ में मिठाई का बड़ा सा डिब्बा है। उनके साथ एक बच्चा भी है।"[77]

– "वकील साहब, यह मिठाई मेरी ओर से। यह वही बच्चा है।"

– "इसकी क्या आवश्यकता थी डॉ. साहब। आपने वैसे ही कष्ट किया।"[78]

वकील साहब ने बच्चे के पास जाकर सिर को खुजलाया। फिर गालों को थपथपाया तथा मुँह को ले जाकर गालों को चूम लिया। "अब तो आप प्रसन्न हैं, अचलेश्वर जी? आपकी कृपा का फल है। अच्छा में, चलूँ। डॉ. अचलेश्वर के चले जाने के बाद देर तक वकील साहब वैसे की खड़े रहे। सोचते रहे कानून से बड़ी कोई चीज है तो व्यवहारिकता, व्यवहारिक ज्ञान।"[79] प्रस्तुत कहानी 'मोहभंग' में अन्त में अन्तमें मानवीय संवेदना का वह स्वरूप प्रकट होता है जहाँ स्नेह, प्रेम सद्‌भाव व समझदारी से रिश्तों का निवर्हन बना रहता है। समस्या का समाधान भी आसानी से हो जाता है।

ममत्व – डॉ. विजय की यह कहानी स्वच्छन्द विचारधारा वाले नौजवान पीढ़ी और प्रौढ़ पीढ़ी की है। इसमें नई पीढ़ी अपनी पसन्द से प्रेमविवाह करती है तो परिवार में एक रूढ़ीवादी विचारधारा सहसा उठ जाती है। इससे रिश्ते की अहमियत पर ठेस लगती है। माता–पिता का सम्मान, परिवार समाज में प्रतिष्ठा पर लगने वाली ठेस का आभास होता है। जब परिवार को समाचार मिला की प्रतिभा और विकास ने मुम्बई में शादी कर ली। "उन्हें क्या पता था, उसका सायंकाल साइकिल पर घूमना, हँसकर बोलना उनके लिए कर्म अभिशाप बन जाएगा। विश्वास गठीला, फुर्तीला, फैशनेबल युवा था। किसी भी लड़की का उस पर आसक्त हो जाना आश्चर्य अथवा असंभव नहीं था। प्रतिमा ने उसमें अपनी तुष्टि तथा भविष्य देखा तो अप्रत्याशित नहीं था। समान

आर्थिक स्थिति, समान सौन्दर्य समान आकर्षण विवाह योग्य आयु सभी तो ठीक था। कोई अनहोनी नहीं।"[80]

मानव की समाज, परिवार में रुबाब होता है वह जन्म–मरण–परण इन रीति नीतियों के निभाने पर ही पता चलता है। अतः यह अतिशयोक्ति नहीं है कि कार्तिक व माँ–पिताजी के सम्मान को भी ठेस पहुँची इसमें समाज परिवार की सोच इस नव युगल के लिए प्रश्न चिन्ह समान थी।

जैसे ही विश्वास और प्रतिमा का थ्रीव्हीलर बंगले के सामने रुका भाइयों के बच्चे सहसा बाहर आ गए। "बुआ आ गई, बुआ आ गई का शोर करते बच्चे पास आ गए। मुड़–मुड़कर कनखियों से देखती भाभियाँ कमरों की खिड़कियों में आ खड़ी हुई लेकिन बड़े भाइयों के क्रोध का पारावार ज्वर बनकर उमड़ पड़ा। पिता लज्जा में डूबकर अपने कमरे में जा दुबके और माँ जिसका मन दोनों ओर फँसा था, बरामदे में खड़ी प्रतिभा के भीतर आने की प्रतीक्षा तो कर रही थी, पर उसे आदर से लिवाने के लिए नहीं खड़ी। एक ओर ममता थी, दूसरी ओर पति के विवाद और दुःख का बोझा। उसके पाँव जड़ हो गये थे खूँटे की तरह खड़ी थी।"[81]

माँ का ममत्व उस बच्ची के प्रति वही था जब वह बचपन पर कोई नादानी कर दे। फिर प्रेम से उसे माफ भी कर दे। अतः माँ का मत्व इस चौखट पर बड़ी ही दुविधा में था।

"बाहर थ्री व्हीलर का शोर हवाओं में गूँज रहा था। भीतर स्तब्धता का जंगल घोर सन्नटा जी रहा था। सब अपने–अपने कमरे में थे। केवल बरामदे में खड़ी थी उसने माँ के चरण स्पर्श किए। वह कुछ नहीं बोली। जैसे ही विश्वास ने चरण छूने चाहे, उसने अपने पाँव पीछे हटा लिए। वह एकटक माँ की रोषपूर्ण मुद्रा प्रसन्नता से निहारता रहा। पर थोड़ी देर निहारने पर भी भृकुटि का बल नहीं गया तो उसने भी यह कहकर प्रतिमा तुम रुको, मैं घर हो आता हूँ। पापा से मिल आऊँ बाहर निकल गया।"[82] इस कहानी में तत्कालीन परिवेश व सोच को चित्रित किया गया है। जब प्रेम विवाह हेय दृष्टि से देखा जाता था। डॉ. विजय इस कहानी के माध्यम से नवीन सोच व चिन्तन को प्रस्तुत करते है।

इस कहानी में व्यक्त है कि प्रेम संबंधों की समाज के रिश्ते नातों के आगे कोई अहमियत नहीं दर्शाते। बड़ों का आदर प्रेम, करुणा, सलाह रखने की प्रवृत्ति तथा प्रत्येक रिश्ते की अपनी सोच समझ का यहाँ बहुत कुछ दिखाई दिया है। इतने बड़ी बात शादी जैसे परिवार की बिना रजामंदी के होना। अतः परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की खुशियाँ जो प्रतिभा के बड़े होने पर शादी करना इत्यादि से जुड़ी थी। वहाँ हुए आघात से मन व्यथित हो चला था।

अश्विनी जो प्रतिभा का बड़ा भाई है। वह भी इस वेदना में अपने पिता के साथ प्रतिमा के फैसले से आहत होकर बोला– "प्रतिभा इस घर में आई ही कैसे? वह यहाँ नहीं रहेगी। वह हमारी बहन नहीं हमारी शत्रु है। उसमें हमें दो कौड़ी के आहुजे के सामने नीचा दिखया है। हमारे स्वाभिमान पर उसने लात मारी है। हम उसका यहाँ रहना एक पल सहन नहीं करेंगे।"[83]

इस पूरी कहानी का मर्म सिर्फ इतना ही है कि अंत में सामाजिक सोच पर रिश्ते भारी पड़ते है। सबका हृदय परिवर्तित हो जाता है छाती घुटनों पर ही नमती है। आज से युग में जात–पांत को कौन पूछता है, पुरानी बातें हो गई। कार्तिक (प्रतिमा के पिता) पहले ही समझौता कर लेते तो अच्छा रहता। इतना हंगामा तो नहीं होता। मनुष्य को समय के साथ चलना सीखना चाहिए। प्रतिमा माँ बनी तो अपने मायके पहली बार आई गोद में मासूम बच्चा। माँ ने शिशु को बाँहों के पलने में झुलाया। ऊँचा उठाकर चूमा। अश्विनी ने शिशु के गाल पर चुटकी लेते हुए कहा। "ममत्व स्वाभिमान से अधिक प्रबल संवेग है।" और यह कहते हुए शिशु को अपनी गोद में ले लिया। यही इस कहानी का मर्म है। कहानी के अन्त में प्रतिभा को सभी स्वीकार कर लेते हैं। यहाँ डॉ. विजय परिवर्तित सोच को समयानुसार प्रस्तुत करते हैं। जो परिवर्तन का सूचक है।

संकल्प – एक होनहार समझदार लड़की की कहानी है। रूपा मुख्य पात्र जो हरिजन जाति की है और वह पढ़–लिख कर समाज में कुछ अच्छा करने की चाह से विद्यालय में पढ़ना चाहती है। कस्बे में सरपंच के निर्देश पर पाठशालाओं में अधिकतम बच्चों को प्रवेश दिलाने का अभियान चल रहा था। लोगों ने रूपा को भी पाठशाला में प्रवेश दिलवा दिया। रूपा प्रारम्भ में ही कक्षा में होनहार छात्रा निकली। "उन्हीं दिनों किशोर अपने किसी रिश्तेदार लड़के से मिलने उसी पाठशाला में आया। उसकी दृष्टि रूपा पर पड़ी। रूपा भी किशोर को देखकर सहम गई।" किशोर ने पूछा– 'अरी रूपा, तू?' रूपा कुछ नहीं बोली। अध्यापक ने पूछा 'किसे खोज रहे हो?' किशोर ने कहा 'कक्षा सात में मेरे मामा का लड़का विवेक पड़ता है। उससे मिलने आया था। यह तो हरिजन लड़की है। 'हरिजन लड़की? यहाँ तो इसने अपनी जाति पँवार लिखा रखी है। क्यों रूपा तुम हरिजन हो?' अध्यापक ने पूछा।

– 'नहीं तो, हम तो पँवार हैं। मेरे पिता वर्षों से गढ्ढे खोदने का काम करते हैं।'

– "गड्ढे खोदते हैं तो उससे क्या जाति बदल जाती है? जाति तो जन्म से होती है।"[84] किशोर ने कहा। "रूपा ने अध्यापक से कहा" गडढे खोदते हैं वे "श्रीमान कल आप पढ़ा रहे थे जाति कर्म से होती है।" रूपा के वाक् चातुर्य और प्रत्युत्पन्नमति देखकर अध्यापक सकते में पड़ गए। अध्यापक ने बात बिगड़ती देखकर किशोर से कहा– "अच्छा आप अपना काम करें। बच्चों को पढ़ने दीजिए।" रूपा राजपूत नहीं हरिजन है। पँवार इसका

गोत्र है। पाठशाला में फैलते देर नहीं लगी की अध्यापक ने रूपा को पीछे अलग बैठाना शुरु कर दिया। कक्षा में उससे कोई नहीं बोलता था। धीरे–धीरे समाज में उसकी जातिगत भावना ने परिवार समाज में तिरस्कृत करना शुरु कर दिया पिता की भी हत्या कर दी। रूपा आगे पढ़ना चाहती थी और माँ के साथ शहर चलने की जिद करने लगी।

शहर आकर अरविंद की सहायता से दो कमरों का मकान तथा विद्यालय में प्रवेश मिल गया। माँ को भी निजी शिक्षण संस्था में झाड़ा बुहारे का काम मिल गया। रूपा ने अपने चांचल्य और वाक्चातुर्य से सबको अपना बना लिया। श्रमधरा की 'दरिद्र नारायण' कविता को कंठस्थ कर लिया। 'ओ! दरिद्रनारायण, अपने भी अधिकार जरा पहचानो।

रूपा ने प्रथम श्रेणी में उच्च माध्यमिक परीक्षा की। उसकी प्रशंसा दूर–दूर तक होने लगी। एक तो युवा थी, दूसरी महिला। वह नगर की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक संस्थाओं में बढ़चढ़कर भाग लेने लगी। महिला उत्थान परिषद की सदस्य हो गई। महिलाओं की दशा में तब तक सुधार नहीं होगा जब तक पुरुष समाज का नारी के संबंध में दृष्टिकोण नहीं बदलता। इस कहानी में डॉ. विजय ने रूपा के माध्यम से समाज में व्याप्त जातिवाद तथा नारी की व्यथा बताई है। यह मानवीय संवेदना गहराई के साथ व्यक्त हुई है। इसमें व्यक्त है कि मनुष्यता जाति पाति से बड़ी होती है सब मानव एक ही है।

गाय की पूँछ – "डॉ. विजय रचित इस कहानी में श्री धूपड़े एक वकील है जिन्होंने बड़े ही प्रेम से एक लड़की से सामान्य प्रेमविवाह किया। परन्तु चार संतान देकर कुछ समय बाद वह चल बसी। धूपड़े वकालात करना और परिवार भी पालना दोनों ही जिम्मेदारी नहीं निभा पा रहे थे। अतः दूसरा विवाह कर गृहस्थ जीवन का दूसरा पड़ाव शुरु किया अब वह बहुत खुश थे कि दोनों ही जिम्मेदारी सही से चल रही है। एक दिन अपने पहली पत्नी के पीहर से मोह नहीं छोड़ा। अपने छोटे साले अनिरुद्ध के विवाह में गए थे। बड़े बच्चों को भी साथ ले गए। बरसात का मौसम था। नदी नाले उफन रहे थे, परन्तु आराम से पहुँच गए। पर बरसात में पंडितों द्वारा बिना सोचे विचारे मुहुर्त निकाल देने से बड़ी चिढ़ थी। वह मार्क्सवादी या वैज्ञानिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के पक्षधर होते हुए भी मुहुर्त निकलवाने में बुराई नहीं देखते थे। बारात रूपनगर से कंचनपुर तक ही जानी थी दोनों कस्बों के बीच केवल सात मील का ही अंतर था, परन्तु एक बड़ा ताल जब अपनी जवानी पर आ जाता था, तो अच्छे–अच्छों को बहा ले जाता था। जिस दिन बारात जाने वाली थी उस दिन पानी के बरसने ने भी अपनी मर्यादा तोड़ दी। इतना पानी बरसा की ताल नाल एक हो गए। रूप नगर पाव मील दूर वाला नाला तो मानो समुद्र हो गया। पानी रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था दोपहर ढल गई। घर से अब भी नहीं चलते तो गोधुली का सावा नहीं हो पायेगा।

सबने हिम्मत की "अधिवक्ता श्री धूपड़े दूल्हे के जीजा थे। वह सबसे आगे आ गए। कारवाँ चल पड़ा ट्रकों के ट्यूबें दोनों किनारों से डोरियों में जुड़ी पड़ी थी ट्यूबों पर खाट और खाट पर एक–एक सवारी बिठाई गई। श्री धूपड़े पहले व्यक्ति थे जो हिम्मत करके सवार हो गए। अब किनारे आने लगे दूल्हे के साथ श्री धूपड़े जी का बच्चा साथ था। मामा भानजा एक ही नाव में सवार थे। पानी की हिलोर ने खाट पलट दी हाय तौबा मच गई। कोई हिम्मत नहीं कर रहा था कि धार में कूदे श्री धूपड़े ने आव देखा न ताव कूद पड़े ताल में।"[85]

हमारी भावनाएँ भगवान से जुड़ी है। श्री धूपड़े ने बहुत प्रयास किया पर सारे प्रयत्न हताशा में बदल गए श्री धूपडे डूबने से लगे। बच्चों व दूसरी पत्नी के सिर से पति व पिता का साया उठने लगा लग रहा था तभी एक गाय ताल पार करने के लिए उतरी और तैरती हुई श्री धूपड़े के निकट आ गई हाँपते–हाँपते श्री धूपड़े जी ने गाय की पूँछ पकड़ ली और साहस के साथ सिर पानी से ऊँचा कर लिया। लोगों की हाय हर्षोल्लास में बदल गई गाय की पूँछ वरदान सिद्ध हुई मानों उन्होंने स्वर्ग की वैतरणी पार कर ली हो। भारतीय जीवन का यह विश्वास कि गाय की पूँछ पकड़कर पार होती आत्मास्वर्ग में पदार्पण करती है, वहाँ सच में चरितार्थ हो गई। गाय से जीवन बच गया। गाय दैवी शक्ति साबित हो गई। कहानी में आस्था, विश्वास व्यक्त हुआ है।

समय पर जो काम आये वही महत्वपूर्ण होता है। 'डूबते को तिनके का सहारा' ही बहुत होता है। यहाँ 'गाय की पूंछ' कहानी में भारतीय संस्कृति व परम्परा को गाय के तारक रूप के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

गृहलक्ष्मी – डॉ. विजय ने इस कहानी में पं. वृंदावन बिहारी की व उनकी पत्नी का ईश्वर तथा ज्योतिष पर अगाढ़ विश्वास की कहानी है जिसमें मानवीय मूल्यों की परछाई उनके विश्वास पर दिखाई देती है। पं. लाल को स्वयं ज्योतिष में काफी कुशलता हासिल है। उन्हें रुचि ही नहीं, विश्वास भी है। वे ज्योतिष ज्ञान की एक निः सर्गसिद्ध विज्ञान मानते हैं, जो ग्रहों और राशियों से संचालित होता है। एक सिद्ध योगी कि सिद्धता के लिए अग्रसर है कहा– "आप बृहस्पतिवार को केले का पूजन किया कीजिए। पीलावस्त्र, पीला प्रसाद चढ़ा। कीजिए देखिए कुछ ही दिनों में इसका चमत्कार आपको मालूम पड़ जायेगा। कुछ समय पूर्व पंजाब से आये साधु मिले थे देखते ही बोल उठे ये बड़े भाग्यशाली व्यक्ति है। बड़ी जल्दी इनकी तरक्की होने वाली है। किसी ऊँचे पद पर जाने वाले हैं।"[86] गृहलक्ष्मी पं. को भी जन्म पत्री दिखा आई उसमें भी केले की पूजन बताई है।

"केले का पूजन बृहस्पतिवार को होना था। बुधवार की रात्री को ही गृहलक्ष्मी ने अधरों पर स्थित, आँखों में चमक तथा कपोलों पर मुस्कान बिखेरते हुए पं. से कहा आप केले की पूजन की कहा करते थे न अब कर लो।

पण्डित जी लॉन में लगे केले के पेड़ों की पूजा करके आये। पंडितानी जी ने कहा की अब हमें दान पुण्य करना है। दक्षिणा में तरबूज की जगह दो आलू ही देने का निर्णय पं. जी का था इसमें पं. लाल जब आचार्य जी को देने पहुँचे तब पंडितानी जी कहती है कि जैसा दान पुण्य हम यहाँ प्राप्त करते है वैसा ही वहाँ (स्वर्ग में) प्राप्त होता है। हमें प्रेम से दान करना चाहिए ताकि हम दान पुण्य का फल यहीं प्राप्त कर सके।"[87] यहाँ कहानी में धर्म व ज्योतिष पर आधारित विश्वास व्यक्त हुआ है आज भी अनेक व्यक्ति ज्योतिष विद्या से अपने कार्यों का निर्धारण करते दिखाई देते हैं यह आस्था व विश्वास की बात है यही यहाँ व्यक्त हुआ है।

सोने की मोहरे – डॉ. विजय की इस कहानी की मूल मानवीय संवेदना बक्से के खुलने के बाद उसमें से निकलने वाली मोहरें की कल्पना पर आधारित है। एक मकान के दो पुत्रों के बीच हुए बंटवारे की कथा है। इसमें माँ अपने पुत्रों को बँटवारा करके यहीं रहने लगी। बहु वसुन्धरा पुत्र कश्यप ने इनके साथ रहने का निर्णय किया गया। माँ का मूल्य माँ समान न था यहाँ कहानी में मानवीय मूल्यों का ह्रास यहाँ हमें दिखाई दिया है। रिश्तों की बारीकी कुछ नहीं दिखाई पड़ती। रिश्तों की अहमियत यहाँ पर बड़ी ही घटती नजर आ रही थी। जीवन मूल्य से ज्यादा धन मूल्यों की अहमियत है। माँ अपनी माँ को प्रेम से अपने घर न बुलाकर धन के लालच में बुलाता है यहाँ मानवीय मूल्यों का ह्रास दिखाया गया है, जो जीवन का कटु यथार्थ है।

अवतार – डॉ. विजय की इस कहानी में शिक्षा के स्थान पर 'रैगिंग' शब्द जो सीनियर विद्यार्थी फ्रेशर के साथ असभ्य मजाक कर परेशान करते हैं। इसमें विद्यार्थियों का प्रेम व्यवहार न होकर आपसी द्वेष की भावना उद्गार रहती है। इसमें मानव व्यवहार आपसी सौहार्द न होकर परेशान करना। विद्यार्थी जब आपस में मिलकर सामान्य तौर पर जीवन जीने की ठानता है। "अवतार जब अपने धर्म का मज़ाक बनते देखता है तो स्वयं अपने अवतार को परिवर्तित कर लेता है और सामान्य चेहरे वाला बिना दाढ़ी मूंछों तथा कटे बालों में सरदार की जगह सामान्य परिवार का सदस्य भाँति बन जाता है। इससे अन्य बालकों में भी व्यवहार में परिवर्तन आता है।"[88] और धर्म के प्रति उसे परेशान करने का भाव खत्म हो जाता है। कहानी अवतार में मन का अन्तर्द्वन्द्व दर्शाया गया है अन्त में अवतार शान्ति पूर्ण जीवन जीने के लिए परिवर्तन करना उचित समझता है।

कहानियों में मानव मूल्य

उलझन – "कहानी संग्रह की सभी कहानियों में जीवन की उन्मत्ता है। मानवीय प्रेम रिश्तों की अहमियत, समाज का सरोकार है। प्रेम, त्याग, करुणा, उदारता आदि सभी का ताना–बाना है। प्रेम की पराकाष्ठा है तो जीवन की तरोताजगी भी है। नव पीढ़ी की ऊर्जा भी है तो साँझ भी है। जीवन का प्रौढ़ भी है। इसे जीवन की उलझनों के बीच सुख–दुःख भाव से मानवीय मूल्यों का आभास मिलता है। इस कहानी संग्रह में समाज के सभी दौर का आभास होता है।"[89]

स्वप्न और सत्य – "कहानी संग्रह में भी कहानियों में पात्रों की मानवीय संवेदनाओं को उद्गार किया गया है। इसमें स्वप्न मानव की कल्पना है वह अपने उस कल्पना को यथार्थ से तुलना आदि का बोध होता है। जीवन का सत्य ही मानवीय मूल्य है डॉ. विजय की इस कहानी में पात्रों के स्वप्न और सत्यों की साँझ और सवेरे का आभास होता है। इसमें मानवीय मूल्य, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक आदि सभी में मिलते हैं।"[90]

एक और क्रांति – "कहानी में मानवीय मूल्य का महत्त्व जातिगत आधार पर मिलता है। इसमें मानव का छुआछूत भरा जीवन दिखाई पड़ता है। अधिकारों के प्रति सरोकार है। मानव जीवन की अहमियत जातिगत, धर्म, व्यवहार पर आधारित है। तत्कालीन परिवेश में मूल्यहीनता विकृतियों अनैतिक व्यापारों तथा चारित्रिक गिरावटों का भाव दिखाई पड़ता है।"[91] अनेक सामाजिक विसंगतियों व विडम्बनाओं का चित्रण इस कहानी में मिलता है।

डॉ. विजय रचित उपन्यास 1. 'रमता राम' 2. 'पायसपायी' में जीवन को पूर्ण रूप से अपने आराध्य के प्रति समर्पित भाव बनाया है। हिन्दु जीवन में ईश्वर के प्रति समर्पण भाव को यहाँ इंगित किया है। हमारे जीवन की शुरुआत आज, कल, आज के क्रम में चलती है। वर्षों बीत जाते हैं। जीवन का उतार, चढ़ाव सभी क्रियायें जन्म–मरण–परण सभी जुड़ी हुई है। मानव अपने उतार हेतु मानवीय मूल्यों को निभाता है। 'रमताराम' श्री राम के चरणों में समर्पित जीवन पर आधारित है। श्री रामचरणदास द्वारा अपना जीवन हिन्दू सम्प्रदाय के उद्धार हेतु ईश्वर का महत्त्व समझाया है। मानव का आधार ईश्वर पर ही आधारित है। 'पायसपायी' उपन्यास भी बहुत ही आवश्यक है। जीवन के यथार्थ को समझना है तो यह आवश्यक है कि ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से जीवन की नाव को भावसागर से पार लगाना है। दोनों ही उपन्यासों में मानवीय मूल्यों की महत्ता दिखाई पड़ती है।

नाटकों में मानवीय मूल्य – डॉ. दयाकृष्ण रचित सभी नाटकों में मानवीय मूल्य सहज ज्ञात होता है। इन नाटकों में राष्ट्रीयता, भारतीय, सांस्कृतिक चेतना का भाव सम्वर्द्धन हुआ है।

आदि सम्राट (1974) में पाँच अंक में विभाजित है यह वैदिक भावधारा से कथ्यप्रसूता नाटक है। इसमें ऐतिहासिक सौन्दर्य के साथ मानवीय भावना का आभास होता है पात्रों तथा चरित्र, चित्रण द्वारा जीवन की उन्मतता का भाव हमें देखने को मिलता है।

छत्रपति शिवाजी – डॉ. विजय द्वारा मानवीय मूल्य में देश के प्रति समर्पण भाव पर आधारित नाटक छत्रपति शिवाजी है। नाटक का उद्देश्य देश के प्रति बलिदान भाव रखना है। शिवाजी का मराठों की रक्षा के लिए त्याग, बलिदान, समर्पण का भाव यहाँ व्यक्त हुआ है। शिवाजी पूर्णस्वराज्य के भाव से मराठा को मुगलों से पूर्ण रूप से मुक्त रखना चाहते थे। देश के प्रति आदर भाव हमें यहाँ मानवीय मूल्य का भाव शिवाजी के पात्र में मिलता है। सम्पूर्ण नाटक में देशभक्ति, त्याग समर्पण व देश पर मर मिटने का भाव व्यक्त हुआ है। यह ऐतिहासिक घटना पर आधारित नाटक है।

सिंहासन – डॉ. विजय रचित इस निबंध में अयोध्या के राजा का राज्य किस प्रकार मिलता है। यह बताया गया है। सिंहासन हमारे जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उतार चढ़ाव का रूप है। जीवन का सरोकार किसी एक बिन्दु पर आधारित नहीं है। पद की उन्मत्ता, परिवार में द्वेष, भावना, त्याग, करुणा, कर्मठता आदि का विविध रूपों में चित्रण इस नाटक में दिखाई देता है।

राग से विराग तक – डॉ. विजय रचित इस नाटक में जीवन में प्रेम की आसक्त भावना का बताया है। मानव प्रेमपूर्ण अपने जीवन को जीता है पर एक उम्र पर किसी न किसी से प्रेमभावना का विस्तार अवश्य होता है। जीवन में राग, रंग, प्रेम के प्रति आकर्षण होने की अनुभूति होती है। जीवन मानवीय करुणा से व्याप्त रहता है। डॉ. विजय ने नाटिका में पूर्ण रूप से मानवीय मूल्य को समाहित किया है विष्णु गुप्त के मध्यम मंत्रणा में आचार्य चाणक्य के प्रव्रज्या ग्रहण करने से उत्पन्न स्थिति ही महत्त्वपूर्ण है। चाणक्य (विष्णुगुप्त) स्थूलिभद्र के पास जाते हैं और उनकी वैराग्यपूर्ण बातों को उचित न मानकर मगध साम्राज्य के महामात्य बनाये जाने का सन्देश देते है। प्रेम आकर्षण से विराग की ओर उन्मत्त होने से मुनि संभूतिविजय उसे सह मार्ग दिखाते हैं। स्थूलिभद्र दीक्षा ग्रहण करने के लिए तत्पर होते ही कोशा भी वहाँ आकर दीक्षार्थ प्रस्तुत हो जाती है। यही नाटक का मूल उद्देश्य है। जहाँ मानव राग से विराग तक की यात्रा तय करता है।

3.5 सांस्कृतिक मूल्य

मानवीय मूल्यों में सांस्कृतिक मूल्य का विशिष्ट स्थान है विद्वानों ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है–

पं. जवाहर लाल नेहरू – "संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी उन्नति है।"[92]

डॉ. सम्पूर्णानंद के अनुसार – "संस्कृति उस दृष्टि कोण को कहते हैं जिसमें कोई समुदाय विशेष की समस्याओं पर दृष्टि निक्षेप करता है।"[93]

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार – "हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है।"[94]

डॉ. जयशंकर प्रसाद के अनुसार – "इसे सौन्दर्य बोध उत्पन्न करने वाली मौलिक सत्ता की संज्ञा दी जा सकती है।"[95]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "संस्कृति जीवन के उन सूक्ष्मतर तत्त्वों की संहति का नाम है जिनसे मानव चेतना का संस्कार होता है।"[96]

पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में संस्कृति –

लिप्टन के अनुसार – "संस्कृति ऐसी प्रति चेष्टाओं का समुच्च है, जो समाज की विशेषता कही जा सकती है।"[97]

क्रोवर के अनुसार – "संस्कृति मानव व्यवहार द्वारा अर्जित और सम्प्रेषित प्रतीकों का समुच्चय है।"[98]

आर्नाल्ड के अनुसार – "ज्ञान की पूर्णता की अखण्ड गवेषणा है।"[99]

रेमण्डविलियम्स के अनुसार – "संस्कृति के बोध पक्ष का विकास चार सोपानों में पूर्ण होता है।, अभ्यास, बौद्धिक नैतिक दशा, 3 बौद्धिक और कलात्मक स्वरूपों का अभिज्ञान, बौद्धिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना की प्रतीति।"[100]

डॉ. दयाकृष्ण विजय की लेखनी से निकले शब्दों में "भारतीय संस्कृति शब्द की परिभाषा प्रत्येक ने अपनी–अपनी दृष्टि से की रखी है। इससे भ्रांति का निर्माण हुई है। कर्म की श्रेष्ठता को संस्कृति माना तो कोई संस्कृति को आध्यात्मिकता से जोड़ रहा है। संस्कृति आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही स्थितियों की दिग्दर्शिका है।"[101] सभ्यता नित नया रूप ले रही है। परन्तु संस्कृति के मूल्य शाश्वत होते हैं। संस्कृति जहाँ प्राकृत का परिष्कृत रूप है, वहीं उनमें लोकहित का भाव भी प्रमुख होता है। इस हेतु से संस्कृति शिव कृति है। सत् शिव सुन्दर जहाँ है, वहीं संस्कृति है।

सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ – प्रस्तुत निबन्ध में डॉ. विजय भारतीय संस्कृति को परिभाषित करते हुए। भारतीय संस्कृति के विभिन्न उपादानों चार पुरुषार्थों के विषय में विस्तार से प्रकाश डालते हैं। संस्कृति को वे मानव जीवन का प्राण मानते है। **"**संस्कृति शब्द की विरुक्ति संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कृ' धातु तथा 'क्तिन्' प्रत्यय से हुई है। कृति करादि से हुई निष्पत्ति में सम+कृति

अथवा समधार आदि विभाग संस्कृति या संस्कार आदि शब्दों में परिणत हो जाते हैं। एक तो संस्कारित सम्यक कृति।

परिभाषाएँ – सम+कृ+क्तिन सुत् से निष्पन्न संस्कृति शब्द की भारतीय व पाश्चात्य ने अलग–अलग रूप से परिभाषित किया है।"[102]

रविन्द्रनाथ टैगोर – "जीवन के क्रिया कलापों और प्रतिवातों का जीवन्त स्वरूप, मानव मन को, जिस सार्वभौम उद्देश्य की ओर प्रेरित करता है, उसे संस्कृति कहते हैं।

व्याख्या, स्वरूप एवं परिधि – संस्कृति मात्र भौतिक साधनों की उन्नति द्वारा अभिव्यक्त नहीं होती उसके अभिव्यक्तिकरण का साधन आंतरिक भी होता है। संस्कृति मानव द्वारा प्रकृति पर विजय की क्रमबद्ध कहानी है। संस्कृति के विविध पक्ष होते है। जैसे 1. व्यक्ति परिवार व समाज के संबंधों की विशिष्ट धारणा 2. नीति और आदर्श 3. धर्म एवं तत्व चिंतन 4. गौरवशाली परम्पराएँ एवं विश्वास 5. कला एवं साहित्य।"[103]

मानव अभिव्यक्ति या क्रिया का सबसे सूक्ष्मतर तथा मधुरतय भाव ही संस्कृति है। हमारे जीवन जीने का ढंग ही संस्कृति है। संस्कृति मनुष्य के सामाजिक जीवन की प्राण है।

1. **"मैथ्यू आर्नोल्ड** ने संस्कृति की अवधारणा के प्रमुखतः चार ही तत्व माने है। संस्कृति मानव को पशुत्व से पूर्ण मानवतत्व की ओर प्रेरित करती है।
2. मानसिक विकास के द्वारा मानव मन को सुन्दर एवं प्रकाशपूर्ण बनाती है।
3. धर्म, इतिहास, कला और साहित्य संस्कृत के अंग है।
4. सामाजिक भाव के द्वारा लोककल्याण का मार्गदर्शन कराती है।

संस्कृति का सम्बन्ध आनन्द से होता है। धर्म का विवेक ही इन्हें संस्कृति से जोड़ता है। उदात्त भाव जगाने वाले नृत्य प्रदर्शन ही सांस्कृतिक होते है।"[104]

भारतीय संस्कृति के प्रमुख उपादान – भारत एक अतीव प्राचीन संस्कृति वाला अध्यात्म प्रधान देश अध्यात्म भारतीय संस्कृति की अन्र्तप्रवाहित मूलधारा है। भारतीय संस्कृति से पूर्व आधात्म शब्द की निर्मित अधि उपसर्ग सहित आत्म से हुई है। भारतीय संस्कृति इसे वंशानुगत नहीं मानती। भारतीय संस्कृति किसी भी कर्म को बुरा नहीं मानती भारतीय संस्कृति ने वर्णानुसार ही मनुष्य शरीर को चार भागों में विभाजित कर उसके कर्मों का निर्धारण किया है। भारतीय संस्कृति ने शरीर धर्म का स्थानिक विभाजन करते हुए उनका कर्म धर्मनिर्धारित किया है। भारतीय संस्कृति ने प्रकृति के अनुसार शरीर कर्म की स्थिति व्याख्यायित करते हुए मानव के चार कर्त्तव्यों का निर्धारण

करते हुए इन्हें पुरुषार्थ चतुष्ट्य कहा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। गीता भारतीय सांस्कृतिक जीवन का मानक ग्रंथ है।

"भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है, सर्व में आत्म के दर्शन करना। सर्व की मंगल कामना करना। **अयं निजः परौवेति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानां वसुधैव कुटुम्बकम्।"**[105]

भारतीय संस्कृति प्राणी मात्र के कल्याण की कामना ही नहीं करती, स्वस्ति वाचन के साथ–साथ शांति पाठ भी करती है।

गीता के दूसरे अध्याय में आत्म के प्रति यह आस्था ही "भारतीय संस्कृति का प्रथम उपादान है। यह आत्मतत्व अविनाशी है। 'अविनाशि तु तद्विद्धि' (2/17)। "देही मित्यम वध्यो ऽयं देहे सर्वस्थ भारत" (2/30) भारतीय संस्कृति का दूसरा मुख्य उपादान 'जन्मांतरवाद' है। गीता ने इसे एक जीर्ण वस्त्र को उतार दूसरा नया ग्रहण जैसा कहकर परिभाषित किया है।"[106] यहाँ डॉ. विजय गीता के अध्यायों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के विविध उपादानों को व्याख्यायित करते है। कि आत्मा अमर है। वह केवल अपना बाहरी आवरण या शरीर बदलती है। मनुष्य को कर्मोनुसार फल की प्राप्ति होती है।

"वासांसि जीर्णान यथा विहाय नवानि गृहणातिनरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यामि संयाति नवानि देही।"[107]

भारतीय संस्कृति का तीसरा उपादान कर्मफल है। गीता में स्पष्ट है जो भी कर्म, बुद्धी योग, यज्ञभाव, निष्काम भाव तथा प्रभु समर्पण भाव के बिना किया जाता है। वह कर्म फल का कारण बनता है।

"दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धी योगद्वनंजय।
यज्ञार्थात्कर्मर्बोडन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।"[108]

भारतीय संस्कृति का चौथा उपादान 'अवतारवाद तथा बहुदेववाद' है।

भारतीय संस्कृति ने वर्णानुसार ही मनुष्य शरीर का चार भागों में विभाजित कर उसके कर्मों का निर्धारण किया है तथा उसके शरीरस्थ अंग या गुण ही उसके उपकरण बताये हैं।

भारतीय संस्कृति प्राणी मात्र के कल्याण की कामना ही नहीं करती स्वस्ति वाचन के साथ–साथ शांति पाठ भी करती है। आज के हिंसात्मक वातावरण में भारतीय संस्कृति का शांतिपाठ कितना प्रासंगिक है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। विश्व के किसी भी कोने में भूकम्प उठता है तब भारत के ऋषि इसलिए विश्व शांति की कामना करता है।

"ऊँ घौः शान्तिरन्तरिक्षं शांतिः, पृथ्वी शांतिरायः शांतिरोधधय शांतिः वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रतह्म शांति सर्वशांतिः शांतिरेव शाति सा मा शांतिरेधि।"[109]

अतः हमारी भारतीय संस्कृति 'वासुधैव कुटुम्बकम्' का भाव रखती है विश्व पूरा एक परिवार का ही रूप है।

संस्कृति जीवन का आंतरिक सौन्दर्य है। जीवन जीने की दृष्टि है। शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा अहम को वयम् की ओर तथा वयम् को ओम तत्सत की ओर ले जाने वाली दिव्यता की वाहक है। प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से डॉ. विजय भारतीय संस्कृति की दिव्यता व विशिष्टताओं को विस्तार से वर्णित करते है। वे कहते हैं भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव लिये हुए है।

भारतीय संस्कृति ने अपनी यात्रा में अनेक मील स्तम्भ खड़े किये हैं। जीवन का व्यापार नहीं जिसमें अपनी आध्यात्म दृष्टि का सन्निवेश कर मूल्य स्थापित नहीं किये हो। मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताये हैं।

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमन्द्रियनिग्रहः
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं।"[110]

महर्षि व्यास ने दैवी सम्पदा की व्याख्या प्रस्तुत कर श्रीकृष्ण के श्रीमुख से इस प्रकार कहलाया है।

"अभयं सत्वसशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः
दानं दमश्च यज्ञाश्च स्वाध्यायस्तव आर्जवम्।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शाति पेशुनम्
दया भूतेवलोतुपत्पं मार्दवं हीचावलम्।
तेजः क्षमा धृति शौचमद्रोहो नातिमानिता
भवन्ति सम्पदं दैवीम भिजातस्य भारत।"[111]

डॉ. विजय के निबंध संग्रह 'संस्कृति का वागर्थ' में 'जीवन को संवारने का या क्रिया को रचनात्मक एवं सार्थक रूप देने का प्रयास है। संस्कृति संस्कारित सम्यक कृति है। भारतीय समाज जीवन के षोडस संस्कार भारतीय संस्कृति के आवश्यक अंग है। ये सोलह संस्कार मनुष्य जीवन को उदात्त सुसंस्कृत एवं परिष्कृत बनाने में अहम भूमिका निभाते है।

1. चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने कहा है– "मनुष्य को आत्म संस्कार में पूरी शक्ति लगानीचाहिए। संस्कार का अर्धपरिष्कार, संशोधन अथवा पवित्रीकरण ही अंकित है। उच्चगुण सम्पन्न व्यक्ति को सुसंस्कृत या सुसंस्कारित व्यक्ति कहते हैं।"[112]

2. सुकरात के अनुसार – सांस्कृतिक एकता किसी भी राष्ट्र के निर्माण की पहली सीढ़ी है।[113] दूसरी सीढ़ी है भौगोलिक एकता की तभी जाकर सांस्कृतिक एकता सुदृढ़ होती है। संस्कृति के विविध पक्ष है–

1. व्यक्ति समाज, परिवार के संबंधों की विशिष्ट धारणाएँ
2. उसकी नीतियाँ एवं आदर्श।
3. उनका धर्म और तत्वचिन्तन।
4. उनकी गौरवशाली परम्परा एवं विश्वास।
5. उसकी कला एवं साहित्य।"[114]

"धार्मिक मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय के अनुकूल आचारों को संस्कृति कहते है। समाज शास्त्रियों के अनुसार संस्कृति की अवधारणा के चार तत्व हैं–

1. संस्कृति मानव को पशुत्व से पूर्ण मानवत्व की ओर प्रेरित करती है।
2. मानसिक विकास के द्वारा मानवमन को सुन्दर और प्रकाशपूर्ण बनाती है।
3. धर्म इतिहास कला और साहित्य को संस्कृति के अंग बनाती है।
4. सामाजिक भाव के द्वारा लोक कल्याण का मार्ग दर्शन कराती है।"[115]

यहाँ स्पष्ट है कि संस्कृति मानव को संस्कारित करती है। उसका विकास व परिष्कार करते हुए उसे लोककल्याण के मार्ग की और अग्रसर करती है। मनुष्य को सभ्य व सुसंकारित करने में संस्कृति का होना जरुरी है।

संस्कृति संस्कार द्वारा ही मनुष्य सभ्य मानव बना विकसित हो सका है। संस्कार को डॉ. विजय ने चार भागों में बाँटा है।

1. शारीरिक संस्कार, 2. मानसिक संस्कार, 3. नैतिक संस्कार 4. आध्यात्मिक संस्कार

1. जैमिनी सूत्र के अनुसार – "संस्कार किसी वस्तु को ऐसा रूप देने की प्रक्रिया का नाम है। जिससे उसे उपयोगी बनाया जा सके।"[116]

संस्कार का मुख्य उद्देश्य – "तमसो मा ज्योतिर्गमय असतोमासद गमय तथा मृत्यर्माऽमृतं गमय है। संस्कृति का एक और पक्ष है लोक संस्कृति। लोक शब्द 'हश्' धातु में गन् प्रत्यय लगने पर निष्पन्न हुआ है। अर्थ है देखना।"[117]

2. पाणिनी ने अष्टाध्यायी में इसका उल्लेख किया है। गीता में लोक व लोकसंग्रह दोनों शब्द है–

"कमणैव हि संसिद्धिमस्थिता जनकायः।
लोक संग्रहमेवादि संपश्यः वर्तुमर्हति।"[118]

लोकसंग्रह का अर्थ आंग्लभाषा में शब्द 'हवसा' सवतम आया है, जिसका अर्थ असंस्कृत लोगों का ज्ञान जॉन आब्रे ने वैसे 1687 ई. में 'रिमेन्स ऑफ जेन्टेलिज्म उण्ड जुडिज्म' में इस विषय का श्रीगणेश किया।

"डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते है– पंचतन्त्र की कथाएँ गुणाढय की बृहद कथा, कथा सरित्सागर, रीति रिवाज प्रथाएँ मान्यताएँ विश्वास लोक कथाएँ, लोकगीत धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टांत सभी को हम लोक संस्कृति में ले सकते हैं।"[119]

कालिदास ने लोक संस्कृति को भी इस प्रकार शब्दायित किया है।

"इक्षुच्छायानिषदिन्या तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्
आकुमार कथोद्धातम् शालिक्षेत्रेभ्योजगुर्मशेः।"[120]

'विक्रमउवशीयम' में संस्कृति का बहुत अच्छा रूप दिया है। मानव के जीवनानुभवों का नवनीत ही संस्कृति की संहिता है यही संस्कृति व्यक्ति जीवन को पूर्ण एवं सार्थक स्थिति तक पहुँचाने में सहायक होती है। संस्कृति व्यक्ति की वह मूल चेतना है, जिसका आलोक उसके सम्पूर्ण बोध के आलोक में निहित होता है।

1. सामाजिक एवं राजनीतिक विचारक लॉक ने ह्यूम अण्डर स्टेडिंग में इसे क्रियाशील एवं गतिशील भावावेग के बोध की संज्ञा दी है।
2. रिचर्ड मेरिस बुके चेतना के तीन स्तर मानते हैं– 1. सामान्य चेतना, 2. आत्म चेतना, 3. उच्चस्तरीय चेतना
3. फ्रायड के अनुसार मन के तीन स्तर होते हैं चेतन अर्द्धचेतना तथा अचेतन।
4. अरविन्द ने चेतना को तीन भागों में विभक्त किया है। मानस, अधिमानस और अतिमानस रूप में।

5. भारतीय दृष्टि के अनुसार मन ही इन्द्रियों के माध्यम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का अनुभव करता है। जीव इनसे उत्पन्न सुख दुःख का अनुभव करता है।

इन सभी परिभाषाओं से यह परिभाषित हुआ है कि सांस्कृतिक चेतना का उदार रूप मानवता है। संस्कृति का धर्म, दर्शन, परम्परा, आध्यात्म, नैतिक मूल्य आदि से निकट का सम्बन्ध है।

संस्कृति और सभ्यता – संस्कृति आध्यात्मिक है, सभ्यता यांत्रिक। संस्कृति प्रयोजनातीत को सहज लभ्य करने का विधान है। संस्कृति व्यक्ति में आंतरिक विधान का नाम है, सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्था का नाम है। सभ्यता परिणात्मक और मायात्मक होती है और संस्कृति गुणात्मक सभ्यता जीवन संगठन और भौतिक शान्ति का अनुसंधान करती है और संस्कृति श्रेयात का पोषण।

मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार – "संस्कृति पूर्णतः और निहित आंतरिक शक्तियों का परिचय देती है। इसका महत्त्व इस बात में नहीं है कि हमारे पास क्या है बल्कि इस बात से है कि हम क्या बता रहे हैं। यह बाहरी स्थिति नहीं मानसिक व आत्मिक अवस्था है।"[121]

"कवि रामधारी सिंह दिनकर के मत से संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महान चीज होती है। वह सभ्यता के भीतर उसी तरह रहती है। जैसे दूध में मक्खन और फूल में सुगंध।"[122] इन परिभाषाओं से सभ्यता व संस्कृति का महत्व व अन्तर हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाता हैं।

संस्कृति और परम्परा – "संस्कृति का प्रतिबिम्ब परम्परा में अभिव्यक्त होने से सामान्यजन परम्परा को ही संस्कृति मान लेता है। जिस परम्परा का कालानुरूप परिष्कार, संशोधन एवं परिवर्धन होता रहता है, वह दीर्घजीवी होती है। परम्परा इसीलिए परम+परा है क्योंकि यह लोकमंगल की उदार कामना सहेजे होती है। परम्परा श्रेष्ठता की द्योतक है, निकृष्टता की नहीं, परम्परा श्रेष्ठ आचरण की पीठिका होने से ही उसकी अस्मिता तथा उसका स्वाभिमान बनती है। प्रतीकात्मक रूप से कहें तो परम्परा से समाज जाना जाता है। समाज और परम्परा का इस नाते अभिन्न संबंध है परम्परा ही समाज की ऊर्जा तथा प्रेरणा शक्ति है, जिसके सहयोग से समाज सतत अग्रसर और गतिमान रहता है।"[123] यहाँ स्पष्ट है कि समाज व परम्परा का अभिन्न सम्बन्ध होता है। परम्पराएँ किसी भी समाज की पहचान व प्रेरणा शक्ति होती है।

संस्कृति और धर्म – धर्म का रूप ऋत है किन्तु ऋत जहाँ नैसर्गिक प्रक्रिया है, धर्म वहाँ वैश्विक या सांसारिक। ऋत नैसर्गिक सत्य और धर्म भौतिक सत्य। महाभारत में युधिष्ठर जब कहते हैं "'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरौ' इस कथन पर धर्मराज पर शास्त्रों ने प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया। 'सत्यं वद' सत्य संदेह में लपेटकर मत बोलो।"[124]

इलियट – अर्थात् सत्य स्पष्ट होना चाहिये। यही धर्म है। "संस्कृति और धर्म को एक ही सिक्के के दो पहेलू मानते हैं। धर्म स्वयं में पूर्ण है। इसके ग्रहण के साथ ही व्यवहार में पवित्रता विचारों में सरलता तथा स्वभाव में नम्रता आ जाती है। यह तोड़ता नहीं जोड़ता है। धर्म समाज जीवन का संविधान है। जीवन मूल्य है, जीने की कला धर्म अभिव्यक्ति नहीं, आचरण है। अनुभव नहीं अनुभूति है। धर्मकल्प वृक्ष है। जीवन में धर्म का वही स्थान है, जो शरीर में चेतना का है। प्रेम, अहिंसा, सद्भावना धर्म के विविध रूप है। धर्म स्वयं में पूर्ण है।"[125] यहाँ धर्म वह जीवन मूल्य है जो जीवन को पूर्णता प्रदान करता है। धर्म जीवन की अनुभूति है। यह मानव से मानव को जोड़ता है। मानव मन को पवित्र बनाता है।

संस्कृति और दर्शन – "डॉ. विजय ने संस्कृति एवं दर्शन को बड़े ही गहराई से यहाँ परिभाषित किया है। इस निबंध में भारतीय संस्कृति में पहला उपादान आस्था को माना है। आस्था का पाथेय दार्शनिक है और वेदान्त भारतीय दर्शन का अंतिम प्रस्थान बिन्दु है। प्रस्थान, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद तथा गीता ही आते हैं। महर्षि व्यास ने ही वेद को नया विस्तार दिया है। उनके गाये मंत्र यज्ञ मंत्र तथा ईश मंत्र पृथक किये और नया बल सूत्र रचा। यही ज्ञान दृष्टि ही भारतीय संस्कृति की थाती है। वेदव्यास ने ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव को सृष्टि संचालक प्रकृति तत्व सत, रज, तम की संज्ञा दे कर्ता, पालक तथा संहारक बताया। श्रीमद् भागवत एवं कृष्ण लीलाओं के माध्यम से प्रेम, मधुरा, सखा, दास्य भक्ति की नवधाविधि प्रस्तुत कर अष्टयाम साधना प्रदान की।"[126]

डॉ. विजय ने लिखा है– "संस्कृति में दर्शन का निचोड़ तो है ही धर्म की रचनात्मकता भी समाहित है। समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान की जटिलताओं का समाधान भी संस्कृति में समाविष्ट है।"[127]

संस्कृति और जीवन मूल्य – "डॉ. विजय ने इसकी परिभाषा बड़ी ही रौचक व ज्ञान वर्धक बताई है। मूल में यत् प्रत्यय लगकर मूल्य शब्द बना जिसका अर्थ है प्रतिष्ठा के योग्य। अमरकोशकार ने 'मूल्य वस्नोऽप्यवयक्रयः' के रूप में परिभाषित किया है।"[128]

1. महादेवी वर्मा के अनुसार – "मूल्य वे सिद्धान्त है, जो मनुष्य बनाते हैं। सापेक्षता के सिद्धान्त का विवेचन करते हैं।"[129]

2. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "मूल्य न तो वस्तु ये है न आत्मा में। मूल्य विषयगत और विषयीगत भी नहीं है। काल एवं स्थिति सापेक्ष होते हैं मूल्य। मूल्य पूरे मनुष्य जीवन से, समाज जीवन से राष्ट्र जीवन से यहाँ तक की पूरे वैश्विक जीवन से जुड़े हैं। अस्थायी मूल्य और स्थायी मूल्य, वैयक्तिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, चारित्रिक मूल्य आदि सभी मनुष्य के निर्माण के भागीदार है।"[130] डॉ. विजय ने सांस्कृतिक मूल्य में अपनी लेखनी से सांस्कृतिक मूल्य का विषय निबंध संग्रहों में

सांस्कृतिक युग व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक युग बोध में सभी निबंधों में भारत के दर्शन एक राष्ट्र तथा भारत की संस्कृति सभ्यता के आइने के दर्शन मिलते हैं। सभी निबंध, उपन्यास, 'रमताराम', 'पायसपायी' में श्री रामचरण गोस्वामी के चरित्र को राष्ट्र निर्माण में प्रमुख चारित्रिक विशेषता बताई है। कहानी संग्रह में भी बड़ा ही उत्कृष्ट रूप से सांस्कृतिक मूल्य बताते हैं। प्रत्येक चरित्र की अपनी एक अलग विशेषता झलक पड़ती है। अतः सांस्कृतिक मूल्य डॉ. विजय के लेखन में मिलते हैं।

3.6 सामाजिक मूल्य

डॉ. दया कृष्ण विजय के लेखन में सामाजिक मूल्य गद्य के प्रत्येक क्षेत्र में झलकता है। **सामाजिक मूल्य का अर्थ–** "सामाजिक मूल्य सामाजिक मान है जो कि सामाजिक जीवन के अन्तः संबंधों को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। सामाजिक मूल्य के अनुसार व्यक्ति को अपनी ही जाति या उप जाति में विवाह करना चाहिए। इसके विपरीत यदि कोई अन्तर्जातीय विवाह करता है तो सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि उस सामाजिक जीवन के विभिन्न क्रिया कलाप से सम्बंधित विभिन्न प्रकार के मूल्य होते हैं। पिता से सम्बंधित कुछ मूल्य होते हैं तो सम्पूर्ण राष्ट्र के शासन के सम्बन्ध में भी मूल्य हुआ करते हैं। उसी प्रकार विवाह से सम्बन्ध में सामाजिक धार्मिक आचरण राजनीति, आर्थिक जीवन आदि के सम्बन्ध में एकाधिकार मूल्य होते हैं। समस्त मूल्यों में एक बोधात्मक तत्त्व होते है। अतः स्पष्ट है कि मूल्य आदर्श नियमों में घनिष्ठ रूप से सम्बंधित होते हैं। इतने घनिष्ठ रूप में कि इन दोनों में अंतर करना कठिन हो जाता है मूल्यों व आदर्शों को विविध विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है।"[131]

जॉनसन के अनुसार – "विस्तृत दृष्टिकोण से देखने पर मूल्य तथा आदर्श नियम के बीच पाए जाने वाले अंतर स्वतः ही गायब हो जाते हैं।"[132]

स्पैंगर के अनुसार – "सामाजिक मूल्य 6 आधारभूत प्रकार के मूल्यों का वर्णन किया है जो है– 1. सैद्धांतिक या बौद्धिक, 2. आर्थिक या व्यवहारिक, 3. सौन्दर्यबोधी, 4. सामाजिक या परार्थवादी, 5. राजनीतिक या सत्ता सम्बंधी, 6. धार्मिक या रहस्यात्मक।"[133]

गोलाइटली के अनुसार – "मौलिक एवं क्रियात्मक मूल्यों की धारणा पर आधारित है।"[134]

मुकर्जी के अनुसार – "'साध्य मूल्य' वे लक्ष्य तथा संतोष है जिन्हें मनुष्य तथा समाज जीवन तथा मस्तिष्क के विकास व विस्तार की प्रक्रिया में अपने लिए स्वीकार कर लेता है। जो व्यक्ति के आचरण में अन्तर्निष्ठ होते हैं और जो स्वयं साध्य होते हैं। उदाहरण 'सत्य', 'शिव और सुन्दर' से सम्बंधित मूल्य मनुष्य के आंतरिक जीवन से संबंधित है जो स्वतः ही पूर्ण हैं। इसके विपरीत,

साधन मूल्य हैं जिन्हें मनुष्य और समाज प्रथम प्रकार के मूल्यों की सेवा हेतु एवं उन्हें उन्नत करने के साधन के रूप में मानते हैं। स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सुरक्षा, पेशा, प्रस्थिति आदि से संबंधित मूल्य 'साधन मूल्य' हैं क्योंकि इनका उपयोग कतिपय लक्ष्यों व संतोषी की प्राप्ति के साधन के रूप में किया जाता है। साध्य मूल्यों को अमूर्त या लोकातीत मूल्य एवं साधन मूल्यों को विशिष्ट या अस्तित्वात्मक मूल्य कहकर भी पुकारा जा सकता है। साध्य, अमूर्त या लोकातीत मूल्यों का संबंध समाज व व्यक्ति के जीवन को उच्चतम आदर्शों तथा लक्ष्यों से होता है। जबकि साधन विशिष्ट या अस्तित्वात्मक मूल्यों को लौकिक लक्ष्यों की पूर्ति के साधन उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है। फिर भी इन साधन मूल्यों के उचित चुनाव व बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग कि बिना साध्य या लोकातीत मूल्यों की परिपूर्णता सम्भव नहीं इस संबंध में यह भी स्मरणीय है कि औसत रूप में मनुष्य का सम्बंध साध्य मूल्यों की अपेक्षा साधन मूल्यों से अधिक होता है। इसीलिए इन्हीं साधन मूल्यों उनकी परिस्थितियों एवं परिणामों की विवेचना सामाजिक विज्ञान द्वारा की जाती है। मूल्यों के तीन आयाम होते है। (क) जैविक मूल्य (ख) सामाजिक मूल्य (ग) आध्यात्मिक।"[135]

सामाजिक मूल्य – स्वास्थ्य, जीवन निर्वाह, कुशलता, सुरक्षा आदि से संबंधित होते है। सामाजिक मूल्य सम्पत्ति, प्रस्थिति प्रेम तथा न्याय संबंधी होते हैं तथा आध्यात्मिक मूल्य सत्य, सुन्दरता, सुसंगति तथा पवित्रता विषयक होते हैं। आध्यात्मिक मूल्य का स्तर सबसे ऊँचा होता है। क्योंकि इसकी विशेषता आत्म लोकातीतत्व है। इसलिए यह साध्य मूल्य या अन्तर्निष्ठ मूल्य या लोकातीत मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बाद सामाजिक मूल्यों का स्थान होता है जिसका कि उद्देश्य सामाजिक संगठन व सुव्यवस्था को बनाए रखना होता है। इसीलिए इन्हें साधन जीवन बाह्य मूल्य या क्रियात्मक मूल्य की संज्ञा दी जाती है। अंत में मूल्यों के सोपान या सस्तरण में जीवन मूल्यों के बाद सामाजिक मूल्यों का स्थान है पर जैविक व सामाजिक स्तर से गुजरते हुए ही सम्भव है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की प्राप्ति में ही निहीत है जो कि जैविक व सामाजिक स्तर से गुजरते हुए ही संभव है। इसीलिए आध्यात्मकमूल्य सर्वोच्च प्रकार का मूल्य है। सामाजिक और जैविक मूल्यों के स्थान क्रमशः उसके बाद है।

डॉ. मुकर्जी ने मूल्यों का सोपान एवं संस्तरण इस प्रकार दिया है।

क्र.सं.	मूल्यों के आयाम	मूल्यों के गुण	मुल्यों का संस्तरण	मूल्यों का संस्तरण
1.	जैविक	स्वास्थ्य, उपयुक्ताता, कुशलता		साधन मूल्य बाह्य मूल्य
		सुरक्षा, निरन्तरता जीवन निर्वाह		क्रियात्मक मूल्य

2.	सामाजिक	सम्पत्ति, प्रस्थिति प्रेम एवं न्याय सामाजिक, सुव्यवस्था	साधनमूल्य, बाह्य मूल्य क्रियात्मक मूल्य
3.	आध्यात्मिक	सत्य सौन्दर्य सुसंगति तथा पवित्रता आत्म लोकातीतकरण	साध मूल्य अंतनिष्ठ मूल 3–1 लोकातीत मूल्य

समाज मूल्यों का एक संगठन व संकलन है। मूल्य सामाजिक क्रिया में सामूहिक अनुभव होते हैं जिनका निर्माण वैयक्ति तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार के सामूहिक दोनों ही प्रकार के प्रत्युत्तरों तथ्यों मनोवृत्तियों द्वारा होता है। ये मूल्य समाजों का निर्माण करते हैं और सामाजिक संबंधों को संगठित। सामाजिक मूल्य के संबंध में हॉल्स के अनुसार – “घिनौना पशुवत एवं संक्षिप्त बन गया होता” अगर मानव में सामाजिक मूल्य विद्यमान न होते। नैतिक स्तर पर पारस्परिक आदान–प्रदान, सहयोग, सहानुभूति, न्याय एवं प्रेम के मूल्य समाज के विभिन्न पक्षों और समग्र रूप में पूरे समाज को सन्तुलित एवं व्यवस्थित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। यही गुण डॉ. विजय के गद्य लेखन के विषय में मिलते हैं। डॉ. विजय ने कहानी संग्रह– ‘बड़ी मछली’ में समाजविशेष के सभी रूपों को छुआ है। ‘बड़ी मछली’ कहानी संग्रह में सभी 21 कहानियों में सामाजिक व्यवहार को बड़े ही रौचक ढंग से परिभाषित किया है।

कहीं पारिवारिक बिछोह है तो कहीं जातिगत भेदभाव की भावना। त्रिकोण प्रेम पर आधारित ‘विवाहिता’ कहानी में पति–पत्नी के रिश्तों की अगाढ़ प्रेम का भाव मिलता है। कामना का प्रेम वास्तविक प्रेम न था वह शारीरिक सुख की भूखी थी। वंदना पति परायण स्त्री थी। दशरथ राय का दुर्घटना में कूल्हे की हड्डी टूटी तो वंदना ने दशरथ राय की सेवा शुश्रुषा में अपने को झोंक दिया। वह समय पर सारा नित्य कर्म करवाती कामना वंदना की सेवा से और चिढ़ गई। कामना भी दशरथ राय के भाव ताड़ गई और अपने पीहर में हो रही शादी का बहाना करके वहाँ से चली गई।

वसीयत कहानी में भी विश्वेश्वर कमलेश्वर की परिवार विच्छेद की कहानी है। इसमें समाज के यथार्थ सत्य को उजागर किया है। “विश्वेश्वर ने अपनी जेब से वसीयत निकाली और कहा सज्जनों पिताजी ने सारी सम्पत्ति मुझ अकेले के नाम वसीयत कर दी थी। मैं आज आप सबके सामने इसे फाड़कर चिता को समर्पित कर रहा हूँ। यह कहते हुए वसीयत फाड़कर पिता की चिता में फेंक दी।”[136]

दोनों भाई गले मिलकर फूट–फूटकर बहुत रोए। परिवार विच्छेद होने पर भाईयों में मनमुटाव का भाव। परिवार में प्रेम दया का भाव कम होना पर फिर भाईयों का एक हो जाना बहुत ही आवश्यक है।

उलझन – कहानी संग्रह में भी आम जन–जीवन की सामाजिक समस्याओं का उल्लेख है। जीवन के सभी प्रकार की उलझन का भाव मिलता है। परिवार की समस्या रोजगार की समस्या, नैतिक मूल्यों के ह्रास आदि सभी तत्वों का समावेश उलझन कहानी में मिलता है।

स्वप्न और सत्य – डॉ. विजय की यह कथा संग्रह यथार्थ व स्वप्न के ताने–बाने की रचना है। इसमें जीवन का सत्य को डॉ. विजय में सामाजिक स्तर पर लिखा है। सभी कहानियाँ सामाजिक आर्थिक, नैतिक आधार पर रचित है और सामाजिक मूल्यों का ताना–बाना हमें पड़ने को मिला।

एक और क्रांति – डॉ. विजय की इस कहानी में समाज का पिछड़े वर्ग का विवेचन दिया है। हरिजन समाज शुरु से ही उपेक्षित रहा है। समाज का हर वर्ग धीरे–धीरे बदल रहा है। हरिजन वर्ग सामाजिक रूप से आज भी छुआछूत के शिकार होते हैं। मंदिर प्रवेश आज भी इस वर्ग के लिए वर्जित ही है। समाज में सुवर्ण ने हरिजन समाज को शुरु से ही दबा कुचला वर्ग घोषित किया है। यह वर्ग शुरु से ही अपने अधिकारों से वंचित रहा है। डॉ. विजय ने कहानी एक और क्रांति में समाज के बदलाव की क्रांति को उल्लेखित किया है। समाज के अपने सभी अधिकार जो सामाजिक स्तर पर हर वर्ग को मिलते हैं। खाने–पीने का अधिकार सार्वजनिक स्थान पर हर वर्ग से मिलने जुलने का अधिकार, मंदिर में प्रवेश कर देवी–देवता पूजन करने का अधिकार आदि। हरिजन समाज भारत की आजादी के 70 वर्ष बाद भी सामाजिक स्तर से समान अधिकार हर वर्ग को नहीं मिले। समाज की इसी सोच पर कुठारा घात किया है डॉ. विजय की इस कहानी में समाज में बदलाव लाकर हरिजन समुदाय गाँधी जी के अनुयायी बनकर आगे बढ़ते हैं।

नाटक में डॉ. विजय ने 'सिंहासन' नाटक में समाज के उच्चवर्ग जैसे राजा राज्य के अधिकारों तथा सिंहासन पर अपने अधिकारों को बताया है। समाज में हर वर्ग उच्च हो या निम्न सामाजिक मूल्यों का महत्त्व सभी के जीवन में होता है।

उपन्यास 'रमताराम' – में श्रीरामचरण दास के जीवन का उल्लेख सामाजिक स्तर पर दिया है। गोस्वामी जी का जीवन बहुत ही मार्मिक ढंग से समाज को धर्म की शिक्षा देता है। धर्म के प्रति समर्पण भाव है। इससे मानवजीवन स्वतः ही सामाजिक मूल्यों से परिपूर्ण हो जाता है सद्मार्ग की और चलने से व्यक्ति के अन्दर स्वतः ही सामाजिक मूल्यों का विकास होने लगता है। प्रेम करुणा, दया, परोपकार, सेवाभावी, कर्त्तव्य, परायण, धर्म के प्रति, अगाध भाव होना इसमें मिलता है। डॉ. विजय में विचारों के अमलतास निबन्ध संग्रह में विचारों की विविधता को दर्शाया है। इसमें विविध

भावों द्वारा ही मानव की वैचारिक विविधता का परिचय दिया है। प्रत्येक व्यक्ति के विचार अलग होने पर भी एक समुदाय में बंधकर समाज का रूप सामाजिक स्तर पर समान बताते है। सामाजिक मूल्यों से सभी की समानता का भाव हमें यहीं मिलता है।

अतः डॉ. विजय के लेखन में सामाजिक मूल्यों का भाव प्रमुख रहा है। अपने लेखन का विषय डॉ. विजय में सामाजिक मनुष्य के भाव को उजागर किया है। इनके लेखन में समाहित सामाजिक मूल्यों के विषय पढ़ने पर आभासित होते हैं। इसमें जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति पढ़ने पर आभासित होती है। इसमें जीवन मूल्यों का भाव बड़ा ही मार्मिक ढंग से समझने में मिलता है।

3.7 दार्शनिक मूल्य

डॉ. दयाकृष्ण विजय के लेखन में दार्शनिक मूल्य उद्घाटित हुए हैं। दर्शन मानव जीवन के बौद्धिक समझ का परिचय देते हैं। दार्शनिक मूल्य का अर्थ अंग्रेजी शब्द 'फिलोसफी' का अर्थ 'ज्ञान के प्रति अनुराग' होता है। भारतीय अवधारणा के अनुसार दर्शन का क्षेत्र केवल ज्ञान तक सीमित न रहकर समग्र व्यक्तित्व को अपने आपमें समाहित करता है। डॉ. विजय के लेखन में भी दर्शन के द्वारा बौद्धिकता का आभास न होकर समग्र व्यक्तित्व का ज्ञान मिलता है। दर्शन द्वारा केवल आत्म ज्ञान ही न होकर आत्मानुभूति हो जाती है।

दर्शन का भारतीय सम्प्रत्यय – भारत में दर्शन का उद्गम असंतोष या अंतरिक्ष से माना जाता है। हम वर्तमान से असन्तुष्ट होकर श्रेष्ठतर की खोज करना चाहते हैं। यही खोज दार्शनिक गवेषणा कहलाती है। दर्शन के विभिन्न अर्थ बताये जाते हैं। उपनिषद काल में दर्शन की परिभाषा थी– "जिसे देखा जाये अर्थात सत्य के दर्शन किये जाये वही दर्शन है। (दृश्यते अनेन इति दर्शनम उपनिषद)।"[137]

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार – "दर्शन वास्तविकता के स्वरूप का तार्किक विवेचन है।"[138]

दर्शन का पाश्चात्य सम्प्रत्यय – "पाश्चात्य जगत में दर्शन का सर्वप्रथम विकास यूनान में हुआ। प्रारम्भ में दर्शन का क्षेत्र व्यापक था परन्तु जैसे–जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ दर्शन अनुशासन के रूप में सीमित हो गया।"[139]

प्लेटो के अनुसार – जो सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता है और सीखने के लिये आतुर रहता है कभी भी असंतोष करके नहीं रुकता, वास्तव में वह दार्शनिक है। उनके ही शब्दों में– "पदार्थों के सनातन स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना ही दर्शन है।"[140]

अरस्तु के अनुसार – "दर्शन एक ऐसा विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है।"[141]

कान्ट के अनुसार – "दर्शन बोध क्रिया का विज्ञान और उसकी अलोचना है। परन्तु आधुनिक युग में पश्चिमी दर्शन में भारी बदलाव आया है अब वह मूल तत्त्व की खोज से ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की तार्किक विवेचना की ओर प्रवृत्त है। अब दर्शन को विज्ञानों का विज्ञान और आलोचना का विज्ञान माना जाता है।"[142]

हारबार्ट और स्पेन्सर के शब्दों में – "दर्शन विज्ञानों का समन्वय या विश्व व्यापक विज्ञान है।"[143] इन सभी दर्शन ज्ञाता के अनुसार ही डॉ. विजय ने अपने गद्य लेखन में निबंधों द्वारा परिचय दिया है। दर्शन का ज्ञान हमारे आध्यात्म, ज्ञान, धर्म आदि सभी से परिपूर्ण है। दर्शन का वास्तविक सम्प्रत्यय डॉ. विजय ने ज्ञान अज्ञान, जीव, जगत आत्मा परमात्मा सृष्टि सृष्टा आदि मानव के वास्तविक स्वरूप में ज्ञान प्राप्त करने के साधन है। मनुष्य के करणीय और अकरणीय कर्मों का तार्किक विवेचन किया जाता है। प्राकृतिक, सामाजिक, अनात्मवादी और सभी दर्शन आ जाते हैं। "दर्शन शब्द अंग्रेजी शब्द फिलॉसफी शब्द से बना है। यूनानी शब्द से हुई है। फिलॉस जिसका अर्थ 'प्रेम' तथा 'सोफिया' जिसका अर्थ है ऑफ विज्डम इस प्रकार से फिलासफी का अर्थ है 'लवफोर विज्डम' या ज्ञान के लिये प्रेम।"[144]

सुकरात के अनुसार – "वे व्यक्ति दार्शनिक होते है जो सत्य के दर्शन हेतु इच्छुक होते हैं।"[145]

दर्शन का अर्थ सत्य की खोज – "दर्शन जीवपन के सत्यों की खोज और उसे जानने की इच्छा तथा उसके साक्षात्कार को कहते हैं।"[146] **डी.वी.** के शब्दों में लिखा है। अतः यह हम कह सकते हैं कि "जीवन तथा संसार के संबंध में विभिन्न तथ्यों को एक साथ एकत्र करना जो एक निष्ठ सम्पूर्ण बनकर जो या तो एकता में हो या हितत्ववादी सम्प्रदाय में हों।"[147]

पैट्रिक के अनुसार – "'दर्शन को हम सम्यक् विचारीकरण की कला कह सकते हैं।' इसमें व्यक्ति तर्क एवं विधिपूर्वक संसार की वस्तुओं को वास्तविक रूप को जानने का प्रयास करता है। इस प्रकार हम मान सकते हैं कि कुछ व्यक्ति जन्म से ही दार्शनिक होता है।"[148]

"ब्राइट मैन के अनुसार दर्शन को हम वो प्रयास कह सकते हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण मानव अनुभवों के विषय में सत्यता के साथ विचार करते हैं अथवा हमारे सम्पूर्ण अनुभव बोधगम्य बनते है।"[149]

निष्कर्ष रूप में दर्शन विचारीकरण की कला, अनुभव की बोधगम्यता सत्य की खोज, ज्ञान के लिए प्रेम की खोज कहा जा सकता है। दर्शन द्वारा मनुष्य सम्यक दृष्टि से विचार करता है। सत्य प्राप्ति की सही राह खोजता है। दर्शन मानव के चिन्तन का सार रूप कहा जा सकता है।

जीवन की आलोचना – "दर्शन में जगत के दिग्दर्शन का बुद्धिवादी प्रयत्न किया जाता है। डॉ. विजय के निबंध में जीवन की आत्मा परमात्मा, ज्ञान दर्शन के विषय में पढ़ने को मिलता है। 'एकात्म' मानववाद कहने पर मानव–मानव के बीच न तो विभेद की कल्पना शेष रहती है न शोषण की तब सृष्टि ही एक कुटुम्बकम नीड़ रहती है न वहाँ कोई श्रेष्ठ है न निकृष्ट।"[150]

अंतिम उत्तर के रूप में – दर्शन को उस उत्तर के रूप में देखा जा सकता है।

समस्याओं पर विचार करने का ढंग – नवीन तय विचार के अनुसार दर्शन केवल गूढ़ एवं सूक्ष्म विचार ही नहीं वरन यह समस्याओं पर विचार करने का ढंग है।

हैण्डरसन के अनुसर – "दर्शन कुछ अत्यन्त कठिन समस्याओं का कठोर नियंत्रित एवं सुरक्षित विश्लेषण है, जिसका सामना मनुष्य स्वयं करता है।"[151] "हम यह कह सकते हैं कि दर्शन का सम्बंध ज्ञान से है और दर्शन ज्ञान को व्यक्त करता है। हम दर्शन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट इन परिभाषाओं से कर सकते हैं।"[152]

बरटेरडरसेल – "अन्य विधाओं के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्रति है।"[153]

आर.डब्लू सेलर्स – "दर्शन एक व्यवस्थित विचार द्वारा विश्व और मनुष्य की प्रकृति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न है।"[154]

जॉन डी.बी. क अनुसार – "जब कभी दर्शन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है तो यही निश्चय हुआ कि दर्शन ज्ञान प्राप्ति का महत्त्व प्रकट करता है जो ज्ञान जीवन के आचरण को प्रभावित करता है।"[155]

हैन्डर्सन के अनुसार – "दर्शन कुछ अत्यन्त कठिन समस्याओं का कठोर नियन्त्रित तथा सुरक्षित विश्लेषण है जिसका सामना मनुष्य करता है।"[156]

दर्शन की आवश्यकता – व्यक्ति को चिन्तन एवं तर्क से पूर्ण बनाने की दृष्टि से दर्शन जीवन पर जीवन की समस्याओं पर और इनके समाधान पर चिन्तन एवं तर्क की कला है। इससे जानने की आवश्यकता हर व्यक्ति को है। डॉ. विजय ने प्रस्तुत निबंध संग्रह में दर्शन यानी दार्शनिक चिन्तन की बुनियाद, उन बुनियादी प्रश्नों में खोजी जा सकती है। जिसमें जगत की उत्पत्ति के साथ–साथ जीने की उत्कंठा की सार्थकता के तत्वों को ढूँढने का प्रश्न छिपा है। "वर्तमान

साहित्य और समान निर्माण की भूमिका 'एकात्ममानववाद और हिन्दुत्व' में मानव के अद्वैत वेदान्त ज्ञान की खोज का अंतिम सोपान पढ़ने पर अनुभूति होती है।"[157] प्रकृति के सदस्यों को ढूंढने से शुरु होकर यह चिन्तन उसके मनुष्य धारा के सामाजिक होने की इच्छा या लक्ष्य की सार्थकता को अपना केन्द्रिय बिन्दु बनाती है। मनुष्य विभिन्न प्रकार के ज्ञान अपने जीवन में प्राप्त करता है। डॉ. विजय के निबंध लेखन में दर्शन का ज्ञान हमें मिलता है। इस ज्ञान का कुछ न कुछ लक्ष्य अवश्य होता है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों विचारों के अनुसार दर्शन की आवश्यकता सर्वप्रथम जीवन के लिये होती है। उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर डॉ. विजय द्वारा प्रस्तुत निबन्ध के निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि दर्शन समस्याओं पर विचार करने का उत्तर प्राप्त करने का तरीका है। वह समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तु करता है दर्शन एक व्यवस्थित विचार है। दर्शन द्वारा चिन्तन व तर्क के माध्यम से मनुष्य को समस्याओं के समाधान मिल जाते हैं।

शैक्षिक विकास की दृष्टिकोण से – संस्कृति जीने की कला है एवं तरीकों का योग है। दर्शन इन विधियों का परिणाम कहा जा सकता है। संस्कृति का परिचय दर्शन से मिलता है। भारतीय संस्कृति का ज्ञान उसके दर्शन से होता है भारतीय परम्परा में सुखवाद को स्थान नहीं त्याग एवं तपस्या का स्थान सर्वोपरि है अतएव भारतीय दर्शन में योगवादी आदर्श पाये जाते हैं और भारतीय दर्शन आदर्शवादी है।

दर्शन का विषय क्षेत्र – भारतीय विचारधारा के अनुसार दर्शन एवं जीवन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं। अतः सम्पूर्ण जीवन को दर्शन का विषय क्षेत्र माना गया है। हम दर्शन को मुख्यतः दो रूप में ग्रहण करते हैं– सूक्ष्म तात्विक ज्ञान के रूप में, जीवन की आलोचना और जीवन की क्रियाओं की व्याख्या के रूप में।

दर्शन शास्त्र के रूप में विभिन्न विषयों का अध्ययन किया जाता है।

1. आत्मा संबंधी तत्त्व ज्ञान, आत्मा क्या है? आत्मा का स्वरूप आदि का ज्ञान।
2. ईश्वर संबंधी तत्व का ज्ञान उसके अस्तित्त्व और स्वरूप का ज्ञान।
3. सत्ता–शास्त्र–अमूर्त सत्ताः यथा ब्रह्माण्ड के नश्वर तत्त्व क्या है।
4. सृष्टि–शास्त्र–सृष्टि की रचना एवं विकास, ब्रह्माण्ड की रचना भौतिक तत्त्वों से हुयी है?
5. ज्ञान शास्त्र–सत्य ज्ञान क्या है? मानव बुद्धि इस ज्ञान को प्राप्त कर सकती है? आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।
6. नीति शास्त्र–इसमें व्यक्ति के शुद्ध एवं अशुद्ध आचरण से संबंधित रखने वाली बातों का अध्ययन किया जाता है।

7. तर्कशास्त्र–तार्किक चिन्तन के विषय, विधि क्या है चिन्तन का स्वरूप क्या है?

8. सौन्दर्य शास्त्र–इसमें सौन्दर्य विषय मापदण्ड का ज्ञान है।

दर्शन मनुष्य एवं जगत के संबंध का अध्ययन–दर्शन जीवन की आलोचना तथा जीवन क्रियाओं की व्याख्या है वहाँ दर्शन मनुष्य का संबंध जगत से तथा जगत की विविध गतिविधियों से क्या है, अध्ययन करता है। जीवन का इस जगत से संबंध समाज और समाज की आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक आदि क्रियाओं के साथ है। सामाजिक दर्शन आर्थिक दर्शन राजनीतिक दर्शन तथा शिक्षा दर्शन भी अध्ययन के विषय बन गये हैं। इन सभी अध्ययनों में आदर्श एवं मूल्यों की स्थापना होती है। डॉ. विजय ने अपने दर्शन सम्बन्धी निबन्धों में दर्शन पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

दर्शन का उद्देश्य – दर्शन चिन्तन एवं विचार है, जीवन के रहस्यों को जानने का प्रयत्न है। अतएव दर्शन के निम्न उद्देश्य कहे जा सकते हैं। डॉ. विजय ने निबन्ध, लेखन, उपन्यास, कहानी आदि में दर्शन के उद्देश्य को दर्शाया है।

'वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका' निबंध में वेदपूर्व, देव युग में दर्शन के उद्देश्य को झलक मिलती है। दिव्य शक्ति प्राप्त पुरुषों को ही देवता कहा गया है। निरुक्त से इसकी परिभाषा "देवो दानाद् वा दीपनाद वा द्योतनाद वा द्युस्थानों भवतीति यो देवः सा देवता (निरुक्त 7,15) यह कहकर ही है।"

"द्योतके क्रीडये यस्मात उद्यते द्योतते दिवि।
तस्मात् देवइति प्रोक्तः स्तूयते स वै दैव तैः।"[158]

डॉ. विजय के निबंध संग्रह, 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' और 'भारतीय साहित्य में भारतीय आध्यात्म' में मानव को ज्योतिष, हस्तरेखा, अंक, शुभ–अशुभ से पग–पग पर सावचेत किया गया है। गीता में वेदव्यास ने "आध्यात्म को परम ब्रह्म का स्वभाव कहकर व्याख्यायित किया है– स्वभावोऽध्याउच्यते। परम ब्रह्म का स्वभाव है 'एकोऽहम् बहुस्याम्'। एक से अनेक होने की उसकी इच्छा ही उसका स्वभाव है।"[159]

प्रस्तुत निबन्धों में दर्शन, का उद्देश्य मानव जीवन के रहस्य को समझाया है। इसमें दर्शन, चिन्तन परम ब्रह्म का ज्ञान मिलता है। वैदिक काल में मानव को प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं घटनाओं एवं क्रियाओं को देखकर आश्चर्य की बात हुई। सूर्य, चन्द्र, तारे, प्रकृति, आंधी, वर्षा, गर्मी और मानव की उत्पत्ति आदि सभी दर्शन के उद्देश्य में आती है। मानव में इसे जानने की इच्छा हुई। उसने अपने (आत्मा) एवं ईश्वर (परम) में अन्तर किया और दोनों के पारस्परिक संबंध को खोजने के लिये प्रयत्नशील हुआ। मानव ने परम सत्ता को समस्त चराचर में समाविष्ट देखा और

चिन्तन द्वारा अनुभूति या साक्षात्कार करने की मानव ने लगातार प्रयत्न किया और उस परम सत्ता की प्राप्ति को मोक्ष कहा यही सरमसत्ता की प्राप्ति भारतीय दर्शन कहलाया।

डॉ. विजय के निबंध 'संस्कृति के वागर्थ' में स्पष्ट किया गया है कि 'भारतीय दर्शन की विकास यात्रा बड़ी प्रदीर्घ है। ब्रह्मा के मंत्र, योग, शिव के तंत्र योग तथा इन्द्र के यंत्र योग से लेकर वेद ब्राह्मण, ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, गीता तक में हमें प्रवृत्ति मार्गी दर्शन के दर्शन होते हैं। भारत में दर्शन की हमें दो प्रवृत्तियाँ वैदिककाल से ही मिलती है। एक है निवृत्ति की और दूसरी प्रवृत्ति की। दोनों ही धाराएँ वेद प्रसूत है। दोनों ही धाराएँ पूर्णतया भारतीय है। निवृति धारा ने जगत को मिथ्या मान आत्मदर्शन को प्रमुखता दी है।

दर्शन संस्कृति का प्रमुख अंग है, किन्तु दर्शन की समतुल्यता में संस्कृति का क्षेत्र बहुत व्यापक है। संस्कृति में दर्शन का निचोड़ तो है ही धर्म की रचनात्मकता भी समाहित है। अतः डॉ. विजय ने इस निबंध संग्रह में संस्कृति के प्रति जो त्रुटिपूर्ण धारणाएँ जन मन में चली आ रही है, उसका समाधान प्रस्तुत किया है। वह भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था एवं विश्वास की दृष्टि का परिचय देती है। दर्शन में संस्कृति का प्रमुख महत्त्व है। समस्त भारतीय दर्शन आध्यात्म, आत्मा, परमात्मा आदि सभी मानव की पवित्र आस्था और विश्वास पर ही समाहित है।

डॉ. विजय के रचित इस निबंध में संस्कृति 'दर्शन' की महत्त्वपूर्ण संस्कार धर्म, कर्म, नीति आदि से पुष्टि होने के प्रमाण मिलते हैं।

डॉ. विजय रचित नाटक व एकांकीयों के उद्देश्य पर विचार किया जाये तो सहज ही ज्ञात होता है कि राष्ट्रीयता, भारतीय सांस्कृतिक चेतना का सम्वर्द्धन, जीवन मूल्यों, विश्व कल्याण एवं समन्वयवादी भावनाओं का विकास ही उनके नाट्यकर्म का मूल है। डॉ. विजय का नाटिका 'राग से विराग' तक में वररुचि और सुकेतु दोनों को ही यह अनुमान है कि स्थूलिभद्र राज सभा में नहीं आ सकता। स्थूलिभद्र को मार्ग में संभूतिविजय मुनि मिलते हैं जो उसे सद्मार्ग दिखाते है। स्थूलिभद्र दीक्षाग्रहण करने के लिए तत्पर होते ही कोशा भी वहाँ आकर दीक्षार्थ प्रस्तुत हो जाती है। जिससे दर्शन की अनुभूति पाठक के मन में स्वतः ही आ जाती है। इसमें ईश्वर के प्रति प्रेम त्याग समर्पण का भाव है। जीवन को ईश्वर के प्रतिपूर्ण रूप से आत्मा का परमात्मा से मिलन का भाव मिलता है। जीवन में डॉ. विजय के रचित नाट्यकर्म में दर्शन की अनुभूति एक ओर पौराणिक आधार पर है तो उनमें समस्याओं का निरूपण समसामयिक समस्याओं के स्तर पर भी किया है। आत्मा के सभीसुख भोग कर सामाजिक स्तर से परे धार्मिक भाव से ईश्वर के प्रति अपने समर्पण भाव को भी उद्गार किया है आत्मा का परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण और दार्शनिक भाव से स्वयं का उद्धार हमें इनके समस्त सृजन में दिखाई देता है।

दार्शनिक दृष्टिकोण की विशेषतायें

डॉ. विजय के लेखन में दर्शन, प्रकृति, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा उनके लक्ष्यों और उद्देश्यों के बारे में कहानी, नाटकों, निबंधों में निरन्तर विचार भाव मिलता है। ईश्वर, ब्राह्माण्ड और आत्मा के रहस्यों और इनके पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालता है। डॉ. विजय के लेखन में 'बड़ी मछली' कहानी में 'राग से विराग' तक में 'रमताराम' उपन्यास, 'पायसपायी' आदि सभी में संकल्प, वसीयत, अवतार, ईश्वर, ब्रह्माण्ड और आत्मा के रहस्यों और इनके पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डाला गया है पात्रों में जो व्यक्ति इनसे संबंधित प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है उसे हम दार्शनिक कहते हैं। विस्मय की भावना होना सन्देहस्पद दृष्टि का आभास होना। मीमांसा–दार्शनिक किसी भी बात को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकार करता है, वरन् उसकी मीमांसा करके ही उसको मान्य माना है।

अतः डॉ. विजय ने दार्शनिक रूप अपने लेखन में प्रत्येक पात्र के अनुसार दर्शन की अनुभूति दी है। तार्किक दृष्टि कोण के आधार पर ही हम किसी भी नतीजे पर पहुँच सकते हैं। ज्ञान से ही सर्वमान्य रूप से हम आगे बढ़ सकते हैं। डॉ. विजय के लेखन में दर्शन के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों के साथ राष्ट्रीयता की भावना का सम्बर्द्धन करने के लिए उद्धत है। भारतीय संस्कृति, दर्शन के तत्त्व हमें यहाँ पढ़ने को मिलते हैं। गद्य के प्रत्येक क्षेत्र में डॉ. विजय के लेखन में दर्शन का आभास पात्रतानुकूल तथा स्थान विशेष के आधार पर हुआ है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. हिन्दी शब्द कोश , आर.सी. पाठक, पृ.सं.–57
2. हिन्दी शब्द कोश , आर.सी. पाठक, पृ.सं.–57
3. गीता अनुशीलन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–49–50
4. उलझन कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–5
5. स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, वही, पृ.सं.–7–8
6. आदि सम्राट में प्रकृति और परिवेश, 'विजय', पृ.सं.–35
7. छत्रपति शिवाजी, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–9
8. छत्रपति शिवाजी, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–9
9. सिंहासन, नाटक संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–121–122
10. राग से विराग तक, डॉ. विजय, पृ.सं.–23
11. राग से विराग तक, डॉ. विजय, पृ.सं.–23
12. रमताराम, उपन्यास संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9–10
13. पायसपायी, वही, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23–24
14. गीत अनुशीलन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–29–30
15. गीत अनुशीलन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–29–30
16. गीत अनुशीलन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–29–30
17. राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–157
18. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–27
19. विचारों के अमलतास, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–27
20. साहित्य संस्कृति और युगबोध (2000 ई.) में प्रकृति और परिवेश, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–119
21. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–119–120
22. हिन्दी भाषा और महाकाव्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–106–107
23. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–157
24. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–120
25. वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–123
26. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188

27. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
28. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
29. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
30. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
31. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
32. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
33. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
34. हिन्दी शब्द कोश, आर.सी. पाठक, पृ.सं.–188
35. डॉ. दयाकृष्ण विजय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व
36. उलझन, कथा संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–13–14
37. स्वप्न और सत्य, कथा संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
38. एक और क्रांति, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–157
39. एक और क्रांति, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–157
40. एक और क्रांति, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–157
41. एक और क्रांति, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–157
42. आदि सम्राट, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–6
43. सिंहासन, नाटक संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11
44. छत्रपति शिवाजी, नाटक संग्रह, पृ.सं.–55
45. राग से विराग तक, नाटक संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
46. राग से विराग तक, नाटक संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
47. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
48. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
49. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
50. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
51. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
52. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
53. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–47
54. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–82

55. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
56. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
57. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
58. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
59. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
60. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
61. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
62. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
63. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
64. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
65. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
66. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–82
67. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–21
68. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–21
69. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–21
70. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–21
71. वसीयत, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
72. वसीयत, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
73. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
74. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
75. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
76. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
77. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
78. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
79. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
80. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–18
81. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–18
82. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–18

83. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–42/43
84. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–22
85. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–22
86. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–22
87. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–102
88. बड़ी मछली, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–143
89. उलझन, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–04
90. स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–3
91. एक और क्रांति, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–7
92. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
93. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
94. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
95. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
96. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
97. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
98. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
99. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
100. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
101. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–9
102. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
103. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
104. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
105. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
106. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
107. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
108. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
109. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
110. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23

111. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
112. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
113. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
114. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
115. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
116. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
117. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
118. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
119. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
120. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
121. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
122. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
123. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
124. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
125. सांस्कृतिक चेतना का वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
126. संस्कृति और दर्शन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–127
127. संस्कृति और दर्शन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–127
128. संस्कृति और दर्शन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–127
129. संस्कृति और दर्शन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–127
130. संस्कृति और दर्शन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–127
131. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
132. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
133. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
134. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
135. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
136. वसीयत, कहानी संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–23
137. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
138. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12

139. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
140. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–13
141. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
142. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
143. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
144. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
145. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
146. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
147. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
148. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
149. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
150. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
151. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
152. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
153. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
154. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
155. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
156. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
157. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
158. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12
159. संस्कृति के वागर्थ, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11/12

चतुर्थ अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य के विविध आयाम एवं वाग्वैदग्ध्य

चतुर्थ अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य के विविध आयाम एवं वाग्वैदग्ध्य

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपनी लेखनी से साहित्य जगत को आलोकित किया है। इसमें गद्य लेखन में कहानी हो या नाटक उपन्यास हो या निबंध सभी में अपनी अलग छाप छोड़ी है। जीवन का आनन्द हो या समाज की कोई समस्या सभी भाव को अपने शब्दों में उकेरा है। जीवन के मधुर पलों में परिवार की खुशी है तो ग़म में परिवार का बिखराव भी पढ़ने को मिलता है। डॉ. विजय ने अपने साहित्य में जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण किया है।

4.1 सामाजिक समस्याएँ

डॉ. विजय ने अपने कथा साहित्य में विविध सामाजिक समस्याओं को सूक्ष्मता के साथ उकेरा है। समाज में इन समस्याओं से बिखराव पैदा होता है। विकास अवरुद्ध हो जाता है। जातिवाद, गरीबी, छुआछूत, असमानताएँ, बेरोजगारी आदि समस्याओं को डॉ. विजय ने विस्तार से चित्रित किया है।

सामाजिक समस्या का अर्थ – "परिस्थिति, प्रेम एवं न्याय साधन मूल्य बाह्य मूल्य क्रियात्मक, मूल्य, सामाजिक समस्या, व्यक्ति, समाज और मूल्य में पाए जाने वाले पारस्परिक संबंध व प्रभाव को दर्शाने के लिए सामाजिक समस्याएँ बनती है। मनुष्य के मानसिक तनावों व संघर्षों को सुलझाते हुए आंतरिक प्रसंगति है।"[1]

सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष परिवार से संबंधित कुछ मूल्य होते हैं तो सम्पूर्ण राष्ट्र के शासन के संबंध में भी मूल्य हुआ करते हैं। "सामाजिक सहवास धार्मिक भावना आदि। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने से उसकी आर्थिक व सामाजिक रूप से सुरक्षा होती है। समाज द्वारा मनुष्य की पहचान व प्रतिष्ठा बनती है। बेरोजगारी आर्थिक असमानताएँ, गरीबी, जातिगत, दहेज, अन्तर्जातीय विवाह आदि समस्याऐं निरन्तर बढ़ रही है। सामाजिक समस्याएँ मानव से जुड़ी हुई है।"[2]

परिभाषा – पॉल लेण्डिस के अनुसार– "सामाजिक समस्याएँ व्यक्तियों की कल्याण संबंधी अपूर्ण आकांक्षाएँ हैं।"[3]

सामाजिक समस्या का अर्थ – "सामाजिक समस्या मानव समाज का अविभाज्य अंग है। मानव समाज सामाजिक समस्याओं से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं रह सकता। जातिवाद, दहेज, परिवार, विच्छेद धार्मिक भावना रही है। मनुष्य इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील एवं सजग हो गया है।"[4] सामाजिक समस्याओं में जातिवाद, परिवार विच्छेद अन्तर्जातीय विवाह, बेरोजगारी आदि प्रमुख है।

4.1.1 जातिवाद

"'जाति' शब्द दो अक्षर से बना है जिसमें 'जा', 'ओ', 'ति' है। 'जा' से जातक (जन्म देने वाली) 'ति' से तिरिया (माता) होता है। अर्थात् जाति का भावार्थ 'जन्म देने वाली माता' होता है।"[5]

"आजकल जातिवाद और एकता की बात करने में कुछ कतिपय लोग लगे हैं पहले भी बँटवारे की राजनीति का परिणाम खतरनाक ही हुआ है और यह हमारे समाज की ज्वलंत समस्या के रूप में उभर रही है।"[6] ब्राह्मणवाद, राजपूतवाद, जातिवाद, यादववाद, कायस्थवाद, गुर्जर और मीना और अंत में दलित और अल्प समुदायवाद आदि सभी मानव समूह है। आज सभ्य समाज में हम बहुत विकसित हो चुके हैं पर आज भी मानसिक धारणा जन्मजात ही चलती आ रही है। डॉ. विजय ने कहानी 'बड़ी मछली' कहानी संग्रह में संकलित 'संकल्प' कहानी तथा 'एक और क्रांति' कहानी में दलित दबे कुचले वर्ग की भावना को अपने शब्दों में उकेरा है। 'संकल्प' कहानी का उदाहरण द्रष्टव्य है– "अधिकार विहिन समाज है। इस दलित (हरिजन) समाज को आजादी के 70 वर्ष बाद भी उसी हेय दृष्टि से देखा जाता है जैसे पूर्व में समाज में देखा गया। समाज में दलित वर्ग उपेक्षित ही रहा है। सवर्णों द्वारा इसे कुचला जाता रहा है। यह समाज अपने अधिकारों से भी वंचित ही रहा था।"[7] 70 वर्ष बाद भी आज सभ्य समाज आगे नहीं बढ़ रहा। मानसिक स्थिति कहीं न कहीं रूप से वर्णव्यवस्था का अनुसरण करती ही है। "जीवन को आगे बढ़ने की मानसिकता जन्मजात आधार पर कुचलती ही है। जीवन का आधार जन्म तक सीमित न हो इस हेतु डॉ. विजय ने अपने लेखों में इस समस्या को विषय बनाया। जीवन की जन्म जात प्रवृत्ति और अधिकारों के लिए अपने लेख में कहानियों जैसे 'संकल्प' तथा 'एक और क्रांति' में व्यक्त है कि आजादी पूर्व से ही हमारा समाज जातियों पर ही आधारित रहा है। वर्णव्यवस्था में बदलाव आया है जन्मजात का होना आज की मानसिकता का बिन्दु रहा है।"[8]

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने "जातिवाद पर कुठाराघात करते हुए अपनी कहानियों में लिखा है। समाज में सुवर्ण वर्ग आदि सभी अपने–अपने वचर्वस्व की होड़ में लगे हैं। दलित वर्ग अधिकार विहिन ही रहता है।"[9] "'संकल्प' कहानी जो 'बड़ी मछली' में संकलित है। इसमें हरिजन समाज की लड़की 'रूपा' का प्रवेश पाठशाला में करवा दिया। रूपा प्रारम्भ से ही होनहार छात्रा थी। वाक चातुर्य और प्रत्युत्पन्नमति देखकर अध्यापक सकते में पड़ गए। किशोर ने हरिजन रूपा को वहाँ

देखकर अध्यापक से कहा कि यह हरिजन जाति की है अध्यापक ने पूछा 'क्यों रूपा तुम हरिजन हो? तो उसने उत्तर दिया' मेरे पिता वर्षों गड्ढे खोदने का काम करते हैं।" श्रीमान कल आप पढ़ा रहे थे जातिकर्म से होती है।"[10]

"रूपा की जाति का पता पाठशाला में सबको चल गया। उसके बैठने की कक्षा में अलग जगह नियत कर दी गई। अब उससे कोई बात नहीं करता था। सारे तिरस्कारों के बावजूद उसने साहस नहीं छोड़ा। उसने परिस्थिति से लड़ने का मानस बना लिया। घर का काम करती फिर भी पढ़ती। उच्च शिक्षा के लिए शहर जाती है। वही रौब–रुतबा वाक्चातुर्य रूपा के चरित्र को और निखारने लगा।"[11]

डॉ. विजय ने इस कहानी में दो भाव स्पष्ट किये हैं। पहला जातिवाद दूसरा महिला वर्ग। इसमें जीवन का जाति से जुड़े रहना। जन्म के साथ उसके कर्म पर भी आधारित है। महिला का अपने उत्थान के लिए जुझारू रहना और जातिगत भेदभाव से स्वयं व समाज को उभारने की प्रवृत्ति लागू होती है– "उसने श्रमधरा की 'दरिद्रनारायण' कविता को कंठस्थ कर लिया। जब वह बोलती तो श्रोता झू उठते, वे भी उसके हाथ दुहराते। ओ दरिद्रनारायण अपने भी अधिकार जरा पहचानो, वह कहती है महिलाओं की दशा में तब तक सुधार नहीं होगी जब तक पुरुष समाज का नारी के संबंध में दृष्टिकोण नहीं बदलता। डॉ. विजय ने इनके अधिकारों के लिए लेखनी चलाकर समानता के अधिकार की पैरवी की है।"[12]

एक और क्रांति – जातिवाद की ज्वलंत समस्या से झूझती एक और क्रांति कहानी है। इसमें डॉ. विजय ने यहाँ समाज के उपेक्षित वर्ग की पीड़ा को उभारकर लिखा है। "उपेक्षित वर्ग सवर्णों से सदैव दबा कुचला तथा अधिकार विहिन ही रहा है। इससे समानता के अधिकार पर सेंध लग रही थी। मंदिर प्रवेश से वर्जित इस समाज की सामाजिक व मानसिक उपेक्षा को उभारा है। मंदिर प्रवेश में सुवर्णों का ही आधिपत्य था। उपेक्षित वर्ग सदैव उपेक्षित ही रहा।"[13]

कहानी से उदाहरण यहाँ तत्कालीन परिवेश को समझने के लिये प्रस्तुत है– "इसमें भी अपने अधिकारों के प्रति समाज को उभारने का प्रयास किया है। नगर की डॉक्टर अम्बेडकर समिति के अध्यक्ष श्री परमेन्द्र कुमार मेहतर नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए समाज को सजग करता है। कुछ लोग आज हरिजनों को वेद पढ़ने से रोक रहे हैं। जनेऊ पहनने से रोकते हैं। वे हिन्दू समाज की एकता को तोड़ने वाले हैं। हमारा भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है।"[14] पर जो भी नितान्त अशिक्षित और कट्टरपंथी थे, समय की गति को नहीं जानते थे। वे मन ही मन हरिजनों के मंदिर प्रवेश के विरोधी थे। मन ही मन कुढ़ रहे थे। घोर कलयुग आ गया। सारा धर्म भ्रष्ट कर दिया। "हरिजन समाज को मंदिर प्रवेश करवाकर सारे विरोध भुलाकर सारे हिन्दुओं को एक

हो जाना और सर्वोदयी गाँधीवादी विचारधारा हरिजनोत्थान के प्रति उनकी भावना के स्पष्ट दर्शन प्रतीत हो रहे थे। हरिजनों ने नगर के सबसे प्रसिद्ध वैष्णव मंदिर में आज प्रातःकाल एक विशाल जुलूस के रूप में प्रवेश किया। मंदिर प्रवेश से हरिजनों का मनोबल बढ़ा। मंदिरों में प्रवेश के पीछे जो मानवीय दृष्टि है उसे ये मठाधीश नहीं जानने देते।"[15] दलित वर्ग द्वारा निकाला गया जुलूस तत्कालीन परिवेश की विडम्बना को दर्शाता है।

हरिजनों के विशाल जुलूस का एक दृश्य चित्र अवश्य समाचार पत्रों ने दिया था। जिसका नेतृत्व सर्वोदयी टोपीधारी नेता करते हुए दिग्दर्शित करते है। परमेन्द्र कुमार विचार करने लगे। निश्चय ही जिस व्यक्ति ने श्रृंगार की यह परम्परा प्रारम्भ की प्रसाद की यह प्रथा चलाई दान–दक्षिणा से स्वर्ग प्राप्ति का लाभ बताया व निश्चय ही सबसे बड़ा मानवतावादी व्यक्ति था। "दर्शन का मार्ग खुला समझ गंध और प्रसाद के लोभवश दूसरे दिन फिर वे मंदिर में गये। जैसे ही वे सिंह द्वार में घुसने लगे कट्टरपंथियों उन्हें रोक दिया। धक्का देकर बाहर निकाल दिया।"[16]

वे बड़बड़ाते रहे–"आज मंदिर महंतों की निजी सम्पत्ति हो गये है। धर्म ग्रंथ पंडितों के यहाँ धरोहर रखे हैं। अद्वैतभाव को भूलकर सब अपने स्वार्थ में डूब गये है। एक ओर क्रांति इनके विरुद्ध होना बाकी शेष है।"[17] प्रस्तुत कहानी एक और क्रांति में तत्कालीन परिवेश, मनुष्य को मनुष्य न समझने की पीड़ा को शब्दबद्ध करते हुए जातिवाद की प्रमुख समस्या को चित्रित किया है। जो आज भी दिखाई देती है।

इस कहानी में डॉ. विजय ने समाज में व्याप्त जातिगत भावना को उभारा है।

4.1.2 परिवार विच्छेद

डॉ. दयाकृष्ण विजय समाज के एक बड़े विचारक है। जिन्होंने समाज के सभी पहलूओं को अपनी लेखनी का आधार माना है। समाज में परिवार की धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक समस्याओं में परिवार विच्छेद की समस्या भी है। परिवार समाज की सबसे छोटी ईकाई है। परिवार वह जगह है, जहाँ व्यक्ति अपने अधिकार कर्त्तव्यों के निर्वाहन के साथ–साथ व्यक्ति सुरक्षा महसूस करता है।" डॉ. विजय ने विविध कहानियों में इस समस्या को गहराई से अनुभूत किया व चित्रित किया हैं

वसीयत – डॉ. विजय की रचित कहानी संग्रह 'वसीयत' में परिवार विच्छेद की समस्या मिलती है। यह कमलेश्वर और विश्वेश्वर की कहानी है दोनों भाई पात्र थे इसमें परिवार में माता–पिता की वसीयत का बँटवारा होना बताया है। कमलेश्वर के नाम 'वसीयत' होने पर दोनों भाईयों में मनमुटाव होना और अंत में परिवार विच्छेद। यही भाव इस कहानी में मिलता है। "'कमलेश्वर की

पत्नी ने जब यह सुना तो वह आग बबूला हो गई। पति को कोसते हुए कहने लगी, देखलिया न अपने पिता का प्रेम' "मैं कहती थी तो कहते थे पिता पिता ही है। प्रेम होता न तो जायदाद एक लड़के को ही नहीं देते उनके लिए दोनों बेटे बराबर होने चाहिए। मैं कहती थी तो आप लड़ते थे।"[18]

डॉ. विजय ने इस कहानी में यह सिद्ध कर दिया है कि "'रामायण' धारावाहिक के चरित्र खत्म हो चुकें क्षणिक स्वार्थ आदमी को अंधा बना देता है। मातृत्व भाव को नष्ट कर देता है। आज स्वार्थ के लिए एक–दूसरे के शत्रु हो रहे हैं। पूँजी हमारे बीच लड़ाई का कारण है। कृपणता हमारे बीच कलह का हेतु है।" जब पिता की चिता जल रही थी तब विश्वेश्वर ने कमलेश्वर को वहाँ आता देखा। तब जेब से वसीयत निकाली और कहा "पिता ने अपनी सम्पत्ति मुझ अकेले के नाम वसीयत कर दी थी। वसीयत फाड़कर उसने चिता में फैंक दी और दोनों भाई गले मिलकर फूट–फूटकर रोने लगे।"[19]

इस कहानी में परिवार विच्छेद का प्रमुख कारण धन ही है बताया है।

'सोने की मोहरें' – डॉ. विजय रचित परिवार विच्छेद की एक ऐसी कहानी जिसमें दोनों भाइयों के बीच कटुता बढ़ गई। बोलचाल बंद हो गई मकान का बँटवारा हो गया। विश्वास और कश्यप दोनों पुत्रों के नाम बँटवारा कर दिया गया। विश्वास के पास माँ (विधोत्तमा) रहती। उनका बक्सा भी वहीं रहता था। जब विश्वास और गंगा के घर से कश्यप के घर आई तब उनका बक्सा भी वहीं साथ था। विश्वास और गंगा के घर से कश्यप के घर आई तब माँ (विधोत्तमा) और बक्सा दोनों साथ ही कश्यप के घर आ गई। कश्यप वसुन्धरा के घर बक्सा आया तो प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था। बक्से में माँ के सोने के जेवर की कल्पना से वह हरी हो गई थी। माँ की देह ढल गई और अंत में वर्ष पूरे कर चुकी थी। परिवार रिश्तेदार आये द्वादशा पूरे हुए वक्त निकल जिसने सेवा की बक्सा उसी का होगा कश्यप और वसुन्धरा बड़े ही प्रसन्न थे। गंगा बड़ी बहु दुःख मनाने लगी की 'सारी उम्र तो दुःख हमने उठाया और माल वे खाने में लगे।'[20]

"कश्यप से वसुन्धरा ने कहा देखे बक्से में क्या है उसे खोलो तो। बक्सा का ताला तोड़ते देख लगी। सोने की मोहरे की लालसा में सारे सामान जल्द ही बाहर निकाल डाले और अंत में कुछ न निकला तो दोनों रो पड़े की बड़े भाई–भाभी ने सब कुछ निकाल लिया और हमें कुछ न मिला। रिश्ता माँ के गुजरने के दुःख का उतना नहीं था सोने की मोहरे न मिलने का मातम कश्यप और वसुन्धरा को अधिक था। जीवन की सच्चाई धन पर ही सीमित रह गई है।"[21] यहाँ कटु जीवन का यथार्थ व्यक्त हुआ है। सभी रिश्ते अर्थ प्रदान हो गये है। सेवा भाव गौण हो गया है।

4.1.3 अन्तर्जातीय विवाह

सामाजिक समस्या का यह भी एक रूप है। जीवन का आधार परिवार ही होता है। बच्चा जन्म से ही रिश्तों की डोर से बंध जाता है। डॉ. विजय रचित 'बड़ी मछली' (ममत्व) कहानी में 'अन्तर्जातीय विवाह' का उल्लेख है। इसमें डॉ. विजय ने तत्कालीन समाज में व्याप्त संकुचित मानसिकता को दर्शाया है। उदाहरण देखिये–समाज में प्रेम विवाह अन्तर्जातीय विवाह से परिवार के सभी बड़े सदस्यों की मर्यादा पर ठेस लगाती है। प्रतिभा ने मुम्बई में आर्यसमाज में विश्वास आहुजा से विवाह कर लिया था। सुषमा प्रतिभा की बड़ी बहन है जो मुम्बई में रहती थी। सुषमा को प्रतिभा और विश्वास के बीच बढ़ रहे प्रेम संबंधों का पूर्व ज्ञान था। प्रतिभा ने उससे कहा था। "जीजी मैं विश्वास से प्रेम करती हूँ और वह भी मुझे प्रेम करता है। मैं उसी से विवाह करुँगी नहीं तो प्राण त्याग दूँगी। नारी में नारी की भावनाओं को समझने की बड़ी क्षमता होती है। बड़ी बहन के आशीर्वाद ने प्रतिभा को बल दिया। एक दिन विश्वास से सुषमा की बात भी करवाई। फिर सुषमा की स्वीकृति।"[22] "प्रतिभा के लिए विश्वास से विवाह करवाने के लिए मँगनी होने के समान थी। दोनों बड़े ही प्रसन्न थे। भविष्य के सुनहरे सपनों में विलीन होकर समय व्यतीत करने लगे। आहुजा परिवार बैतुल में तेन्दुलकर जी के बँगले के सामने किराए पर रहता था। आज पास के मोहल्ले में ही उनका बँगला है। एक महाराष्ट्रियन और दूसरा पंजाबी होने से दोनों का पारिवारिक आना जाना तो अधिक नहीं था। दोनों परिवार में जातीय सीमाएँ बँधी हुई थी। कार्तिक रेखा खींच तो आए पर तेन्दुलकर ने कहा कठिन परिस्थितियों को भी सहजता तथा प्रसन्नता से स्वीकार करने पर उससे उत्पन्न होने वाली कड़वाहट नहीं सालती। तिक्तता स्वयं छँट जाती है।"[23] कार्तिक तेन्दुलकर की गोद में सिर धरकर रोते हुए कहने लगे, भाई साहब, मेरी तो सारी इज्जत धूल में मिल गई। मैं तो कहीं का नहीं रहा, इससे तो मर जाना अच्छा। डॉ. विजय ने इसे पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है कि परिवार समाज की अपनी बड़े–बूढ़ों ने एक मर्यादा बना रखी है, अब उसी में चले हैं। प्रतिभा के इस फैसले से सबके भीतर अपमान की आँधी घुमड़ने लगी थी। प्रतिभा जब विश्वास के साथ अपने घर आती है तो पिता (कार्तिक) माई (अश्विन) जैसे लज्जा में डूबकर अपने कमरे में जा दुबके और माँ दुःख विषाद का बोझा लिए खूँटे की तरह खड़ी थी। श्री कार्तिक का क्रोध आसमान छूने लगा– "उसने मेरी सारी शान के बट्टा लगा दिया। मेरे परिवार में आज तक किसी ने ऐसा नहीं किया। यह तो कुल कलंकिनी है। मेरे माथे पर कलंक का टीका लगाने के लिए ही क्या जिंदा थी?"[24]

परिवार में विषाद ऐसा बड़ा की कोई उसे आत्मसात नहीं कर रहा था। कार्तिक का परिवार सालभर में लचीला हो गया प्रतिभा माँ बनी और राखी पर अपने घर बच्चे के साथ आई

तब "ममत्व स्वाभिमान से अधिक प्रबल संवेग है। यह कहते हुए भाई अश्विन ने शिशु के गाल पर चुटकी लेते हुए अपने गोद में ले लिया।"[25]

डॉ. विजय ने इन कहानियों में मध्यम वर्गीय परिवार की सभ्यता, संस्कार, मर्यादा की झलक दिखाई है। इसमें परिवार के प्रति लगाव प्रेम को दर्शाया है। प्रेमविवाह अर्न्तजातीय विवाह से परिवार में कलेश को भी उभारा है। अंत में बेटी जब माँ बनती है तो ममत्व भाव से उसका परिवार के सभी सदस्यों का प्रेम दिखाया है। उसे प्रेमपूर्वक अपनाया गया है।

4.2 आर्थिक संदर्भ

डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में अर्थ सम्बन्धी विवेचना प्रस्तुत की है।

4.2.1 आर्थिक संदर्भ की परिभाषा

गिलिन और गिलीन के अनुसार– "गरीबी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूर्खतापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को इतना ऊँचा नहीं रख पाता कि उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रह सकें और उसको तथा उस पर आश्रितों को अपने समाज के स्तरों के अनुसार उपयोगी ढंग से कार्य करने के योग्य बनाये रखा जा सके।"[26]

डॉ. राधा कृष्ण के अनुसार – "अर्थ को जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण माना है। आर्थिक उपादान (साधन) मानव जीवन का एक अत्यावश्यक तत्व है। सम्पत्ति में स्वतः कोई पाप नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे ही गरीबी में स्वतः कोई पुण्य नहीं है किसी व्यक्ति के अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के प्रयत्नों से दूसरे लोगों को आर्थिक या नैतिक हानि पहुँचती है तो अवश्य यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या ऐसे उपायों से सम्पत्ति एकत्रित करना जिसके परिणाम ऐसे हो भला है या नहीं।"[27]

4.2.2 आर्थिक मूल्य

"परिवार का आधार सामाजिक मूल्य के साथ ही आर्थिक मूल्य पर भी टिका हुआ है। 21वीं सदी से सारे रिश्ते नाते, प्यार व्यवहार आदि सबका आधार है। चार पुरुषार्थों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है। आज का युग अर्थ युग है। डॉ. विषय रचित कहानियों में आर्थिक मूल्य की भावना उभर कर आई है। भौतिक सुख सुविधा आदि सभी आर्थिक स्तर पर आधारित है। आर्थिक मूल्य समाज में सदैव से रहा है। औद्योगिक क्रांति से पूँजीपति वर्ग अलग और श्रमिक वर्ग अलग–अलग हो गये हैं। सब अपनी–अपनी होड़ में लगे हैं। आर्थिक मूल्य से मानव की हर समस्या जुड़ी है।"

डॉ. विजय ने बड़ी मछली कथा संग्रह में 'बड़ी मछली' कहानी में आर्थिक मूल्य को उभारा है। सम्पत्ति–मनोहर पति–पत्नि है। संपत्ति ने अपनी संपूर्ण शक्ति व समय लगाकर फैक्टरी खड़ी कर ली। वह प्रसन्न है, पर मनोहरा संपत्ति की विरति से ऊब चुकी है। यह स्थिति संपत्ति की आर्थिक उन्नति की द्योतक है। परिवार बढ़ने पर जिम्मेदारी भी बढ़ रही है। इसी सोच से सम्पत्ति सुख–सुविधाएँ बढ़ाने के भाव से व्यापार में ज्यादा समय लगा रहा था। पत्नि इसकी यह भावना नहीं समझ पाती है। स्थिति में मानसिक वैचारिकता नकारात्मक आने लगती है। मनोरमा पति की व्यस्तता को पर स्त्री गमन का भाव समझती है। किसी व्यक्ति के अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के प्रयत्नों से दूसरे लोगों को आर्थिक या नैतिक हानि पहुँचती है।

आर्थिक उन्नति का अर्थ ज्यादा धन का अर्जन करना। सुख–सुविधाओं को बढ़ाना। समाज में प्रतिष्ठा का प्रतीक बनना भी अर्थ का रूप ही है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति में लगा है। आज समाज में प्रतिष्ठा उसी को मिलती है जो धन सम्पन्न है। धन सम्पदा उसी को प्राप्त होती है जो मेहनत कर व्यापार या नौकरी पेशा में लगा रहता है। सुख साधन सम्पन्न व्यक्ति की सदैव उन्नति होती है। डॉ. विजय ने भी अपने लेखन में इसे अपना विषय बनाया है। आर्थिक रूप से सम्पन्न रहना प्रसन्नता का प्रतीक माना है। डॉ. विजय के लेख में आर्थिक संदर्भ का व्यक्त हुआ है। बड़ी मछली कहानी में सम्पत्ति और मनोरमा दोनों ही पात्र एक दूसरे के पूरक है। "पति–पत्नि की जोड़ी प्रेम सम्पन्न रहती है। आर्थिक जिम्मेदारी बढ़ने पर सम्पत्ति जब ज्यादा से ज्यादा समय व्यापार में लगाता है। तो पत्नि वियोग से त्रस्त होकर पति से आर्थिक भाव न समझकर पर स्त्री गमन का भाव सोचती है। परिवार में कुढ़न का भाव उत्पन्न होता है। प्रेम की कमी महसूस होती है। जीवन दुःखी रहने लगता है। अंत में दोनों एक दूसरे के भाव को समझते है तब दोनों में प्रेम उजागर होता है। जिम्मेदारी बढ़ती है।"[28] यहाँ कहानी में बताया है कि अर्थ से दोनों पति–पत्नी के रिश्तों में दरार आने लगती है। दोनों को समझ आने पर पुनः सम्बन्ध सामान्य हो जाते हैं।

स्वाभिमान – डॉ. विजय रचित इस कहानी में "अनिल और उसकी माँ की स्थिति बताई है। अनिल और उसकी माँ अकेले ही रहते थे। पिता की मृत्यु के बाद उनके जीवन में आर्थिक संकट छाने लगा था। जीवन की परेशानी बढ़ रही थी। जब अनिल दिल्ली चला गया तब माँ को दोहरे खर्च बढ़ गये। अनिल के लिए उसे 400 रूपए प्रतिमाह भेजने पड़ते थे। फिर उसे मिल से मिलता भी क्या था मात्र 700 रु. 300 रूपए में उसे अपना घर का खर्च चलाना होता था। कभी तो हालत यह हो जाती कि उसे विमल बाबू से रुपये उधार तक लेने पड़ते थे। फिर विमल बाबू का

अहसान उसके माथे पर छाया के रूप में हर समय छाया रहता। विमल बाबू का घर में आना बढ़ भी गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। अकेलेपन में अवरोध होते ही है।"[29]

"माँ कांता को कब और कैसे विमल बाबू ने अहसानों के नीचे दबा लिया, अनिल को इतना पता नहीं चला आर्थिक आधार उसका बन ही कब पाया था कि विधवा हो गई। विमल बाबू का ऐसे में उनका साथ निभाना इस बात का द्योतक है। आर्थिक आधार ही परिवार के पालन पोषण के लिए आवश्यक है।"[30]

प्रस्तुत कहानी में आर्थिक परेशानी व स्वाभिमान के बीच झूलती अनिल की माँ का अन्तर्द्वन्द्व व्यक्त हुआ है।

4.3 सांस्कृतिक धरोहर

डॉ. विजय के सम्पूर्ण साहित्य में संस्कृति की सलिला प्रवाहित है। कथाकार के रूप में उनमें कथ्य के प्रति गहरी सम्वेदनशीलता और मानवीय सरोकारों के साथ सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति आग्रहशीलता निहित है। हमारी संस्कृति मानवतावादी संस्कृति है। इनका समस्त साहित्य राष्ट्रीय भावना व संस्कृति चेतना से ओत–प्रोत है। इनके निबन्ध 'संस्कृति का वागर्थ' साहित्य संस्कृति व युग बोध में सांस्कृतिक चेतना व्यक्त है।

"संस्कृति शब्द से ही 'सांस्कृतिक' शब्द की उत्पत्ति हुई है। संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने विचारने का कार्य करने, खाने–पीने, बोलने, नृत्य गायन, साहित्य कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है।"[31]

"संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' (करना) से बना है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' शब्द प्रयोग किया जाता है।

लेटिन भाषा के 'कल्ट' या 'कल्टस' से लिया गया है। जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। संक्षेप में किसी वस्तु को यहाँ तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके। इसीलिए संस्कृत से संस्कृति की उत्पत्ति मानी जाती है।"[32]

4.3.1 संस्कृति शब्द का अर्थ

मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। अपने बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। प्रत्येक जीवन पद्धति, रीति–रिवाज, रहन–सहन, आचार–विचार, नवीन अनुसंधान और अविष्कार जिससे मनुष्य पशुओं

और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है तथा सभ्य समाज का निर्माण करता है। "सभ्यता संस्कृति का अंग है। संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते हैं। इस मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक कृति संस्कृति का अंग बनाती है।"[33]

4.3.2 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति जीवन की विधि है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके आधार पर हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तु विज्ञान, शिल्पकला दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के प्रकट पक्ष है तथापि संस्कृति में रीति–रिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष संस्कृति का द्योतक है। "संस्कृति मानव जनित मानसिक पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है जिसमें सभी अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं। संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आंतरिक एवं बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित है। संस्कृति किसी समाज के वे सूक्ष्म संस्कार हैं जिनके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं। भौतिक संस्कृति उन विषयों से जुड़ी है जो हमारी सभ्यता कहते हैं। संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है।"[34]

संस्कृति आंतरिक अनुभूति से सम्बद्ध है जिसमें मन और हृदय की पवित्रता निहित है। कला, विज्ञान, संगीत और नृत्य और मानव जीवन की उच्चतर उपलब्धियाँ समाहित हैं जिन्हें सांस्कृतिक गतिविधियाँ कहा जाता है। सांस्कृतिक विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती जाती है। जो संस्कृति हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं उसे सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। एक राष्ट्र संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है जिसे 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक' विरासत कहते हैं। भारत की संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ–साथ नष्ट होती रही है, किन्तु भारत की संस्कृति आदि काल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर अमर बनी हुई है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में अपनी अनोखी पहचान लिये हुए है। यहाँ के विविध राज्यों की विविध पहचान है। यहाँ की सभ्यता, संस्कृति भी बड़ी ही रोचक है। भारतीय संस्कृति के रीति–रिवाज, खान–पान, परम्परा आदि पूरे विश्व में अलग है। पाँच हजार वर्ष पुरानी सभ्यता व संस्कृति हमारे भारत में ही मिलती है। यहाँ इतिहास को बड़ी ही सुन्दरता से संजोकर रखा हुआ

है। यह हमारी राष्ट्रीय धरोहर के रूप में है। भारत भारतीय संस्कृति का पूरक है। विश्व में अपनी अमिट छाप छोड़ने में भारतीय संस्कृति प्रमुख है।

प्राचीनता – भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसी प्रकार वेदों में परिलक्षित भारतीय संस्कृति न केवल प्राचीनता का प्रमाण है अपितु वह भारतीय आध्यात्म और चिन्तन की भी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।

निरन्तरता – भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि हजारों वर्षों के बाद भी यह "संस्कृति आज भी अपने मूल स्वरूप में जीवित है गीता और उपनिषदों के संदेश हजारों साल से हमारी प्रेरणा और कर्म आधार रहे हैं। मूल्यों और वचन पद्धति में एक ऐसी निरन्तरता रही है कि आज भी करोड़ो भारतीय स्वयं को उन मूल्यों एवं चिन्तन प्रणाली से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं और इससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।"

लचीलापन एवं सहिष्णुता – भारतीय संस्कृति की सहिष्णु प्रकृति ने उसे दीर्घ आयु और स्थायित्व प्रदान किया है। संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो जितना भारतीय संस्कृति में पाई जाती है। भारतीय संस्कृति के इस लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की स्थिति निर्मित हुई तब किसी न किसी महापुरुष ने इसे गतिशीलता प्रदानकर इसकी सहिष्णुता को जादुई आभा से मंडित कर दिया। महात्मा बुद्ध, महावीर शंकराचार्य, कबीर, गुरु नानक, चेतन्य महाप्रभु के माध्यम से तथा आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द एवं महात्मा ज्योतिबाफुले के द्वारा किये गए प्रयास इस संस्कृति की महत्त्वपूर्ण धरोहर बन गए। इस प्रकार भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ व गौरवमयी संस्कृति है।

ग्रहणशीलता – भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता एवं उदारता के कारण उसमें एक ग्रहणशीलता प्रवृत्ति को विकसित होने का अवसर मिला। वस्तु जिस संस्कृति के लोकतन्त्र एवं स्थायित्व के आधार व्यापक हो उस संस्कृति में ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो जाती है।" भारतीय संस्कृति ने सदैव एक–दूसरे की संस्कृति का आदर करते हुए श्रेष्ठता को ग्रहण व आत्मसात भी किया है।

आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय – भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था के साथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थ का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुतः इन पुरुषार्थों ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अद्भुत समन्वय कर दिया। भारतीय संस्कृति में धर्म और मोक्ष आध्यात्मिक संदेश एवं अर्थ और काम की भौतिक अनिवार्यता परस्पर सम्बद्ध है। आध्यात्मिक और भौतिकता के इस समन्वय में भारतीय संस्कृति की वह विशिष्ट अवधारणा परिलक्षित होती है।

अनेकता में एकता – भौगोलिक विभिन्नता के अतिरिक्त इस देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वस्तुतः इन भिन्नताओं के कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई। सांस्कृतिक मूल्यों के संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण है, भौतिक संस्कृति पर आधारित जीवन मूल्य। सभ्यता, देशकाल की परिस्थिति व्यक्ति और समष्टि का अध्ययन आदि सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के संदर्भ में विशेष महत्त्व रखते हैं। नीतिशास्त्र पर आधारित जीवन मूल्यों से निर्मित आंतरिक परिदृश्य तथा सामाजिक आचार व्यवहार से निर्मित बाहरी परिदृश्य तथा सामाजिक आचार व्यवहार से निर्मित बाहरी परिदृश्य दोनों सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के निर्माण तत्त्व हैं।

4.3.3 संस्कृति और साहित्य

डॉ. विजय के गद्य लेखन में प्रांजलता है। इसमें संस्कृति साहित्य, गतिशीलता, सांस्कृतिक प्रवाह का अंग है। सामाजिक विकास से सांस्कृतिक विकास सांस्कृतिक विकास से साहित्य का विकास जुड़ा होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि साहित्यकार भी उसी समाज का अभिन्न अंग है। जिस समाज का संचालन संस्कृति करती है। वह समाज उन्नति की और अग्रसर रहता है। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपनी निबंध शैली को दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग पूर्णतया साहित्यिक और सांस्कृतिक वर्ग में दूसरा वर्ग युग धर्म पर आधारित है। इसमें सदाचार नियमों, कोषोपनिषद, भगवत गीता आदि से सार लेते हुए निबंधों की रचना की है। मनुष्य जीवन में सभी धर्मों का निर्वाह करता है। संस्कृति में सामान्यतः बदलाव नहीं आता है। जबकि परम्परा परिस्थिति के अनुसार बदल जाती है। साहित्य और संस्कृति उस देश और समाज के भौतिक समृद्धि भी उतनी ही आवश्यक है। जितनी आध्यात्मिक, नैतिक संस्कृति और संस्कृति और समृद्धि की युति हो किसी भी देश समाज की सही दिशा का निर्धारण करती है। संस्कृति में बदलाव नहीं आता 'भारत में सांस्कृतिक क्रांतियाँ और साहित्य' निबंध में डॉ. विजय ने अपने लेखन में संस्कृति को परिभाषित किया है।

"साहित्य संस्कृति का आचरण शरीर है। साहित्य का धर्म है कि वह अपनी सनातन संस्कृति के औदात्त का भी दृष्टि ओझल न करे। साहित्य संस्कृति की जीवत्तता और साहित्य का अधिष्ठान। भारत की संस्कृति को विभिन्न आन्दोलनों द्वारा निखारा जा सकता है देश व समाज को अपनी संस्कृति से अपने धर्म से अपने संस्कारों से जोड़े रखा है। इस प्रकार संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित हो जाती है। जो संस्कृति हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं उसे सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। यह विरासत कई स्तरों पर विद्यमान होती है मानवता ने सम्पूर्ण रूप से जिस संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे मानवता की विरासत कहते हैं।

एक राष्ट्र भी संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है। जिसे 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत' कहते हैं।"[35]

सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष या मूल्य सम्मिलित हैं जो मनुष्यों में पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। वे मूल्य पूजे जाते हैं। संरक्षित किये जाते हैं और अटूट निरन्तरता से सुरक्षित रखे जाते है। संस्कृति लोगों के समूह द्वारा बाँटी जाती है–एक सोच या विचार या कार्य को संस्कृति कहा जाता है यदि यह लोगों के समूह के द्वारा बाँटा और माना जाता या अभ्यास में लाया जाता है। संस्कृति परिवर्तनशील होती है–ज्ञान, विचार और परम्परायें नई संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं। समय के बीतने के साथ ही किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं। संस्कृति हमें अनेक प्रकार के स्वीकृति व्यवहारों के तरीके प्रदान करती है यह बताती है कि कैसे कार्य को संपादित किया जाना चाहिए कैसे एक व्यक्ति को समुचित व्यवहार करना चाहिए। हमारे जीवन में कलाओं के माध्यम से सौन्दर्य प्रदान करती है और सौन्दर्यनुभूतिपरक मानव बनाती है। यह संस्कृति ही है जो हमें नैतिक मानव बनाती है और दूसरे मानवों के निकट सम्पर्क में लाती है। इसी के साथ हमें प्रेम साहिष्णुता और शांति का पाठ पढ़ाती है।

सांस्कृतिक प्रतिमान प्रथाओं के सामान्यीकृत एवं सुसंगठित समवाय के रूप में स्थिरता की ओर उन्मुख होते हैं, यद्यपि संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों में परिवर्तन की प्रक्रिया शाश्वत चलती रहती है। किसी अवयवविशेष में परिवर्तन सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप स्वीकरण एवं अस्वीकरण का परिणाम होता है। सांस्कृतिक प्रतिमान स्वयं भी परिवर्तनशील होते हैं। समाज की परिस्थिति में परिवर्तन की शाश्वत प्रक्रिया प्रतिमानों को प्रभावित करती है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया सांस्कृतिक प्रतिमानों के परितर्वन की प्रक्रिया है।

संस्कृति के दो पक्ष होते हैं।

1. अद्यिभौतिक संस्कृति
2. भौतिक संस्कृति

सामान्य अर्थ में अधिभौतिक संस्कृति और भौतिक संस्कृति को सभ्यता के नाम से अभिहित किया जाता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। संस्कृति आभ्यंतर है, इसमें परम्परागत चिंतन, फलात्मक अनुभूति, विस्तृत ज्ञान एवं धार्मिक आस्था का समावेश होता है। सभ्यता बाह्य वस्तु है जिसमें मनुष्य की भौतिक प्रगति में सहायक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ सम्मिलित होती है।

संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन प्रवाह की उद्‌गम स्थली और सभ्यता इस प्रवाह में सहायक उपकरण। संस्कृति साध्य है और सभ्यता साधन। संस्कृति सभ्यता की उपयोगिता के मूल्यांकन के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है। डॉ. विजय की निबंध कला में संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे से अंत संबद्ध है और एक दूसरे को प्रभावित करती है। सांस्कृतिक मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव सभ्यता की प्रगति की दिशा और स्वरूप पर पड़ता है। इन मूल्यों के अनुरूप जो सभ्यता निर्मित होती है, वही समाज द्वारा गृहित होती है।

डॉ. विजय के इन निबंध लिखते है– संस्कृति के भौतिक तथा अधिभौतिक पक्षों का विकास समानान्तर नहीं होता। सभ्यता के विकास की गति संस्कृति के विकास की गति से तीव्र होती है।

फलस्वरूप सभ्यता विकासक्रम में "संस्कृति से आगे निकल जाती है। सभ्यता और संस्कृति के विकास का यह असंतुलन सामाजिक विघटन को जन्म देता है अतः इस प्रकार प्रादुर्मत संस्कृति विलबंना द्वारा समाज में उत्पन्न असंतुलन और अव्यवस्था के निराकरण हेतु अधिभौतिक संस्कृति में प्रयत्नपूर्वक सुधार आवश्यक हो जाता है। विश्लेषण परीक्षण एवं मूल्यांकन द्वारा सभ्यता और संस्कृति का नियमन मानव के भौतिक और आध्यात्मिक अभ्युत्थान के अनुपम सहयोग प्रदान करता है।"[36] डॉ. विजय ने अपने निबन्धों में संस्कृति की विशेषताओं स्वरूप को विस्तार से व्याख्यायित किया है।

संस्कृति यद्यपि किसी देश या कालविशेष की उपज नहीं होती यह एक शाश्वत प्रक्रिया है, तथापि किसी क्षेत्र विशेष में किसी काल में इसका जो स्वरूप प्रकट होता है उसे एक विशिष्ट नाम से अभिहित किया जाता है। यह अभिधा काल दर्शन, क्षेत्र, समुदाय अथवा सत्ता से सम्बद्ध होती है मध्ययुगीन संस्कृति, भौतिक संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, हिन्दू संस्कृति तथा मुगल संस्कृति आदि की संज्ञाएँ इसी आधार पर प्रदान की गई है। विशिष्ट अभिधान संस्कृति के विशिष्ट स्वरूप बोध के साथ इस तथ्य को उद्भासित करता है कि संस्कृति को विश्लेषण प्रदान करने वाले कारक द्वारा संस्कृति का सहज स्वरूप अनिवार्यतः प्रभावित हुआ है। डॉ. दयाकृष्ण विजय के जीवन दर्शन "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से जुड़े हुए हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में संस्कृति और राष्ट्रवाद केन्द्र में है और ये हमारी भारतीयता के प्राण तत्त्व है। हमारी संस्कृति अध्यात्म प्रधान है। जिसमें आत्मिक उन्नयन सर्वोपरि है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सदैव ही साहित्य का प्राण तत्त्व रहा है।"[37]

डॉ. विजय ने स्वयं लिखा है–साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। साहित्य संस्कृति का संवाहक है और संस्कृति साहित्य की अभिलाषा है। संस्कृति साहित्य में लिपटी रहती है। संस्कृति भी वही जीवित रहती है जिसका विपुल परिणाम में साहित्य उपलब्ध होता है। "साहित्य संस्कृति का संवाहक होकर भी सदैव संस्कृत्योन्मुख रहता है। संस्कृति विमुख साहित्य की स्थिति उस रोगी की तरह होती है, जिसे मृत्यु मुख में जाने से कोई उपचार नहीं रोक पाता।"[38]

डॉ. विजय ने अपने निबन्ध संग्रह 'संस्कृति के वागर्थ' में स्पष्ट किया है। यह भारतीय संस्कृति का व्यापक आत्म भाव है, जो प्राणी मात्र के कल्याण हेतु मंगलकामना करता है। यजुर्वेद का ऋषि सबकी स्वस्ति की कामना लिये गा उठता है।

"स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धम्प्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्त पति र्दधातु।।"[39]

आज के हिंसात्मक वातावरण में भारतीय संस्कृति का शांति पाठ कितना प्रासंगिक है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। शांति की यह ब्रह्माण्ड व्यापिनी कामना भारतीय संस्कृति की व्यापकता का स्पष्ट परिचय देती है। अभिजात्य मनुष्य का जो गुणात्मक पक्ष है, वही भारतीय संस्कृति है। इसीलिए शायद कहा है 'महाजनो येन गतः सैवपंथः। यह मानव मात्र की संस्कृति है। मानुष भाव अर्थात् मानवता की संस्कृति है। सहानुभूति, संवेदना, सहयोग, सहकार तथा समरसता भाव इसी मानुष भाव के उज्ज्वल पक्ष है, जो भारतीय संस्कृति की यशस्वी पताका में हमें मिलते हैं। "एक तो संस्कारित सम्यक कृति और दूसरा सम्पूय कृति के रूप में। संघशः कृति सम्यूय कृति कहलाती है। इस तरह संस्कृति संस्कार युक्त सम्यूय कृति है। संस्कार सामाजिक विद्रुपताओं के साथ मनीषियों के बौद्धिक संघर्ष का सुपरिणाम है। मनुष्य उन पर विजय के पश्चात् जिन तात्त्विक एवं सात्त्विक निष्कर्षों पर पहुँचता है, वे निष्कर्ष की शनैः शनैः संस्कृति बनते चलते हैं।"[40]

संस्कृति में रीति–रिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित है। संस्कृति मानव जनित मानसिक पर्यावरण से संबंध रखती है जिसमें सभी अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं। संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है।

डॉ. विजय ने अपने गद्य लेखन में सांस्कृतिक विरासत, वैभव, कल्याणकारी कामना, संवेदना, सहयोग आदि मानवीय गुणों को अपने निबन्धों में उद्घाटित किया है।

4.4 आध्यात्मिकता

डॉ. दयाकृष्ण विजय के लेखन में आध्यात्मिक भाव उनके व्यवहार, स्वभाव का ही प्रतीक लगता है। डॉ. विजय की दृष्टि में "भारतीय वाङ्मय में अध्यात्म यह परिभाषित किया है। आध्यात्मिक दृष्टि एक जीवन दृष्टि है। यह भौतिक दृष्टि का सर्वथा विपर्यय है। भौतिक दृष्टि जहाँ जागतिक अभ्युदय तक अपने को सीमित रखती है, वहाँ आध्यात्मिक दृष्टि अभ्युदय एवं निःश्रेयस का समन्वय करके चलती है। भौतिक दृष्टि जहाँ परहित विचार न कर अपने निज के हित चिंतन में तल्लीन रहती है वहीं आध्यात्मिक दृष्टि प्राणी मात्र से लेकर ब्रह्माण्ड तक में परम

चिन्मय सत्ता की व्याप्ति मान सर्व के उन्नयन, उदातीकरण तथा उसकी विमुक्ति की चिन्ता लेकर चलती है।"[41]

व्यक्ति का जीवन प्रतिपल एक नए वातावरण को जन्म देता हैं। उसमें नई–नई स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती है, जिनका उसको पूर्वानुमान तक नहीं होता। कभी–कभी तो किसी घटना विशेष का प्रभाव व्यक्ति के मानस पटल पर इतना गहरा पड़ता है कि उसके जीवन की राह तक को बदलकर रख देता है। आध्यात्मिकता का अर्थ 'पूर्णता' है। वह व्यक्ति को कुछ छोड़ने के लिए आग्रह नहीं करती। जो भी कुछ अवांछनीय लगता है, वह स्वतः ही छूटता चला जाता है। किसी चीज को छोड़ने में व्यक्ति को संघर्ष करना पड़ता है जबकि स्वतः ही छूट जाने में सहजता होती है। सहजता प्रकृति का गुण है उसका स्वभाव है और संघर्ष किसी नदी के तेज बहाव के विपरीत दिशा में तैरने जैसा जहाँ व्यक्ति के थककर चूर हो जाने के अतिरिक्ता कुछ प्राप्त नहीं होता। सहजता में साधक के अन्दर की ऊर्जा का ह्रास नहीं होता साधक में उत्साह बना रहता है। वे अपने निबन्ध में स्पष्ट करते हैं कि आध्यात्मिकता के भीतर गंभीर अर्थ समाहित है।

"आध्यात्मिक होने का अर्थ है अपने भीतर एक सम्राट होना इसका अर्थ यह नहीं कि तुम्हें पूर्णतः आत्म निर्भर बनना है। पारस्परिक निर्भरता हमेशा होती है लेकिन तुम्हारे भीतर सभी चीजें मौजूद हैं तुम्हें बाहर नहीं खोजना है। यहाँ तक तुम्हें जरुरत नहीं है। अगर दूसरे व्यक्ति को इसकी जरुरत है जो तुम उसे दे सकते हो, लेकिन अपने आप में अर्थ है परम मुक्ति प्राप्त करना है।"[42]

4.4.1 आध्यात्मिकता का अर्थ

मूर्तिपूजा शब्द के समान ही कई अलग यह ईश्वरी उद्दीपन की अनुभूति प्राप्त करने का एक दृष्टिकोण है जो धर्म से अलग है। आध्यात्मिकता को ऐसी परिस्थितियों में अक्सर धर्म की अवधारणा के विरोध में रखा जाता है। "जहाँ धर्म को संहितबद्ध, प्रामाणिक, कठोर, दमनकारी या स्थिर के रूप में ग्रहण किया जाता है। जबकि आध्यात्मिक एक विरोधी स्वर है जो आम बोलचाल की भाषा में स्वयं अविष्कृत प्रथाओं या विश्वासों को दर्शाता है अथवा उन प्रथाओं और विश्वासों को जिन्हें बिना किसी औपचारिक निर्देशन के विकसित किया गया है। इसे एक अभौतिक वास्तविकता के अभिगम के रूप में उल्लिखित किया गया है।"[43]

"एक आंतरिक मार्ग को एक व्यक्ति को उसके अस्तित्व के सार की खोज में सक्षम बनाता है या फिर गहनतम मूल्य और अर्थ जिसके साथ लोग जीते हैं। आध्यात्मिकता व्यवहार जिसमें ध्यान प्रार्थना और चिंतन शामिल है, एक व्यक्ति के आंतरिक जीवन के विकास के लिए अभिप्रेत

है। ऐसे व्यवहार अक्सर एक वृहद सत्य से जुड़ने की अनुभूति में शामिल होती है।" जिसके अन्य व्यक्तियों या मान्य समुदाय के साथ या दैवीय प्रभुता के साथ। आध्यात्मिकता को जीवन में अक्सर प्रेरणा या दिशा निर्देश के एक स्रोत के रूप में अनुभव किया जाता है। इसमें सारहीन वास्तविकताओं में विश्वास या अंतस के अनुभव या संसार की ज्ञानातीत प्रकृति शामिल हो सकती है। धर्म व आध्यात्मिकता को स्पष्ट करते हुए डॉ. विजय लिखते हैं–

"परम्परागत रूप में धर्मों ने आध्यात्मिकता को धार्मिक अनुभव के एक अभिन्न पहलू के रूप में माना है। धर्मनिरपेक्षता के विकास ने आध्यात्मिकता के एक व्यापक दृष्टिकोण को उभारा है।"[44]

धर्म निरपेक्ष आध्यात्मिकता का संकेतार्थ ऐसे व्यक्ति से होता है जिसका आध्यात्मिक दृष्टिकोण अधिक व्यक्तिगत, संरचित कम नए विचारों प्रभावों के प्रति अधिक खुला और संगठित धर्मों की सैद्धांतिक आस्थाओं की अपेक्षा अधिक बहुलवादी होता है। "आध्यात्म को विचारों भावनाओं और शब्दों के पोषण के रूप में परिभाषित करते हैं जो इस विश्वास के साथ ताल मेल रखता है कि किसी न किसी प्रकार से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जुड़ा रहता है। भले ही यह प्रत्येक पैमाने पर कार्य कारण के रहस्यमय प्रवाह के द्वारा ही क्यों न हो। आध्यात्मिकता में ध्यान प्रार्थना और चिन्तन जैसे अभ्यासों के माध्यम से किसी व्यक्ति के आंतरिक जीवन का आत्मनिरीक्षण और विकास शामिल होता है। कुछ आधुनिक धर्म आध्यात्मिकता को हर चीज़ में देखते हैं जैसे सर्वेश्वरवाद और नवसर्वेश्वरवाद ऐसा ही समान धारा में धार्मिक प्रकृतिवाद का प्राकृतिक दुनिया में दिखाने वाले विस्मय, महिमा और रहस्य के प्रति एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण है।"[45]

4.4.2 आध्यात्मिकता का मार्ग

सांस्कृतिक और धार्मिक अवधारणाओं के विस्तृत विभिन्न रूपों में आध्यात्मिकता को अक्सर एक आध्यात्मिक मार्ग को अंगीकार करने के रूप में देखा जाता है। जिस पर एक व्यक्ति निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चलता है। जैसे कि जागरुकता का एक उच्च स्तर गहरा ज्ञान या परमेश्वर के साथ या सृष्टि के साथ एकाकार प्लेटो की एलिगरी ऑफ द केव, जो द रिपब्लिक के बुक VII में प्रस्तुत है एक ऐसी ही यात्रा का वर्णन है। जैसा कि 'टेरेसा ऑफ अविला' के लेखन में है। "आध्यात्मिक यात्रा एक मार्ग है जिसके आयाम मुख्य रूप से व्यक्तिपरक और व्यक्तिगत है। एक आध्यात्मिक मार्ग को एक विशिष्ट लक्ष्य या जीवन काल की ओर निर्दिष्ट एक लघु अवधि का मार्ग जाना जा सकता है। जीवन की हर घटना इस यात्रा का हिस्सा है, लेकिन विशेष रूप से एक व्यक्ति महत्त्वपूर्ण क्षणों या निर्णायक मौको को शामिल कर सकता है जैसे कि विभिन्न

आध्यात्मिक विषयों का अभ्यास ध्यान, प्रार्थना, उपवास सहित उस व्यक्ति के साथ तुलना जिसे गहन आध्यात्मिक अनुभव वाला माना जाता है।"[46]

आध्यात्मिकता का अनुभव उनके उच्चतम मूल्यों की प्रतिक्रिया में या प्रकृति अथवा ब्रह्माण्ड को देखते या अध्ययन करते समय विस्मय, आश्चर्य और की मानवीय भावनाऐं भी धर्मनिरपेक्ष या वैज्ञानिक कार्य क्षेत्र है। आध्यात्मिकता को आंतरिक शांति या सुख के आधार की खोज के रूप में समझा जाता है तो कल्याण के लिए किसी तरह का आध्यात्मिक अभ्यास आवश्यक है। इस गतिविधि में पारलौकिक अस्तित्व में विश्वास शामिल हो भी सकता है या नहीं भी यदि किसी व्यक्ति में एक ऐसी धारणा है और उसे लगता है कि इस तरह के पारलौकिक अस्तित्व से संबंध सुख का आधार है तो आध्यात्मिक अभ्यास का उसी आधार पर पालन किया जाएगा। यदि व्यक्ति में ऐसी कोई धारणा व्याप्त नहीं है तब भी विचारों और भावनाओं के प्रबंधन और समझ के लिए आध्यात्मिक अभ्यास आवश्यक है जो अन्यथा खुशियों को बाधित कर देते हैं।

गीता में वेदव्यास ने आध्यात्म को परब्रह्म का स्वभाव कहकर व्याख्यायित किया है। स्वभावोऽध्यात्म उच्यते परमब्रह्म का स्वभाव है। एकोऽहम बहुस्याम एक से अनेक होने की उसकी इच्छा ही उसका स्वभाव है। इस स्वभाव को ज्ञान विज्ञानसहित अध्ययन ही आध्यात्म है। आध्यात्म शब्द अधि+आत्म से निष्पन्न है। यह आत्म के ज्ञान विज्ञान सहित ही पुष्टि करता है। इस आत्म की सर्वव्यापकता का अनुभव ही आध्यात्मिक दृष्टि है। असत् से सत् की ओर तमस से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर बढ़ना ही आध्यात्मिक सोच है। सृष्टि में आध्यात्मिक तत्त्वसर्वोच्च है।

"आध्यात्मिक दृष्टि का लक्ष्य है, आंतरिक शक्तियों की खोज, स्थायी सुख शांति और आनंद की प्राप्ति परमात्मा की विराट व्यापकता का सतत मान तथा आत्म साक्षात्कार।"[47] अपने निबन्ध में डॉ. विजय ने स्पष्ट किया है कि–

आध्यात्मवादी भौतिक सृष्टि को मिथ्या तथा असत्य कहता है नाशवान मानता है। सृष्टि की द्वन्द्वात्मकता, सार्वत्रिक बहुलता तथा विपुलता के मध्य आध्यात्मिक अष्ट सिद्दियों तथा नवनिधियों की उपलब्धि को ही जीवन का लक्ष्य मानता है। परम चेतन सत्ता का सर्वत्र दर्शन करते हुए सीमित से असीमित नश्वर से शाश्वत तथा भौतिक वास्तविकता से महत्तर वास्तविकता की ओर बढ़ना ही अध्यात्म का लक्ष्य है संसार को असार मान कन्दरावास होकर रहना आध्यात्मिक दृष्टि नहीं है। किसी धर्म सम्प्रदाय के सीमित सिद्धान्तों व बाह्य चरणों को जीवन में उतारना भी आध्यात्म नहीं है।

"हिरण्यमयेन पात्रेण सत्य स्याविहितं मुखम्"[48]

इस भौतिक स्थूल हिरण्य सम्मोहन से मुक्ति दिलाने की कला ही आध्यात्म विधा है। कर्म कौशल है। आध्यात्मिक दृष्टि मानव को प्रकृति में स्थित परमात्मा के अस्तित्व की शक्ति के रूप में देखती है। भगवान राम के मर्यादा पुरुषोत्तम चरित्र ने जिस नैतिकता तथा आदर्श की सृष्टि की वह आध्यात्मिक संस्कृति का ही उज्ज्वल पक्ष है। आध्यात्मिक दृष्टि की समग्रता समन्वयता एकात्मकता तथा उदार चरित्र साम्य भावों को ही शब्दायित किया है। भारत आज भी पश्चिमी भौतिकवाद, उपभोक्तावाद बाजारवाद से संत्रस्त मानवता को अपनी शीतल सोच छाया प्रदान करने में पूरी तरह समर्थ एवं सक्षम है। इसके लिए वाङमय में निहित आध्यात्मिक सृष्टि ही भारतीय सांस्कृतिक चेतना की अन्तर्भूत निधि है।

महाकवि प्रसाद कहते हैं–

'अरुण यह मधुमय देश हमारा'
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।

विश्वास है एक दिन पश्चिम के वे अनजान क्षितिज भारत की इसी आध्यात्मिक भूमि पर बैठ आत्मिक शांति तथा स्थाई सुख पायेगें।[49]

इसी पृष्ठभूमि में यदि 'कोई कारणीभूत तत्त्व है तो वह ब्रह्म, शिव तथा विष्णु के काल से लेकर राम, कृष्ण, बुद्ध, गाँधी तक उसी आध्यात्मिक दृष्टि का जीवन और जगत के साथ साहित्य में अनुप्रवेश तथा उसका स्वीकार। डॉ. दयाकृष्ण विजय के आध्यात्मिक लेख 'आधुनिक काल में छायावाद' व 'रहस्यवाद' ने अपनी अभिव्यक्ति में उसी सनातन आध्यात्मिक अद्वैत दृष्टि को आधार बनाया, जो वेदान्त की मानवता की अमर देन है। वीरगाथाकाल का हिन्दी लोकभाषा में लिखा साहित्य आध्यात्मिक दृष्टि रखते हुए भी वीर चरित्र की प्रशस्ति तक ही सीमित रहा वही भक्तिकाल में आध्यात्म को पुनर्जीवित कर दिया। भारतीय आध्यात्म में इस तरह भक्ति काल ने ताल ठोककर अवतारवाद का नया आयाम जोड़ दिया।

4.4.3 आध्यात्मिकता में धर्म का महत्त्व परिभाषा

आध्यात्मिकता और धर्म, असीम या ईश्वर की खोज को संदर्भित कर सकते हैं, आध्यात्मिकता की अनुभूति के मार्गों में धर्म केवल एक मार्ग है।

थॉम्पसन के अनुसार – धर्म आध्यात्म के समान नहीं है बल्कि सभ्यता में आध्यात्मिकता धर्म का रूप ग्रहण करती है। "जो लोग धर्म के बाहर आध्यात्मिकता की बात कहते हैं, अक्सर खुद को 'आध्यात्मिक पर धार्मिक नहीं' के रूप में परिभाषित करते है और आम तौर पर कई अलग–अलग 'आध्यात्मिक मार्गों के अस्तित्व में विश्वास करते हैं और आध्यात्मिकता के लिए अपने स्वयं का

एक व्यक्तिगत मार्ग ढूंढने के महत्त्व पर बल देते हैं। धर्म एक प्रकार की औपचारिक बाह्य खोज है जबकि आध्यात्मिकता को अपने भीतर की खोज करने के रूप में परिभाषित किया जाता है।"[50]

4.4.4 आध्यात्मिकता में दर्शन

आध्यात्मिक का अनुभव उनके उच्चतम मूल्य की प्रतिक्रिया में या प्रकृति अथवा ब्रह्माण्ड को देखते या अध्ययन करते समय विस्मय, आश्चर्य और श्रद्धा की मानवीय भावनाएँ भी धर्मनिरपेक्ष या वैज्ञानिक कार्य क्षेत्र है। अंतः "समाज संस्कृति को कभी धर्म तक तो कभी दर्शन तक सीमित करके देखता है। धर्म तो निश्चय ही संस्कृति की आचरण संहिता है किन्तु दर्शन संस्कृति की आस्थावादिता की पृष्ठभूमि है। दर्शन के बिना संस्कृति अधूरी है। संस्कृति के चार पुरुषार्थों में मोक्ष अंतिम पुरुषार्थ है। मोक्ष दर्शन का ही परिणाम है। दर्शन अर्थात् आत्मा या परमात्मा का दर्शन। प्रभु के चतुर्भुज या विराट रूप के दर्शन कराने वाले दर्शन ग्रंथ ही है। दर्शन कराने में समर्थ होने से ही शास्त्रकारों में इन्हें एक ही नाम दिया है।" निश्चय ही दर्शन संस्कृति का प्रमुख अंग है, किन्तु दर्शन की समतुल्यता में संस्कृति का क्षेत्र बहुत व्यापक है। संस्कृति में दर्शन का निचोड़ तो है ही धर्म की रचनात्मकता भी समाहित है।

"आध्यात्मिकता को आंतरिक शांति या सुख का आधार की खोज के रूप में समझा जाता है तो व्यक्तिगत कल्याण के लिए किसी तरह का आध्यात्मिक अभ्यास आवश्यक है। इस गतिविधि में पारलौकिक अस्तित्व के संबंध सुख का आधार है। आध्यात्मिक प्रवर्तक जिन्होंने धार्मिक परम्परा की सीमा के भीतर संचालन किया है। दर्शन के अनुसार मानव की प्रकृति आध्यात्मिक होती है। जिसकी अभिव्यक्ति वह बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक तथा धार्मिक क्षेत्रों में करता है। निम्न जन्तुओं तथा पशुओं के साथ यह बात नहीं है इसलिए पशुओं की अपेक्षा मानव जीवन अधिक श्रेष्ठ होता है।"[51]

दार्शनिक सिद्धस्त के रूप में आदर्शवाद की अपेक्षा विचारों भावों तथा आदर्शों के महत्त्व को स्वीकार करके प्राकृत की अपेक्षामानव तथा उसके व्यक्तित्व के विकास एवं आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करता है जिससे विभिन्नता में एकता का ज्ञान हो जाये। निम्न परिभाषाओं से आध्यात्मिकता का स्वरूप व मर्म हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाता है। कि आध्यात्मिकता हमारे भीतर की आत्मशक्ति व आत्मचेतना ही है।

एच.एन. हार्न के अनुसार – "आदर्शवाद के अनुसार देश और काल में सृष्टि का क्रमनित्य तथा आध्यात्मिक सत्य के प्रकटीकरण के कारण चलता है।"

प्लेटो का मत है – "विचार अंतिम एवं सार्वभौमिक महत्त्व वाले होते हैं यही वे परमाणु हैं जिनसे विश्व को रूप प्राप्त होता है। ये आदर्श अथवा प्रतिमान है जिनके द्वारा उचित की परीक्षा की जाती है। ये विचार अंतिम तथा अपरिवर्तनीय है।"

रस्क के अनुसार – "आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण स्वयं मनुष्य ने ही किया है अर्थात् समस्त नैतिक तथा आध्यात्मिक वातावरण समस्त मनुष्यों की रचनात्मक क्रियाओं का ही फल है।"[52]

4.4.5 आध्यात्मिकता सत्यों तथा मूल्यों में विश्वास

आदर्शवादियों के अनुसार जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों तथा सत्यों को प्राप्त करना है। ये आध्यात्मिक मूल्य है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् जो मनुष्य इन आध्यात्मिक मूल्यों को जान लेता है वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। मूल्यों को प्राप्त करना ही ईश्वर की प्राप्ति है।

अतः यहाँ डॉ. विजय ने अपने लेखन में आध्यात्मिकता की सभी विशेषताओं को मिलाते हुए बहुत ही अच्छी तरह आध्यात्मिकता को परिभाषित किया है।

4.5 वर्तमान समस्याएँ और समाधान

भारत सर्वाधिक युवाओं वाला देश है। देश का युवा अगर अनुशासन, इच्छा शक्ति, कठोर परिश्रम सकारात्मक सोच के साथ चलेंगे तो ये गुण प्रगति का मार्ग खोलेगें। बच्चे के जन्म से मृत्यु तक जीवन संघर्ष चलता हैं। डॉ. विजय ने अपने लेखन में वर्तमान समस्याएँ और समाधान से सम्बन्धित कहानी नाटक तथा निबंध लिखे हैं। मनुष्य का जीवन अनेक समस्याओं से ग्रसित है किन्तु समाधान भी जीवन के भीतर ही अन्तनिर्हित है।

समस्या विहीन समाज की कल्पना करना असम्भव सा प्रतीत होता है। भारतीय समाज अनेक सामाजिक समस्याओं से पीड़ित है जिनके निराकरण के लिए राज्य एवं समाज द्वारा मिलकर प्रयास किये जा रहे है। भारतीय समाज की प्रमुख समस्याओं में जनसंख्या में बढ़ोतरी, निर्धनता, बेरोजगारी, असमानता, अशिक्षा, गरीबी, आतंकवाद, घुसपैठ वाला श्रमिक, असन्तोष, भ्रष्टाचार, नशाखोरी, दहेजप्रथा, बालविवाह, भ्रूण बालिका हत्या, विवाह विच्छेद एकाकीपन, बाल अपराध, मधपान, जातिवाद, अस्पृश्यता की समस्या ये सभी सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत आती है। जो समाज जितना अधिक गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील होगा उसमें उतनी ही अधिक समस्याएँ विद्यमान होगी। मानव समाज अपने बौद्धिक आधार पर सामाजिक समस्याओं का उन्मूलन करने के लिए सदैव प्रयासरत रहा है। क्योंकि सामाजिक समस्याएँ, सामाजिक व्यवस्थाएँ में विघटन पैदा करती है जिससे समाज के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाता है।

डॉ. विजय ने अपनी कहानी 'उलझन' में मानव व्यवहार के परिवर्तन एवं परिमार्जन को सूक्ष्मता से विवेचित किया है। व्यक्ति अपने व्यवहारों की अभिव्यक्ति सामाजिक सीमाओं में ही करता है। समाज परिवार की हर 'उलझन' चाहे वह सामाजिक हो आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक आदि सभी स्तरों पर पाई जाती है। सामाजिक स्तर के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन एवं परिमार्जन करके परिष्कृत व्यवहार को अभिव्यक्त करता है।

व्यक्ति के द्वारा प्रकट किया गया एक ही व्यवहार कभी समाज विरोधी और कभी सामान्य हो सकता है। व्यक्ति अपनी उलझनों से अपने व्यवहार को समाज विरोधी व्यवहार या मनोविकारों को व्यक्त करता है।

व्यक्ति के शारीरिक गठन में किसी प्रकार की अपूर्णता पाई जाती है तब उसमें हीनता की ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती है और यही भाव 'उलझन' कहानी का है।

स्वप्न और सत्य – कहानी में स्पष्ट किया है मनोग्रस्त बाध्यता व्यक्तित्व के लोग अपने व्यवहारों में अपने कर्त्तव्यों एवं अन्तरात्मा के आदर्शों के प्रति अत्यधिक दक्षता प्रदर्शित करते है। उन्माद युक्त व्यक्ति की अपरविवादता, उत्तेजनशीलता, सांवेगिक अस्थिरता एवं स्वनाटकीयता की विशेषता पाई जाती है। व्यक्ति को अपने अभिप्रेरकों के बारे में ज्ञान हो या न हो परन्तु व्यक्ति इस नाटकीय क्रूरता के द्वारा दूसरों के ध्यान को आकर्षित करता है। यही नहीं ऐसे व्यक्ति सम्मोहक भी होते है। जो व्यक्ति उन्मादी व्यक्तित्व वर्गीकरण के अन्तर्गत आते हैं जो सदैव कल्पना और यथार्थ के बारे में ही सोचते हैं। ऐसे व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होते हैं तथा अपने व्यवहारों का अनुमोदन समाज के दूसरे व्यक्तियों के लिए करते हैं।

जीवन के यथार्थ को डॉ. विजय ने बड़ी ही मार्मिकता से उल्लेखित किया है। इसमें मानवीय जीवन के यथार्थ व कल्पना पर आधारित मनोविज्ञान को दर्शाया है। मनुष्य अक्सर अपने हर कार्य में कहीं न कहीं स्वप्न जरुर ही बुनता है। यह सच हो या न हो यह जरुरी नहीं मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज पर आधारित उसका पूरा परिवेश आधारित होता है। उसके हर विषय में समाज की अहम् भूमिका होती है। इस भूमिका में कभी सकारात्मक पक्ष हाथ लगता है तो कभी निराशा हाथ आती है। इसी उधेड़ बुन को डॉ. विजय ने अपनी इस कहानी में मानव जीवन के 'स्वप्न और सत्य' को चित्रित किया है। डॉ. भैरूलाल गर्ग के अनुसार–

"इस संग्रह की समस्त कहानियाँ लेखक के सामाजिक सरोकार को उद्घाटित करती है। तो दूसरी ओर कथाकार सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पकड़ की ओर अग्रसर प्रतीत होता है। मगर उसमें निरामनोवैज्ञानिक सोच नहीं है बल्कि सोद्देश्यता उभरती दिखाई देती है।"[53]

बड़ी मछली – डॉ. विजय रचित इस कथा संग्रह में कहानियों में त्रिकोण प्रेम है, एकाकीपन है, परिवार विच्छेद पर स्त्रीगमन, जातिवाद आदि सभी समस्याएँ हैं जो इस कथा संग्रह की अपनी विशेषता बताती है। इस प्रकार इस संग्रह की कहानियों में समाज में व्याप्त कुरीतियों व विविध सामाजिक समस्याओं का चित्रण है।

'ममत्व' कहानी में अन्तर्जातीय विवाह से उपजी समस्या को बताया गया है। कार्तिक की पुत्री प्रतिभा विश्वास आहूजा से विवाह कर लिया है। कार्तिक पुत्री को अपनाने को तैयार नहीं होता। अन्त में प्रतिभा के पुत्र होने पर वह राखी पर अपने पिता के घर बच्चे के साथ आती है। अश्विनी कहता है–"ममत्व स्वाभिमान से अधिक प्रबल संवेग है।"[54]

एक और क्रांति – जातिवाद, छुआछूत अस्पृश्यता की यह कहानी हमारे आजाद भारत की मानसिकता को दर्शाती है कि आज भी हमारा भारत जातिवाद की ज्वलन्त समस्या से पीड़ित है। समाज में सुवर्णों का वर्चस्व आज सामाजिक स्तर पर बँटा हुआ है। इस असमानता ने हमारे भारत की सामाजिक समस्या जस की तस ही कर रखी है। मानसिक तौर पर आज भी हरिजन का मंदिर प्रवेश पर रोक की समस्या बनी हुई है। वर्तमान परिवेश की प्रमुख समस्या के रूप में 'एक और क्रांति' में अपने अधिकारों व समानता की भावना से ओत–प्रोत पात्रों की कहानी मिलती है।

4.5.1 वर्तमान समस्या

हमारा परिवेश शहरी व ग्रामीण दोनों है, अतः समस्याएँ भी दोनों स्तर पर परिवेशानुकूल है। भारत गाँवों का देश कहलाता है। देश की आबादी का 68 प्रतिशत अभी भी गाँव में ही रहता है। शहरों और गाँव के जीवन में अलग–अलग परिवेश नजर आता है। निश्चित रूप से गाँवों और शहरों में रहने वाले लोगों की जीवन शैली में एक बड़ा अंतर है दोनों ही जीवनशैलियों में एक–दूसरे के अच्छे पहलुओं को शामिल करके संतुलन स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। डॉ. विजय रचित में ग्रामीण व शहरी दोनों ही परिवेश में बड़ा ही उत्कृष्ट लेखन दिया है। उसमें उन्होंने समसामयिक संदर्भों को विषय बनाते हुए वर्तमान जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है।

4.5.2 एकाकीपन

परिवार में सारे रिश्ते नातों के बाद भी कहीं प्रेम है तो कहीं नफरत भी होती है। आज मानव आत्मकेन्द्रित होकर एकाकीपन का जीवन जी रहा है। रिश्ते टूटकर बिखर रहे हैं। संयुक्त परिवार एकल परिवार में सिमट गये हैं।

4.5.3 त्रिकोणीय प्रेम

"'विवाहिता' कहानी में डॉ. विजय ने वंदना के मन के अन्तर्द्वन्द्व को बताया है। वंदना दशरथ की पत्नी है। कामना प्रेयसी है। कामना के प्रति वंदना कहती है "वंदना ने मन ही मन कहा, मन तो वहाँ भटकता है यहाँ कैसे मन लगेगा। मैं तो कभी अच्छी लगी ही नहीं। उस डायन ने न जाने क्या कर रखा है।"[55]

"भरी जवानी में सौत बनकर कामना आ गई थी। कामना न तो रूप में उतनी अच्छी थी जितनी वंदना और न आयु में वंदना की तुलना में अधिक युवा। दशरथराय जिस मकान में किराए पर रहते थे, उस मकान का एक कमरा खाली होते ही उन्होंने कामना को किराए पर दिलवा दिया। अब घर से विद्यालय साथ जाने, विद्यालय से घर आने, विद्यालय में भी साथ—साथ रहने से वे अधिक निकट आते रहे।"[56]

"बातें एक मुँह से दूसरे मुँह चलती हुई इतनी बढ़ी कि दशरथ राय का स्थानान्तरण शहर से बाहर कर दिया। कामना का किसी दूसरे कस्बे में लेकिन पैसों से क्या नहीं होता। इज्जत, ईमान, स्वार्थ, परमार्थ, संबंध सब कुछ पैसों से खरीदा जा सकता है। स्थानान्तरण फिर एक ही शहर में हो गया।"[57] इस प्रकार डॉ. विजय ने वर्तमान परिवेश में खुले विचारों को पर स्त्री गमन का एक उदाहरण 'विवाहिता' कहानी में दिया है। भारतीय परिवेश में एक पत्नी के होते दूसरी पत्नी स्वीकार्य नहीं है।

'वसीयत' कहानी में कमलेश्वर और विश्वेश्वर दोनों भाई बड़े समझदार थे। औरतों की लड़ाई में नहीं बोलते थे। दोनों एक दूसरे की मर्यादा बनाये रखते थे। पिता की मृत्यु के बाद भी सारी सम्पत्ति विश्वेश्वर के नाम कर दी थी। इसमें दोनों भाईयों के प्रेम में क्षणिक भी असर नहीं पड़ा। प्रस्तुत कहानी में भातृ प्रेम से पारिवारिक सोहार्द व सामजंस्य को बनाया जा सकता है यही भाव व्यक्त है।

मोहभंग—डॉ. विजय ने इस कहानी में दादाजी का अपने पोते के प्रति मोह की बात इस प्रकार चित्रित की है। "वकील साहब मुझे ऐसा नहीं लगता। वह बच्चे के पीछे दीवाने हो रहे हैं। पागलों जैसी स्थिति हो जाती है। रोने लगते हैं। मैं अब तक ले भी जाता, पर आखिर वह पिता है। उन्हें रुलाकर तो मैं बच्चे को नहीं ले जा सकता।"[58] यहाँ वृद्ध पिता का अपने पोते के प्रति अगाध प्रेम व समाधान बताया गया है।

ममत्व—डॉ. विजय की इस कहानी में अन्तर्जातीय विवाह एक महाराष्ट्रियन और दूसरा पंजाबी परिवार है। "प्रतिमा और विश्वास के बीच इन रिश्तों से बड़ा किशोरावस्था और चढ़ते यौवन का

रिश्ता था। अधिक लाड़–प्यार में पली होने के कारण सभी की लाड़ली थी। विश्वास और प्रतिमा का समान आर्थिक स्थिति, समान सौन्दर्य, समान आकर्षण विवाह योग्य आयु सभी तो ठीक था।"[59]

4.5.4 पारिवारिक जीवन मूल्य

परिवार समाज का अंग है। जहाँ बालक जन्म से ही सभी प्रकार की शिक्षा, पालन–पोषण के समय से ही प्राप्त करता है। परिवार के सदस्यों, उनकी भावनाओं उनकी समस्याओं पर चिंतन मनन किया है।

पारिवारिक जीवन मूल्य से ही जीवन सहज व सरल बनता है। मनुष्य की परिवार के प्रति कुछ प्रतिबद्धता होती है, जो उसे परिवार से जोड़ते हैं। "सदाचरण तथा सद्‌गुण स्वयं ही मूल्य को निरूपित एवं उद्‌घाटित करते है। भारतीय समाज विविध संस्कृतियों लोगों विश्वासों आदि का मिश्रण है। हमारा भारतीय समाज में वर्तमान समस्यायें आदि सभी बनी रहती है। भारत की अपनी अलग पहचान विश्व में विविधता में एकता का प्रतीक है।"[60]

4.5.5 जातिवाद की समस्या

भारत में आजादी के 70 वर्षों बाद भी यहाँ यह जातिवाद समस्या बनी हुई है। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने 'संकल्प' कहानी में 'रूपा ने प्रथम श्रेणी में उच्च माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण की उसकी प्रशंसा दूर–दूर तक होने लगी। एक तो वह युवा थी दूसरी महिला। वह नगर की सभी राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं में बढ़ चढ़कर भाग लेने लगी। उसने संकल्प लिया कि वह जीवन भर नारियों और दलितों के उत्थान के लिए कार्य करेगी और समाज को शोषण मुक्त बनाने के लिए अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष करती रहेगी। वह नगर की एक जुझारू संस्था 'महिला उत्थान परिषद' की सदस्य हो गई। जब वह देखती कि पुरुष जन्म से लेकर मरण तक नारी शोषण करते है। उसे स्वतन्त्रता की हवा तक जीने के लिए नहीं देते तो वह और भी अधिक व्यग्र होती और नारी मुक्ति के लिए दूने जोश से लग जाती है।

4.5.6 धन का लालच

डॉ. विजय ने प्रस्तुत कहानी 'सोने की मोहरे' में भाई–भाई के बीच बढ़ती खाई व स्वार्थपरता को चित्रित किया है कि आज अर्थ प्रधान हो गया है। रिश्ते गौण हो चले हैं। यह आज का कटु यथार्थ है। जहाँ रिश्तों पर अर्थ हावी है। एक भाई कहता है– "माँ तू तो जानती है जब तक मैं पढ़ता रहा भाई साहब मेरी जमीन की सारी उपज खाते रहे। मुझे पढ़ाई में क्या देते थे? खाना भी हाथ से बनाकर खाता था। घी का नाम तक नहीं था। भाभी ने बरतन ऐसे दिए थे कि भगोनी के पैंदे में से पानी चूल्हे में झरता था। मुझपे मत कहलवा।"[61]

"चौपाल भर गई। बिछायत पर आदमी समाते नहीं थे गैस की रोशनी जगमग कर रही थी। सब अपनी वाक् पटुता सिद्ध करने के लिए बढ़ बढ़कर बोल रहे थे। लेकिन होना क्या था। पुरानी लिखावट आ गई। उसमें साफ लिखा था जिनके पास विधोतमा रहेगी, बक्से का सामान उसी का होगा। वही किया करेगा। जीत कश्यप की हुई।"[62]

4.5.7 वृद्धावस्था

"वर्तमान समस्या पर डॉ. विजय 'सोने की मोहरें' पाने की लालसा विधोत्तमा के दोनों पुत्रों में थी। माँ की वृद्धावस्था पर उसकी सेवा सुश्रुषा का भाव दोनों पुत्रों में नहीं था। विधोत्तमा की सम्पत्ति में बक्सा था। जब विधोत्तमा की मृत्यु हुई। पुत्र व बहु में सिर्फ बक्सा खोलने की जल्दी थी। उसमें सोने की मोहरे प्राप्त करने की लालसा थी। वृद्ध माँ के प्रति श्रद्धा प्रेम का भाव आज के अर्थयुग में खत्म हो चुका था।"[63]

इस प्रकार वर्तमान समस्यायें कहानी लेखन में डॉ. विजय ने बड़ी ही व्यापकता के साथ दिया है। भारतीय समाज की समस्याओं का लेखन बहुत ही सादगी तथा निवारण हेतु समाज को मार्गदर्शन दिया है।

समाज की सभी समस्याओं पर लेखन कर समाज की समस्याओं जैसे बेरोजगारी, भ्रष्टाचार अशिक्षा लालच धन की सर्वोपरिता आदि सभी उजागर हुआ है। जीवन को सभ्य और सुशासित बनाने हेतु डॉ. विजय ने समाधान भी प्रस्तुत किये हैं।

4.6 राजनीतिक संदर्भ

डॉ. विजय रचित मूलसंवेदनाओं में राजनीतिक संदर्भ का भाव भी मिलता है। डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य लेखन में मूल संवेदना में राजनीतिक संदर्भ का भाव तत्कालीन परिवेश तथा राजनीतिक संदर्भों को प्रस्तुत करता है। राजनीतिक दर्शन के अन्तर्गत राजनीति, स्वतन्त्रता, न्याय सम्पत्ति, अधिकार कानून तथा सत्ता द्वारा कानून को लागू करने आदि विषयों से सम्बन्धित है।

प्राचीन काल से सारा व्यवस्थित चिंतन, दर्शन के अन्तर्गत होता था। अतः सारी विधाऐं दर्शन के विचार क्षेत्र में आती है। राजनीति सिद्धान्त के अन्तर्गत राजनीति के भिन्न–भिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है। राजनीति का संबंध मनुष्यों के सार्वजनिक जीवन से है। परम्परागत अध्ययन में चिंतन मूलक पद्धति की प्रधानता थी जिसमें सभी तत्त्वों का निरीक्षण तो नहीं किया जाता है परन्तु तर्क शक्ति के आधार पर उसके सारे संभावित पक्षों परस्पर संबंधों प्रभावों और परिणामों पर विचार किया जाता है।

4.6.1 राजनीति संदर्भ की परिभाषा

1. डेविड वेल्ड के अनुसार – "राजनीतिक जीवन के बारे में ऐसी अवधारणाओं और सामान्यीकरण का एक ताना बाना है जिनका संबंध सरकार, राज्य और समाज के स्वरूप, प्रयोजन और मुख्य विशेषताओं से तथा मानव प्राणियों की राजनीतिक क्षमताओं से संबंधित विचारों, मान्यताओं एवं अभिकथनों से है। मानव प्राणियों की राजनीतिक क्षमताओं से संबंधित विचारों, मान्यताओं एवं अभिकथनों से है।"

2. एंड्रू हैकर के अनुसार – "एक ओर अच्छे राज्य और अच्छे समाज के सिद्धान्तों की तटस्थ तलाश और दूसरी ओर राजनीतिक तथा सामाजिक यथार्थ की तटस्थ खोज का संयोग है।"

3. गुल्ड और कोबल के अनुसार – "राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीति विज्ञान का एक उपक्षेत्र है जिसमें राजनीति दर्शन, वैज्ञानिक मापदण्ड, राजनीतिक विचारों का भाषाई विश्लेषण और व्यवहार की सामान्यीकरणों की खोज और उनका व्यवस्थित विकास है।"[64]

बुनियादी तौर पर राजनीतिक सिद्धान्त का संबंध दार्शनिक तथा आनुभाविक दोनों दृष्टियों से राज्य की संघटना से है। डॉ. विजय ने निबंध लेखों तथा नाटकों में राजनीतिक संदर्भ का ज्ञान दिया है। समाज में राजनीतिक सिद्धान्त का संबंध दार्शनिक व आनुभाविक राज्य तथा राजनीतिक संस्थाओं के बारे में स्पष्टीकरण देने उनका वर्णन करने और उनके संबंध में श्रेयस्कर सुझाव देने की कोशिश की जाती है। निः सन्देह, नैतिक दार्शनिक प्रयोजन का अध्ययन तो उसमें अंतर्निहित रहता है। चिन्तक वाइन्स्टाइन ने गागर में सागर भरते हुए कहा था कि– "राजनीतिक सिद्धान्त मुख्यतः एक ऐसी संक्रिया है जिसमें प्रश्नों के उत्तरों का विकास किया जाता है।"[65]

डॉ. विजय ने अपने गद्य लेखन में राजनीति की प्रमुखता दिखाई है। कहानी लेखन में 'एक और क्रांति' के लेखन में यह राजनीतिक दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है।

– "जिला कलेक्टर महोदय ने शांति एवं व्यवस्था की दृष्टि से एक दिन पूर्व ही मंदिर के महन्त जी और प्रबन्ध समिति से बात कर ली थी। नगर के सभी प्रमुख विपक्ष के नेताओं को इन्होंने मना लिया था। जुलूस की सफलता का सारा श्रेय जिला कलेक्टर महोदय कोठी जाता है। मंदिर प्रवेश से हरिजनों का मनोबल बढ़ा है तथा महात्मा गाँधी जी का सपना साकार हुआ है।"[66]

– "हरिजनों के विशाल जुलूस का एक दृश्य चित्र अवश्य समाचार पत्रों ने दिया था। जिसका नेतृत्व सर्वोदयी टोपीधारी नेता करते हुए दिग्दर्शित थे। श्री परमेन्द्र कुमार पत्रों और सत्ता के एकाधिकारवाद से व्यथित हो लेटे–लेटे विचार करने लगे सब जगह मुखौटे है। सब अपनी वाहवाही चाहते हैं। सत्य कहीं नहीं है।"[67]

– श्री परमेन्द्र कुमार दर्शन का मार्ग खुला समझ गंध और प्रसाद के लोभवश दूसरे दिन फिर वे मंदिर में गये। जैसे ही वे सिंह द्वार में घूसने लगे कट्टरपंथियों ने उन्हें रोक दिया, धक्के देकर बाहर निकाल दिया। वे बड़बड़ाते रहे– "आज मंदिर महन्तों की निजी सम्पत्ति हो गयी है। धर्मग्रंथ पण्डितों के यहाँ धरोहर रखे हैं। अद्वैत भाव को भूल, सब अपने–अपने स्वार्थ में डूबे हैं। एक और क्रांति इनके विरुद्ध होना अभी शेष है।"[68] प्रस्तुत कहानी में राजनीतिक परिवेश व उसका प्रभाव चित्रित किया गया है। कहानी में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश व्यक्त हुआ है।

मनुष्य का भाग्य इस बात पर निर्भर होता है कि शासकों और शासितों को किस प्रकार की प्रणाली प्राप्त होती है और जो प्रणाली प्राप्त होती है उसके फलस्वरूप क्या सामान्य भलाई के लिए संयुक्त कार्यवाही की जाती है। यही भाव 'एक और क्रांति' और 'संकल्प' कहानी में मिलता है।

"गाँव की टापरी से उठकर शहर में आई रूपा दरिद्रों की मसीहा के रूप में सर्वत्र जानी जाने लगी। यह सब उसके त्याग उसकी सेवा तथा उसके निर्भीक संकल्प का ही परिणाम था। कोई दिन जयकार नहीं छपता। रूपा जन मन पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ती हुई निरन्तर आगे बढ़ती चली गई। सारे विरोध अपने आप समाप्त हो गए। वह दरिद्रो की मसीहा के रूप में जानी जाने लगी।"[69]

राजनीति दर्शन में सत्य और ज्ञान की खोज में किसी भी विषय पर किए गए समस्त चिंतन का समावेश है। जब वह खोज राजनीतिक विषयों पर होती है जैसे रूपा का दरिद्रों की मसीहा के रूप में 'तब हम इसे राजनीतिक दर्शन कह सकते हैं। इसमें डॉ. विजय ने 'संकल्प' कहानी के माध्यम से रूपा के हरिजन समुदाय के लिए अधिकारों का भाव दिया है।

4.6.2 साहित्य, साहित्यकार और राजनीति

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्यकार समाज का यह प्रतिबिम्ब साहित्य के माध्यम से दिखाता चलता है। राजनीति में साहित्य दिशा निर्देशक का कार्य करता है। "राजनीति समाज जीवन की वह नौका है जिसकी डांडे अधिनियम है और नदी या समुद्र जिसमें वह चलती है विद्रूपताओं, विषमताओं, मूल्यहीनताओं और सांस्कृतिक विसंगतियों के जल से भरा होता है। राजनीति के मल्लाहों की नियत कर्त्तव्य भाव आचरण व्यक्तित्व जब पार के उद्देश्य से भटक दिशाहीन व प्रदूषित हो जाता है, तब साहित्य उसे दिशा देने के लिए सामने आता है। साहित्य राजनीति की नाव के मल्लाहों के लिए आलोक स्तम्भ का काम करता है। आलोक स्तम्भ का स्वरूप विविधरूपा हो सकता है। यह विविध रूपता ही साहित्य की विधागत भिन्नता है। उद्देश्य सबका एक ही है। अव्यवस्था परिवर्तन, व्यवस्था स्थापना।"[70]

आज की राजनीति सर्वभक्षी हो गई है। इस कारण भी सचेतन जागरुक तथा शब्द कुशल साहित्यकार तात्कालिक, राजनैतिक घटना चक्र से आँखे मूंद कर नहीं जी सकता। वह खुली

आँख से निकट से उसे देखता तो है परन्तु उस रंगमंच का वह पात्र नहीं बनना चाहता। राजनेता अपने वर्तमान को ही जीता तात्कालिक लाभ की कल्पना करता है जबकि साहित्यकार दीर्घकालीन स्थाई लाभ को लेकर सोचता है। राजनीति भीड़ जीती है साहित्य सृजन एकान्त, साहित्य भीड़ के लिए होकर भी भीड़ में नहीं सृजा जाता। साहित्यकार प्रज्ञा पंखों से कल्पना के असीम गगन में उड़ता है। यह आंतरिक साधना है। ब्राह्म की नहीं जबकि राजनीति नितान्त बाह्म नितान्त भौतिकी सोच है। साहित्य कर्म इस कारण राजनैतिक उठापटक के सर्वथा विपरीत है।

डॉ. विजय ने लिखा है कि– "साहित्यकार की प्राज्ञनिक सीमा का विस्तार राजनेता की सीमा से कहीं अधिक विस्तृत होता है। वह राजनीति की अंधी गलियों में भटक कर भी प्रकाश के दिव्य लोक का विस्मरण नहीं करता। यह सतत् सेवन भाव ही उसे राजनेता से पृथक करता है। राजनेता अपने मतदाता का हित ही देखता है। साहित्यकार का हित पूरे लोक का हित होता है। राजनेता की तरह उसकी सोच संकुचित न होकर व्यापक होती है।"[71] इस आधार पर राजनेता की अपेक्षा वह अधिक लोक के निकट होता है। राजनेता से साहित्यकार और साहित्यकार से अधिक साहित्य असीमित होता है।

राजनीति परिवर्तनशील होती है। राजनीति अनुबन्धों और दुरभि संधियों का संशयी खेल है। साहित्य ऐसा कोई खेल नहीं होकर संस्कृति का सुन्दर शंख निनाद है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने राजनीति के संदर्भ में साहित्य, राजनीति को अपने निबंध में इस प्रकार परिभाषित किया है। "राजनीति द्वन्द्व जीवी है। अन्नमय प्राणमय कोश जीती है। साहित्यकार अन्नमय और प्राणमय कोश में रहकर भी शब्द के स्तर पर मनोमय, विज्ञानमय या आनन्दमय कोश में जीती है इस कारण वह राजनीति से सघनता से स्वभाववश जुड़ भी नहीं सकता। जिस दिन वह उस ऊँचाई से नीचे उतर आयेगा उस दिन साहित्यकार न रहकर राजनेता हो जावेगा। राजनीति का सीधा संबंध सत्ता से होता है। जबकि साहित्य का संबंध लोक से तथा लोक की संस्कृति से होता है। राजनीति अनुबंधों और दुरभि संधियों का संशयी खेल है। परन्तु साहित्य ऐसा कोई खेल नहीं होकर संस्कृति का सुन्दर शंख निनाद है। अतः अधिक महत्त्वपूर्ण है।"[72]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साहित्य लोक के निकट होता है जबकि राजनीति में तत्कालीन लाभ व सत्ता प्रमुख होती है। साहित्य में लोकमंगल व कल्याणकारी भाव दीर्घजीवी होता है। क्षणिक नहीं। इसी को विस्तार के साथ डॉ. विजय ने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : कृतित्व एवं व्यक्तित्व, शांति उपाध्याय, पृ.सं.–54, 53
2. सामाजिक समस्याएँ व निवारण, डॉ. विमला अग्रवाल, पृ.सं.–56,3,45,6
3. सामाजिक समस्याएँ 'जातिवाद', डॉ. विमला अग्रवाल, पृ.सं.–19,20,
4. बड़ी मछली–'संकल्प', डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–46
5. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय',, पृ.सं.–447
6. बड़ी मछली–'वसीयत', डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–14,15,16,17
7. 'बड़ी मछली', डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–18,19,20,21
8. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57,58
9. आर्थिक उन्नति और भारत–डॉ. रमाकांत शर्मा, पृ.सं.–57
10. आर्थिक उन्नति और भारत, डॉ. रमाकान्त शर्मा, पृ.–58
11. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
12. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57
13. सांस्कृतिक धरोहर एवं परम्परा : डॉ. उषा गुप्ता, पृ.सं.–157, 158, 159
14. साहित्य, संस्कृति और युगबोध, पृ.सं.121, 122
15. सांस्कृतिक और युगबोध, डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–114, 115
16. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–10,11
17. 'जीवन में आध्यात्म', राष्ट्रवाद और हम–स्वामी विवेकानन्द, पृ.सं.–15,16,17
18. संस्कृति का वागर्थ : डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–41,42
19. डॉ. दयाकृष्ण विजय 'एक और क्रांति', पृ.सं.–59
20. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' बड़ी बछली 'वसीयत', पृ.सं.–59
21. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' बड़ी बछली 'मोहभंग', पृ.सं.–58
22. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' बड़ी बछली 'ममत्व', पृ.सं.–57
23. एक और क्रांति : डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ.सं.–78,79
24. साहित्य साहित्यकार और राजनीति निबंध 'मधुमति' जून 1995
25. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' बड़ी मछली 'ममत्व', पृ.सं.–57
26. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' बड़ी मछली 'ममत्व', पृ.सं.–57

27. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–58

28. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–57

29. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.56–

30. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–58

31. सांस्कृतिक युग बोध एवं संस्कृति के वागर्थ, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–101

32. सांस्कृतिक युग बोध एवं संस्कृति के वागर्थ, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–101

33. सांस्कृतिक युग बोध एवं संस्कृति के वागर्थ, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–103

34. सांस्कृतिक युग बोध एवं संस्कृति के वागर्थ, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–104

35. वर्तमान साहित्य और सांस्कृति के युग बोध, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–107

36. वर्तमान साहित्य और सांस्कृति के युग बोध, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–108

37. संस्कृति राष्ट्रवाद एवं सांस्कृति के युग बोध, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–109

38. संस्कृति के वागर्थ, निबंध संग्रह, डॉ. 'विजय', पृ.सं.–109

39. संस्कृति के वागर्थ, निबंध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–121

40. संस्कृति के वागर्थ, निबंध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–128

41. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय',पृ.सं.–129

42. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–143

43. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–144

44. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–100

45. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–89

46. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–111

47. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–127

48. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–122

49. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–126

50. संस्कृति के युग बोध, निबन्ध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–180

51. वर्तमान साहित्य एवं सांस्कृति के युग बोध, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–200

52. वर्तमान साहित्य एवं सांस्कृति के युग बोध, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–210

53. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–28

54. डॉ. दयाकृष्ण विजय, बड़ी मछली, कहानी संग्रह, पृ.सं.–26

55. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–46

56. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–56

57. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–58

58. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–60

59. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–101

60. डॉ. दयाकृष्ण विजय, स्वप्न और सत्य, कहानी संग्रह, पृ.सं.–56

61. डॉ. दयाकृष्ण विजय, बड़ी मछली (सोने की मोहरे), कहानी संग्रह, पृ.सं.–58

62. डॉ. दयाकृष्ण विजय, बड़ी मछली (सोने की मोहरे), कहानी संग्रह, पृ.सं.–58

63. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–98

64. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–97

65. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–100

66. डॉ. दयाकृष्ण विजय–एक और क्रांति, कहानी, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–56

67. डॉ. दयाकृष्ण विजय–एक और क्रांति, कहानी, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–58

68. डॉ. दयाकृष्ण विजय–एक और क्रांति, कहानी, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–56

69. डॉ. दयाकृष्ण विजय–एक और क्रांति, कहानी, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–56

70. डॉ. दयाकृष्ण विजय–एक और क्रांति, कहानी, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–57

71. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–59

72. वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–58

पंचम अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्य व समसामयिक संदर्भ

पंचम अध्याय

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का गद्य व समसामयिक संदर्भ

डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य विविध समसामयिक संदर्भों के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है। इसमें ऐतिहासिकता, आंचलिकता वर्तमान परिवेश समाहित है। समाज के प्रत्येक पक्ष को डॉ. विजय ने अपनी कहानी, निबंध, नाटक व उपन्यास में चित्रित किया है। समाज प्रत्येक पक्ष में चाहे वह सामाजिक हो या आर्थिक, सांस्कृतिक हो उसमें बड़ी निपूणता का परिचय दिया है। गद्य साहित्य में हर विषय को अपनी लेखन का आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। कहानियों की मार्मिकता निबन्धों की बौद्धिकता व उपन्यासों की धार्मिकता सूर्य को दिया दिखाने के समान है।

5.1 डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' मूलतः हाड़ौती के साहित्यकार ही नहीं वरन प्रांजल गद्य के लेखक भी है। गद्यकार के रूप में वे एक ओर कथा सर्जक हैं, नाटककार भी है। एक सारस्वतसार के शोधकर्त्ता के रूप में एक श्रेष्ठ गद्यकार है। आपने कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास आदि सभी का लेखन किया है।

डॉ. विजय के नाटकों एवं एकांकियों के उद्देश्य पर विचार किया जाये तो सहज ही ज्ञात होता है। "कि राष्ट्रीयता भारतीय सांस्कृतिक चेतना का सम्वर्द्धन जीवन मूल्यों का स्थैर्य विश्वकल्याण एवं समन्वयवादी भावनाओं का विकास ही उनके नाट्य कर्म का मूल है।"[1] इसी प्रकार एकांकियों का एक वर्गीकरण और किया जा सकता है। डॉ. विजय के नाटक व एंकाकी विविध विषयों पर केन्द्रित है जैसे सामाजिक, समस्यापरक, हास्यपरक, दहेजपरक, ऐतिहासिकतापरक आदि प्रमुख है। डॉ. विजय के इन नाटकों में रंगशिल्प का परिष्कृत रूप देखा जा सकता है। संवाद योजना लघु मध्यम आकारीय है। वे कथानक के साथ पात्रानुकूल एवं कथाविकास के लिये उपयुक्त रहे हैं। डॉ. विजय के नाटक प्रसाद के समान ओजस्वी एवं प्रभावशाली कथोपकथन मिलते हैं। भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है लेकिन नाटक रंगमंच की दृष्टि से खेलने योग्य है।

डॉ. विजय नाट्य कर्म के आधार पर राजनीति सामाजिक आधार पर पौराणिकता भी है। पात्र योजना संतुलित संवाद द्वारा आकर्षण बना रहता है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय के नाटक लेखन की दो दिशाएँ हैं—एक दिशा में उन्होंने एकांकी विधा को प्रश्रय दिया है तो दूसरी दिशा में नाटक या पूर्णाकीं नाटक लेखन किया है। इसी प्रकार कहानी लेखन में वर्णित विद्रूपताओं, विकृतियों, विसंगतियों, मूल्यहीनताओं, अनैतिक व्यापारों तथा चारित्रिक गिरावटों की पृष्ठभूमि में यही शिव भाव कार्यरत रहता है, जो अंत तक जाते—जाते अचानक प्रकट हो। पाठक को भाव विभोर कर रसमय कर देता है।

5.1.1 डॉ. विजय के नाटक

"पूर्ण नाटक — 1. आदिसम्राट (1974)

2. सिंहासन (1998)

3. छत्रपति शिवाजी (1975)

"एकांकी 1. एकांकिनी (संग्रह 1956)" 2. "सृष्टि का सगुण पक्ष (संग्रह 1987)"

नाटिका — "1 राग से विराग तक (1983)"

इन सभी नाटक में अपने काल सन्दर्भ परक राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का चित्रण इसमें अवश्य ही समाविष्ट किया है। "राष्ट्रीयता का भाव, पुरागाथिक कथ्य और कल्पनासृजित कथ्य के साथ भी है। इसके पीछे सम्भवतः उनकी प्रेरणा का मूल है कि भारतीय सांस्कृतिक विकास के इतिहास का भाव इनके लेखन में मिलता है।"[1]

आदि सम्राट (1974) वैदिक धारा से कथ्य प्रसूत नाटक है।

छत्रपति शिवाजी (1975) में नाट्य लेखन की प्रचलित मर्यादा का पालन करते हुए उसे त्र्यांक रखा है परन्तु कथ्य बहुलता के कारण दृश्यों की संख्या पन्द्रह हो गई है।

सिंहासन — यह त्र्यांक है प्रथम दो नाटक सर्जना के अनन्तर रंग शिल्प की दृष्टि से एक प्रौढ़कृति है। इसके कथासूत्र ऐतिहासिक बताये गये हैं।

इन नाटकों की सर्जना के पीछे जीवनमूल्यपरक सांस्कृतिक प्रयोजन निहित है। इसलिए नाटक जो जन शिक्षण के एक उपर्युक्त माध्यम है।

5.1.2 डॉ. दयाकृष्ण विजय के कथा संग्रह

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' कथा शिल्प प्रक्रिया में मनोविश्लेषणात्मक लेखक में आते हैं। डॉ. विजय कथ्य की सार्थकता और उद्देश्य की समग्रता में ये सभी कहानियाँ सतत कथ्य के

औचित्य से सम्पन्न दिखाई देती है। कथ्य के प्रति गहरी सम्वेदनशीलता और मानवीय सरोकारों के साथ सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति आग्रहशीलता निहित है।[2]

उलझन (1953 ई.)

स्वप्न और सत्य (1979 ई.)

बड़ी मछली (1992 ई.)

एक और क्रांति (1995 ई.)

उलझन (1953) में "डॉ. विजय ने सामाजिक आधार पर मध्यमवर्गीय परिवारों के पात्रों पर आधारित सामाजिक ताने–बाने की कथ्य संग्रह है। कथ्यशिल्प प्रक्रिया बड़ी ही सार्थक एवं जीवन्त है। कथा में ताजापन और जीवनगत यथार्थ है।"[3]

स्वप्न और सत्य (1979 ई.) – प्रस्तुत कहानी संग्रह में डॉ. विजय ने यथार्थ और कल्पना को अपनी लेखनी से उतारा है। शब्दों की कल्पना और सत्य को रोचकतापूर्ण लिखा है। शिल्पगत और आधुनिक कथाशिल्प के निकष पर वे सही न दिखाई देते हो लेकिन शिल्प कहानी की अभिव्यंजकता और समसामयिक है। जीवन के सभी पक्षों पर मानव मन का जीवन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आधार पर रचित है। 'स्वप्न और सत्य जीवन' के दो पहलू है। जो मनोविश्लेषण पर आधारित अनवरत चलती रहती है।

बड़ी मछली – डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित यह कथा–संग्रह प्रेम के त्रिकोण आधार पर है। "प्रत्येक कथा का पात्र प्रेम करुणा, त्याग और पवित्रता को दर्शाता है। अपनी मर्यादा का पालन है। जीवन में सभी रिश्तों का ताना–बाना है। जीवन में सामाजिक आधार पर राजनीतिक आधार पर या आर्थिक आधार पर कहीं न कहीं त्रिकोण प्रेम का सहज भाव मिलता है। कहीं पत्नी का त्याग है तो कहीं पिता का प्रेम हृदय स्पर्शी मनोभाव है, तो माँ का कर्त्तव्य है। अतः जीवन में प्रेम का भाव ही है जो रिश्तों को हर मुसीबतों से बचाकर अपने और करीब कर लेता है। जीवन का सहजभाव एक–दूसरे के प्रति कर्त्तव्य परायणता निभाते हुए गृहस्थी को संभालने का भाव भी मिलता है। कथ्य की सार्थकता अभिव्यंजना और समसामयिक संदर्भों में कहानी का शिल्प बड़ा ही उद्देश्यपूर्ण लगता है।"[4]

एक और क्रांति – डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने इस कहानी के माध्यम से समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया है। "सुवर्ण और दलित वर्ग के बीच समाज की बड़ी खाई है जो आजाद भारत में और गहरी होती जा रही है। समानता का भाव सिर्फ कागजों में मात्र रह गया है। हरिजन समुदाय को मंदिर में प्रवेश करवाया गया। पुलिस प्रशासन सब साथ था। आपसी सौहार्द का भाव

भी हर वर्ग में था। नेता और अफसर सभी समानता की वकालात कर रहे थे।"[5] अधिकारों की बात कही गई। रोज हरिजन को दर्शन हेतु मंदिर में प्रवेश करने दिया जाएगा। आदि सभी बातों के ढकोसले–झूटे वादे किये गये। हकीकत में दलित वर्ग को छुआछूत की भावना से ही देखा जाता है। "अधिकार विहिन यह वर्ग सदैव से पीढ़ी दर पीढ़ी शोषित रहा है और रहेगा। मानव जीवन मिलने पर भी समान सुखों का अभाव मिलता है। मंदिर में प्रवेश सिर्फ औपचारिकता पूर्ण थी। अगले दिन श्री परमेन्द्र कुमार मंदिर में दर्शन हेतु जाते हैं वहाँ के संत महन्त उन्हें धक्का मारकर मंदिर प्रांगण से निकाल देते हैं।"[6] अपमान और तिरस्कार का भाव लेकर सभी दुःखी थे। समानता का भाव नहीं मिलता। जीवन में प्रेम, सहिष्णुता का भाव खत्म हो गया। मानव–मानव को जात–पात के आधार पर दुःखी कर रहा है। भगवान सभी का है उस पर सुवर्णों ने अधिपत्य कर लिया अछूत दलित उनके दर्शन मात्र से भी वंचित है।

डॉ. विजय ने इस गद्य में प्रवृत्तिगत यह विशेषता दिखाई है कि जीवन में समानता का भाव नहीं है। जीवन में असमानता, शोषण, स्वार्थ, प्रवृत्ति प्रमुखता के साथ दिखाई देती है।

5.1.3 उपन्यास

डॉ. दयाकृष्ण विजय रचित उपन्यासों में धार्मिक भाव की प्रवृत्ति उजागर हुई है। धर्म का महत्त्व हमारे जीवन का आधार है। धर्म द्वारा ही सार्थक जीवन का निर्माण हो सकता है।

रमताराम – डॉ. विजय का धार्मिक उपन्यास है। यह स्वामी रामचरण जी जो निर्गुण सन्त थे पर आधारित है। विजय ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि– "स्वामी रामचरण जी अठाहरवी शताब्दी के राजस्थान के सुप्रसिद्ध ख्यातिनाम निर्गुण सन्त थे। इन्होंने सिद्धि उपरान्त अपना सारा जीवन लोक कल्याण को समर्पित कर दिया था। इनके शिष्यों ने 'रामस्नेही सम्प्रदाय' की स्थापना करवाकर भीलवाड़ा में स्थायी रामद्वारा भी बनवा लिया था। पर स्वामीजी स्वभाव से एक ही स्थान पर अधिक दिनों तक नहीं टिकते थे। वे अपने को रमताराम कहते थे। जो बुलाता उसे यही कहते मैं तो रमताराम हूँ, आ जाऊँगा रमता रमाता।"

इसी आधार पर उपन्यास का नाम 'रमता राम' रखा गया। उपन्यास में सन्त रामचरण जी के उपदेशों को विस्तार से बताया गया है। ये उपदेश समाजोपयोगी व मानव का कल्याण करने वाले है। स्वामी जी जिस परम्परा के थे। यह परम्परा मोक्ष कामी, परम ब्रह्म को राम नाम से पुकारने वाली। यह परम्परा ज्ञान, भक्ति वैराग्य के साथ प्रेम की विरहिणी रागात्मकता को जोड़ने वाली परम्परा है। यहाँ गुरु का महत्त्व स्वीकारा गया है क्योंकि बिना गुरुकृपा के मोक्ष प्राप्ति असंभव है। इसलिए इस परम्परा के गुरु महत्त्व के साथ सत्संगति का पक्ष लिया है। कुसंग व

मांस मदिरा सेवन की निन्दा की गई है। यही सब डॉ. विजय ने अपने उपन्यास 'रमताराम' में चित्रित किया है।

गोस्वामी रामचरण जी की जीवन यात्रा का वृत्तांत डॉ. विजय ने इस उपन्यास में दिया है। राम के चरणों में अपना जीवन न्यौछावर करने वाले हैं। संत जो हमें अपने जीवन से प्रेरित किया है। 'राम' भगवान के प्रति अपनी अगाढ़ भक्ति दिखने को मिलती है। डॉ. विजय ने 'रमताराम' उपन्यास का लेखन जीवन में धर्म की प्रमुखता सद्भावना के भाव से निरुपित है। धर्म द्वारा जीवन को सार्थक बनाना है समाज को अच्छी शिक्षा देना और जीवन की महत्ता को धारित करना हैं अतः डॉ. विजय ने 'रमताराम' में धर्म प्रमुखता दिखाई है।

5.1.4 निबंध संग्रह

"डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने अनेक निबंध संग्रह लिखे इनकी प्रमुख प्रवृत्तिगत विशेषता सांस्कृतिक समसामयिक की रचना करना है।

- गीता अनुशीलन (1984)
- राजस्थानी काव्य साधना अब और तब (1990)
- विचारों के अमलतास (1995)
- साहित्य संस्कृति और युगबोध (2000)
- राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना (2005)
- हिन्दी भाषा और महाकाव्य (2005)
- संस्कृति का वागर्थ (2006)
- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य (2006)
- वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका (2007)"

समस्त निबंध संग्रहों में भारत की सभ्यता संस्कृति की झलक मिलती है। साहित्य की महत्ता है तो कहीं संस्कृति का सौहार्द है। भारत की राजस्थान की संस्कृति का प्रभाव पढ़ने को मिलता है। विचारों की विविधता है, संस्कृति सभ्यता आचरण में पर मानव विचार की महत्ता समान है अतः विविधता में एकता का समायोजन इन निबन्धों में मिलता है। किसी में हिन्दी भाषा का उद्भव विकास है, तो महाकाव्यों की संस्कृति भी भारत की सौन्दर्य अनुभूति को दर्शाती है। राष्ट्र प्रेम है वहीं राष्ट्रवाद की भावना भी है। संस्कृति की छाप में भारत की झलक मिलती है। समाज का निर्माण सभी छोटी बड़ी बातों पर निर्भर करता है। एकता अखण्डता परिवेशगत विशेषता आदि

सभी समाज के निर्माण में भूमिका निभाते है। जनमन के अंदर प्रेम, दया, करुणा का भाव भी है। डॉ. विजय अपने निबन्धों में इस विशेषता को उजागर किया है कि– "हमारी सांस्कृतिक चेतना का विकास हर मानव मात्र में बना रहे। महाकाव्यों के प्रति श्रद्धेय भाव ज्ञान प्राप्ति की लालसा आदि बनी रहे। समाज के दुःख सुख की बात है तो जातिगत आधार पर लेखन भी है।[7]

डॉ. विजय ने अपने निबन्धों में हमारे जीवन से जुड़े पहलूओं को उभारा है। साहित्य, संस्कृति, सभ्यता वर्तमान परिवेश आदि मिलता है।[8]

सभी निबंध की सार्थकता और उद्देश्य की समग्रता में ये सभी निबंध सतत् ज्ञान के औदात्य से सम्पन्न दिखाई देते है। इनमें मानवीय सरोकारों के साथ सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति आग्रहशीलता निहित है।

5.2 ऐतिहासिक संदर्भ

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने ऐतिहासिकता पर आधारित नाटक, निबंध व कहानियाँ भी लिखी है ऐतिहासिक आधार पर रचना की है। ये इस प्रकार से है जिनकी कथावस्तु इतिहास की घटनाओं पर आधारित है।

- आदि सम्राट (1974)
- छत्रपति शिवाजी (1975)
- सिंहासन (1989)
- राग से विराग तक (1983)

डॉ. विजय के चारों नाटक ऐतिहासिक आधार पर ही रचित है।

आदि सम्राट – डॉ. विजय ने ऋग्वेद की बिखरी ऋचाओं में से इन्द्र विषयक कथासूत्र खोजकर 'आदि सम्राट' के वृहत्तर कथानक का चयन किया है। ऐतिहासिक ऋग्वेदीय घटनाओं के आधार पर नाटक की सर्जना की है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय का 'आदि सम्राट' (1974) में प्रकाशित नाटक है इसमें वर्तमान नाटकों की भांति त्रयांक सिद्धान्त पर आधारित रचना नहीं वरन् 34 दृश्यों वाला 5 अंकों से सुशोभित नाट्य रचना है। इसको लिखने में दस वर्ष का समय डॉ. दयाकृष्ण विजय के निरन्तर प्रयास के फलस्वरूप का ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित रचना है। ऐतिहासिक सत्यता को पुनः स्थापित करने हेतु ऋग्वेद को ही साक्षी बनाया जाये। इस नाटक में नये प्रयोगों के साथ कुछ 'इन्द्र के जीवन की ऋग्वेदोक्त घटनाओं को ही समाविष्ट किया।

डॉ. विजय के इन नाटकों में रंगशिल्प का परिदृश्य परिष्कृत रूप में देखा जा सकता है। वे यथा स्थान उचित रंगमंची निर्देश देते हैं। इस नाटक में सांस्कृतिक संदर्भ परक तो है ही साथ ही राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण इसमें पढ़ने को मिलता है कथानक पात्रों के संवादों में पुरागाथिक कथ्य के मेल के साथ कल्पना सृजित भी कर नाटक में रोचकता का अनुभव हमें पढ़ने को मिलता हैं इस नाटक में इन्द्र को पात्रों में प्रमुखता देते हुए ऋग्वेद की बिखरी ऋचाओं में से इन्द्र विषयक कथासूत्र खोजकर 'आदि सम्राट' के वृहत्तर कथानक का चयन किया है।

छत्रपति शिवाजी – डॉ. दयाकृष्ण विजय ने शिवाजी के जीवन की विविधता और विकास के विविध आयामों को नाटक के कथानक में चित्रित किया है। "शिवाजी के चरित्र में राम की सी मर्यादा, कृष्ण के समान माधुर्य व चतुरता है। प्रताप की भाँति राष्ट्रभक्तिपूर्ण सहिष्णुता धीरोदत्त नायकत्व एवं महापुरुषत्व देखते हैं।"[9] शिवाजी की नीति से राष्ट्रनिर्माण, देश भक्ति, कर्त्तव्य परायण भाव की सर्जना है। शिवाजी के चरित्र का वैशिष्ट्य व पराक्रम इस नाटक में उद्घाटित हुआ है।

सिंहासन – डॉ. विजय ने इस नाटक का कथानक इतिहास पर आधारित ही लिया है। "कथासूत्र ऐतिहासिक बताये गये हैं पर यह भी स्पष्ट किया गया है कि इस नाटक की कथावस्तु जनप्रसिद्धी नहीं ले पाई इसका क्या कारण रहा।"[10] नाटकों के क्षेत्र में कुतूहल उपस्थित करने का भाव मिलता है। संवाद चरित्र–चित्रण विश्लेषण तथा सौद्देश्यता आदि की दृष्टि से भी साहित्यिक श्रेष्ठता एवं विशेषता मिलती है। प्रेम शृंगार की सात्त्विक मर्यादा का भाव अभिव्यक्ति होता है। नाटकीय वातावरण की भावप्रमुग्ध सृष्टि मन मोह लेती है। युद्ध सांस्कृतिक परिवेश में लिखा श्रेष्ठ यथार्थवादी नाटक है।

राग से विराग तक – डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने 'राग से विराग' नाटिका की रचना जैन कथानक के आधार पर की है। स्थूलिभद्र विजय मुनि से दीक्षार्थ हो जाते हैं। मोहमाया, सिंहासन आदि का त्यागकर वैराग्य धारण कर लेते हैं। कोशा भी अन्ततः स्थूलिभद्र के चरणों में स्वयं को समर्पित कर देती है। स्वयं वहाँ आकर दीक्षार्थ प्रस्तुत हो जाती है। ऐतिहासिक पात्रों पर आधारित कथानक की नाटिका है। डॉ. विजय ने इस नाटिका में सांसारिक मोहमाया को छोड़कर आध्यात्मिकता का मार्ग प्रशस्त किया है।

"इतिहास के अंतर्गत हम जिस विषय का अध्ययन करते हैं उसमें अब तक घटित घटनाओं या उससे संबंध रखने वाली घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन होता है।"

"दूसरे शब्दों में मानव की विशिष्ट घटनाओं का नाम ही इतिहास है। प्राचीनता से नवीनता की ओर आने वाली मानव जाति से संबंधित घटनाओं का वर्णन इतिहास है।"[11] इन्हीं आधारों पर

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने नाटकों में प्रमुख आधार दिया है इतिहास के काल खण्ड को कथ्य के आधार पर पात्रों की विशेषता उजागर की है।

5.2.1 ऐतिहासिकता का अर्थ

इतिहास का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। "एक है प्राचीन अथवा विगत काल की घटनाएँ और दूसरा उन घटनाओं के विषय में धारणा। इतिहास–इति+ह+आस, अस् धातु लिट् आकार अन्य पुरुष तथा एक वचन का तात्पर्य है 'यह निश्चय था'। ग्रीस के लोग इतिहास के लिए 'हिस्तरी' शब्द का प्रयोग करते थे। 'हिस्तरी' का शाब्दिक अर्थ 'बुनना' था अनुमान होता है कि ज्ञात घटनाओं को व्यवस्थित ढंग से बुनकर ऐसा चित्र उपस्थित करने की कोशिश की जाती थी जो सार्थक और सुसंबद्ध हो।"[12]

इतिहास शब्द का अर्थ है– "परम्परा से प्राप्त उपाख्यान समूह (जैसे कि लोक कथाएँ) वीरगाथा (जैसे महाभारत, पदमावत) या ऐतिहासिक साक्ष्य।"[13]

इतिहास के अन्तर्गत हम जिस विषय का अध्ययन करते हैं उसमें अब तक घटित घटनाओं या उससे संबंध रखने वाली घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन होता है।

5.2.2 ऐतिहासिकता की परिभाषाएँ

"प्राचीनता से नवीनता की ओर आने वाली मानव जाति से संबंधित घटनाओं की ओर आने वाली मानव जाति से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन इतिहास है।"[14]

लिप्सन के अनुसार – "अपने काल क्रमानुसार अध्ययन से इतिहास राजनीति के विद्यार्थी को एक परिपक्वता और विकास की भावना देता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।"[15]

इतिहास सम्पूर्ण मानव सभ्यता के अतीत का अध्ययन करता है। इतिहास मात्र वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग करता है अर्थात् अतीत की घटनाओं का क्रमबद्ध और तटस्थ अध्ययन करता है। इतिहास मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का व समस्त संस्थाओं के अतीत का अध्ययन करता है। इतिहास का प्रमुख उद्देश्य है मात्र अतीत की तटस्थ जानकारी प्राप्त करना वास्तविक घटनाओं का अध्ययन करता है। वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग करता है। इतिहास मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का व समस्त संस्थाओं के अतीत का अध्ययन करता है।

डॉ. विजय ने अपने लेख में नाटकों का कथानक इतिहास पर ही आधारित रखा है। अधिकांशतः कहानी संग्रह, उपन्यास, निबंध संग्रह आदि सभी में गद्य की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

ऐतिहासिक संदर्भ पर आधारित है। नाटक की ऐतिहासिकता पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं तथा कथानक की सूत्र बद्धता, अभिव्यक्ति पाने से रह जाती है। पौराणिक ऐतिहासिकता के सांस्कृतिक परिपार्श्व में मूल्य संस्कृति के व्यवहारिक एवं आदर्श दोनों पक्ष उजागर करने के पीछे सभी गद्य को अधिकाधिक जन के निकट लाने तथा वर्तमान से जोड़ने का भाव रहा है। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' ने ऐतिहासिक संदर्भ की पुष्टि 'सिंहासन' नाटक में इस प्रकार प्रस्तुत की है।

विदल्ल – "युवराज मैं आपको कायरों की राह पर नहीं वीरों की राह पर ले जा रहा हूँ, आपको अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन देखना चाहता हूँ किन्तु यह योजना से ही संभव है। आपकी अकेले शक्ति के बल पर नहीं। अतः इतिहास गवाह की सैन्य योजना से ही हम आगे की तरक्की संभव है।"[16]

डॉ. विजय ने निबंध लेखन में इतिहास को साक्षी माना है। 'भारतीय साहित्य व सामाजिक सरोकार' निबन्ध में वे लिखते हैं– "हमारा पूरा वाङ्मय इसका साक्षी है। प्रजापति ब्रह्मा ने पहले अपने श्रेष्ठ आत्मज्ञानी चारों मानस पुत्रों से सत्ता सिंहासन संभालने हेतु आग्रह किया।"[17]

इसी क्रम में भारत के राष्ट्रीय एकता के लिए डॉ. विजय ने परिभाषित किया है– "देश की सांस्कृतिक परिस्थितियों के विकास क्रम के अध्ययन से हमें भारतीय राष्ट्रीय एकता का अधिक स्पष्ट परिचय में मिलता है। क्या नाग साहित्य, क्या चारण साहित्य क्या संतों का निर्गुण, सगुण साहित्य, भक्ति काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, वैष्णव काव्य आश्चर्यजनक रूप से हमें समान काल खण्ड में समान ऊर्जा के साथ पूरे भारत में समान रूप से अभिव्यक्त हुआ मिलता है।"[18] डॉ. विजय ने स्वयं अपने निबंध संग्रह 'वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका' में स्वाधीन भारत में भारतीय साहित्य चिंतन परम्परा से राज्य का रिश्ता में लिखा है। भारत में पहले इतिहास लिखने की परम्परा नहीं थी। केवल काव्यों में ही इतिहास, संस्कृति तथा धर्म सुरक्षित था। यदि पुराणों ने वेद ज्ञान की विस्तार से व्याख्यान प्रस्तुति नहीं दी होती तो भारत का ज्ञान विज्ञान अंधेरे में ही रहता।

5.3 आंचलिकता

डॉ. विजय के लेखन में मिट्टी की सुगंध आंचलिक परिवेश की परिचायक है। परिवेश की सुगंध रीति–रिवाज, परम्परा, भाषा, संस्कृति आदि सभी की अलग छाप होती है। अंचल का अर्थ क्षेत्र से है। जो अपनी अनूठी छाप लिए होती है। राज्य विशेष में अपनी अलग बोली रहन–सहन की वेशभूषा खान–पान की अलग पहचान वहाँ की संस्कृति विशेष की परिचायक होती है। डॉ. विजय ने निबंध, कथा संग्रह, नाटक, उपन्यास आदि सभी में इनकी सुगंध अपने शब्दों में दी

है। जिससे हमारे साहित्य की सुगंध और बड़ी है। डॉ. विजय के कथा साहित्य में हाड़ौती अंचल की माटी की गंध, लोक संस्कृति, परम्पराएँ, रीति–रिवाज आस्थाएँ, धार्मिक विश्वास चित्रित हुए है। इन कहानियों में हाड़ौती अंचल का खान–पान, रहन–सहन परिवेश उद्‌घाटित है।

कहानी 'बड़ी मछली' में 'गृहलक्ष्मी' कथा में अंचल की छाप है। "मैं भी पूजा करुँगी इसलिए आप उधर बैठिए मैं इधर बैठती हूँ। गृहलक्ष्मी ने जैसा आदेश दिया वैसा ही किया दीप जला। अगरबत्ती ने धुँआ छोड़ा। जल से केले का स्नान हुआ। पीला वस्त्र चढ़ा। हल्दी का तिलक लगा, पीले फूल चढ़े, पीले गुड़ का भोग लगा तथा पीला आम जिसे पंडित जी पहले ही ले आए थे चढ़ाया गया। बाद में वैसे चढ़ाए गये आरती हुई। पूजा पूरी।"[19]

अंचल की अपनी पहचान रीति–रिवाज की सुगंध से मिलती है। अपनी अलग पृष्ठभूमि का चित्रण परिस्थितियों एवं वातावरण का चित्रण अंचल विशेष की पहचान बताता है। यही इस कहानी में प्रस्तुत है उपर्युक्त उदाहरण में अंचल की गंध द्रष्टव्य है।

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल के अनुसार – "लेखक ने अपने वर्णनों में तो परिष्कृत मानक, खड़ी बोली का प्रयोग किया है परन्तु पात्रों के मुँह से उनके परिवेश के अनुसार भाषा का प्रयोग करवाकर इस उपन्यास के बड़े अंश को आँचलिक बना देता है।"[20]

डॉ. विजय रचित 'रमताराम उपन्यास में' " भीलवाड़ा को कर्मक्षेत्र के रूप में चुनते हुए यहाँ भूतों की बावड़ी के उनके प्रवास से रामद्वारा की स्थापना तक की कथा एवं तदन्तर फूलडोल मेले के रूप में रामस्नेही सम्प्रदाय की संत परम्परा एवं पंथ विस्तार की कथा के बाद उनका रमते रमाते शाहपुरा पहुँचकर छतरियों से उनके निवास उनकी साधना तथा स्वामी जी के चमत्कारों एवं लोक कल्याणार्थ किये गये पंथ विस्तारी कार्यों का बहुत ही प्रामाणिक एवं तथ्यात्मक विवरण प्रवाहपूर्ण सरस भाषा में व्यक्त किया गया है।"[21]

'राजस्थानी काव्य साधना तब और अब' में संकलित निबंधों में हाड़ौती अंचल की गंध से सुवासित है। उनमें अनेक स्थानों पर अंचल की प्राकृतिक छटा, रहन–सहन, आस्था विश्वास व्यक्त हुआ हैं।

डॉ. विजय ने आँचलिक संदर्भों को अपने निबंधों में उजागर किया है। भारतीय सभ्यता संस्कृति अपने क्षेत्र विशेष के साथ ही अपने क्षेत्र विशेष की विशेषता लिए हुए है।

डॉ. विजय ने अपने इस शोध ग्रंथ में राजस्थानी भाषा के दो कथा (1) डिंगल भाषा का साहित्यिक रूप (2) अपभ्रंश से विकसित हुई राजस्थानी भाषा का उल्लेख किया है। दसवीं सदी से 19वीं सदी तक राजस्थान का श्रृंगार काव्य मिलता है। वह हमारे राजस्थानी अंचल की बोली

का निरन्तर विकास ही परिणाम है। श्रृंगार काव्य में चार प्रकार मिलते हैं। 1. जैन श्रृंगार काव्य, 2. लौकिक श्रृंगार काव्य, 3. चारण श्रृंगार काव्य (डिंगल), 4. द्विव्य श्रृंगार काव्य का भी गद्य स्वरूप आँचलिकता के साथ ही मिलता है। अपने समुदाय विशेष की अलग पहचान इस बात की द्योतक है कि क्षेत्र विशेष में उपजी सभ्यता संस्कृति की पहचान बनी है। "हमारे देश की पहचान विविधता में एकता की परिचायक है अलग–अलग राज्यों के साथ ही वहाँ के ग्रामीण परिवेश की आँचलिकता अपनी अनूठी पहचान बनाये हुए है।"[22] बड़ी मछली का यह उदाहरण आँचलिकता की दृष्टि से श्रेष्ठ है। "ऐसी बात भी नहीं 'गोधूली के फेरे थे। घर से यदि अब भी नहीं चलते तो गोधूली का सावा नहीं हो पाएगा। सारे लोग चिंतित । सबने हिम्मत की। छतरियाँ, घूघियाँ, प्लास्टिक कवर सिरोवर तन गए। पहले प्रमुख लोग थे जिनका जाना आवश्यक था।"[23] इस प्रकार डॉ. विजय के लेखन में अंचल विशेष की सोंधी–सोंधी खुशबू है।

5.4 पारिवारिक संदर्भ

विश्व की प्रथम ईकाई परिवार ही है। जहाँ बच्चा जन्म से मृत्यु तक पारिवारिक ताने–बाने में रहता है। परिवार में माता–पिता, दादा–दादी, चाचा–चाची, मामा–मामी, नाना–नानी, मौसी–मौसा व बुआ–फुफा आदि सभी रिश्तों की अपनी अहमियत बनी हुई है। जीवन की बागडौर परिवार पर ही निर्भर होती है जहाँ व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। जीवन की शुरुआत व अंत परिवार पर ही निर्भर करती है।

आज पारिवारिक संदर्भ दो भागों में मिलता है। (अ) ग्रामीण परिवेश (ब) शहरी परिवेश में बाँटा परिवार जो अपनी अलग पहचान बनाये हुए है। गाँव के परिवार में निकटता है रिश्तों की मिठास है अपनेपन का भाव है। वहीं शहरी परिवेश में रिश्तों का मोल कम होता जा रहा है। आर्थिक आधार पर हो या सामाजिक स्तर पर समाज में परिवार की पहचान बदल रही है।

बदलते परिवेश में ही डॉ. विजय ने 'उलझन' कहानी में पारिवारिक ताना–बाना ही बुना है। परिवार में रिश्तों की अहमियत, उनमें प्रेम, दया, करुणा, ममता, अपनत्व का भाव आदि सभी विद्यमान है।

परिवार आज रिश्तों में प्रेम लगाव से ही आपस में जुड़े हैं चाहे वह पति–पत्नी का हो या माँ बेटी या भाई बहन। जीवन का यही यथार्थ रिश्तों की डोरी को बाँधे रखता है।

परिवार के दो रूप

1. पितृसत्तात्मक परिवार 2. मातृसत्तात्मक परिवार भारत जैसे देश में सम्मिलित परिवार में साधारणतः 10–12 सदस्य होते हैं। समाज में परिवार कौटुंबिक समूह का अंग माना जाता है और परिवारों के सदस्यों की संख्या 50–60 या 100 तक होती है।

परिवार का शासन अधिकांश समाजों में पुरुषों के हाथ होता है। पितृवंशीय परिवारों में साधारणतः पिता अथवा घर का सबसे बड़ा पुरुष और मातृवंशीय परिवारों में माता ही परिवार की मुखिया होती है। परिवार ही सामाजिक सुरक्षा की प्रथम ईकाई थी। परिवार के बड़े–बड़े ही परिवार के हर प्रकार के निर्णय लेते थे। परिवार के प्रत्येक सदस्य को वह स्वीकार्य भी था। जन्म मरण के हर रीति–रिवाज परिवार के निर्णय मुखिया के हाथ में ही हुआ करते थे।[24] डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में इन्हीं पारिवारिक संदर्भों का ताना–बाना बुना है। इनमें वर्तमान परिवेश का प्रभाव दिखाई देता है। यदि प्रेम सद्भाव है, तो कहीं घृणा, द्वेष ईर्ष्या का भाव भी।

डॉ. विजय ने भी अपनी कहानी संग्रह बड़ी मछली व उलझन में पारिवारिक संदर्भ को चित्रित किया है। "मोहभंग कहानी में 'वकील साहब कैसे भी हो बच्चा मैं नहीं दूँगा। मैं इसलिए आपको वकील करने आया हूँ। मैंने आपका बड़ा नाम सुना है।'

– 'आपका नाम'

– 'मुरारी लाल शर्मा'

– 'कोई काम करते हैं?'

– 'नहीं दिनभर बच्चे के साथ खेलना–खिलाना, बस यही काम है।'

– 'फिर आपका खर्च कैसे चलता है?'

– 'कोई कमी नहीं। लड़का कुवैत से काफी लाया है।'

– 'आप तो कह रहे थे लड़का यहीं विस्तार योजना में किराए के फ्लैट में रहता है।'

– 'वह तो अब रहने लगा है।'

– 'कब से?'

– 'यही कोई महिनेभर से। कह रहा था लड़के को ले जाऊगाँ।'

– तो भेज दीजिएगा। नगर के नगर में क्या कठिनाई है?

– 'वकील साहब, भेज देता तो फिर आपको वकील करने ही क्यों आती?'"[25]

दादा पोता का प्रेम इस प्रकार बढ़ जाता है कि पिता–पिता के प्रेम को नहीं समझ पा रहे हैं। रिश्ते में प्रेम मूल से ज्यादा ब्याज की ओर बढ़ रहा है।

पारिवारिक संदर्भ की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का प्रेम, लगाव यहाँ दिखाई देता है।

5.5 वर्तमान परिवेश और वाग्वैदग्ध्य

आज हमारे जीवन के हर स्तर में बदलाव आ रहा है। हमारा जीवन क्षेत्र की अपनी परिभाषा बदल रही है। वर्तमान परिवेश भी हमारे समाज के परिवेश का ही परिचायक है। परिवार समाज राष्ट्र की अपनी अलग पहचान होती है। यह पहचान उस क्षेत्र विशेष से जुड़ी है जैसे–भाषा, रीति–रिवाज, परम्परा, खान–पान आदि सभी की विविधता होती है। हमारे जीवन में हमारे परिवार भाषा, रीति–रिवाज का प्रभाव देखने को मिलता है। इसी प्रकार साहित्य में भी डॉ. विजय ने गद्य साहित्य में वर्तमान परिवेश पर अपनी कलम चलाकर वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया है। नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध, लेखन में वर्तमान परिवेश व तत्कालीन परिवेश को चित्रित किया है। जब ये लिखे गये थे।

डॉ. विजय रचित निबंध 'वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका' (2007 ई.) में प्रत्येक निबंध से वर्तमान परिवेश का परिचय दिया है। 23 निबंधों में भारतीयता में अटूट आस्था और राष्ट्र से संबंद्ध विषयों का प्रतिपादन किया है। भारतीय साहित्य की युग युगीन स्थिति का समुचित विवेचन किया है। "भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार में वर्तमान परिवेश में साहित्य संस्कृति की प्रतिष्ठा है। संस्कृति की निरन्तरता की संवाहिका शक्ति इसमें निहित है। संस्कृति समाज का नयादीप है। संस्कृति के प्रकाश में ही समाज सुख–शांति एवं आनन्द का चरम स्पर्शता है।[26] संस्कृति का झरना इन निबन्धों में प्रवाहित हो रहा है।

वर्तमान परिवेश में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व पारिवारिक परिवेश को बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है। यही साहित्य दीर्घजीवी व कालजयी होता है।

"वर्तमान विपुल भारतीय साहित्य में, वही साहित्य पूज्य होकर जीवित रहने वाला है जिसे सात्विक लेखनी ने संस्कृति की मसि से आदर्श के पट्ट पर आलेखित किया है। कालांतर में वहीं भारतीय साहित्य के नाम से अभिषिक्त होकर भारतीय समाज जीवन का प्रकाश स्तम्भ बनने वाला है।"[27]

इसी प्रकार उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक समाज निर्माण की शताब्दी कही जा सकती है। इस शताब्दी ने स्वतन्त्रता के साथ–साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिए कभी अपनी

पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर चिंता भी गहराई के साथ व्यक्त की है।

"राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' ही इसका श्रेष्ठतम उदाहरण कहा जा सकता है। जब वे कहते हैं–

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होगे अभी
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याऐं सभी
भारत कहो तो, आज तुम क्या हो वही भारत अहो
हे पुण्य भूमि कहाँ गई है वह तुम्हारी श्री कहो।"[28]

इसी क्रम को आगे लेकर डॉ. विजय ने अपनी कहानी 'ममत्व' में बड़ी ही स्पष्टता से वर्णित किया है परिवेश को चित्रित करते हुए वे कहानी में लिखते हैं कि–

– "नारी में नारी की भावनाओं को समझने की बड़ी क्षमता होती है। बंबई में तो प्रत्यक्ष ऐसे उदाहरण देखने सुनने को मिलते ही थे शायद इन सभी कारणों से बुंबई वासिनी सुषमा के लिए ऐसी बातें बहुत विचारणीय नहीं थी।"[29] इसी क्रम में डॉ. विजय ने वर्तमान परिवेश के विषय में लिखा है कि परिवार राष्ट्र की सबसे छोटी ईकाई है और राष्ट्र का वर्तमान परिवेश सकारात्मक सोच से प्रगति की राह पर चल सकेगा। प्रगतिशील भारत आज हमारे युवा पीढ़ी के सकारात्मक सोच का ही परिणाम है। हमारे देश का विकास हो रहा है। औद्योगिक क्रांति से प्रत्येक वर्ग में बदलाव आ रहा है। रहन–सहन, भाषा आदि सभी क्षेत्र में प्रौद्योगिक का प्रभाव पढ़ रहा है। यही बदलाव हमें वर्तमान परिवेश में डॉ. विजय के लेखन में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्रौद्योगिक विकास का प्रभाव देखने को मिलता है। वे अपने निबन्ध में परिवेश पर विचार करते हुए लिखते हैं–

"अतीतवादी बुर्जुवा कहकर हमें गालियाँ ही नहीं देते हमारे प्रयासों को पीछे की ओर ले जाने वाला प्रतिक्रियावादी कदम बताते हैं। उन्हें कौन कहे कि भारत का अतीत गान ही स्वतन्त्रता संग्राम में राष्ट्रीय एकता का भाव जगाने वाला रहा है और यही अतीत गान आज की भ्रमित चिन्तनीय अवस्था में आलोक स्तम्भ का काम कर सकता है।"[30]

– इसी क्रम को साहित्य के क्षेत्र में यह भाव दिया है। एक नया भारत बनाने को कविता भी उसी तरह व्यग्र है। जैसे लोकजीवन। समय ने छन्दों शब्दों और शैलियों के प्रयोगवादियों को संस्कृति की गंगा के किनारे ला खड़ किया है। "वर्तमान परिवेश में साहित्य में बहुत बड़ा बदलाव आजादी से 69वें वर्ष बाद निरन्तर परिवर्तन हमें पढ़ने को मिल रहा है। चाहे वह किसी युग से जुड़ा हो अथवा किसी भी पहलू में कुछ नयी सोच मिलती है।"[31]

डॉ. विजय ने अपने लेखन में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि सभी में चातुर्यपूर्ण लेखन है। वर्तमान परिवेश का लेखन हमें स्त्री–पुरुष निम्न उच्च वर्ग आदि सभी में अपनी अलग सोच का परिचय दिया है। डॉ. विजय ने अपने गद्य साहित्य के बहु आयामी रचनाकार व्यक्तित्व है। डॉ. विजय की गूढ़ दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा साहित्य विश्लेषण क्षमता का प्रत्यक्ष दर्शन होता है मौलिक चिन्तन दृष्टि का परिचय मिलता है। आज की वर्तमान भारतीय राजनीति की भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के धरातल पर खड़ा होने की आवश्यकता प्रतिपादित की है। इनके लेखन में चिन्तन दृष्टि तथा भाषाभिव्यक्ति मिलती है।

साहित्य, संस्कृति, कला तथा अन्यान्य विषयों पर अपने प्रखर विचारों, मौलिक, अवधारणाओं तथा विभिन्न विषयों पर ऐतिहासिक जानकारियाँ दी हैं। डॉ. विजय की ख्याति राजस्थान तक सीमित नहीं रह गई। आज हिन्दी गद्य साहित्य में राजस्थान में ख्याति प्राप्त राजस्थान रत्न से सम्मानित व्यक्तित्व है। साहित्य संस्कृति व ऐतिहासिक विषयों पर निबंध, उपन्यास, कहानी लिखकर अपना अलग व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

5.6 परिवेशगत संदर्भ

परिवेश शब्द अत्यन्त व्यापकता लिए होता है। मानव के आस–पास जो कुछ भी विद्यमान है या उसे प्रभावित करता है। वह परिवेश के अन्तर्गत आता हैं परिवेश मनुष्य के चिन्तन व आचरण को प्रभावित करता है। अतः साहित्य सृजन के लिए परिवेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। इसलिए साहित्य में परिवेश की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जो उसके चिन्तन व व्यवहार में परिलक्षित होती है। परिवेश की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। किन्तु इसके स्वरूप को विद्वानों ने अपने अनुसार परिभाषित करने की कोशिश की है शब्दकोष में दिये गये शाब्दिक अर्थ से परिवेश की व्यापकता को समझा जा सकता है। विभिन्न विद्वानों ने परिवेश में समाहित विशेषताओं व उसके महत्व को बताया है इसे इस प्रकार बताया जा सकता है।

परिवेश – परिभाषा व महत्व

परिवेश को विविध परिभाषाओं द्वारा समझा जा सकता है।[32]

1. परिवेश–घेरना वेष्टन
   आवेष्टित करने वाली वस्तु, परिधि।

2. परिवेश – "कोई वस्तु जो घेरती है या रक्षा करती है (आस–पास हमें घेरने वाला प्रत्येक जड़ चेतन पदार्थ व क्रिया, जिससे हम घिरे है तथा जिसमें हम रक्षित भी है) जल मछली परिवेश रक्षक।"[33]

परिवेश – सूर्य व चन्द्र के चारों ओर घेरे हुए सभी पदार्थ व क्रियाऐं परिवेश कहलाता है। परिवेश के अन्तर्गत सभी तत्वों को समाहित किया जा सकता है। जो साहित्यकार के सृजन को प्रभावित करते हैं। यह साहित्यकार की दृष्टि प्रेरणा चेतना पर निर्भर करता है कि वह किस तथ्यों को महत्व देता है। यह सृजनधर्मी की दृष्टि और उसे प्रभावित करने वाली परिस्थितियों पर निर्भर होता है कि वह किसे अधिक महत्व प्रदान करता है। जो क्षण घटना परिस्थिति साहित्यकार के मर्म को प्रभावित करे वह परिवेश की परिधि में आता है। वही उसके सृजन का आधार होता है। मानव मन की अनुभूतियाँ उसके व्यवहार में परिलक्षित होती है। सामाजिक जीवन में रीति–रिवाज परम्परायें प्रथाएँ व्यवसाय सभी परिवेश को परिभाषित करते हैं।

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने साहित्य में परिवेशगत संदर्भों को समाहित करते हुए अपने गद्य को समृद्ध किया है। जिसमें वर्तमान परिवेश के साथ तत्कालीन परिवेश ऐतिहासिक परिवेश सांस्कृतिक परिवेश आगे संदर्भों का लेखन कर साहित्यों को विशिष्टता प्रदान की है। इन्होंने अपने निबंध, नाटक, उपन्यास व कहानी के क्षेत्र में परिवेश के विविध आयामों का स्पर्श करते हुए सृजनधर्म का निर्वहन किया है। इन्होंने ग्रामीण व शहरी दोनों परिवेश का चित्रण अपने साहित्य में किया है।

5.6.1 शहरी परिवेश

शहरी परिवेश का उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है– "वह साथ रहता तो बात ही क्या थी। वह विस्तार योजना के किराए के नए फ्लैट में चला गया तभी तो यह प्रश्न आया है। डॉ. विजय ने परिवार की स्थिति पर प्रकाश डाला है कि शहरी परिवेश बुजुर्ग माता–पिता को छोड़कर अपनी अलग दुनिया बना लेते हैं। माता–पिता के प्रेम, अपनेपन का कोई मोल ही नहीं होता है। बुजुर्ग माता–पिता का अकेलापन दूर करने वाला एक मात्र पोता जो दादाजी से बिछड़ रहा है। "उसके प्रेम का जुड़ाव मोह बहुत ही बढ़ गया है। उसे पाने के लिए वह घर से अदालत तक पहुँचने की सोचते हैं।"[34]

एकाकीपन दूर करने वाला पोता जब अपने पिता से मिलने जाता है। अब एक पीढ़ी का प्रेम दूसरी पीढ़ी से अधिक उस तीसरी पीढ़ी से है जो ब्याज के रूप में उनके प्रेम को बढ़ा रहा है। डॉ. विजय ने इस कहानी में शहरी जीवन में व्याप्त एकाकीपन की समस्या को व्यक्त किया है–

आज की पढ़ी लिखी युवा पीढ़ी अपने माता–पिता के लगाव को भूलकर नई सोच में आगे बढ़ रही है। 'आम के पेड़' कहानी में युवा पीढ़ी का रोजगार से संबंध तथा पूँजीपति व श्रमिक वर्ग का शोषण का भाव मिलता है।

"जब आदमी सपने तो ऊँचे–ऊँचे संजोता है। लेकिन व्यावहारिक जीवन में जब उसके विपरीत भोगना पड़ता है। तब सारा परिवेश नीरस, सूखा खण्डहर सा लगने लगता है। मन किसी और जगह जाने को व्याकुल हो जाता है। अपना पराया तक तब कुछ नहीं दिखाई देता। यही अरविन्द के साथ शायद हुआ।"[35]

वर्तमान परिवेश में आर्थिक स्थिति को उजागर किया है। क्योंकि आर्थिक आधार पर ही जीवन निर्भर करता है। श्रमिक वर्ग की स्थिति को इस कहानी में स्पष्टतः पता लगता है।

'राग से विराग' का कथानक जैन सम्राट पर आधारित है इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक परिवेश दर्शाया गया है।

5.6.2 ग्रामीण परिवेश

डॉ. विजय ने अपनी अनेक कहानियों में ग्रामीण परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है। इसमें 1. गाय की पूंछ, 2. गृह लक्ष्मी, 3. संकल्प, 4. भविष्यदृष्टा, 5. स्वाभिमान कहानियों में डॉ. विजय ने ग्रामीण परिवेश का रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज प्रकृति व ग्रामीण जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है।

डॉ. विजय ने 'गाय की पूंछ' कहानी में ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है जिसमें एक बारात एक गाँव से दूसरे गाँव जा रही है और प्राकृतिक आपदा के समय तत्कालीन प्रबंधन का चित्रण किया है। उदाहरण दृष्टव्य– "एक तो सावे के समय की निकटता दूसरे दूल्हे को ताल पार करवाना। आपाधापी मच गई। रस्सी के छोरों को जोरों से पकड़ा गया। दूल्हा और दूल्हे का भानजा अर्थात् श्री धूपड़े जी का बड़ा पुत्र दोनों उसमें बैठ गए। ट्यूब, ट्यूब पर खाट और खाट पर दूल्हा और भानजा। इस छोर से ढील और उस छोर से खींच बढ़ती गई। जैसे ही खाट वीथ में पहुँची पानी की एक बड़ी हिलोर नाले में आई और उसमें खाट उलट दी। हाथ तौबा मच गई। कोई हिम्मत नहीं कर था कि धार में कूदे। परली पार श्री धूपडे खड़े थे। दूल्हे के साथ उन्ही का बच्चा था उन्होंने आव देखा न ताव कूद पड़े ताल में।"[36]

परिवेश में आस्था और विश्वास का बड़ा महत्व होता है 'गाय की पूँछ' कहानी में डॉ. विजय भारतीय संस्कृति के आस्था, विश्वास जोकि ग्रामीण परिवेश में रचे बसे है यूँ व्यक्त करते हैं।

"यह गाय ईश्वर ने भेजी थी कोई दैवीय शक्ति है वरना पशु भी इतने तेज पानी में उतरते घबराते है।"[37] 'गृहलक्ष्मी' कहानी में ग्रामीण परिवेश आचार–विचार और व्यवहार को इस प्रकार किया है–

"कहिए कितनी बचत हुई। वह सिंधी यहाँ बैंगन तीन रुपए किलो बोल रहा था। कद्दू दो रुपए किलो दे रहा था। हुई न 3 रुपए की बचत। लोग जाना ही नहीं चाहते। काम से कितना कतराते है। झूठी शान में अकडे रहते हैं। काम से कोई घिसता थोड़े ही है। अब ले आए तो छोटे बाप के तो नहीं हो गए।"[38]

उपर्युक्त दृश्य से ग्रामीण परिवेश चित्रित होता है जहाँ सब्जीमंडी में सब्जी का मोल विचार करते हुए लोग दिखाई दे जाते हैं। डॉ. विजय ने ग्रामीण परिवेश का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। उनके गद्य साहित्य में प्रयुक्त दृश्य, प्रकृति हमारे समक्ष जीवन्त हो उठती है। कहानी 'सोने की मोहरे' दो भाईयों के सम्पत्ति के बँटवारे को लेकर कहानी लिखी गई है। जो ग्रामीण वातावरण तत्कालीन परिवेश को चित्रित करती है।

"सूरज में गोखड़ों पर दस्तक दे दी, तब तक कश्यप के घर की आज कूंडी नहीं खुली। कल तक जहाँ मेहमानों पाहुनों की भीड़ का जमघट था, वहाँ सुबह–सुबह मौन का गहरा सन्नाटा छाया हुआ।"[39]

भारतीय संस्कृति में व्रत उपवास का भी बहुत महत्व है डॉ. विजय के समस्त सृजन में संस्कृति की धारा प्रवाहित है। जिसमें भारतीय संस्कृति में आत्म सात किए हुए व्रत उपवास पूजन आदि को चित्रित किया गया है जो, तत्कालीन परिवेश, आस्था व विश्वास को व्यक्त करता है। 'गृहलक्ष्मी' कहानी में केले की पूजा के पश्चात दान पुण्य की प्रथा को व्यक्त किया है इसमें भारतीय संस्कृति विश्वास–मान्यताओं पर प्रकाश डाला है। इसमें हमारी संस्कृति में दान पुण्य के महत्व को अर्थपूर्ण रूप से प्रकाशित किया है इसमें आस्था विश्वास पर गहराई से विचार किया गया है। पति–पत्नी का पूजा के बाद किया दान पुण्य की गहराई को दर्शाता है। पण्डिताईन की मान्यता है कि हम जितना दान पुण्य करेगे उतना ही हमें स्वर्ग में मोक्ष के द्वार खुलेगे पर पण्डित जी कंजूस प्रवृत्ति होने की वजह से दान करने में थोड़ा हाथ खिंचते हैं। इस प्रकार भारतीय पति–पत्नी की मानसिकता को दर्शाया है। कहानी में पूजा का दृश्य चित्रित है। "दीप जला अगरबत्ती ने धुँआ छोड़ा। जल से केले का स्नान हुआ। पीला वस्त्र चढ़ा। हल्दी का तिलक लगा, पीले फूल चढ़े, पीले गुड़ का भोग लगा तब पीला आम जिसे पण्डितजी पहले ही ले आए थे चढ़ाया गया। बाद में पैसे चढ़ाए गए। आरती हुई, पूजा पूरी।"[40]

भारतीय परिवेश में ग्रामीण व्यवहार सोच सब ही धर्म व रीति–रिवाजों से बँधा होता है। डॉ. विजय ने उक्त कथन को इस बात की पुष्टि करता है। इसी क्रम में आगे लिखा– "पंचों में इस विषय को लेकर दो घण्टे हो गए कि माँ की पूँजी का भी बँटवारा कर दिया जाए, परन्तु घनश्याम के विरोध के कारण बँटवारा रुक गया। विधोत्तमा तो बँटवारे को तैयार थी, स्वयं उसके पास रखा भी क्या था। ले देकर एक बक्सा था। परन्तु कश्यप और विश्वास दोनों तैयार नहीं थे। कुछ पंच भी तैयार नहीं थे। उनका कहना था, विद्योत्तमा के पास कुछ भी नहीं रहा और दोनों लड़के भी बदल गए तो उस बेचारी का कौन धनी धोरी होगी। अभी उसके पास जो कुछ है वह उसके पास ही रहना चाहिए। इससे दोनों बेटे इसकी सेवा तन मन से करेंगे।"[41]

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि डॉ. विजय ने ग्रामीण जनजीवन व परिवेश का अपने शब्दों में बड़ा ही जीवंत चित्रित किया है। ग्रामीण पंचों को ही परमेश्वर की तुलना देना। परिवार में व्यवहार, विश्वास तथा निष्पक्ष रूप से निर्णय करना इस बात का द्योतक है कि ग्रामीण जीवन किस प्रकार परिवार की हर समस्या को पंचों पर ही आधारित माना है।

"वास्तव में गाँव की सामान्य जीवी एक विधवा। किसी परिवार से सेवा भी कितनी माँगती है। दो समय रुखी–सूखी रोटी। वर्ष में दो थोड़े मोटे झोटे कपड़े। न कभी आना, न कहीं जाना। फिर विद्योत्तमा की आँखें चली गई थी। जर्जर देहयष्टि हो गई थी। तीर्थ यात्रा करती तो उसकी भी संभावना शेष नहीं रही।"[42]

डॉ. विजय ने अपनी कहानी में उपन्यास नाटक, निबंध आदि सभी में हमारे परिवेश को संस्कृति के साथ चित्रित किया है। हमारे जीवन में यह आवश्यक है कि हम जिस परिवेश में रहे वहाँ का प्रभाव हम पर पड़ता ही है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके आस–पास का प्रभाव उस पर पड़ता ही है। इसी परिवेश में वह जन्म से बड़ा होता है तब तक हर परिवर्तन के साथ आगे बढ़ता रहता है। हमारा जीवन हमारे सोच विचार आदि इस परिवेश के ही परिचायक है। डॉ. विजय ने अपनी कहानी में शहरी परिवेश को भी बड़ी ही रोचकता से चित्रित किया है।

डॉ. विजय ने अपने लेखन में मनुष्य के जीवन में उसके परिवेश का प्रभाव बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है उसका प्रभाव उसके जीवन में पढ़ता ही है। जीवन में हर छोटी–बड़ी बात में हमारा परिवेश छलकता है। क्योंकि हमारा व्यक्तित्व ही हमारे परिवेश को दर्शाता है। यही प्रभाव शहरी जीवन आधुनिकीकरण को दर्शाता है। बढ़ते औद्योगिक वातावरण पाश्चात्य जीवनशैली आदि काफी सारी बातें हैं जो हमें आकर्षित करती है। इसका प्रभाव डॉ. विजय ने अपने लेखन में दिया है। हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति पूरे विश्व में अपनी अलग पहचान रखती है। वेशभूषा, खान–पान, रीति–रिवाज, परम्परा सभ्यता व

संस्कृति आदि सभी इस बात का द्योतक है। हमारा जीवन सदैव सभ्यता व संस्कृति को पाश्चात्यीकरण में परिवर्तित होती जा रही है।

"प्रतिभा ने बम्बई आर्य समाज में विश्वास आहुजा से विवाह कर लिया था। बम्बई में प्रतिमा की बड़ी बहन सुषमा रहती है। सच पूछिए तो सुषमा ने ही यह विवाह कराया था। सुषमा को प्रतिभा और विश्वास के बीच बढ़ रहे प्रेम संबंधों का पूर्व ज्ञान था।"[43] नारी में नारी की भावनाओं को समझने की बड़ी क्षमता होती है। सुषमा में प्रेम विवाहों को स्वीकारने की मनः स्थिति कब पुष्ट हुई यह तो ज्ञात नहीं हो सकता है फिल्मों का उस पर प्रभाव हो रहा था जिन्हें वह प्रतिदिन देख रही थी। बम्बई में तो प्रत्यक्ष ऐसे उदाहरण देखने सुनने को मिलते ही थे। शायद इन सभी कारणों से बंबई वासिनी सुषमा के लिए ऐसी बातें बहुत विचारणीय नहीं थी।[44] उक्त कथन से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का प्रभाव विशेषकर कहानियों में डॉ. विजय ने शहरी परिवेश में व्याप्त समस्याएँ, जैसे अन्तर्जातीय विवाह, त्रिकोण प्रेम, जातिवाद, कुरीतियाँ को दर्शाया है।

आज 'अर्थ' प्रदान युग है। मनुष्य के समस्त क्रिया कलाप अर्थ द्वारा संचालित है। परिणाम स्वरूप प्रतिस्पर्धा, भागदौड़, असंतोष, आशंका, एकाकीपन मनुष्य के जीवन में प्रविष्ट हुए है। आज विज्ञान और तकनीकी के युग में सुख–सुविधाएँ बढ़ी है मनुष्य प्रसन्न हुआ है उसकी जीवनशैली बदली है। परन्तु इससे उसकी शांति छिन गई है। यह सच है कि मनुष्य जिस परिवेश में रहता है उससे अलग होकर जीने की कल्पना वह नहीं कर सकता। गाँवों में शहरी सभ्यता ने अपने पैर पसारने शुरु कर दिये है। गाँव सिमट रहे हैं। जीवन मूल्य प्रभावित हुए। आस्थाएँ बदली है। भौतिक परिवेश के चित्रण में नगरों के परिवेश को लिया जा सकता है। जिसके अन्तर्गत शहरी वातावरण, खान–पान, रहन–सहन, जीवनशैली विचार आदि को लिया जा सकता है।

परिवेश साहित्यकार की सृजन प्रक्रिया को किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है। डॉ. विजय ने ममत्व, संकल्प, स्वाभिमान, विवाहिता, बड़ी मछली आदि कहानियों में शहरी परिवेश को चित्रित किया है। जिसमें बाह्य दिखावा चमक–दमकपूर्ण जीवन शैली रिश्तों की टूटन एकाकीपन शहरी वातावरण को दर्शाया है।

निष्कर्ष रूप में दर्शाया जा सकता है कि डॉ. विजय ने अपने गद्य साहित्य में शहरी परिवेश वहाँ की जीवन शैली आचारण को व्यक्त करते हुए परिवेश और उसके प्रभाव के यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. इतिहास और परम्पराएँ–डॉ. पुष्पा शर्मा, पृ.सं.–56
2. डॉ. दयाकृष्ण विजय–कृतित्व एवं व्यक्तित्व–शांति उपाध्याय, पृ.सं.–152,153
3. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', उलझन कहानी, पृ.सं.–52
4. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, कहानी संग्रह, पृ.सं.–52
5. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', एक और क्रांति, पृ.सं.–56
6. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', एक और क्रांति, पृ.सं.–56
7. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', उपन्यास–रमताराम, पृ.सं.–58
8. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', उपन्यास–रमताराम, पृ.सं.–58
9. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', छत्रपति शिवाजी, नाटक, पृ.स–62.
10. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', सिंहासन, नाटक, पृ.सं.–66
11. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं.–101
12. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं.–128
13. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं.–128
14. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं.–130
15. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं.–160
16. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', कृतित्व एवं व्यक्तित्व, पृ.सं.–121
17. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', भारतीय साहित्य व सामाजिक सरोकार निबंध, पृ.सं.–56
18. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', भारतीय साहित्य व सामाजिक सरोकार निबंध, पृ.सं.–96
19. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–97
20. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', रमताराम, पृ.सं.–59
21. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', रमताराम, पृ.सं.–59
22. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', राजस्थानी काव्य साधना तब और अब, निबंध, पृ.सं.–46
23. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', राजस्थानी काव्य साधना तब और अब, निबंध, पृ.सं.–46
24. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–53
25. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, (मोह भंग) कहानी, पृ.सं.–53
26. डॉ. दया कृष्ण 'विजय', वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका, निबंध, पृ.सं.–57
27. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', राजस्थानी काव्य साधना तब और अब, निबंध, पृ.सं.–58
28. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', राजस्थानी काव्य साधना तब और अब, निबंध, पृ.सं.–58

29. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, (ममत्व) कहानी, पृ.सं.–21
30. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका, निबंध, पृ.सं.–22
31. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका, निबंध, पृ.सं.–22
32. मानक हिन्दी शब्द कोष, सं. नित्यानन्द तिवारी, पृ.सं.–566
33. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोष, पृ.सं.–590
34. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–56
35. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–58
36. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–95
37. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–96
38. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–100
39. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–109
40. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–104
41. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–111
42. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–53
43. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–53
44. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', बड़ी मछली, पृ.सं.–43

षष्ठ अध्याय

शिल्प विधान

षष्ठ अध्याय

शिल्प विधान

प्रत्येक साहित्यकार की लेखक के रूप में अपनी अलग अभिव्यक्ति होती हैं और लेखन कौशल की अभिव्यक्ति ही शिल्प विधान हैं। शब्दों को कागज में उकेर कर अपनी विशिष्ट शैली परिचय देते हैं।

शब्दों को अर्थपूर्ण ढंग से लिखना शिल्प कहलाता हैं। इसमें साहित्यकार गद्य लेखन में रौचकपूर्ण व आकर्षक रूप देने हेतु बिम्ब, सांकेतिकता, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, अभिधा, व्यंजना, लक्षणा आदि की सहायता से लेखन शैली को आकर्षक बनाकर प्रस्तुत करते हैं। शब्दों के भण्डार तत्सम्, तद्भव व देशज शब्दों से वाक्यों की रचना की जाती है।

साहित्यकार अत्यन्त संवेदनशील होते हैं वह अपनी अनुभूत संवेदनाओं को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं वह समाज में घटने वाली घटनाओं तथा मनुष्य जीवन के विविध पक्षों से विषय वस्तु ग्रहण कर उसे शिल्प द्वारा क्रमबद्ध व्यवस्थित तथा गति प्रदान करता है। कथा साहित्य अत्यन्त लोकप्रिय विधा रही है। कहानी व उपन्यास नाटक एवं निबन्ध आदि सभी में पात्रों, संवादों के माध्यम से कथा प्रवाह से बढ़ती है। इस प्रक्रिया में अनेक रचना तत्वों का समावेश होता है। इन सबके आधार व सहयोग से विषय वस्तु के सामने प्रस्तुत होती है। सृजनधर्म की यह प्रक्रिया शिल्प पक्ष कहलाता है।

6.1 शिल्प–एक दृष्टि

शिल्प मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। रचनाकार अनुभूतियों को सशक्त, सफल एवं समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उसे शिल्प द्वारा विशिष्ट प्रतिभाशाली बनाने का प्रयत्न करता है। विचारों, तथ्यों, भावों घटनाओं तथा प्रसंगों को आकारगत स्वरूप शिल्प के द्वारा ही प्राप्त होता है। रचना को रोचक और व्यवस्थित बनाने में शिल्प की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शिल्प के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। 'शिल्प' का कोशीय अर्थ व परिभाषाओं को प्रथम अध्याय के अन्तर्गत विचार प्रस्तुत किये हैं। यहाँ विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषा व विचार के द्वारा 'शिल्प' सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट किया गया है– "किसी भी रचना में प्राणतत्व विषय है तो शिल्प उसका शरीर अर्थात आकार। इस प्रकार शिल्प लेखक की मूल प्रेरणा, दृष्टिकोण, आशय, उद्देश्य अभिप्रेत आदर्श, विषय आदि की अभिव्यक्ति का साधन है।"[1]

प्रत्येक लेखक की कलम इस रचना संसार में कुछ नया और ज्ञानवर्धक लिखता है। इससे जीवन में पाठक व लेखक का एक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक रिश्ता बन जाता है।

डॉ. विजय का शिल्प भी बड़ा ही सामाजिक, राजनैतिक व मनोवैज्ञानिक रहा है। इनके विचारों तथ्यों, भावों, घटनाओं तथा प्रसंगों में आकारगत स्वरूप शिल्प मिलता है।

शिल्प का अर्थ – शिल्प रचना अभिव्यक्ति कौशल मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। इस विषय को अन्य द्विानों ने इस प्रकार परिभाषित भी किया है।

1. **डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी –** "किसी भी रचना में प्राणतत्व विषय है तो शिल्प उसका शरीर अर्थात् आकार। इस प्रकार शिल्प लेखक की मूल प्रेरणा दृष्टिकोण आशय उद्देश्य अभिप्रेम आदर्श विषय आदि की अभिव्यक्ति का साधन हैं।"[2]
2. **डॉ. प्रदीप शर्मा के अनुसार –** "शिल्प कथाकार के अनुभावों को प्रक्षेपित करने का उपयुक्ततम आधार हैं। शिल्प ही केवल सान है जिसके द्वारा वह अपने विषय एवं अभिप्रेत को प्रस्तुत करने का माध्यम बनाता है। उसी के द्वारा व उसका अनुसंधान, गवेषणा तथा विकास करता है अपने अभिप्रेत को उचित रूप से सम्प्रेषित करता है और अंत में इनका मूल्यांकन करता है।"[3]
3. **हरिशंकर परसाई के अनुसार –** "जहाँ तक कथा उपन्यास या गद्य शिल्प और तन्त्र का प्रश्न है। यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि हम आगे बढ़े हैं। नये जीवन की विविधताओं को, मार्मिक प्रसंगों को सूक्ष्मतर समस्याओं को चित्रित करने के लिए कहानी के शिल्प ने विविध रूप अपनाये हैं छन्द शास्त्र की तरह उसके भी पेटर्न तय थे। पर जैसे नवीन अभिव्यक्ति की माँग करते हुए जीवन प्रसंगों, नये यथार्थ ने इस कहानी को इस चौखट से निकाला आज जीवन का कोई भी खण्ड मार्मिक क्षण अपने में कोई भी घटना या प्रसंग कहानी के तन्त्र में बँध सकता हैं, जीवन के अंश को अंकित करने वाली हर गद्य रचना जिसमें कथा का तत्व हो आज कहानी कहलाती है।"[4]

परिवर्तित समय में जहाँ समाज में अनेक बदलाव आये हैं। मूल्य परिवर्तित हो हे रहे हैं। रिश्तों में रिक्तता बढ़ी है अर्थ प्रधान युग में मनुष्य का एकाकीपन बढ़ा है, मनुष्य के पास समयाभाव है। मनुष्य आत्मकेन्द्रित होत हुआ अनेक विसंगतियों व विडम्बनाओं के साथ जीवन संघर्ष करता हुआ जी रहा है। ऐसे समय कथाकारों ने उसके मन की जटिलताओं, विसंगतियों को कथ्य का आधार बनाया है वहीं दूसरी और मानव मन की सूक्ष्मताओं व उलझनों की अभिव्यक्ति के लिए कहानी व उपन्यास के शिल्प में नवीन प्रयोग किये गये हैं, यही नवीन प्रयोग आज के

कथा साहित्य के शिल्पगत वैशिष्ट्य है। परम्परागत शिल्प संरचना का प्रयोग अब टूट चुका है। शिल्प में नवीन परिवर्तन व प्रयोग किये जा रहे हैं। डॉ. विजय की प्रथम कहानी संग्रह उलझन में मानवीय जीवन के भावों को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस समय नई कहानी परिपक्व रूप में आ चुकी थी। शिल्प का परिवर्तन व प्रयोग व विशेषताएँ डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य में स्पष्ट है। कथा संग्रह, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि सभी में शिल्प के संदर्भ में विशिष्ट प्रयोग हुए हैं।

डॉ. विजय ने अपने शिल्प कौशल द्वारा अपने साहित्य को विशिष्ट आयाम दिया है। भाषा व शैली की दृष्टि से डॉ. विजय का समस्त गद्य विशिष्टताओं को लिए हुए हैं। इसके द्वारा उन्होंने अपनी अनुभूत संवेदनाओं को लोकोक्तियाँ, मुहावरें, बिम्ब, प्रयोग, सांकेतिकता आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भाषा प्रयोग के अन्तर्गत उनके साहित्य में विविध भंगिमाएँ तथा शिल्प, कौशल मिलता है जो डॉ. विजय के गद्य साहित्य के शिल्पपक्ष को समृद्ध व सम्प्रेषणीय बनाता है।

6.2 भाषा प्रयोग

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। भाषा के अभाव में मनुष्य ने प्राचीन समय में अपने भावों को संकेत व प्रतीकों के माध्यम से व्यथित किया है। आज यही संकेत व प्रतीक कथा साहित्य के वैशिष्ट्य के रूप में व्यक्त हो रहे हैं। पहले ये संकेत बाहरी व्यवहार के लिये उपयोग में लाये जाते थे। परन्तु आज भाषा अत्यन्त समृद्ध व सशक्त है; अतः संकेत, प्रतीक, बिम्ब, चित्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता मानव मन के अन्तर्द्वन्द्व, जटिलताओं, सूक्ष्मताओं व अन्तर्मन की परतों को खोलने के साधन के रूप में भाषा में प्रयुक्त है। भाषा जीवन और साहित्य के बीच की अभिन्न कड़ी है। शिल्प के विभिन्न तत्वों में भाषा का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे भाषा के द्वारा ही रूप ग्रहण करते हैं मूल संवेदना का वहन भाषा द्वारा ही होता है।

भाषा जितनी सशक्त, सम्प्रेषणीय तथा अर्थ गांभीर्य से युक्त होगी। रचना उतनी ही सार्थक बन जाती है। भाषा अपने भीतर सांस्कृतिक विरासत सहेज कर रखती है, यह विरासत गद्य साहित्य में नाटकों, उपन्यास, निबंधों कथा संग्रह में संवादों में प्रयुक्त होते हैं। आज भाषा पैनी व धारदार हुई है। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने भाषा के मानक स्वरूप के साथ हाड़ौती अंचल की शब्दावली का प्रयोग विशेष रूप भारतीय संस्कृति में भारतीय पृष्ठभूमि की रीति–रिवाज, परम्परा, सभ्यता व संस्कृति को उजागर किया है। उलझन, बड़ी मछली, स्वप्न और सत्य कथाओं में ग्रामीण व शहरी परिवेश का रोचक भाव लिखा है। नाटक, उपन्यास, निबन्ध में स्थान–स्थान पर पात्रों के मुख से भावानुकूल संवाद कहलवाये हैं इनकी भाषा भावात्मक संवेग लिये हुए है।

देशी–विदेशी भाषा, मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग बहुतायत रूप में मिलता है। सम्प्रेषणीयता के रूप में बिम्ब, प्रतीक, मुहावरे व कहावतें लोक व्यवहार के अंग के रूप में व्यक्त हुए हैं।

6.2.1 बिम्ब

भाषा जीवन का और साहित्य का प्रमुख माध्यम है। इसी के द्वारा हम अपने भावों को साहित्य के माध्यम से प्रकट करते हैं। डॉ. विजय ने लेखन कौशल में बिम्ब की अभिव्यक्ति दी है। इनका इसी प्रकार गद्य का लेखन सहज और सुबोध है।

बिम्ब का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिम्ब जटिल से जटिल, सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति को जीवन्त व गतिशील रूप में प्रस्तुत करने की सामर्थ्य रखता है। डॉ. दयाकृष्ण विजय ने अपने गद्य साहित्य में बिम्ब के विविध रूपों का प्रयोग किया है जिसके द्वारा पात्रों की मनः स्थिति व हाड़ौती अंचल के विविध चित्र प्रस्तुत हुए है पाउण्ड ने बिम्ब को परिभाषित करते हुए कहा है– "बिम्ब, बुद्धि और भावना विषयक पूरी जटिलता को क्षण मात्र में प्रस्तुत कर देता है।"[5]

बिम्ब की विशिष्टता को इस प्रकार समझा जा सकता है–

"बिम्ब भाषिक विधान की ऐसी युक्ति है जो हमारे समक्ष किसी भाव या दृश्य का ऐन्द्रिक (गोचर) प्रत्यक्षीकर कराती है। अधिकांश लोगों ने बिम्ब की दृश्यमयता (चाक्षुषता) पर विशेष बल दिया है। किन्तु बिम्ब विविध रूपी–रूप, रस, गंध, स्वाद स्पर्श होते हैं यहाँ तक की बिम्ब मानसिक भी होते हैं। अर्थात् दृश्य या चाक्षुष बिम्ब, बिम्ब का एक प्रकार मात्र है। हाँ वह बिम्ब का बहुप्रयुक्ता रूप अवश्य है। शायद इसी कारण बिम्ब की चित्रमयता पर बहुत बल दिया जाता है। बिम्ब में चित्र का भाव आता जरुर है, पर वह अपने विधान में एक संश्लिष्ट रूप होता है, जिसके संरचक तत्त्वो के बीच एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया गतिशील रहती है। जिसमें उसमें सतत् जीवन्तता विद्यमान रहती है।"[6]

डॉ. दयाकृष्ण के लेखन का शिल्प दृष्टव्य है– "दूरियों के कुकुरमुत्ते विवाद की रेवड़ियों पर बढ़ते रहे।"[7]

इसी शिल्प का कौशल बड़ी मछली कहानी में बिम्ब विधान "जब वह कपड़े रख रही थी, तब उसके बदन में इतनी स्फूर्ति थी मानो किसी स्वचलित मशीन का यन्त्र कार्यरत हो। खूँख्वार सिंहनी सी उसकी लाल लाल आँखे बाहर निकल आई।"[8]

यह मन स्थिति मनोहरा की संपत्ति के प्रति गुस्से के भाव को प्रकट करता है। स्त्री के प्रेम समर्पण में जब आर्थिक पक्ष की अनुभूति आने लगी तो उसके मन की पीड़ा को उजागर करता भाव है। इसी कथा में डॉ. विजय ने लिखते हुए मनोहरा के भाव बिम्ब द्वारा प्रकट किये।

– "स्त्री स्वर्णाभूषणों को नहीं तिजोरियों में थप्पी लगी नोटों की गड्डियों को नहीं।"[9]

– "मनोहरा घायल हरिणी सी अस्त व्यस्त, ललाट पर सलवटों का अंबार शर्बती आँखों से शराबी क्रोध की लाल झाँई, गौरवर्ण गेहूँए कपोलों पर उभर आई। गुलाबी रक्तिमा लिए झटपट सीढ़ी से नीचे उतर आई।"[10]

– "सब जानती हूँ। मुझसे क्या छिपा है। तुम्हारी उस जिंदादिली ने ही तो हमें घर बनाकर रहने को विवश किया था।"[11]

– "बाहर थ्री व्हीलर का शोर हवाओं में गूँज रहा था। भीतर स्तब्धता का जंगल शोर सन्नाटा पी रहा था।"[12]

– "अनिल ने क्रोध में अपने होंठ काट लिए। आँखे लाल हो गई। कपोलों पर लाली उभर आई। उससे देखा नहीं गया, वह उलटे पाँव लौट पड़ा। उस समय उसके पाँव धरती से कम, हवा से अधिक बातें कर रहे थे।

सूरत ने गोखडों पर दस्तक दे दी, तब तक कश्यप के घर की आज कुण्डी नहीं खुली। कतार तक जहाँ मेहमानों पाहुनों की भीड़ का जमघट था। वहाँ सुबह–सुबह मौन का एक गहरा सन्नाटा छाया हुआ।"[14]

उपन्यासों में प्रयुक्त बिम्ब – डॉ. दयाकृष्ण विजय ने रमताराम व पायसपायी उपन्यास में संतों के जीवन का सुन्दर बिम्बात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है "भीलवाड़ा को कर्मक्षेत्र के रूप में चुनते हुए यहाँ भूतों की बावड़ी के उनके प्रवास से रामद्वारा की स्थापना तक की कथा एवं तदन्तर फूलडोल मेले के रूप में रामस्नेह सम्प्रदाय की संत परम्परा एवं पंथविस्तार की कथा है। कथा के बाद रमते रमाते शाहपुरा पहुँचकर छतरियों में उनके निवास, उनकी साधना तथा स्वामी जी के चमत्कारों एवं लोक कल्याणार्थ किये गये पंथ विस्तारी कार्यों का बहुत ही प्रमाणिक एवं तथ्यात्मक विवरण प्रवाहपूर्ण सरस भाषा में व्यक्त किया गया है।"[14]

"रमताराम में स्वामी रामचरण जी का समन्वय का स्वर उस बिन्दु से प्रथम बार सुनाई पड़ता है, जब गलता जाते समय ग्राम चंवरा में गलता यात्री संत मण्डलियों के संतों के भोजन

को लेकर बखेड़ा किये जाने पर संतों की स्वार्थ भावना देख स्वामी रामचरण का समन्वयवादी मन बहुत दुःखी हुआ।"[15]

"स्वामी रामचरण जी के प्रवचनों में सर्वत्र समन्वयी सहिष्णु दृष्टि रहती थी। नाम लेकर कहीं बहु देववाद का विरोध नहीं किया अपना पक्ष वे सकारात्मक दृष्टि से ही रखते रहे।"[16]

आध्यात्म के एक मंच पर हम आ सकते हैं पर कट्टरवादी पंडे, मौलवी पादरी, अपनी प्रतिष्ठा सुविधा एवं पूँजी छिनने के भय से एक मार्ग पर समाज को आगे आने ही नहीं देते। कोई यह नहीं कहता कि मोक्ष नहीं चाहिए पर मोक्ष के पथ का विरोध करने में अविवेकपूर्ण तरीके से सब आगे हैं। कोई कहता है भौतिकता अच्छी है हमें ईश्वर नहीं चाहिए न मोक्ष चाहिए सबको भौतिकता व आध्यात्मिक का सम्वय ही अच्छा लगता है।

6.2.2 सांकेतिकता

एक ऐसी भाषा है जो अर्थ सूचित करने के लिए श्रवणी ध्वनि पैटर्न में संप्रेषित करने के बजाय दृश्य रूप में संचारित करती हैं। इसे अलग–अलग विचारक ने परिभाषित किया है।

सुकरात के अनुसार – "अगर हमारे पास आवाज या जुबान नहीं होती और हम एक दूसरे से विचार व्यक्त करना चाहते तो क्या हम अपने हाथों, सिर और शरीर के बाकी अंगों के संचालन द्वारा संकेत करने की कोशिश नहीं करते जैसा कि इस समय मूक लोग करते हैं।"[17]

आम तौर पर प्रत्येक बोली जाने वाली भाषा की एक पूरक संकेत भाषा होती हैं जैसे कि प्रत्येक भाषाई जनसंख्या में बहरे सदस्य शामिल होते हैं, जो संकेत भाषा जनित करते हैं और विभिन्न और पृथक मौखिक भाषाएँ बनती हैं वही बल संकेत भाषाओं का स्थलीय मौखिक भाषा से कोई संबंध नहीं होता है। जहाँ वे उत्पन्न हुए हो एक राष्ट्रीय सांकेतिक भाषा के अंतर्गत परिवर्तनों को सामान्य भौगोलिक अवस्थिति से सह संबद्ध किया जा सकता है।

विटमैन के अनुसार – "वर्गिकी मानक किसी वैज्ञानिक कठोरता के साथ वास्तव में प्रायोज्य नहीं है वैकल्पिक संकेत भाषाएँ उस हद तक कि वे पूर्णतः प्राकृतिक भाषाएँ हैं।"[18]

डॉ. दयाकृष्ण विजय का गहन अध्ययन अपार मेघा तथा प्रतिमा एवं स्पष्ट व पैनी दृष्टि विषय की अधिकृत समझ तथा जानकारी, मौलिक विचार जो गहन चिन्तन से सिद्ध है तथा अद्भुत भाषा जैसे हर शब्द फूल की ताजी पंखुड़ी हो गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।

डॉ. विजय एक चिन्तनशील विश्लेषण तथा द्रष्टा है। सांकेतिकता लेखन के प्रत्येक क्षेत्र में उभरकर पढ़ने को मिलता है। भाषा की व्यंजना शक्ति सांकेतिकता के प्रयोग से बढ़ती है संकेत

के द्वारा आज रचनाकार अनेक प्रकार से विविध समस्याओं व समाज में होते परिवर्तन की और संकेत करता है। संकेत में अपनी शक्ति सामर्थ्य है। पहले संकेत बाह्य व्यवहार को उजागर या व्यक्त करते थे। आज संकेत भाषा की विशेषता के रूप में प्रयुक्त होकर मानव मन की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति, समाज में घटित विशेष घटनाक्रम सामाजिक परिवर्तन, विश्व परिदृश्य पर दृष्टि गोचर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं वर्ग वैषम्य मानव संघर्ष आदि को व्यक्त कर रहे हैं। आज कहानियों व उपन्यासों में सांकेतिकता का प्रयोग अधिक हो रहा है। डॉ. विजय ने अपने गद्य साहित्य में स्थान–स्थान पर संकेत द्वारा विविध समस्याओं को उजागर किया है। कथाओं में सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक समस्याओं को उजागर किया है। डॉ. नामवर सिंह सांकेतिकता के संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं– "नई कहानी का समूचा रूप गठन (स्ट्रकचर) और शब्द गठन (टेक्सचर) ही सांकेतिक है।"[19]

"सांकेतिकता को स्पष्ट करने के लिए डॉ. दयाकृष्ण विजय ने गद्य साहित्य में जैसे बड़ी मछली, उलझन, स्वप्न और सत्य, एक और क्रांति आदि में समाज के सभी वर्ग को बड़ी ही मार्मिकता से लिखा है।"[20]

– "वंदना ने मन ही मन कहा, 'मन तो वहाँ भटकता है, यहाँ कैसे मन लगेगा। मैं तो अच्छी लगी ही नहीं। उस डायन ने न जाने क्या कर रखा है। बीमारी में भी चैन नहीं।"[21]

"अभी तो आपके आए महीना भर भी पूरा नहीं हुआ है। आपका ऑपरेशन भी अभी हरा ही है। चले जाना, ऐसी भी क्या जल्दी है। माताजी यहाँ है ही, नकुल ने कहा।"[22]

"वंदना जो किवाड़ की आड़ में खड़ी वार्तालाप सुन रही थी, ओर से निकलकर आ खड़ी हुई। बोली अब रोजाना ही चाहते हैं तो चले जाने दे। ये रुकेंगे थोड़े ही। यह कहकर वंदना ने मन का क्रोध शब्दों में उगल दिया। दशरथराय तो शब्दार्थ समझ गए। नकुल गूढार्थ जानना भी नहीं चाहता था।"[23]

इसी सांकेतिकता का प्रवाह डॉ. दयाकृष्ण विजय की कहानियों में रौचकपूर्ण है।

– "भरी जवानी में सौत बनकर कामना आ गई थी। कामना न तो रूप में उतनी अच्छी थी जितनी वंदना और न आयु में वंदना की तुलना में अधिक युवा। लेकिन एक परम्परागत तरीके से सात फेरों के साथ आई थी तो दूसरी पारस्परिक आकर्षण से।"[24]

"बड़ी मछली से तुम्हारा तात्पर्य? मैं समझ नहीं सका। पैंट की जेब से रुमाल निकालकर पसीना पोंछते हुए संपत्ति ने पूछा।"[25]

"तुम्हारी कहीं और व्यस्तता। मेरे लिए अब तुम्हारे पास समय कहाँ? मनोहरा ने अपनों को छुड़ाकर आगे बढ़ते हुए कहा।"[26]

"नोटों की गड्डियाँ दिखाकर अब मुझे अधिक मूर्ख नहीं बना सकते। मैं जाती हूँ।"[27]

"वकील साहब का जितना बड़ा नाम है, ख्याति में भीवह इतने ही बडे हैं। क्या हुआ नाटे हैं, भारी है, किन्तु स्वभाव मक्खन सा मृदु। वाणी वंशी सी मोहक और ज्ञान साक्षात् गणेश सा।"[28]

"पूरे पौन घंटे बाद वकील साहब बाहर आए, 'महाभारत' पूरा देखकर। कुर्ता, पजामा, पैरों में स्लीपर। आँखों पर चश्मा पहने। मुरारीलाल के चेहरे पर कोई सल नहीं था। न कोई व्यथा। वृद्ध सा आधा अधूरा। यही कोई 65–70 वर्ष के बीच। किन्तु शरीर से अधिक जर्जर नहीं, कुछ स्वस्थ ही। आयु में वकील साहब से कम से कम 15 वर्ष अधिक। इसलिए वकील साहब ने ससम्मान कहा, कहिए क्या बात है?"[29]

"वकील साहब, कैसे भी हो, बच्चा मैं नहीं दूँगा। मैं इसलिए आपको वकील करने आया हूँ। मैंने आपका बड़ा नाम सुना है।"[30]

डॉ. विजय की कहानी में सांकेतिकता स्पष्ट होती है।

"मुरारी लाल जी, आपको मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आप पहले मंदिर पर दर्शनों के लिए जाना तो शुरु करो। पुराने बुजुर्गों ने मंदिर वैसे ही नहीं बनवाए हैं। वे बड़े समझदार थे।"[31]

"अचलेश्वर के चले जाने के बाद बड़ी देर तक वकील साहब वैसे ही खड़े रहे। सोचते रहे, कानून से बड़ी कोई चीज है तो व्यावहारिकता। व्यवहारिक ज्ञान।"[32]

"नारी में नारी की भावनाओं को समझने की बड़ी क्षमता होती है। सुषमा ने प्रेम विवाह को स्वीकारने की मनः स्थिति कब पुष्ट हुई यह तो ज्ञात नहीं हो सकता है फिल्मों का उस पर प्रभाव हो, जिन्हें वह प्रतिदिन देख रही थी। बंबई में तो प्रत्यक्ष ऐसे उदाहरण देखने सुनने को मिलते ही थे। शायद इन सभी कारणों से बंबईवासिनी सुषमा के लिए ऐसी बातें बहुत विचारणीय नहीं थी।"[33]

"जब पहली बार वह मिलने पहुँची थी तब विमल बाबू ने उसे कितना सम्मान दिया था। उसी दिन नौकरी दे दी थी। काम पर लगा लिया था शाम को 5 बजे जब लौटने को थी तब स्वयं आकर पूछा था, काम समझ लिया न, कर लोगी न? और तब उसने नीची गरदन किए

हलकी मुस्कुराहट के साथ ग्रीवा हिलाकर कह दिया था। कर लूँगी, ठीक है। बिना शब्द के भी अनुभावी चेष्टाओं ने तब बहुत कुछ कह डाला था।"[34]

"विमल बाबू ने यदि प्रेम की बाँह बढ़ा दी और उसे कान्ता ने अपनी बाँहों में भर लिया तो क्या अनहोना था? अर्थ की विवशता, अहसानों का बोझ तथा यौवन की शारीरिक भूख तीनों मिलकर उसे विमल के निकट आने के लिए विवश भी कर दिया हो तो क्या आश्चर्य?"[35]

डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिवेश स्थिति, जातिवाद, त्रिकोण प्रेम, एकाकी प्रेम, अवसाद भाव आदि सभी को पात्रों की मन, स्थिति के अनुसार चित्रित किया है।

"अध्यापक को रूपा से सीधे यह कहते तो नहीं बन पड़ा कि 'रूपा, तू पाठशाला मत आया कर', लेकिन उन्होंने उसे पीछे एक ओर अलग बैठाना प्रारम्भ कर दिया। अब छात्र भी उससे घुलने मिलने में आपत्ति करने लगे।"[36]

"मुझे अकेले आपके साथ चलते................लोग न जाने क्या समझेंगे।"

"आप पुरुष होकर डर रहे हैं। शायद अपने विनाबा जी का निष्काम कर्म नहीं पढ़ा।"

"सूर्या ने जैसे ही निष्काम कर्मयोग की बात कही परसों ही बाबा का दिया प्रवचन उसकी आँखों के सामने तैर गया। वह अवाक हो गया। जिस मन्त्र को समझने के लिए वह बाबों के पास गया, सूर्या उसे पुस्तक में पढ़कर समझ गई।"[37]

"आठ प्रकार के जो विवाह भारतीय समाज जीवन ने स्वीकार किए हैं, उनमें विवाह का यह गंधर्व प्रकार कभी प्रशंसनीय नहीं हुआ। श्री धूपड़े ने जिस पद्धति से विवाह किया, वास्तव में वही विधि आज की भारतीय विधि है।"[38]

"भारतीय जीवन का यह विश्वास है कि गाय की पूँछ पकड़ कर पार होती आत्मा स्वर्ग में पदार्पण करती है, वहाँ सच में चरितार्थ हो गई। वहाँ खड़े लोग कहने लगे, यह गाय ईश्वर ने भेजी थी। कोई देवी शक्ति है, वरना पशु भी इतने तेज पानी में उतरते घबराते हैं।"[39]

"विभाजित जमीन पर पहली बार अलग–अलग स्वामी खड़े दिखे। मकान के बीच में दीवार उठ गई। आगे का हिस्सा कश्यप का था। तो भी वसुंधरा यही कहती 'हमें मकान का हिस्सा थोड़ा मिला है।'"[40]

"एक दिन सास–बहु बैठी नवजात पुत्र मुकुल को खिला रही थीं, तभी वसुंधरा ने कहा– मांजी आपने बक्सा वहाँ क्यों रख रखा है? कहीं पीछे से किसी ने कोई चीज निकाल ली तो? बक्सा यहीं मंगवा लो।"[41]

"अरी तू भी यह क्या कह रही है। बेटा बहू नहीं मानती तो यहाँ आती ही क्यों?"[42]

इससे क्या होता है, घर तो आप बड़ों का भर रही हैं।

"बात बढ़ते–बढ़ते कश्यप तक जा पहुँची। रात को नमक मिर्च मिलाकर वसुन्धरा ने कश्यप के कान भर दिए। कश्यप को भी लगा कि बक्सा माँ के साथ ही रहना चाहिए। पीछे से किसी ने ताला खोलकर उसमें से कुछ निकल लिया तो?"[43]

"उस दिन भी मोहल्ले के बच्चे नंगे अंध नंगे कूद–कूदकर नहर में नहा रहे थे। बहाव के साथ दूर तक बहते चले जाते और डूब–डूब करके बड़ी कठिनाई से किनारा पकड़कर बैठ जाते और वहाँ से दौड़ते हुए आते और फिर कूद जाते। बच्चों का यह खेल हो गया था। बड़े दौड़कर, कलामुण्डी खाकर दूर बहाव में कूदते और बहते। बच्चों का यह क्रम चल रहा था। सदाशिव उसी नहर से सटे शहर कोट की दीवार पर अकेला बैठा यह खेल देख रहा था और अपने मन के उदास सन्नाटे को एक अप्रत्याशित कोलाहल से भर रहा था।"[44]

"तुम पढ़ना चाहते हो? सदाशिव से मिला कलक्टर ने फिर पूछा। सदाशिव ने फिर दो बार अपनी ठूड्डी सीने पर अड़ाई और ऊठाई। बहु पढ़ने की स्वीकृति दे रहा ओकार राव को इंगित करते हुए जिला कलक्टर ने कहा, हम इसकी शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था करा देगें। ऐसे हिम्मत वाले बच्चे आगे चलकर बड़ा नाम कमाते हैं।"[45]

नाटकों में सांकेतिकता मिलती है कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

सिंहासन नाटक में – "हर्ष और विषाद जीवन चक्र के दो ओर हैं, जो सतत् घूमते रहते हैं, पटरानी मनोरमा जी के ह्रदय में जहाँ इस समय घोर अशांति की काली रात्रि है, वहाँ महारानी लीलावती के कक्ष में सूर्योदय पूर्व की ऊबाई लालिमा छाई है।"[46]

प्रगल्य – "काम की बातें गम्भीर होकर बैठने पर नहीं होती, मार्ग में खड़े–खड़े बिस्तर पर पड़े–पड़े उतनी योजना से तैयार होकर बैठने पर नहीं महत्त्वपूर्ण निर्णय तो कुछ ही व्यक्तियों के बीच होते हैं, सामूहिक बैठक में तो उक्त निर्णयों की पुष्टि भर करवाई जाती है।"[47]

प्रगल्भ– "मुझसे अन्याय सहन नहीं होता, विनोदिनी। चाहे युधाजित की जीत हो गई, पर यह हुआ अन्याय ही है। सुदर्शन ही राजतिलक के अधिकारी थे। अयोध्या के नर–नारी उन्हें अपना राजा बनाना चाहते थे। पर सत्ता की भूख क्या नहीं करा देती कितने अधिकारी व्यक्तियों के गले काट देती है। उनका नाम तक संसार से मिटा देती है।"[48]

युधाजितः जी, उन्हीं से है—वे अयोध्या को युद्ध की ज्वाला में झोंक चुपचाप वहाँ से भागकर यहाँ चली आई है। धन्य हो इस खड्ग को (तलवार की ओर संकेत करते हुए जिसने सभी विद्रोहियों का सफाया कर दिया। अभी उस खड्ग की रक्त की प्यास बुझी नहीं है। कहाँ है वह विदल्ल का बच्चा जो विद्रोह की आग में विषैले घी की आहुतियाँ दे रहा है? मैं देखकर चाहता हूँ कि कैसे जीवित रहते हैं। अहहह। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।[49]

भारद्वाज – शांत शांत राजन शास्त आश्रम सत्य और अहिंसा के धाय है। विराजिये (हाथ पकड़कर बिठाते हुए) यहाँ आकर हिंसक पशु भी पालतु पशुओं की भाँति सौम्य हो जाता है।

भारद्वाज – "राजन आओ, शांत हों आपका यह क्रोध आश्रम के लिए सौम्य नहीं है। आप बैठिये (युधाजित बैठता है) आप विश्वास रखिये, मुझे जिस दिन भी विश्वास हो जायेगा कि यहाँ अयोध्या के विरुद्ध कोई षडयन्त्र हो रहा है, पटरानी, इस आश्रय में एक क्षण भी नहीं रुकेगी। असहाय पटरानी निरीह युवराज और अर्थहीन राजमंत्री आपका बिगाड़ भी क्या सकते हैं। आप सर्वशांति सम्पन्न है, वीर हैं क्षमा वीरों का भूषण है। मुझे विश्वास है आप थोड़ा शान्त मन से विचार करेंगे।"[50]

सुधाजित : "नहीं ऐसी कोई बात नहीं है आपके शांत स्वभाव, मृदु वाणी तथा सज्जनता से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। मैं क्या सोचकर आया था.............पर आपके मर्म मधुर वचनों में धधकती आग पर बरसते बादल का काम किया है।"[51]

विद्ल्ल : महाराज, आप मेरी परीक्षा ने लें। मेरे संकल्पों को इतना दुर्बल न समझें लगता है। भय मुझे नहीं आपको है मैं सारे संकटों की कल्पना करता हुआ भी यहाँ इस विश्वास से आया हूँ कि काशीराज उज्जयिनी से किसी प्रकार कम शक्तिशाली नहीं है। काशी की सेना में उज्जयिनी को नाकों चने चबाने की क्षमता है। महाराज आप मेरे मामा है। यह रानी मनोरमा या राज कुमार सुदर्शन की प्रतिष्ठा का नहीं मेरे अस्तित्व का प्रश्न है। मैंने रानी मनोरमा जी को पूर्ण सहयोग का और राजकुमार को राजगद्दी पर बिठाने का वचन दिया हुआ है। यह सब मैंने आप ही के विश्वास पर किया है। आशा है आप मुझे निराश नहीं करेंगे।[52]

मनोरमा – "विदल्ल जी, अकेले खड़े–खड़े यहाँ किससे बातकर रहे हैं? जब से कक्ष में गई हूँ अकेले मन लग ही नहीं रहा कई अशुभ कल्पनाएँ अनायास जगती है। उन्हें कैसे दूर रखूँ बहुती सोचती हूँ पर दूर हो नहीं पाती।"[53]

इन संकटों में सांकेतिकता पात्रों के मनोभावों को उजागर करती है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने हमारी भारतीय सभ्यता व संस्कृति का उल्लेख अपने निबंध संग्रहों में बड़ी ही कौशलता से किया है। राज्यों से मिलकर बने राष्ट्र का निर्माण होता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी पहचान संस्कृति होती है। हमारा भारत सभ्यता व संस्कृति विभिन्न वेशभूषा बोलियों की एकता का प्रतीक है। हमारी संस्कृति धर्म का शाश्वत दर्शन कराती है। संस्कृति के संकेत– "संस्कृति ही आध्यात्मिक, गुणात्मक तथा शाश्वत जीवन मूल्य है, जिनका अनुसरण करती प्रजा उसे राष्ट्र का रूप प्रदान करती है। मातृ भूमि के प्रति भक्ति तथा जन के प्रति आत्मीयता का भाव सांस्कृतिक मूल्य है। यहीं तीनों मिलकर राष्ट्र को राष्ट्र बनाते हैं। राष्ट्र किन्हीं सम्प्रदायों तथा जन समूहों का समुच्चय न होकर, एक जीवमान ईकाई है। ऐसे राष्ट्र पुरुष का सजीव व्यक्तित्व है, जिसमें भूमि, जन एवं संस्कृति की जीवन्त एकता का सतत निवास वर्तमान रहता है।"[54]

"व्यक्ति के धरातल पर जीवन प्रवृत्तियों का उन्नयन भी साहित्य ही करता है। साहित्य मानवीय संवेदना जगा, मानव संबंधों में सघनता उपजाता है। यह मनुष्य के भीतर चल रहे आंतरिक संघर्ष को तीव्र कर स्वस्थ एवं सही पथ पर अग्रसर करता है। साहित्य की परिधि में जहाँ सामाजिक सम्बन्धों का नैकट्य आता है, वहीं सांस्कृतिक परम्परा की पहचान को नवीनतम रूपों में ग्रहण करने की प्रेरणा भी आती है।"[55]

संस्कृति ही यह प्रभविष्णुता कभी प्रत्यक्ष दिखती है तो कभी नहीं। प्रत्यक्षता की स्थिति में इसे सांस्कृतिक शक्तियाँ बलशाली हुई समय रथ की बल्गा थामें दिखाई देती हैं।[56]

इसी क्रम में–

"निवेदिता ने एक बार आँखों के पलक झपका ही दिए। आँखें खुली पर उसका सारा शरीर झुलस चुका था। साँस ही जैसे बाकी थी उसी के सहारे ज्योंही आँखे खुली, वह कहारने लगी कराहती कराहती ही एक दम चिल्लाने लगी, मुझे मत जलाओं माताजी मुझे मत जलाओ, उन्हें आ जाने दो माता जी उन्हें आ जाने दो।"[57] दहेज प्रताड़ना एक बहुत बड़ा श्राप है जो कहीं न कहीं समाज को खोखला कर रहा है। समाज कितना भी सभ्य क्यों न बन जाये पर कहीं न कहीं परिवार ये लेने देन की कमजोर मानसिकता अभी भी आमजन में व्याप्त है। इस कहानी में दहेज प्रथा की कुप्रथा का संकेत है कि भट्टाचार्य जी की पुत्री तो जलाकर मार दी। अमानवीयता यह कि बिना बताये पुत्र की दूसरी शादी भी कर दी। 'संवेदना के क्षितिज' इस बात का प्रमाण है।

इसी क्रम में मानव जीवन परिवार के धर्म संस्कारों से किस प्रकार बँधा हुआ है। एक विद्यार्थी जो डॉक्टरी की पढ़ाई पंजाब से करने आया है। "वह सोचता है यदि ऐसा होता तो विश्व

में अनेक धर्म नहीं होते। अनेकानेक धर्मों के पीछे अनेकानेक मनीषियों का अपना चिंतन और अनुभव है। प्रचलित के विरुद्ध उन्होंने विद्रोह कर नवीन धर्म की नींव डाली है। इसलिए ऐसे महापुरुषों, रुढ़ियों ने कभी विष दिया है तो कभी उन पर गोलियाँ दागी है। वे मर भले ही गए हों लेकिन उनका चिंतन बराबर जीवित रहता है तथा मानव जीवन में विस्तार पाता रहता है।"[58]

डॉ. विजय ने कथा में धर्म का भाव मानव हृदय में स्पष्ट किया है। कि समाज कहीं न कहीं धर्म में बँटा हुआ है और समानता खत्म हो रही है। विद्यार्थी अवतार सामान्य समाज के विद्यार्थियों में अपनी अलग पहचान को दर्शाता है। उसकी पगड़ी कड़ा आदि सिख समाज की पहचान थे। अन्य विद्यार्थी उसकी इस पहचान का उपहास करते हैं। डॉ. विजय कथा में सांकेतिकता का भाव इन वाक्य में पूर्ण रूप से स्पष्ट है।

डॉ. विजय के लेखन में नाटक में भी बहुत ही सहज भाव मिलता है।

विनोदिनी – "सुहासिनी हर्ष और विषाद जीवन चक्र के दो आरे हैं जो सतत् घूमते रहते हैं। पटरानी मनोरमा जी के हृदय में जहाँ इस समय घोर अशांति की काली रात्रि है वहाँ महारानी लीलावती के कक्ष में सूर्योदय–पूर्व की ऊबाई ललिमा छाई है।"[59]

इस वाक्य में डॉ. विजय का सिंहासन नाटक का बहुत सुन्दर वाक्य मिलता है इसमें जीवन चक्र के सांकेतिकता पढ़ने को मिलती है।

विदल्ल – "काशीराज आप किसी प्रकार को चित्ता न करें। राजा महाराजाओं की अपनी जगह बैठे रहने दें। ये हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। महर्षि भारद्वाज का आशीर्वाद हमारे साथ हैं।"

"एक पनघट पर सब पियें पानी
यह जगत अभयारण्य हो जाये।"[60]

एक उदाहरण श्री नीरज की गज़ल का देकर अपनी बात कही–

"कोई कंघी न मिली जिससे सुलझ पाती वह
जिन्दगी उलझी रही ब्रह्म के दर्शन की तरह।।"

ब्रह्म के दर्शन की बात हिन्दी कविता ही कर सकती है। संकेत रूप में डॉ. विजय का लेखन कौशल मुझे इस निबंध में यह व्यक्त करता पाया कि मनो वैज्ञानिक पद्धति से ही व्यक्त जीवन के सभी पक्षों को समझ सकता है।

"हाड़ौती अंचल में हिन्दी की प्रारम्भिक साहित्य साधना डॉ. विजय ने राष्ट्रप्रेम का भाव हमें यहाँ हरिवंशराय बच्चन द्वारा रचित 'मधुशाला मधुबाला'" में अध्यात्म के साथ–साथ देश प्रेम भी

दिखता है। "सत्य प्रेम के अंगूरों से खींची है अनुपम हालात भारत की जय हो जय हो कह भरो सभी उसका प्याली आर्यवीर हो भारत के तुम पी पीकर सवर कुल खोला देती यह संदेश सभी को प्रतिपल मेरी मधुशाला।"

"देश प्रेम के साथ रूप सौन्दर्य का भी इसमें
बड़ा सजीव चित्रण हुआ है
लख सकता है भली भाँति से जो मानव है
मतिवाला,
कैसा सुन्दर बना हुआ है उन हग का जुडवां प्याला
अवयव के सागर में हाला भरी लुनाई की
बनी हुई है अनुपम मेरी मधुशाला हो मधुबाला।।"[61]

संकेत देश भक्ति प्रत्येक कवि द्वारा मिलता है इसमें बच्चन जी की मधुशाला अनूठे रूप में देश की सेवा के लिए प्रस्तुत होती है। देश एकता अखण्डता रक्षा हेतु प्रेम सौहार्द का भाव हमें यहाँ मिलता हैं।

"सामाजिक एकांकियों में 'गठबंधन', 'चार चरण', 'मास्टर जी' तथा 'अच्छा नमस्ते', प्रमुख है। 'गठबंधन' में सेठ माणिक लाल की पुत्री मंजुला लड़की देखने के लिये आये श्रेष्ठि पुत्र नरेन्द्र को वरण करने से इंकार कर तथा गुणी कवि कामेन्द्र के साथ अपना गठबंधन बाँधने की घोषणा करती है। इसमें एकांकीकार ने एक ओर कन्या कर पति चयन करने की स्वतन्त्रता प्रतिपादित की है तो दूसरी ओर धन के ऊपर गुण की श्रेष्ठता।"

"भारत की मूल सांस्कृतिक दृष्टि श्रेय और प्रेम का तथा दुःख दग्ध जगत एवं आनन्द मय स्वर्ग का एकाकार स्वीकार कर चली है। तम में ज्योति, असत् में सत तथा मृत्यु में अमृत की प्रतिष्ठापना करना ही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है।"[62]

इस भावना से स्पष्टतः है कि डॉ. विजय ने सभ्यता और संस्कृति का बहुत ही सुन्दर बात लिखी है।

– "साहित्य का विस्मरण संस्कृति का विस्मरण है और संस्कृति का विस्मरण अपने स्व का अपनी परम्पराओं मान्यताओं धारणाओं तक का विस्मरण है।"

– "कवि ने ही काव्य को काव्यात्मक अलंकरण प्रदान किया है। खट, खट, खट, खट, बज उठे खडाऊँ निर्गम पगडंडी पर।"

– "प्रकृति ही वीतरागी की सहचरी होती है। कवि ने इस वैराग्य सच को, बड़े सहज ढंग से अभिव्यक्त कर दिया है।"

मुनि के भी................लेदे कर/ये ही उनके/साथी थे।[63]

इन संकेतात्मक भाषा द्वारा डॉ. विजय ने अपनी निबंध शैली को रौचक बनाई है कि पढ़ने का मन अपने आप ही आतुर होता है।

6.2.3 मुहावरे

मुहावरे व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता व रोचकता आती है। मुहावरेदार भाषा प्रभावी व आकर्षक होती है। मुहावरे व लोकोक्ति के प्रयोग द्वारा सामान्य कथन में लालित्य, विलक्षणता, चमत्कार और विशिष्टता आ जाती है। लोकोक्तियाँ अनुभवों से पूर्ण होती है लोकोक्ति व मुहावरे दोनों भिन्न होते हैं।

मुहावरा – "किसी भाषा या बोली में प्रयुक्त होने वाला वह वाक्य–खण्ड मुहावरा है, जो अपने उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल सरल, रोचक और प्रभावशाली बना देता है।"[64]

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने मुहावरों का प्रयोग नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध संग्रह में अपने बात कहने के ढंग में मुहावरों का प्रयोग कर भाषा शैली को और रौचक बना दिया। जीवन से जुड़ी छोटी बड़ी बातों का मर्म हमें मुहावरो के प्रयोग मिलता हैं।

मुहावरे का अर्थ – जो पद्य बंध या वाक्य सामान्य अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट करता है, उसे मुहावरा कहते हैं।

जैसे 'आँखों का तारा' (बहुत ही प्यारा) कृष्ण यशोदा की आँखों के तारे थे। वाक्यों को सहज भाव से प्रकट करना तथा विशेष अर्थ को प्रकट करना होता है।[65]

गिन–गिन कर पैर रखना–अर्थ–सावधानी से चलना–गिन गिनकर पैर रखने वाला कभी ठोकर नहीं खाता। डॉ. विजय के नाटक सिंहासन से उदाहरण प्रस्तुत है–

विदल्ल – "युधाजिता अपने पाशविक बल पर अन्याय पर उतारु है। वह औचित्य की सारी सीमाएँ लाँघ सकता है।" 'सारी सीमाएँ लांधना' का अर्थ बहुत ही स्पष्ट दिया है कि 'मर्यादा पार करना' अपनी सभ्यता से बाहर आना आदि सभी भाव इस शब्द में चिन्हित हैं। (सिंहासन, 11)

इसी क्रम में मनोरमा : राजसत्ता में "बड़ी शक्ति होती है विट्ठल्ल जी। आप तो जानते है" उगते सूरज को हर कोई नमस्कार करता हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति शौर्य दान को ही पसन्द करता है। (सिंहासन, 10)

प्रगल्भ – यह तुम्हारा मर्म स्थल ही तो यहाँ तक खींच लाया दिनोंदिन समर क्षेत्र में एक ही पराजित और दूसरे की विजय का डंका बज गया है युद्ध जीत और शत्रुजीत के जयकारों से दिग् मंडल गूँज रहा है। समाचार आया है राज तिलक के बीच के सभी व्यवधानों को समाप्त कर दो। 'दिग मंडल गूँजना' का अर्थ है सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड गूँज उठा। (सिंहासन, 15)

बड़ी मछली मुहावरें के रूप में प्रयुक्त कर वाक्य की रोचकता बन गई है।

"एक रविवार को चाय पीते समय दूसरे शब्दों में दूरदर्शन पर 'महाभारत' के समय अचानक घण्टी बजी। वकील साहब ने सिर पीटा बच्चों ने पैर पटके। वकीलिनी ने 'भौहें तरेरी' कैसा मनहूस है, खुद महाभारत नहीं देखता, दूसरों को भी शांति से नहीं देखने देता।" (बड़ी मछली, पृ.–90)

'गाँव की टापरी' से उठकर शहर में आई रूपा दरिद्रों की मसीहा के रूप में सर्वत्र जानी जाने लगी। (उलझन, कहानी संग्रह–16)

डॉ. विजय ने जीवन का यथार्थ बहुत ही सहज ढंग से चित्रित किया है। मुहावरों का प्रयोग सन्दर व सटीक, सहज भाव में दिया है।

"नारी का जो चिंतन उसे बरसों परेशान कर रहा था बाबा के निष्काम कर्म अभिप्राय को स्पष्ट करने पर न जाने कहाँ खो गया। मन की थाली से 'कपूर की तरह उड़ गया' भाव यही है बिल्कुल साफ हो जाना। इस प्रकार शब्दों का प्रयोग वाक्यों को रोचक बनाने का कार्या करते हैं।" (बड़ी मछली, कहानी संग्रह–100)

डॉ. विजय ने निबंध संग्रह में संस्कृति और दर्शन को समझाया है। "आज निवृत्त तथा प्रवृत्ति ज्ञान के स्तर पर वैज्ञानिकता से सट गई हैं। प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का यह समन्वयी भाव ही भारतीय संस्कृति पर सौन्दर्य बन गया है। अद्वैत भारतीय दर्शन की रीढ़ है।" यहाँ डॉ. विजय ने भारतीय दर्शन की रीढ़ के रूप में मुहावरें का प्रयोग किया है। (निबंध संग्रह, पृ.–80, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद)

आत्मा परमात्मा के दर्शन पर आधारित भाव है। इसमें ज्ञान प्राप्त करने हेतु भारतीय दर्शन शास्त्र को बहुत अधिक ज्ञान मिला है। यह भारतीय दर्शन शास्त्र की **'रीढ़ की हड्डी'** के रूप में

है। आत्मा परमात्मा का ज्ञान हमें भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद से ही प्राप्त होता है। (निबंध संग्रह, पृ.–60)

“अंधविश्वासों से लोक विश्वास कुछ परिष्कृत होते हैं ग्रामीणता तथा अल्प शिक्षा के कारण अपने उदात्त भावों को मूल ग्रामजन ‘**लकीर पीटते**’ रहते हैं।” ‘लकीर पीना’ मुहावरें का अर्थ अनहोनी होने के बाद सचेत होने वाली बात यहाँ वाक्य में हमें पढ़ने को मिलती है। (निबंध संग्रह, पृ.–60)

“गीता ने काम क्रोध तथा लोभ वाले असुर स्वभाव को छोड़ने की बात कही है। इन तीनों को पाप का नाश करने वाला तथा ‘**नरक का द्वार**’ कहा है।”

जिस व्यक्ति के स्वभाव में काम की भावना है क्रोध अधिक आता हो तथा लोभ अधिक करने लगा हो उसका अंत जल्द ही हो जाता है। अर्थात् वह नरक के द्वार तक पहुँचने वाला है।

“भू मंडल पर प्रजापतियों के साम्राज्य विस्तृत होते चले गये। स्वाभाविक था ‘प्रभुता पाहि काहि मदना ही’ वाली उक्ति के अनुसार कालांतर में प्रजापतियों में सत्ता कलह विकसित हो गया।”

“पश्चिमी जगत् शरीर के प्रति अधिक चिंतित रहता है। उसके लिए देह और देहिक सुख प्रथम है। परमात्मा सुख को वह दैहिक सुख में ही देखना चाहता है। भारतीय देह के नाश को उत्सव मानता है वहाँ पश्चिमी जगत **घोर चिंता में डूब जाता है।”**

“परमात्मा सुख को ही दैहिक सुख” का अर्थ स्वयं के शरीर को स्वस्थ निरोग तथा ऊर्जावान बनाने से है। शरीर स्वस्थ रहेगा तो भगवान का वास भी रहेगा। इसी भाव से इस मुहावरें को यहाँ प्रयुक्त किया है।

“भारतीय सोच वर्ग व्यवसथा का घोर विरोधी है और संयुक्त परिवार की कौटुम्बिक धारणा को लेकर चलता है।”

‘वासुदेव कुटुम्बकम’ की बात भारतीय सभ्यता संस्कृति में निहित हैं। हमारे देश में सम्पूर्ण ब्रह्माण को परिवार मानकर हर तरह के सुखदुःख की बातें की जाती है। परिवार का भाव रखकर ही हमारे भारत में रिश्ते निभाये जाते हैं। अतः डॉ. विजय ने भी इस तरह के मुहावरों का प्रयोग कर कम शब्दों में ज्यादा बातें हमें समझाई है।

– “अविभक्त दृष्टि लेकर सामंजस्य समभाव एवं पंचशील तक का गायक है। प्रेम के मुखर स्वर गुनगुनाता शांति का प्रदायक भारत मानवता के **ललाट का चंदन** है।”

"मानवता के ललाट का चंदन मुहावरें से स्पष्ट हैं सुवर्ण के शांत चेहरे पर सुन्दर खुशबूदार सोच से आगे की ओर पढ़ते कदम का भाव हमें मिलता है।"

'इसी शक्ति के आधार पर मीरा कृष्ण परक धर्म स्थानों की यात्रा करते समय वृन्दावन में जीव गोस्वामी के रुढ़ ज्ञान की आँखें खोलती है।' (निबंध संग्रह, पृ.–60)

'रुढ़ ज्ञान की आँखे खोलना'–रहस्यमय ज्ञान से सबको अवगत कराना–अतः जीवगोस्वामी ने मीरां कृष्ण के प्रेम की अनुभूति व ज्ञान की बातों को रूढ़ ज्ञान की आँखें खोलकर ज्ञान प्रदान कर दिया। मीरां का प्रेम, मीरा की वेदना, मीरां के गीत उन गीतों की रहस्यमयता तथा उनमें गुम्फित दार्शनिकता उसकी उदात्त दिव्यता की पराकाष्ठा है।

उद्धात्त दिव्यता की पराकाष्ठा–बड़े ही स्वरूप में ज्ञान की अनुभूति होना और उसके अनुभव को असीमित रूप से प्राप्त करना इस मुहावरें द्वारा डॉ. विजय के लेखन विधि में बहुत ही रौचक स्पष्ट हो रही है।

प्रयोगवादी समाजवादियों ने भले ही प्रगतिवादी जनवादी कम्युनिस्टों से पल्ला झाड़ लिया हो, परन्तु इनके लेखक की दृष्टि में तात्विक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं आया है।

पल्ला झाड़ना–साफ इंकार करना। डॉ. विजय ने इस वाक्य में इस मुहावरें का प्रयोग कर प्रयोगवादी लेखकों की सोच को समझाया है कि रुढ़ी प्रवृत्ति त्याग कर नई जीवन शैली को आत्मसात करना प्रयोग धर्म है।

हिन्दी को निगलने को तैयार बैठी है। इस भाषाई आक्रमण को देश आपसी अन्तर्कलह के कारण **आँख मूँद देख** रहा है। **'आँख मूँद देख'** सब कुछ जानकर भी अनजान बनना।

इस मुहावरे द्वारा भाषा के आक्रमण को बड़े ही सुन्दर भाव से यहाँ डॉ. विजय ने प्रकट किया है। देश की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण रखने का यही एक विधायक तत्त्व सिद्ध होगी। विधायक तत्त्व का अर्थ एक मात्र सर्वोपरि भाषा। जिसका विधान सब भाषाओं पर हो। हिन्दी की जीवन्त चेतना इस घटाटोप को चीरकर मध्याह्यन सूर्य की तरह अवश्य उदित होकर देश के गगन पटल पर चमकेगी। इस वाक्य में दो मुहावरों का प्रयोग है। 'घटाटोप', 'गगन पटल'।

1. घटाटोप – घनघोर काली घटा
2. गगन पटन – खुला आसमान

व्यक्ति मिट सकता है। उसका स्वातंत्र्य भाव कभी नहीं मरता। वह विजयाभिलाषी है। सदा बना रहेगा। जीवन भर दरिद्रता और संघर्ष की छाती पर चढ़कर कृष्ण की तरह काव्य की मुरली बजाते रहे। काव्य की **मुरली बजाना**–अपनी लेखों को मधुर भाव में लिखकर सार्वजनिक तौर पर प्रकाशित करना है। श्री भारतेन्दु समिति जो श्री हनुमान प्रसाद जी के आकस्मिक निधन से कुछ काल के लिए लुप्त प्राय हो गई थी, वह डॉ. दयाकृष्ण विजय के प्रयास से हिन्दी प्रज्जवलित **मशाल लेकर खड़ी हो गई।** प्रज्जवलित मशाल–हिन्दी के उज्जवल भविष्य को नई दिशा दिखाने वाला यंत्र। भविष्य में हिन्दी का प्रयोग तथा उससे भविष्य में कुछ अच्छा व नया समाज तैयार करने की प्रेरण हमें मिलती है।

इस प्रकार डॉ. विजय ने अपने नाटक, उपन्यास तथा निबंधों में रौचक मुहावरों का प्रयोग कर भाषा में नई जान डाल दी।

6.2.4 लोकोक्तियाँ

"लोकोक्तियाँ सामान्य कथन मात्र नहीं बल्कि अनुभव सिद्ध ज्ञान की निधी है। मानव ने युग युग से जिन तथ्यों अनुभूतियों तथा जीवन मूल्यों से साक्षात्कार किया है। उन्हें लोकोक्तियों के रूप में सूत्रबद्ध कर रखा है।"[66]

लोकोक्ति व कहावत के अन्तर को इस प्रकार समझा जा सकता है।

लोकोक्ति और कहावत – "लोकोक्ति का सामान्य आशय है, लोक की उक्ति अर्थात् आम आदमी के मध्य प्रचलित विशेष (प्रसिद्ध) उक्ति। कहावत का अर्थ भी कही हुई उक्ति (बात) होता है। किन्तु समस्त उक्तियाँ लोकोक्ति या कहावत नहीं हो सकती केवल वही उक्ति लोकोक्ति के रूप में स्थापित हो पाती है। जिसमें जीवनगत अनुभवों को संक्षिप्त, विलक्षण और रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया हो। लोकोक्ति का प्रयोग पढ़े लिखे लोगों के मध्य होता है जबकि कहावतों का प्रयोग जनसामान्य के मध्य साहित्यिक प्रयोग के कारण लोकोक्तियों का भाषिक परिष्कार हो जाता है।"[60]

शब्द लोक+उक्ति इन दो शब्दों के मेल से बना है, जिसका अर्थ है लोक में प्रचलित या प्रसिद्ध बात। इसे कहावत भी कहते हैं। यह एक कथन होता है, जिसे किसी बात को प्रमाणित करने के लिए प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

जैसे–**अंधा क्या चाहे दो आँखें**–इच्छित बात हो जाना–इस तरह की रौचक लोकोक्तियों का प्रयोग करना वाक्य में रस उत्पन्न करती है। डॉ. विजय ने भी अपने लेखन में इन शब्दों का

प्रयोग भी किया है। डॉ. विजय ने कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध संग्रह में अपने लेख में इन शब्दों का प्रयोग किया है। वाक्य में रोचकता उत्पन्न करते हैं। "मुँह दिखावे के समय, जिसने भी उसे देखा, बहुत सराहा। सभी यही कहती बहु बहुत सुन्दर है। दोनों की जोड़ी ऐसी मिली की शब्दों में कह नहीं सकते कोई कहता विधाता के पूर्वजन्म के संस्कारों का यह प्रतिफल है।"

डॉ. दयाकृष्ण विजय के समस्त गद्य साहित्य में आदर्श वाक्य प्रवाहित हैं। सूक्त सूक्त वाक्य –

– "ज्ञान की बात भी अहंकार को बुरी लगती है। अहम् को चोट पहुँचती है। बड़े बीच में आ जाते हैं तो कुंठाएँ जनमती हैं। धीरे–धी कुंठाएँ कलह में ढल जाती है। वह अकेली सारा घर उसके विरुद्ध पर वह निडर क्योंकि आर्थिक कुंजी उसके पास थी। अर्थ की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति होती है।"

"सोच लिया बहुत सोच लिया। स्त्री स्वर्णाभूषणों को नहीं तिजोरियों में थप्पी लगी लोटों की गड्डियों को नहीं आलीशान बंगलों को नहीं एक जिंदादिल आदमी को प्यार करती है अपने पूरे आदिम परिवेश में प्रकृति की गोद में हरिण्यो सा उन्मुक्त खेलता तुम्हारा तेवर और आकाश के नीचे खुली धरती पर हवाओं से लिपट खेलता मिजाज अब कहाँ हैं?"

"कमलेश्वर की माँ तो अल्लाह की गाय थी। कैसा मुहावरा बन गया। अल्लाह के कभी गाय हो नहीं सकती बकरी भले हो जाए लेकिन सीधेपन के लिए लोगों ने कैसा मुहावरा घड़ दिया। आज वह संपत्ति की बैचेनी से प्रतीक्षा कर रही है। वह संपत्ति लौटे और वह अपने क्रोध का घड़ा उस पर पूरी तरह से उलीचे। क्रोध का ज्वार आकाश छू रहा है।"

बाबा कहते, "इससे श्रद्धा में वृद्धि होती है मन बाह्य से हटकर भीतर केन्द्रीत होता है। भावना भौतिक के स्थान पर आध्यात्मिक रूप ग्रहण करती है। कभी–कभी श्रद्धा इतना विस्तार पा जाती है कि तादात्म्य वाली स्थिति आ जाती है। यह इसका आध्यात्मिक पक्ष है।"

"विवश होकर कहने लगे वकील साहब आपके तर्क अकाट्य है। मैं यह भी मानता हूँ जीवन का अंतिम लक्ष्य भौतिकता नहीं है। मोक्ष के लिए वैराग्य आवश्यक है और वैराग्य अभ्यास से साधा जा सकता है। सुन लेगी तो सुन लेगी। उसने मेरी शान के वहा लगा दिया मेरे परिवार में आज तक किसी ने ऐसा नहीं किया। यह तो कुल कलंकिनी है। होते ही मर जाती तो अच्छा था। मेरे माथे पर **कलंक का टीका** लगाने के लिए ही क्या जिंदा थी?"

“लेकिन कुछ पोंगापंथी लोग, जो अपने हित के लिए लोगों को जातियों में बाँटकर दबाए रखना चाहते हैं, कब शांत होने वाले थे। संघर्ष की स्थिति आ ही गई। रूपा और अरविंद का प्रेम प्रसंग जलते को एक और पलीते के रूप में मिल गया।”

“सूर्या के रूप और नयन भंगिमा ने अश्विनी के मन पर जादू का सा काम किया। उसका ‘न’ ठंडा पड़ गया। उसने पूछा आप मेरा घर जानती हैं?”

“श्री धूपड़े समय की गंभीरता को देखकर मौन बने बैठे रहे। कभी सोचते यदि गाय की पूँछ पकड़ में नहीं आती तो? परिस्थिति की विषमता सोच घर्र घर्र फिर भीतर घर्राने लगी। विषाद की हवा से जैसे ही कभी प्रसुप्त आस्थावादी मन जागता, उन्हें लगने लगता गाय–गाय नहीं देवता है।”

“जब पैसा देती हैं तो **आँखे खुल जाती हैं।** बड़ी कसम खाती है पर क्या करें। पति देवों को सब्जी लाने में शर्म आती है और इनको सब्जीमंडी में थैला लेकर जाते।”

लोकोक्ति – आचार्य जी ने अपने कथन की पुष्टि में तुलसीदासजी की ये चौपाई दोहरा दी– ‘जाकी रही भावना जैसा, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।’

“कला के क्षेत्र वाले कहते हैं–सा कला या वियुक्तये। वास्तु शास्त्र वाले कहते हैं–वास्तु शास्त्र प्रवक्ष्यामि लोकानां हित काम्यया श्रुति कहती है– ‘तस्याभासा सर्वमिदं विभाति।”

कबीरदास जी कहते हैं– “एकै पवन एक ही पानी, एक ही जोति संसारा एक ही खाक गढें सब भांडे, एक ही सिरजन हारा।”

“अठारह पुराण लिख वेद कथाओं को विश्वसनीय बनाया ब्रह्मसूत्र लिख एवं महाभारत में गीता को जोड़ प्राचीन दर्शन को नव्य रूप दिया। इन्होंने वाल्मिकी के ‘सत्यं हि परम धर्म’ को आचारः परमोधर्मः तक पहुँचाया।”

महाभारत के शांति पर्व का ‘प्रिय भारत भारतम्’ आज ऋत ए सत् से लेकर सच्चिदानन्द तक का आराधक है। यह स्वयं ईश्वर है। इसी के प्रतिबिम्बित रूप में जगत के सारे सौर्न्य वर्तमान है। मैंने इस विचार को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है– बिम्ब से कब भिन्न है प्रतिबिम्ब दर्पण का, एक सत्ता का जगत विस्तार होता है।

डॉ. दया कृष्ण विजय ने अपने गद्य साहित्य में आदर्श वाक्य सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है जिसमें भावगांभीर्य और प्रवाहशीलता बढ़ी है। ये वाक्य संस्कृत साहित्य व अन्य ग्रंथों से लिये हैं।

"सौन्दर्य बोध के भौतिक पक्ष में आस्वाद बोध का यह मानसिक आध्यात्मिक पक्ष उच्चतर तथा अतीव महत्त्व का होता है।"

मैत्रेय एवं याज्ञवलक्य ऋषि के संवाद का यह कथन स्मरण आ रहा है—

"न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति
न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति
आत्मनस्तु कामाय सर्वं भवति।"

रति काम तत्त्व की अंतिम ज्ञानात्मक परिणति है। यह पूर्ण या सौन्दर्यश्रित है। सौन्दर्य बोध का रचनात्मक विधान है। आकर्षण वन हँसने वाली अनादि वासना की पूर्णाहुति है। कामायनी के काम सर्ग की ये पंक्तियाँ इसे और स्पष्ट करती है— "जो आकषर्ण बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही।"

प्रत्येक ज्ञान शब्द में अनुबिद्ध होकर ही भासित होता है। भतृहरि ने कहा भी है 'अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।' वाक्य प्रदीप में आया है न सा चेतन्येनाविष्टा जातिरस्ति, यस्यां स्व पर बोधो यो वाचनानुगम्यते।' दण्डी ने काव्यादर्श में स्पष्ट लिखा है कि यदि शब्द रूपी ज्योति इस संसार को दीप्ति नहीं देती, तो यह चराचर जगत गहरे अंधकार में डूबा रहता। 'इदम्तमः कृतस्नंः जायते भुवन त्रयम् यदि शब्दाह्वं ज्योतिरासंसार न दीप्तिते। प्रारम्भ में हिन्दी आलोचना में भी यही रूप दिखाई देता है। संस्कृत की शैली में ही हिन्दी आलोचकों ने भी सूक्तियों का आश्रय लिया—

अवके कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकाश।

लोक कल्याण के भाव से ही यहाँ के महर्षि व्यास ने ऊर्ध्व बाहु यही कहा— 'धर्मादर्थश्य कामश्च स किमर्थं न सेव्यते' अर्थात् धर्म से ही अथर्व काम प्राप्त हो सकते हैं फिर ये मानव जन धर्म का सेवन ही क्यों नहीं करते भारत ने धर्म को सदा ही व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है।

"अंहिसार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनं कृतम्
यः स्यादहिंसया युक्तः सद्यर्म इति निश्चयः।"

वायन की विराटता जहाँ हमारी संस्कृति की गौरव गाथा है वहीं वौने हो गये। आज के भारतीय चरित्र को प्रस्तुत करती है डॉ. विजय की इस गज़ल का एक बंध यह लिखा—

एक पनघट पर सब पियें पानी

यह जगत अभयारण हो जाये।

"संस्कृत की यह एक उक्ति है 'स्त्रीश्चरित्रंपुरुषस्य भाग्यं न जानाति देवोः कुतः मनुष्यः' स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देखता भी नहीं जानते मनुष्य क्या जानेगा।"

मीरा की एक निष्ठता की पृष्ठभूमि में भी यही भावना कार्यरत दिखता तभी तो वह खुलकर कह पाई है–

अमृत प्याला छोडिके कुण पीवे कड़वो नीर।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, घणी मिल्या छै हजूर।

नवरत्न जी ने स्फुट कविताएँ भी पर्याप्त संख्या में लिखी है वंगभंग के प्रसंग पर लार्ड कर्जन को सम्बोधित करके कलंकी से शीर्षक से लिखी आपकी आक्रोशपूर्ण कविता बहुत समय तक चर्चित रही है।

रे दोषाकर पश्चिम बुद्धि

कैसी होगी तेरी शुद्ध

इस प्रकार डॉ. विजय ने लेखन के अनुसार जह विशेष पर लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। कवियों द्वारा रचित **दोहों** को अपने लेखन में रखकर लेखन विषय को रौचक बनाया है।

6.2.5 सूक्ति प्रयोग का अर्थ

सूक्ति प्रयोग का अर्थ 'अनमोल वचन' डॉ. विजय ने अपने लेखन की अभिव्यक्ति बड़ी ही रोचकतापूर्ण ही है। सूक्ति प्रयोग वाक्यों में जान (जीव) डाल देते हैं। पढ़ने में रोचकता उत्पन्न करते हैं।

सूक्ति प्रयोग – अनमोल वचन–विश्व की सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों का ज्ञान ही संस्कृति है। डॉ. विजय ने इस विषय पर निबंध संग्रह लिखा है। विचारों का ज्ञान का आदान प्रदान ही हमारी पहचान बताते हैं हमारे व्यक्तित्व को दर्शाता है कि हम कितने पढ़े लिखें हैं। हमारे विचार सोच किस प्रकार हैं।[67]

मैथ्यू अर्नाल्ड के अनुसार – सही मायने में 'बुद्धि पूर्व' विचार हजारों दिमागों में आते रहे हैं। लेकिन उनको अपना बनाने के लिये हमको ही उन पर गहराई से तब तक विचार करना चाहिए जब तक कि वे हमारी सही मायने में बुद्धिपूर्ण विचार हजारों दिमागों में आते रहे हैं। लेकिन

उनको अपना बनाने के लिये हमको ही उन पर गहराई से विचार करना चाहिये जब तक कि वे हमारी अनुभूति में जड़ न जमा लें।[68]

सर विंस्टन चर्चिल के अनुसार – बुद्धिमानों की बुद्धीमत्ता और बरसों का अनुभव सुभाषितों में संग्रह किया जा सकता है।[69]

आई जक दिसराली के अनुसार – मैं अक्सर खुद को उद्धृत करता हूँ इससे मेरे भाषण मसालेदार हो जाते हैं।[70]

राबर्ट हेमिल्टन के अनुसार – सुभाषितों की पुस्तक कभी पूरी नहीं हो सकती। ज्ञान से भरपूर बातें सदैव समाज में विद्यमान रहती है। इससे जीवन में नई प्रेरणा मिलती है। डॉ. विजय ने अपने लेखन में सूक्ति प्रयोग कर हमें वाग्वैदग्ध्य का आभास दिया है। लेखन कौशल में भरपूर ज्ञान का भण्डार है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय के समस्त साहित्य में संस्कृति की अजस्र धारा प्रवाहित है जिसमें सूक्ति प्रयोग आदर्श वाक्य का स्थान–स्थान पर प्रयोग किया है जो उनके शिल्प सौंदर्य में चार चाँद लगा देते हैं।

पायसपायी डॉ. विजय का धर्म व भक्ति को समर्पित उपन्यास है। उसमें प्रयुक्त कुछ सूक्तियाँ दृष्टव्य है।

"स्वामी रामानन्द जी के शंखनाद से कीर्ति देश भर में फैलती है।"

(1) "पायसपायी" में स्वामी रामानन्द का जीवन और चिंतन तो है लेकिन प्रासंगिक चमत्कारों की भीड़ में अन्य चरित्रों को फैलने उभरेन का अवसर नहीं मिला है।

रमताराम उपन्यास – रामस्नेही सम्प्रदाय के गोस्वामी रामचरण दास पर आधारित है।

डॉ. विजय के अनुसार – "मैंने साहित्यिक मित्रों को बहुत पहले से आश्वस्त कर रखा था कि मैं उपन्यास भी समय निकाल कर अवश्य लिखूँगा।"

(2) "स्वामी जी के लिए सभी समान थे राजा और रंक भी एक थे, उनके लिए उनके मन में कोई भेद नहीं था।"

बड़ी मछली कथा संग्रह में सूक्ति प्रयोग कर कथा परिवेश में रौचक उत्पन्न किया है।

"यह कहकर वंदना के मन का क्रोध शब्दों में उगल दिया। दशरथ राय तो शब्दार्थ समझ गए। नकुल गूढ़ार्थ जानना भी नहीं चाहता था।"

(1) “भगवान की मूर्ति की छटा दर्शनीय बनाई जाती हैं वहाँ आरती भजन कीर्तन किए जाते हैं ताकि मनुष्य खाली समय का उपयोग परमात्मा के लिए कर सके, अन्यथा मंदिरों में क्या धरा है।”

(2) “उसकी आँखों में क्रोध और आँसू दोनों झलक उठे। शब्द रुँधता है तब हृदय घुटता है।”

(3) “कभी वह कहते परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। उसका कोई नहीं है। वह समान रूप से व्याप्त परम चैतन्य सत्ता है, जो प्रकृति को आवृत भी किए हैं और प्रकृति से पृथक भी है।”

(4) “भोजन का स्तर देखकर उन्हें लज्जा का अनुभव तो बहुत होता है लेकिन, ‘मौन हुइ रहिए देख दिनन को फेर’ इस उक्ति को मन ही मन बोल चुपचाप उस कर्मकण्ड को देखते हैं।”

“कल्प कल्प की ज्ञानोक्तियाँ वेद में संकलित है। यह श्लोक मेरे कथन की पुष्टि करता है।

युगान्तेऽन्तर्हितान वेदान् सेतिह्मासान महर्षयः
लेमिरे तपसा पूर्वमनु ज्ञाताः स्वयंभुवा।”

आदि पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने आषाढ़ मास के प्रथम दिन कृत युग का आरम्भ किया तथा पहले व्रजापति बने कहा भी है–

युगादि बह्माणातेनयदित्यम् स कृतीयुग
ततः कृतयुगं नाम्ना तम पुराण विदो विदुः
आषाढ़ मास बहुल प्रतिपदि दिवसे कृती
कृत्वा कृतयुगारम्भं प्राजापत्यमुपेदिवाने।

मानवतावादी अपने लिए जीता है मानवतावादी यज्ञ भाव लेकर सर्व के मंगल के लिए जीता हैं

भूख से मर रहा हो जहाँ आदमी,
दे अगर हाथ का कौर देना पड़ें।

आज की युवा पीढ़ी को संगच्छध्वं संवदध्वं सः वोय ‘नासि जानताय’ वाला वैदिक मंत्र।

व्यर्थ होते जा रहे हैं शास्त्र दृष्टि ओझल हो रहे हैं। ये काव्य कथन–

पीड़ित प्राणों की सेवा से बढ़कर वसुधा पर नहीं धर्म
बहते दो आँसू पोंछ सके यही मनुज का श्रेष्ठ कर्म।।

संस्कृति ही है व्यक्ति और राष्ट्र की नैतिक पूंजी।

जुगनू के प्रतीक से डॉ. विजय ने एक हाइकू में कहा है—

'जुगनू बोला, पंथी चिंता न कर, मैं तेरे साथ।'

डॉ. विजय के लेखन में सूक्ति प्रयोग से शब्दों में चमत्कार आ गया है। शब्दों का निखार हमें पढ़ने को प्रेरित करता है। डॉ. विजय के सूक्ति प्रयोग से लेखन कौशल को अभिव्यक्त करता है कि कृतित्व शैली बहुत ही प्रखर है।

डॉ. विजय ने अपने नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी में बड़ी ही सुन्दर भाव से प्रयोग किया है।

6.3 शब्द शक्ति

शब्द के भीतर अन्तर्निहित शक्ति ही शब्द शक्ति है। शब्द शक्ति के भीतर समाहित अर्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। शब्द शक्ति तीन प्रकार ही होती है।

6.3.1 अभिधा

"सामान्य व्यवहार में नित्य और सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली शक्ति अभिधा है। यह वह शक्ति है जो साक्षात संकेतिक अर्थात मुख्य अर्थ का बोध कराती है। यह अर्थ व्यवहार परम्परा, कोश और व्याकरण आदि से सिद्ध और निश्चित होता है।"

6.3.2 लक्षणा

विशेष संदर्भों को प्रकट करने के लिए लक्षणा का प्रयोग किया जाता है— "मुख्यार्थ (या वाचार्थ) के बाधित होने पर जब अभिधा शब्द शक्ति अर्थ प्रकट करने में असमर्थ हो जाती है और रूढ़ि या प्रयोजन के कारण मुख्यार्थ से सम्बद्ध कोई अन्य अर्थ प्रकट होता है तो इस अन्य अर्थ को प्रकट करने वाली शब्द शक्ति लक्षणा कहलाती है।"[71]

6.3.3 व्यंजना

"व्यंजना का शाब्दिक अर्थ है—विशेष रूप से खोलना, प्रकटीकरण या विकसित करना। किसी छीपी हुई वस्तु या अभिप्रायः से आवरण हटाकर उसे सामने ला देना उसकी व्यंजना होगी। जब अभिधा और लक्षणा अपने —अपने अर्थ का बोध कराकर विरत हो जाती है और उक्ति का

गूढ़ या विशेष अभिप्रायः अनुद्घाटित रह जाता है तो उसे उद्घाटित या प्रकाशित करने का कार्य जिस शब्द शक्ति द्वारा सम्पन्न होता है, उसे व्यंजना कहते हैं।"[72]

व्यंजना का अर्थ बड़े ही सरल भाव में हमें पढ़ने को मिला है। डॉ. विजय ने व्यंजना का प्रयोग अभिधा व्यंजना के रूप में ही वाक्यों के लिए प्रयोग किया है। वर्ण का कोई ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण किसी और वर्ण विशेषतः स्वर की सहायता बिना संभव न हो।

"व्यक्त या प्रकट करने अथवा होने की क्रिया या भाव व्यंजना कहलाती है।"

जैसे व्यंजना में बोल चाल की में सभी तरह की भाषा होती है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय ने व्यंजना का प्रयोग वाक्य निर्माण में बड़ी ही निपुणता से किया है। सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण हो या सामाजिक परिवेश का ज्ञान व्यंजना प्रयोग से वाक्य में रोचकता प्रदान की है।

नाटक, निबंध, कथा, उपन्यास आदि सभी का निर्माण वाक्य में व्यंजना के साथ जगह–जगह पर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

(1) "भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा है। संस्कृति की निरन्तरता की संवाहिका शक्ति इसमें निहित है।"

(2) "समाज जीवन को बचाये रखने का सामर्थ्य यदि किसी में तो वह साहित्य में ही है।"

(3) "तामसिक प्रवृति जिस साहित्य का सृजन करती है वह तो पतनोन्मुखी है। श्रेष्ठ साहित्य सात्विक वृत्ति वाले साहित्यकार की लेखनी से ही आलेखित होता है।"

(4) पूर्व जन्म के संस्कारों का इस जन्म पर अदृष्ट प्रभाव सगुण से निर्गुण तक की महायात्री महीयसी मीरा का नाम ही प्रारब्ध है।

"गीता तो उसकी पीडा का सहज स्वाभाविक उत्स है।"
"धर्म, संस्कृति का नैतिक शास्त्र होने से उसका पहला उपादान तत्त्व है।"
"हमारी कलाओं में संस्कार परिरक्षण"
"भारतीय शास्त्रों में गानात्परतरं न हि"

(5) "कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ है क्योंकि वह धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को देने वाली है। जिस 'घर' में चित्रात्मक अल्पनायें हैं। वहाँ मंगल की प्रतिष्ठा है।"

(6) "कवि की संवेदना अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को इस रूप में अभिव्यक्ति देती है कि वह लोक दृष्टि से आध्यात्मिक तथा पारमार्थिक दृष्टि से लोकहित साधन की संवाहक बन जाती है।"

डॉ. विजय के इन निबंध में व्यंजना का आभास है। वाक्य में व्यंजना से वाक्यों का निर्माण बड़ी ही सहजता से हो रहा है। जीवन के हर पक्ष में ज्ञान का भण्डार मिला है। कथा, नाटक, उपन्यास आदि सभी में व्यंजना की उक्ति पढ़ने को मिली। रोचक, ज्ञान प्रद वाक्य हमें प्रेरित करते हैं।

6.4 शब्द भण्डार

किसी भी भाषा में प्रयोग किये जाने वाले शब्दों का समूह उस भाषा का शब्द भण्डार कहलाता है। शब्द अपने आपमें भाषा नहीं कहे जाते परन्तु उनके अभाव में भाषा का अस्तित्व असंभव है। व्युत्पत्ति के आधार पर हिन्दी शब्द चार भागों में विभाजित है। तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी।

6.4.1 तत्सम

"वे शब्द जिनका रूप संस्कृत के शब्दों के समान है अर्थात् जिस रूप में वे संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं उसी रूप में हिन्दी प्रयुक्त होते हैं। तत्सम शब्द कहलाता हैं। जैसे मनुष्य कर्म आदि।"

6.4.2 तद्भव

'तद्भव' शब्द का अर्थ है– उससे अर्थात् संस्कृत से उत्पन्न या विकसित वे शब्द जो संस्कृत के शब्दों से विकसित हुए है परनतु जिनका रूप परिवर्तित हो चुका है जैसे दुग्ध (दूध), मित्र (मीत), कृष्ण (कान्ह) काम (कर्म) आदि।

6.4.3 देशज

देशज उन शब्दों को कहते हैं जिनके मूल का पता नहीं है। उन्हें प्रादेशिक शब्द भी कहा जा सकता है। जैसे चूहा, तेन्दुआ, ठेठ आदि स्थानीय स्तर पर आवश्यकतानुसार ये गढ़े भी जा सकते हैं।

विदेशी शब्द – "जो शब्द विदेशी भाषाओं से हिन्दी में आये हैं। उनहें विदेशी शब्द कहा जाता है।"[73]

शैलीगत विशेषताएँ

रचनाकार अपने भावों अपने अनुभवों को जिस रूप में अभिव्यक्ति करता है, अभिव्यक्ति का यह तरीका शैली कहलाता है। प्रत्येक साहित्यकार का अपनी बात कहने का विशिष्ट ढंग या तरिका होता है। जो उसे अन्य से अलग बनाता है यही वैशिष्ट्य उसके द्वारा प्रयुक्त विविध विशेषताएँ कहलाती है। शैली सामान्यतः किसी बात को स्वस्थ एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करना होता है शैली के संबंध में विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास शैली की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं– "भाव विचार और कल्पना तो नैसर्गिक अवस्था में विद्यमान रहते हैं और साथ ही व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है। अब यदि हम उस शक्ति को बढ़ाकर संस्कृत और उन्नत करके हम इसका उपयोग कर सकें तो उन भावों विचारों और कल्पनाओं के द्वारा हम संसार के ज्ञान भण्डार में वृती करके उसका बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। इसी शक्ति को साहित्य में शैली कहते हैं।"[74]

काव्य–दर्पणकार ने शैली के सम्बन्ध में लिखा है– "किसी वर्णनीय विषय के स्वरूप को खड़ा करने के लिए उपयुक्त शब्दों का चुनाव और उसकी योजना को ही शैली कहते हैं।"

"शैली से अभिप्रायः सामान्यतः किसी बात को स्वसथ एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करना है। इसी से शैली को लेखक के विचारों की पोशाक नहीं अपितु चमड़ा कहा जाता है उपन्यासों में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्र, डायरी, पूर्वदीप्ति आदि शैलियाँ प्रयुक्त की जाती है।"

प्रत्येक लेखक की अपनी स्वतन्त्र शैली होती है। यह लेखक की पहचान होती है, शैली लेखक के विचार भाव, कल्पना, संस्कार, प्रतिभा व जीवन दृष्टि के अनुरूप अभिव्यक्ति पाती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य की संवाद योजना कुशलकारीगरि का रूप है। लेखन के सागर से शब्दों के मोतियों से रचित समस्त गद्य साहित्य है। भाषा में प्रयुक्त संवाद, सहज, सरल, भाव सम्प्रेषणीय आकर्षक व उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले हैं। संक्षिप्त संवादों की भाषा कसावट युक्त है, वहीं दीर्घ संवादों की भाषा में सरसता रोचकता व प्रवाहात्मकता विद्यमान है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय के शिल्प विधान को परिभाषित करना सूरज को दिया दिखाने जैसा है। वरिष्ठ लेखक डॉ. दयाकृष्ण विजय ने साहित्य जगत का आभासित किया है। शिल्प की सरल सुन्दर रौचक भाषा का निर्माण किया है। प्रगतिशील चिन्तन की शुभ परिणति है। समाज में

समानता तथा राष्ट्र की चिंता भी प्रभावी एवं चिंतन परक लेख पढ़ने को मिला। जीवन की ठोस वास्तविकता से हमें अवगत किया है। रमताराम, पायसपायी, उपन्यास में व्यक्ति की संत यात्रा का ज्ञान प्रदान किया है। समाज को उल्लासित करने वाली साहित्यिक रचनायें हैं। डॉ. विजय का मनोयोग चिन्तन एवं कथन भंगिमा की नवीनता विद्यमान है।

शिल्प में कथा, निबंध, नाटक, उपन्यास आदि सभी में गंभीर जीवनानुभूति समाज से गहरा जुड़ाव वैचारिक जीवन दृष्टि, शाश्वत, जीवन मूल्य विचार विश्लेषण की गहनता और चिन्तन की सूक्ष्मता विद्यमान है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. धर्मध्वज त्रिपाठी, प्रेमचन्द का कथा साहित्य समीक्षा व मूल्यांकन, पृ.सं.–48
2. धर्मध्वज त्रिपाठी, प्रेमचन्द का कथा साहित्य समीक्षा व मूल्यांकन, पृ.सं.–223
3. डॉ. प्रदीप शर्मा : हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान, पृ.सं.–22
4. देवीशंकर अवस्थी : त्रयी कहानी संदर्भ और प्रकृति, पृ.सं.–56
5. डॉ. हनुमान शुक्ला : कविता की पहचान, पृ.सं.–151
6. डॉ. हनुमान शुक्ला : कविता की पहचान, पृ.सं.–151
7. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–27
8. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–33
9. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–30
10. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–35
11. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–38
12. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–55
13. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, वसीयत, पृ.सं.–109
14. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : रमताराम, पृ.सं.–17
15. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : रमताराम, पृ.सं.–16
16. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : रमताराम, पृ.सं.–51
17. रमेश रावत : भाषा विज्ञान, पृ.सं.–317
18. रमेश रावत : भाषा विज्ञान, पृ.सं.–317
19. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–13
20. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–13
21. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–13
22. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–13
23. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–13
24. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–14
25. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–33
26. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–33

27. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–33
28. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–39
29. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–40
30. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–41
31. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–45
32. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–46
33. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–53
34. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–64
35. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–64
36. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–73
37. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–86
38. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–61
39. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–69
40. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–111
41. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–112
42. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–112
43. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–113
44. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–115
45. डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' : बड़ी मछली, पृ.सं.–120
46. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–15
47. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–29
48. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–28
49. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–28
50. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–49
51. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' पृ.सं.–50
52. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–78
53. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–86

54. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–2
55. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–7
56. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, डॉ. 'विजय', निबंध संग्रह, पृ.सं.–7
57. बड़ी मछली, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–121
58. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–87
59. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–86
60. सिंहासन, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–86
61. निबंध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–7
62. निबंध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–11
63. निबंध संग्रह, डॉ. दयाकृष्ण 'विजय', पृ.सं.–7,8,11
64. इन्दुप्रकाश सिंह, सुबोध हिन्दी व्याकरण, पृ.सं.–124
65. इन्दुप्रकाश सिंह, सुबोध हिन्दी व्याकरण, पृ.सं.–125
66. इन्दुप्रकाश सिंह, सुबोध हिन्दी व्याकरण, पृ.सं.–125
67. हनुमान शुक्ल, कविता की पहचान, पृ.सं.–17
68. हनुमान शुक्ल, कविता की पहचान, पृ.सं.–18
69. हिन्दी भाषा और विज्ञान, डॉ. विष्णुदत्त शर्मा, पृ.सं.–38
70. हिन्दी भाषा और विज्ञान, डॉ. विष्णुदत्त शर्मा, पृ.सं.–38
71. हनुमान शुक्ल, कविता की पहचान, पृ.सं.–38
72. हनुमान शुक्ल, कविता की पहचान, पृ.सं.–39
73. डॉ. रमेश रावत, भाषा विज्ञान, पृ.सं.–310–312
74. धर्मध्वज त्रिपाठी, प्रेमचंद कथा साहित्य समीक्षा और मूल्यांकन, पृ.सं.–237

उपसंहार

उपसंहार

वाग्वैदग्ध्य वह उत्कृष्ट शैली है जो अपने प्रभाव द्वारा सीधे हृदय को स्पर्श करती है। वाग्वैदग्ध्यता का अर्थ है वाक् कौशल या वाक् चातुर्य अर्थात् अपनी बात को इस प्रकार से प्रस्तुत करना की वह अधिक प्रभावशाली व हृदय स्पर्शी हो जाये। कबीर ने अपने दोहों में इसी वाक् चातुर्य द्वारा जनमानस को परिष्कृत करने की बात कही है। सूर का भ्रमर गीत अपनी इस उत्कृष्ट शैली के कारण प्रभावशाली बन पड़ा है इसके अन्तर्गत गोपियों व उद्धव के वार्तालाप में गोपियाँ अपने वाक् चातुर्य से उद्धव की ओर ऐसे व्यंग्य बाण छोड़ती है कि वह निरुत्तर हो जाते हैं। इसी को आधार बनाते हुए मैंने लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य में वाग्वैदग्ध्य के वैशिष्ट्य को ढूँढने की विनम्र कोशिश करते हुए 'डॉ. विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' विषय शोध प्रबंध के अन्तर्गत शोध कार्य को विस्तार देने का प्रयास किया है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय सामाजिक, सांस्कृतिक, लेखन के परिचायक है। डॉ. विजय हाड़ौती क्षेत्र के साहित्यकार हैं इन्होंने सांस्कृतिक दृष्टि से चिन्तन करते हुए शिक्षा, जीवन मूल्य साहित्य और संस्कृति, साहित्य और दर्शन साहित्य और इतिहास जैसे विषयों पर निबंध, कहानी, उपन्यास व नाटक की रचना की है। डॉ. विजय ने 'स्पष्ट' किया है कि शिक्षा ही मनुष्य को उसके जीवन मूल्यों से परिचित कराती है। डॉ. विजय ने चिन्तक व वरिष्ठ समालोचक के रूप में नाटक, कहानी, उपन्यास निबंध आदि सभी में भाषा व साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन किया है। भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार पर भारतीय दृष्टि से गद्य साहित्य की रचना की है। 'डॉ. विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' प्रस्तुत शोध प्रबंध में—

'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य' में हिन्दी गद्य साहित्य का उद्भव व विकास की यात्रा का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इसमें गद्य साहित्य की लोक यात्रा का परिचय है। वाग्वैदग्ध्य का अर्थ वाक् चातुरी अर्थात् अपनी बात को इस प्रकार प्रस्तुत करना की वह प्रभावशाली व हृदयस्पर्शी बन जाये। वाक् वैदग्ध्य, दक्षतापूर्ण अपनी बात रखना तथा उस पर अडिग रहकर साहित्य को श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के साथ प्रस्तुत करना ही वाग्वैदग्ध्य कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में सूर, तुलसी, मीरा, कबीर के साहित्य में वाक् कौशल व्यक्त हुआ है। शब्दों की अभिव्यक्ति को दर्शाने वाली वह शैली है जो हृदय को स्पर्श करती है। किसी भी भाषा के ज्ञान के संचित कोश को 'साहित्य' कहा जाता है। हिन्दी साहित्य की गंगा में दो धारायें प्रवाहित हैं एक गद्य और दूसरी पद्य। गद्य साहित्य निबंध पत्र, कहानी, नाटक आदि में विचारों को व्यक्त करना समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक किसी भी विषय पर अपनी बात प्रकट करने के लिए जिस ढंग को अपनाया जाता है उसे गद्य कहा जाता है। पद्य साहित्य में कविता, चौपाई, पद्यचरण आदि को लयबद्ध तरीके से रचित करना चरित्रावली, कवितावली, दोहावली आदि की रचना कर पद्य कौशल उजागर करने की निपुणता इस साहित्य में अपना स्थान रखती है।

डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने भी जिस समय लेखन प्रारम्भ किया वह एक संधि युग की भाँति था जिसमें एक ओर छायावादी स्वर था तथा दूसरी ओर प्रगतिवादी विचार धारा अतः डॉ. विजय के सृजन में इन दिनों की विचारधाराओं का अभूतपूर्व मिश्रण पढ़ने को मिलता है। डॉ विजय के कवि जीवन का प्रारम्भ सीनियर कक्षा के विद्यार्थी अकलेरा (झालावाड़) विद्यालय के विद्यार्थी के रूप में हुआ। डॉ. विजय की साहित्यिक प्रतिभा के साथ उनकी काव्य दक्षता भी छात्र जीवन में विकसित हुई अध्ययन काल में कोटा महाविद्यालय (हर्बर्ट कॉलेज) में सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों तथा गोष्ठियों का आयोजन एवं संचालन किया। डॉ. विजय के निबंधों में स्पष्टता, संक्षिप्तता, सूत्रात्मकता, सरलता, सहजता जैसे इनके गुणों ने निबंधों को प्रासंगिक तथा मूल्यवान बनाया है। डॉ. विजय की नैबंधिक दृष्टि वस्तुपरक है वे एक चिंतक है। निबंध के विषय का उदय, अन्य समानधर्मी विषयों की सूचना उनका तुलनात्मक इतिहास महत्त्व एवं प्रासंगिकता पर वे विशेष ध्यान देते हैं। विजय के लेखन का विशिष्ट अंदाज हमें पढ़ने को मिलता है। इनके निबंधों का संग्रह उनके निबंधकार के ज्ञानात्मक स्वरूप का परिचय देता है उनके निबंध संग्रह के अट्ठारह निबंधों को चार वर्गों में बांटा जा सकता है। प्रथम वर्ग – अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और रचनाकार, शिक्षा और जीवनमूल्य, अन्तर्राष्ट्रीयता साहित्य और संस्कृति, भारतीयता और साहित्य में पाँच निबंध संग्रहों को स्थान दिया है। द्वितीय वर्ग में विभिन्न युग चेतना को स्थान दिया है गुप्त जी की युग चेतना, पं. गिरधर शर्मा नवरत्न की युग चेतना, सूरदास का मानववाद आदि पर रचित रचनाओं को इस वर्ग में रखा है। तीसरे वर्ग में साहित्य सृजन की केन्द्रीय विधा, समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में, भारतीयता साहित्य में रामकथा की महत्ता, काव्य का स्वरूप और उसकी उपयोगिता कस्मैदेपाय हविषवधियम, छः निबंधों को रखा गया है। चौथे वर्ग में हाड़ौती अंचल की साहित्यिक परम्परा, राजस्थान की संत परम्परा और रामस्नेही, स्वामी रामचरण, राजस्थान की लोक भाषाएँ और राजस्थानी भाषा की एकरूपता की आवश्यकता को रखा जा सकता है। डॉ. विजय के प्रथम वर्ग की अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य की विशिष्ट परम्परा के चिन्तन स्त्रोत का आह्वान करती है। तो दूसरे वर्ग में तीन साहित्यकारों का मूल्यांकन है। जिसमें साहित्यिक वैविध्य का शास्त्रिय स्वरूप उभरता है और चौथे में हाड़ौती अंचल की लोकभाषा साहित्य एवं संत परम्परा आदि का विश्लेषण मिलता है। हिन्दी उपन्यास कला भी आधुनिक युग की देन है।

हिन्दी उपन्यासों की रचना भारतेन्दु युग से होती है परन्तु इसका पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है। गोदान प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों से भिन्न यथार्थवादी दृष्टिकोण से एक भारतीय कृषक की दीन–हीन दशा का चित्रण है। प्रेमचन्द के साथ या बाद में उपन्यासों की रचना करने वालों में जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, चतुरसेन, शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक, बेचेन शर्मा 'उग्र', प्रतापनारायण श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार इलाचन्द जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, निराला पंत, महादेवी वर्मा आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। प्रसाद के उपन्यास में भिन्न प्रकार के समाज का चित्रण है किन्तु शैली काव्यात्मक है। इसी क्रम में विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि ने प्रेमचन्द की शैली

अपनाते हुए सामाजिक उपन्यास लिखे जिनमें आदर्शोंमुख यथार्थवाद अधिक था हिन्दी कहानी लेखन में उपन्यास के बाद आज हर विषय पर लिखी जाने वाली कहानी हिन्दी जगत में विशिष्ट स्थान रखती है। उपन्यास की भाँति कहानियों की रचना का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है। हिन्दी कहानी का भी चरम उत्कर्ष प्रेमचन्द की लेखनी से हुआ इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य में कहानियों के अभाव की पूर्ति की। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी कला के क्षेत्र में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का योगदान चिरस्मरणीय है। इनकी 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। यही इनकी अक्षय कीर्ति का स्तम्भ भी है। जैनेन्द्र जी से हिन्दी कहानियों के वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। हिन्दी नाटकों की परम्परा संस्कृत नाटकों को आधार बनाकर विकसित हुई। राजा लक्ष्मण सिंह ने सन् 1919 में कालिदास के रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का हिन्दी अनुवाद किया। हिन्दी नाटकों की विस्तृत परम्परा का विकास सर्वप्रथम भारतेन्दु युग में हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली', भारतजननी, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, सतीप्रताप, विषस्य विषमौषधम जैसे नाटक लिखें प्रसाद जी हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी के रूप में आते हैं। डॉ. विजय ने भी विविध प्रकार के नाटकों का लेखन किया है। जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाते हुए भारतीय संस्कृति की गौरवमयी परम्परा व श्रेष्ठता को चित्रित किया गया है। आदि सम्राट (1974 ई.) – डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'आदिसम्राट' नाटक ऐतिहासिकता पर आधारित है।

छत्रपतिशिवाजी – ऐतिहासिक नाटक महाराष्ट्र के महान सम्राट् छत्रपति शिवाजी पर आधारित है उनका ओजस्वी चरित्र व गोरिल्ला युद्ध नीति द्वारा मराठा की आनबान व शान को कायम रखने में अहम् भूमिका निभाती है। उसका इसमें विस्तार से वर्णन मिलता है।

सिंहासन – ऐतिहासिक नाटक 'सिंहासन' की पारिवारिक कलह को दर्शाता है इसमें सिंहासन के प्रति एक भाई का प्रेम का निर्वहन करता है तथा दूसरे का राज्य की सेवा तथा प्रजाधर्म का निर्वहन करना है।

राग से विराग तक – की नाटिका में डॉ. विजय ने पति–पत्नी के राज्य के प्रति भाव को दर्शाया है इसमें राजा पूर्ण रूप से राज्य के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ व धर्म परायण है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के ज्ञान साहित्य जगत में उनके योगदान तथा शिक्षा जगत में हमें उनके लिखे गद्य साहित्य, नाटक, एकांकी, लघुकहानी तथा शिक्षा जगत में ज्ञान प्रदान करना है। वाग्वैदग्ध्य सृजन का आधार होता है साहित्यकार अनुभूति को संवेदना में रूपान्तरित करता है। अनुभूति में वाग्वैदग्ध्य लेखन कौशल प्रविष्ट होते ही साहित्य में व्यापकता आ जाती है। साहित्य चाहे किसी भी भाषा में लिखा गया हो संवेदना की प्रखरता ही उसे उत्कृष्ट बनाती है। सूरदास रचित भ्रमरगीत सार में गोपियों–उद्धव की वार्ता को सूरदास जी ने बड़ी ही रोचकता व वाक्चातुर्य से प्रतिपादित किया है। यही शैली पठन व पाठन में अपनी और आकर्षित करती है। वाक् वैदग्ध्य डॉ. विजय के लेखन की अभिव्यक्ति है। यह गद्य के विविध

रूपों में साहित्य का रूप धारण करती है जैसे कहानियों में संवाद शैली, नाटकों में शिल्प दृष्टि आदि। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का रचना संसार' पर आधारित है। कथा संग्रह 'उलझन' में मानवीय संवेदना को उजागर किया है। सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को कथा के आधार तत्त्व बताते हुए कथाओं में उजागर किया है। मनुष्य जीवन को अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं, सजग साहित्यकार अपने परिवेश से असम्पृक्त नहीं रह सकता वह वाग्वैदग्ध्य से जुड़कर अपने द्वारा अनुभूत सत्य को साहित्य सृजन के रूप में प्रस्तुत करता है। साहित्य में लेखन कौशल का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गद्य साहित्य जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि में किसी भी एक भाव या विचार पर आधारित होती है।

इसके अन्तर्गत डॉ. विजय के कथा संग्रह 'उलझन' (1953), 'स्वप्न और सत्य' (1989), 'बड़ी मछली' (1952) 'एक और क्रांति' (1995) का सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, परिवेशगत शहरी व ग्रामीण, मूल्यगत संदर्भ, पारिवारिक संदर्भों को व्याख्यायित करते हुए इनकी कहानियों में चित्रित तत्कालीन परिवेश, सांस्कृतिक मूल्य आदि का विश्लेषण किया गया है। तत्कालीन परिवेश और वर्तमान समय में लगभग 65 वर्ष का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। आज सांस्कृतिक संकट गहराया हुआ है। भौतिकवादी संस्कृति पनप रही है। सांस्कृतिक प्रदूषण बढ़ा है। मनुष्य समाज व संस्कृति से दूर होकर संवेदना शून्य होता जा रहा है साहित्यकार का संघर्ष सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए होता है क्योंकि मूल्य और संस्कृति एक दूसरे के पूरक होते हैं जो किसी भी समाज के मूल्य, सामाजिक मानदण्ड एक दूसरे व व्यवहार का स्वीकृत ढंग किसी समाज की संस्कृति को निर्धारित करते हैं। डॉ. विजय ने अपने कहानी संग्रह 'उलझन' में संस्कृति व जीवन मूल्यों पर आधारित कहानियों का चित्रण किया है। 'बड़ी मछली' (1962) डॉ. विजय का तीसरा कहानी संग्रह है। जिसमें 18 कहानियाँ संकलित है। सम्पूर्ण कहानियाँ किसी विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई है तथा समाज को दिशा प्रदान करती है कहानी संग्रह पचपन वर्ष पूर्व के परिवेश व घटनाओं को केन्द्र में रखकर कहानियों का कथ्य व शिल्प बुना गया है। सम्पूर्ण कहानियों में लोकजीवन की विविध झाँकियाँ प्रतिबिम्बित हुई है। जिनमें ग्रामीण परिवेश है, सामाजिक समस्याएँ हैं पारिवारिक संबंधों पर गहन चिन्तन व्यक्त हुआ है तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण कहानियों में व्यक्त किया गया है। संस्कार श्री विजय का मूलमंत्र है अतः प्रत्येक कहानी संस्कारित जीवन जीने की सीख अवश्य देती है कहानियों में संस्कृति व जीवन मूल्य बिखरे पड़े हैं। अतः ये कहानियाँ मूल्यवान है कहा भी गया है कि संस्कृति मनुष्य व समाज की अमूल्य धरोहर होती है।

साहित्य मनुष्य के दैनिक व्यवहार व भावों की प्रतिक्रिया में रचा जाता है "साहित्य का कार्य सीधे–सीधे उपदेश देना नहीं है पर वह भावना के माध्यम से पाठक के मन में मानवीय मूल्यों, उदात्त भावनाओं तथा नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है। डॉ. विजय के कहानी संग्रह 'बड़ी मछली' में ये सभी विशेषताऐं मिलती है। मूल्य व संस्कृति एक–दूसरे के पूरक हैं। समाज

के आदर्श, विश्वास, मान्यताएँ, मानदण्ड, धर्मप्रथाएँ, रुढ़ियाँ आदि सभी सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिम्बित है इन्हीं प्रतिबिम्बों से सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन होता है। डॉ. विजय की कहानियों में ये सभी विशेषताएँ व्यक्त हुई है। अपनी कहानियों के विषय में कहते हैं कि 'बड़ी मछली' उनका तीसरा कथा संग्रह है जिसमें घटनाक्रम, विचार, दर्शन, मनोविज्ञान परिस्थिति, नीति, राजनीति अधिक है। इसमें कथाकार को समझने में जहाँ आसानी है वहीं कहानी सपाटबयानी न होकर पठनीय, मानवीय वस्तु हो गई है। सभी कहानी में सूक्त वाक्य विशिष्ट संदेश के साथ चित्रित है प्रथम कहानी 'विवाहिता' में सम्बन्धों की पवित्रता दर्शायी गई है। जो आज भी प्रासंगिक है। दशरथ राय अपनी पत्नी वन्दना को छोड़कर कामना की ओर आकृष्ट होते हैं अंत में चोट लगने पर विवाहिता वन्दना ही उनकी सेवा करती है। कामना उन्हें छोड़कर चली जाती है। दशरथ राय सोचते हैं यदि वन्दना नहीं होती तो मुझे जीवन में न जाने कितने कष्ट ओर उठाने पड़ते पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि विवाह दाम्पत्य सम्बन्ध का नहीं परस्पर समर्पण का अनूठा सम्बन्ध है। यहाँ बताया है कि परस्पर विश्वास और समर्पण भाव ही दाम्पत्य जीवन का आधार होता है। जो आज के युग की महती आवश्यकता है। आज संबंध टूट रहे हैं बिखर रहे हैं। 'वसीयत' कहानी में पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे की समस्या, रिश्तों की प्रगाढ़ता, भाई–भाई का प्रेम अंत में सांमजस्य की भावना से समस्या का समाधान सुझाया गया है जहाँ विश्वेश्वर अपने पिता द्वारा लिखी वसीयत को चिता के हवाले कर देता है। जिसमें पिता ने अकेले विश्वेश्वर को सम्पत्ति का वारिस बना दिया था। 'बड़ी मछली' संग्रह शीर्षक कथा है जो प्रतीकात्मक है। यह अर्थ प्राधान्य व सम्बन्धों की रिक्तता पर आधारित है अस्तित्ववादी दर्शन से आज प्रेम का भाव तिरोहित हो रहा है। मनोहरा व सम्पत्ति एक दूसरे को प्रेम करते हैं विवाह करते हैं परन्तु सम्पत्ति मनोहरा को भूलकर 'अर्थ' के पीछे भागने लगता है। 'प्रेम की गहराई का पानी सूखकर उथला लथपथ कीचड़ हो गया था। वह अपने धन कमाने में लगा था' मनोहरा स्वयं को उपेक्षित महसूस करती है। वह सोचती है समय बीतने के साथ सम्पत्ति का व्यवहार भी बदल गया सम्पत्ति की आँखों में अब न वह प्यार की मादकता है न अधरों पर स्मित की मदिरता मस्ती का वह मदभरा आलम कपूर हो गया है। मनोहरा अंत में कहती है 'बड़ी मछली' में छोटी मछली को निगल लिया। 'बड़ी मछली' के लिये वह नोटों की गड्डी की ओर ईशारा करती है आज भी 'अर्थ' प्रधान संस्कृति ने पति–पत्नी, माता–पिता, पिता–पुत्र आदि रिश्तों को प्रभावित किया है कहानी आज भी प्रासंगिक है।

"मोहभंग" कहानी में बुजुर्गों की समस्या पर विचार करते हुए समाधान भी सुझाया गया है। कहानी में मुरारीलाल शर्मा अपने पौत्र को अपने पास रखना चाहते हैं विश्वेन्द्र नारायण वकील है। अचलेश्वर अपने पिता को नाराज किये बिना अपने पुत्र को साथ रखना चाहता है। वकील विश्वेन्द्र नारायण बुजुर्गों की समस्या का समाधान करने के लिये उनका मनोविज्ञान को समझकर व्यवहारिक ज्ञान से समस्या का समाधान करते हैं। 'ममत्व' कहानी में अन्तर्जातीय विवाह से उपजी समस्या को बताया गया है। कार्तिक की पुत्री प्रतिभा ने विश्वास आहुजा से विवाह कर लिया है। कार्तिक पुत्री को अपनाने को तैयार नहीं होता। अंत में प्रतिभा के पुत्र होने पर वह

राखी पर अपने पिता के घर बच्चे के साथ आती है। सब उसे स्वीकार कर लेते हैं अश्विनी कहता है— "ममत्व स्वाभिमान से अधिक प्रबल संवेग है।"

'स्वाभिमान' कहानी में माता व पुत्र के बीच के स्वाभिमान की कथा है। कान्ता का पुत्र अनिल है विमल जंमीदार है मिल—मालिक है व कान्ता की मजबूरी का फायदा उठाकर उसके घर आता है। अनिल बड़ा होने पर विमल कुमार का आना बर्दाश्त नहीं करता वह माँ से कहता है कल से यह हमारे घर नहीं आयेगा माँ कान्ता उसे समझाती है। वह कहता है 'माँ तुम नहीं समझती किसी के स्वाभिमान को चोट कितनी गहरी पहुँचती है।' 'संकल्प' कहानी में जातिगत भेदभाव का चित्रण किया गया है। किशोर रूपा से कहता है 'तूने सारे गाँव का पानी मैला कर दिया है.........गाँव वाले अब क्या पीएगें?' कहानी प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुँआ' कहानी का स्मरण कराती है। स्त्री विमर्श के विविध अध्याय यह खुलते दिखाई पड़ते है। जहाँ रूपा संकल्पबद्ध होकर जीर्ण शीर्ण रुढ़ियों और योग पंथी मान्यताओं को मिटाकर एक स्वस्थ्य सुन्दर और साम्यवादी परम्परा के निर्माण का संकल्प लेती है। नारी स्वतन्त्रता का पक्ष रखते हुए रूपा कहती है— जब तक अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा नहीं होगी तब तक नारी अपने पैरों पर नहीं खड़ी होगी नारी शिक्षा न केवल दरिद्रता मिटायेगी बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस देगी तथा नर और नारी के बीच की समानता का पथ प्रशस्त करेगी। कहानी तत्कालिन परिवेश की है परन्तु विचार व समस्याएँ समसामयिक है, नारी शिक्षा, नारी आत्मनिर्भरता की बात जातिगत भेदभाव को खत्म करना जैसी समस्या कहानी में उठायी गई है। 'भविष्यदृष्टा' कहानी में जीवदर्शन, निर्गुण, सगुण आदि की विस्तार से व्याख्या की गई है। शिष्य अश्विनी से बाबा कहते हैं 'परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है उसका कोई रूप नही है। वह समान रूप से व्याप्त परम चैतन्य सत्ता है, जो प्रवृत्ति को आवृत भी दिए है और प्रकृति से पृथक भी है वह प्रकृति नहीं है।' कहानी में वैराग्य, निष्काम, कर्मयोग की व्याख्या की गई है। बाबा अश्विनी को निष्काम कर्म के विषय में कहते हैं— "बाह्य साधन नहीं है। साधना है शरीर जितना चाहता है उसकी संपूर्ति का। कर्म करते हुए भी उसमें रमण नहीं। फलेच्छा नहीं। यही निष्काम कर्म है। संसार में रहकर भी संसारबद्धता नहीं।" कहानी में आत्मा परमात्मा निष्काम कर्म आदि की गहन व्याख्या करते हुए चिन्तन प्रस्तुत किया गया है 'दाख' कहानी में संस्कारों की महत्ता बतायी गयी है। 'आधा पराँठा' कहानी में भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ बताई गयी है। कहानी में बताया गया है प्रफुल्ल की पत्नी माधुरी शहर में रहकर भी ग्रामीण जैसी ही है। उसने परम्पराओं को दृढ़ता से अपनी मुट्‌ठी में जकड़कर रखा है वह पूरी तरह भारतीय महिला है। पश्चिम की हवा उसे नहीं लगी है।

'अवतार' कहानी में रैगिंग जैसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है। सम्पूर्ण कथा संग्रह जीवन के विविध आयाम सूक्त प्रयोग, आदर्श वाक्यों, मुहावरों व कहावतों से युक्त है जैसे 'ममत्व' स्वाभिमान से भी अधिक प्रबल संवेग है।

"घी पड़ने पर आग अधिक धधकती है लकड़ी रगडने से आग उगलती है। पत्थर टकराने से चिंगारी निकलती है।"

"विधाता के पूर्वजन्मों के संस्कारों का यह प्रतिफल है।"

"संस्कार सही है वे महिलाओं के माध्यम से एक दूसरे के पास जितनी तेजी से जाते है उतने पुरुषों से नहीं।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है। सम्पूर्ण कहानी संग्रह विविध विषयों के साथ सुन्दर शिल्प में सजकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। जिसमें लोकजीवन है लोक रंग है, लोक विश्वास है, मान्यताएँ है, धर्म है, आस्था है, दर्शन की विशेष व्याख्या है बुहारा, नटना, गर्र गर्र, खेजिया जैसे आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी कहानियों में किया गया है। 'बड़ी मछली', कथा संग्रह में डॉ. दयाकृष्ण विजय के गंभीर चिन्तन को विविध विषयों के साथ विविध कहानियों में चित्रित किया है जो तत्कालीन परिवेश को व्यक्त करने के साथ समाज को सीख व दिशा निर्देश भी प्रदान करता है। इसी क्रम में नाटकों के अन्तर्गत 'आदि सम्राट् (1983 ई.)' ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया नाटक है जिसमें 'छत्रपति शिवाजी', महाराष्ट्र के महान सम्राट शिवाजी के चरित्र पर आधारित है उनका औजस्वी चरित्र व गौरिल्ला युद्ध नीति मराठा की आन–बान–शान को दर्शाया गया है 'सिंहासन' नाटक में पारिवारिक कलह तथा एक भाई का सिंहासन के प्रति प्रेम दूसरे राज्य की सेवा तथा प्रजा धर्म के निर्वहन को चित्रित किया गया है, 'राग से विराग तक' में डॉ. विजय पति–पत्नी के राज्य के प्रति समर्पण भाव तथा कर्त्तव्यनिष्ठा धर्मपरायणता का भाव प्रमुखता से उभारा है। डॉ. विजय के उपन्यास रमताराम (2004 ई.) तथा पायसपायी (2008 ई.) में प्रकाशित है जो श्री स्वामी रामचरण जी के जीवन को समर्पित है इसमें संतों का समाज पर प्रभाव के दर्शाया है मानव जीवन शैली में उच्च आदर्शों, धर्म, भक्ति, करुणा तथा त्याग भावना को दर्शाया है। मानव जीवन शैली, मानव मूल्य, सर्मपण, भाव, धर्म परायणता, आदर्श एवं उदारता के भाव को कथासूत्र में पिरोया है संतो का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव भी इन उपन्यासों में विस्तार से वर्णित है। डॉ. विजय के निबंध अत्यन्त गंभीर विषय वस्तु के साथ प्रस्तुत हुए है उनके निबंधों में विचारों की स्पष्टता वेग सम्मत समाधान बोधगम्य चिन्तन की सरलतम अभिव्यक्ति उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता है जिसमें भाव गांभीर्य सांस्कृतिक उच्च आदर्श भारतीय दर्शन आदि को विस्तार से विश्लेषित किया है। उनके निबंध संग्रह की विस्तृत श्रृंखला है जिसमें गीता अनुशीलन, राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, विचारों के अमलतास, साहित्य संस्कृति और युग बोध, वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, संस्कृति के वागर्थ प्रमुख निबंध संग्रह है। यह निबंध भारतीय संस्कृति, दर्शन, मूल्य, युगबोध, राजस्थानी साहित्य सृजन तथा राजस्थानी हिन्दी महाकाव्यों में चित्रित सांस्कृतिक चिन्तन को दर्शाते है। विषयवस्तु व भाषा की दृष्टि से डॉ. विजय के यह निबंध संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व समाज को दिशा निर्देश देने वाले है इनके सम्पूर्ण निबंधों में भारतीय साहित्य में अन्तर्निहित चिन्तन व आदर्श को दर्शाया गया है। इसी क्रम में 'संस्कृति का वागर्थ' (2005) निबंध संग्रह में अतिमहत्त्वपूर्ण निबंध संकलित है। जिसमें डॉ. विजय ने संस्कृति शब्द को भारतीय परिप्रेक्ष्य में विविध प्रकार से व्याख्यायित किया है। वह कहते हैं। "संस्कृति आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही स्थितियों की दिग्दर्शिका है सभ्यता बदलती रही है पर संस्कृति के मूल्य शाश्वत होते हैं वे नहीं बदलते। केवल युगानुसार इनका व्यवहार बदलता है

यही संस्कृति की सापेक्षता होती है संस्कृति जहाँ प्राकृत का परिष्कृत रूप है वहीं उसमें लोकहित का भाव भी प्रमुख होता है इस हेतु संस्कृति शिव कृति है सत् शिव सुन्दर जहाँ है वहीं संस्कृति है।" डॉ. विजय का सम्पूर्ण साहित्य भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत है इनके सम्पूर्ण साहित्य में भारतीय संस्कृति की अजस्र धारा निर्बाध रूप से प्रवाहमान है प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृति की विशद व्याख्या प्रस्तुत करते हुए संस्कृति की विशेषताओं को भी व्याख्यायित किया गया है। इसके अन्तर्गत भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति के मूल अन्तर को स्पष्ट किया गया है। संस्कृति की विविध परिभाषाओं में पाणिनी से लेकर डॉ. मगल देव शास्त्री अरविन्द घोष, सर्वपल्ली राधाकृष्णन की परिभाषा दी गई है। डॉ. देवराज के अनुसार संस्कृति का संबंध मनुष्य की बुद्धि स्वभाव और मनोवृत्ति से होता है। परम्परा का प्राचीन रूप इसमें दिखाई देता है। अब आगे प्रश्न उठता है कि संस्कृति व समाज में पहले कौन बना स्पष्ट है समाज पहले बना। उसने ही संघर्ष किया और समाज का निर्माण हुआ। संस्कृति व सभ्यता का अन्तर भी निबन्धों में स्पष्ट किया गया है कि संस्कृति आध्यात्मिक होती है। सभ्यता यान्त्रिक। संस्कृति जीवन का अन्तरिक सौन्दर्य होती है जीवन जीने की दृष्टि, बौद्धिक विराट का प्रतीक होती है। शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा, समग्र सार्वदर्शिका, सार्वकालिक चिन्तन होती है। वही सभ्यता बाह्य सौन्दर्य भौतिक विकास का दिग्दर्शन, गतिशील तत्कालिक व क्षणिक चिन्तन होती है। सभ्यता व संस्कृति दोनों की श्रेष्ठता ही हमारी आध्यात्मिक उन्नति का परिचायक होता है। "डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति मानते हैं।" इस प्रकार संस्कृति का संबंध आध्यात्म से है जबकि सभ्यता का संबंध विज्ञान से है कहा भी गया है– "सभायां साधवः सम्याः।" सभ्यता, जैसा, विदित है, सभ्य के आगे ता प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। सभाओं में व्यवहार की मधुरता, वचन की शिष्टता तथा व्यक्ति देह की शोभिता सभ्यता की सूचक है। सभ्यता बाह्य परिष्कृति है। संस्कृति–आन्तरिक संस्कृति और परम्परा के विषय में विस्तार से व्याख्या डॉ. विजय करते हैं परम्परा में लोककल्याण का भाव निहित होता है। संस्कृति की निरन्तर अनुपालना परम्परा में परिवर्तित हो जाती है किसी भी परम्परा के पीछे लोकस्वीकृति अनिवार्य होती है। लोक स्वीकृति सदा काल सापेक्ष होती है। इस काल सापेक्षता के निकष पर सतत परिमार्जित संशोधित तथा संवर्धित होते रहना ही परम्परा की जीवन्तता है। कई बार परम्पराएँ रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है जो मनुष्य के लिए निर्वहन करना कठिन हो जाती है अतः जिस परम्परा का परिष्कार संशोधन एवं परिवर्धन होता रहता है वह दीर्घ जीवी होती है।

इस प्रकार अंत में डॉ. विजय का रचना संसार अत्यन्त उत्कृष्ट गांभीर्य एवं भाषा की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।

तृतीय अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य' शीर्षक से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत प्रकृति और परिवेश, आदर्शवाद, राष्ट्रीयता, मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि विविध पक्षों का विवेचन विभिन्न परिभाषाओं तथा उदाहरणो ंके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रकृति और परिवेश के अन्तर्गत डॉ. विजय ने अपने गद्य साहित्य के अन्तर्गत प्रकृति और तत्कालिन परिवेश को चित्रित किया है।

चरित्रों की प्रकृति तथा प्राकृतिक सौन्दर्य और परिवेश को सूक्ष्मता को साथ चित्रित किया हैं इनके नाटक 'सिंहासन', 'छत्रपति शिवाजी', 'आदि सम्राट्' सभी में ऐतिहासिक परिवेश तथा पात्रानुकूल प्रवृत्ति का चित्रण डॉ. विजय के वाक् कौशल को दर्शाता है। 'आदि सम्राट' में डॉ. विजय ने स्वर्गलोक की प्रकृति को चित्रित किया है। 'छत्रपति शिवाजी' नाटक में डॉ. विजय ने ऐतिहासिक संदर्भ को लिया है। इसमें वीर शिवाजी को शूरवीर मराठा के रूप में प्रस्तुत करते हुए मराठा और मुगल के संघर्षों को बड़ी गंभीरता से व्यक्त किया है। जबकी 'राग से विराग' नाटक की प्रकृति में आध्यात्मभाव प्रमुखता से मिलता है। नाटक की प्रकृति सांसारिक माया मोह के बंधन को छोड़कर आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने का संदेश देती है। 'रमताराम' उपन्यास में स्वामी रामचरण की संतप्रकृति तत्कालीन परिवेश तथा समाज कल्याण का भाव इसमें अर्न्तनिहित है। इसी क्रम में आदर्शवाद व राष्ट्रीयता को भी डॉ. विजय ने अपने सभी नाटक, उपन्यास और निबंधों में नवीन दृष्टि के साथ स्थान–स्थान पर व्यक्त किया है। एक स्थान पर वह कहते हैं– "कि सृष्टि का आधार सारतत्त्व जड़पदार्थ नहीं अपितु चेतना है आदर्शवाद, जड़ता या भौतिकवाद का विपरित रूप प्रस्तुत करता है।"

राष्ट्रीयता से परिपूर्ण चेतना में डॉ. विजय का सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण है जिसमें स्थान–स्थान पर हमें इनके गद्य साहित्य में त्याग समर्पण सांस्कृतिक चिन्तन का भाव दृष्टि गोचर होता है। उनके समस्त निबंध संग्रह राष्ट्रीय चेतना को समर्पित है जिसमें राष्ट्रीयता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि– "किसी व्यक्ति और किसी संप्रभु राज्य के बीच के कानूनी संबंध को राष्ट्रीयता कहते हैं। राष्ट्रीयता उस राज्य को उस व्यक्ति के ऊपर कुछ अधिकार देती है और बदले में उस व्यक्ति को राज्य सुरक्षा व अन्य सुविधाएँ लेने का अधिकार देता है। अधिकारों की परिभाषा अलग–अलग राज्यों में भिन्न होती है। आमतौर पर परम्परा व अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हर राज्य को यह तय करने का अधिकार देते हैं कि कौन व्यक्ति उस राज्य की राष्ट्रीयता रखता है और कौन नहीं। इनके अधिकांश निबंध व कहानियाँ मानवीय मूल्यों को समर्पित हैं। मानवीय मूल्यों के विविध रूप इनके विभिन्न गद्य साहित्य में चित्रित हुए हैं। व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार के मूल्यों का भाव तत्त्व मानव की मानवीयता पर निर्भर करता है। इन सबके अन्तर्गत मानव को मानव से जोड़ने का भाव प्रमुख है। वर्तमान परिवेश में जहाँ मूल्यों का विघटन हो रहा है। बढ़ती महत्त्वाकांक्षा से आधुनिक जीवन प्रणाली, आत्मकेन्द्रीत होता मनुष्य, स्वयं को स्थापित करने की झटपटाहट ने मूल्यों को प्रभावित किया है। डॉ. विजय के कहानी संग्रह 'उलझन', 'बड़ी मछली', 'एक और क्रांति', 'स्वप्न और सत्य' इन सभी में जीवन मूल्य की श्रेष्ठता को दर्शाया गया है। सामाजिक मूल्यों में डॉ. विजय ने कहा है कि 'सामाजिक मूल्य सामाजिक मान' है जो कि सामाजिक जीवन के अन्तः संबंधों को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। सामाजिक मूल्य के अनुसार व्यक्ति को अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करना चाहिए इसके विपरित यदि कोई अन्तर्जातीय विवाह करता है तो सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि उस सामाजिक जीवन के विभिन्न क्रिया कलाप से संबंधित विभिन्न प्रकार के मूल्य प्रभावित होते हैं। पिता से सम्बंधित कुछ मूल्य होते हैं तो सम्पूर्ण

राष्ट्र के शासन के सम्बन्ध में भी मूल्य हुआ करते हैं। उसी प्रकार विवाह से सम्बन्ध में सामाजिक धार्मिक आचरण राजनीति, आर्थिक जीवन आदि के संबंध में एकाधिकार मूल्य होते हैं। समस्त मूल्यों में एक बोधात्मक तत्त्व होते हैं। दार्शनिक मूल्यों के अन्तर्गत डॉ. विजय ने जीवन दर्शन की गहराई व श्रेष्ठता को विविध रूपों में उल्लेखित किया है। इनके निबंध संग्रह 'संस्कृति के वागर्थ', 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य' आदि में भारतीय दर्शन के अन्तर्गत धर्म, संस्कृति, आत्मा, दर्शन आदि का विवेचन किया है। वह कहते हैं दर्शन संस्कृति का विशिष्ट अंग है संस्कृति के चार उपादानों में प्रथम अंग आस्था व दार्शनिक चिंतन पर आधारित है। हमारे यहाँ षट दर्शन है जिसमें जीवन का सार भरा पड़ा है। भारतीय जीवन में दर्शन की विकास यात्रा अत्यन्त दीर्घ है। जो ब्रह्मा के मंत्र योग से वेद, ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यक, उपनिषद तथा गीता तक हमें प्रवृत्ति मार्गीय दर्शन दिखाई देता है। भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषता है निवृत्ति और प्रवृत्ति निवृति में जगत को मिथ्या मानते हुए आत्मदर्शन को महत्त्व दिया गया है। इस क्रम में रामानन्द परम्परा के सभी संत कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा जगत को मिथ्या मानते हुए माया मोह के बंधन से छूटने की बात यहाँ करते हैं। वहीं प्रवृत्ति मार्ग में कर्म काण्ड द्वारा सांसारिकता का उपभोग करते हुए विश्वकल्याण की भावना प्रमुख है।

चतुर्थ अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य के विविध आयाम' के अन्तर्गत सामाजिक समस्याएँ, आर्थिक संदर्भ, आध्यात्मिकता तथा राजनीतिक संदर्भों के साथ डॉ. विजय के गद्य साहित्य के चिन्तन के विविध आयामों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत दहेज प्रथा, जातिप्रथा, गरीबी अन्तर्जातीय विवाह और तत्कालीन परिवेश, निर्धनता, बेकारी दाम्पत्य जीवन की टूटन त्रिकोणीय प्रेम आदि समस्याओं को प्रमुखता से उभारा गया है। क्योंकि सामाजिक समस्याएँ वे हैं जो समाज में सामंजस्य भाव, सुदृढ़ता एवं सामाजिक मूल्यों के लिए खतरा मानी जाती है। जातिवाद से, बेरोजगारी से व्यक्ति के मन में असंतोष, वैराग्य का भाव पनपता है जो आपस में कटुता का भाव जाग्रत करता है। कहानी 'विवाहिता' त्रिकोण प्रेम पर आधारित है। 'ममत्व' में अन्तर्जातीय विवाह पर आधारित तथा 'सोने की मोहरें' में रिश्तों से ज्यादा धन पर अपना ध्यान केन्द्रीत किये जाने को बताया है। यह कहानियाँ डॉ. विजय के सामाजिक चिंतन को प्रस्तुत करती है। धर्म व संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए डॉ. विजय कहते हैं कि धर्म संस्कृतिक नैतिक शास्त्र होता है धर्म संस्कृति का जागतिक शक्ति है। धर्म एक शाश्वत तत्त्व है जो शरीर मन को शुद्ध करता है। 'संस्कृति के वागर्थ' निबंध संग्रह में डॉ. विजय ने संस्कृति और धर्म की विस्तार से व्याख्या की है। इसी अध्याय के अन्तर्गत परिवारिक विच्छेद, तलाक, वृद्धावस्था की समस्याएँ, त्रिकोण प्रेम, पारिवारिक समस्याएँ आदि है। सभी समस्याओं को परिभाषित करते हुए विविध रूपों में डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में जातिगत संदर्भ, आर्थिक संदर्भ, पारिवारिक समस्याओं को सूक्ष्मताओं के साथ व्यक्त किया है। भूमण्डलीकरण के दौर में आज विकास के नाम पर अनेक योजनाएँ बनाई जाती है। किन्तु अशिक्षा अज्ञानता के कारण आम आदमी इन सबका लाभ नहीं उठा पाता डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में इन सब समस्याओं जैसे एकाकीपन, निराशाभाव, टूटन को दर्शाया है। आज महँगाई की मार चारों तरफ पड़ रही है।

मनुष्य आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहा है। आजादी के बाद और आज के समय के बीच तेजी से महँगाई बढ़ी है। गरीब वर्ग अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति मुश्किल से कर पा रहा है। डॉ. विजय की कहानी 'स्वप्न और सत्य', 'एक और क्रांति', वर्ग विशेष पर आधारित है। 21वीं सदी में आज भी समाज में विषमता व्याप्त है महँगाई व भ्रष्टाचार बढ़ा है मजदूर वर्ग जहाँ जो दो जून की रोटी के लिए संघर्षरत है वहीं उच्चवर्ग अपने दिखावटी जीवन के कारण समर्थ व सक्षम दोनों है। फिर भी तनाव ग्रस्त है। मनुष्य कभी ज्ञान प्राप्त करता है तो कभी लोक व्यवहार को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण करता है। 'सोने की मोहरे', 'केले की पूजा' आदि कहानियों में समाज के यथार्थ स्वरूप को चित्रित किया गया है। 'गाय की पूँछ' कहानी में आस्था व धन परायणता का भाव प्रमुखता से उजागर हुआ है। जहाँ बाढ़ आने पर श्री धोकड़े जी को 'गाय की पूँछ' से सहारा मिलता है। 'सोने की मोहरे' नामक कहानी में मानव मन का लाल वृद्धों की उपेक्षा का भाव व स्वार्थ की प्रवृत्ति यहाँ उजागर हुई है। इसप्रकार डॉ. दयाकृष्ण की गद्य साहित्य की मूल संवेदना में जीवन के विविध संदर्भों जैसे आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक व दार्शनिक भाव को सूक्ष्मता से परिभाषित करते हुए डॉ. विजय ने स्थान–स्थान पर इनका उल्लेख किया है।

पंचम अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य व समसामयिक संदर्भ के अन्तर्गत आंचलिकता पारिवारिक संदर्भ, वर्तमान परिवेश तथा परिवेशगत (ग्रामीण व शहरी) पर आधारित है। ऐतिहासिक परिवेश के अन्तर्गत संदर्भ डॉ. विजय ने 'आदि सम्राट', 'राग से विराग तक', 'सिंहासन', 'छत्रपति शिवाजी' आदि सभी नाटकों में अपने काल संदर्भपरक राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का चित्रण समाविष्ट किया है। राष्ट्रीयता का भाव, ऐतिहासिक संदर्भ यहाँ प्रमुख है। कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति व सांस्कृतिक विकास के इतिहास को पाठक से परिचित कराना इसका प्रमुख उद्देश्य है। प्रवृतिगत विशेषताओं के अन्तर्गत राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक चिंतन, जीवन मूल्यों की स्थिरता विश्व कल्याण एवं समन्वयवादी भावनाओं का विकास ही इनके नाट्यकर्म का मूल है। प्रवृतिगत विशेषताओं के इस क्रम में आगे कथाकार के रूप में डॉ. दयाकृष्ण विजय कथा–शिल्प प्रक्रिया में हमारे समक्ष कहानी के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हैं डॉ. विजय की कहानियों का कथ्य सार्थकता और उद्देश्य की समग्रता के साथ गहरी संवेदनशीलता, मानवीय सरोकार तथा सांस्कृतिक धरोहर के प्रति आग्रहशीलता से युक्त है। 'स्वप्न और सत्य' कहानी संग्रह में डॉ. विजय ने यथार्थ और कल्पना को अपनी लेखनी से उतारा है। शब्दों की कल्पना और सत्य को रोचकतापूर्ण लिखा है। शिल्पगत और आधुनिक कथाशिल्प के निकष पर वे सही न दिखाई देते हों लेकिन शिल्प कहानी की अभिव्यंजकता और समसामयिक है। जीवन के सभी पक्षों पर मानव मन का जीवन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आधार पर रचित है। डॉ. विजय के समग्र साहित्य में आंचलिकता की गंध समायी हुई है। आंचलिक परिवेश में रीति–रिवाज, परम्परा, भाषा व संस्कृति की विशिष्ट छाप होती है। यह सभी विशेषताएँ हमें डॉ. विजय के निबंध, कथा संग्रह, नाटक सभी में दृष्टिगोचर होती है। डॉ. विजय के कथासाहित्य में हाड़ौती अंचल की गंध, लोक संस्कृति, परम्पराएँ, रीति–रिवाज, आस्थाएँ तथा धार्मिक विश्वास चित्रित हुए हैं। इनकी कहानियों में हाड़ौती अंचल का खान–पान, रहन–सहन व

परिवेश चित्रित है। 'गृह लक्ष्मी' कहानी में हाड़ौती अंचल का उदाहरण दृष्टव्य है ''गृह लक्ष्मी ने जैसा आदेश दिया था वैसा ही दीप जला, अगरबत्ती ने धुँआ छोड़ा, जल से केले का स्नान हुआ, पीला वस्त्र चढ़ा, हल्दी का तिलक लगा, पीले फूल चढ़े, पीले गुड़ का भोग लगा तथा पीला आम जिसे पण्डित जी पहले ही ले आये थे। चढ़ाया गया बाद में आरती हुई।'' इसी क्रम में निबंध संग्रह 'राजस्थानी काव्य साधना अब और तब' के निबंधों में हाड़ौती अंचल की गंध समायी हुई है। इन निबंधों में अनेक स्थानों पर हाड़ौती अंचल की प्राकृतिक छटा, रहन–सहन, आस्था और विश्वास व्यक्त हुआ है। पारिवारिक संदर्भ में परिवार व समाज का चित्रण उल्लेख व परिवेश जिसमें ग्रामीण व शहरी दोनों ही समाहित है डॉ. विजय के कथा साहित्य में मिलता है। इनका कहानी संग्रह 'उलझन' (1953 ई.) जिसमें तत्कालिक परिवेश की कहानियाँ संकलित है। जिसमें ग्रामीण परिवेश का चित्रण अधिकांशतः मिलता है। शहरी परिवेश का चित्रण नगण्य है। यह सभी कहानियाँ सूक्त वाक्य से परिपूर्ण है। यहाँ सामाजिक सरोकारों का धर्म निर्वहन दिखाई पड़ता है। इनमें अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण में मिलता है। जातिवाद, अशिक्षा, बेरोजगार, अन्तर्जातीय विवाह, त्रिकोण प्रेम का सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया गया है। परिवेशगत संदर्भों में आजादी के तुरन्त बाद की समस्या व सोच को भी डॉ. दयाकृष्ण विजय ने बड़ी गहराई के साथ चित्रित किया है। एक निबंध में परिवेश को चित्रित करते हुए वह कहते हैं कि– "वर्तमान परिवेश में साहित्य में बहुत बड़ा बदलाव आजादी से 69वें वर्ष बाद निरन्तर परिवर्तन हमें पढ़ने को मिल रहा है। चाहे वह किसी युग से जुड़ा हो अथवा किसी भी पहलू में कुछ नयी सोच मिलती है। 'गाय की पूँछ', 'गृह लक्ष्मी', 'सोने की मोहरे', 'आम का पेड़', 'आधा परांठा' व 'अवतार' कहानियाँ ग्रामीण परिवेश को दर्शाती है। जिसमें गाँव का जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य, तालाब का किनारा, अटूट धार्मिक आस्था सभी कुछ दिखाई देता है। ग्रामीण परिवेश का प्राकृतिक सौन्दर्य अपने आप में विशिष्ट होता है उदाहरण दृष्टव्य है– "सूरज ने गोखड़ों पर दस्तक दे दी तब तक कश्यप के घर की आज कुण्डी नहीं खुली कल तक जहाँ मेहमानों पाहुनों की भीड़ का जमघट था, वहाँ सुबह–सुबह मौन का गहरा सन्नाटा छाया हुआ।" 'वसीयत' कहानी में ग्रामीण जीवन की विवशता, मजबूरी, गरीबी का बड़ा मार्मिक चित्रण कहानी में मिलता है। वास्तव में गाँव की सामान्य जीवी एक विधवा। किसी परिवार से सेवा भी कितनी माँगती है। दो समय रुखी–सूखी रोटी। वर्ष में दो थोड़े छोटे–मोटे कपड़े। न कभी आना, न कहीं जाना फिर विद्योत्तमा की आँखें चली गई थी। जर्जर देहयष्टि हो गई थी। तीर्थ यात्रा करती तो उसकी भी संभावना शेष नहीं रही। भारतीय संस्कृति का प्रभाव विशेषकर कहानियों में डॉ. विजय ने शहरी परिवेश में व्याप्त समस्याएँ जैसे अन्तर्जातीय विवाह, त्रिकोण प्रेम, जातिवाद, कुरीतियों को दर्शाया है।

आज 'अर्थ' प्रदान युग है। मनुष्य के समस्त क्रियाकलाप अर्थ द्वारा संचालित है। परिणाम स्वरूप प्रतिस्पर्धा, भागदौड़, असंतोष, आशंका, एकाकीपन मनुष्य के जीवन में प्रविष्ट हुए है। आज विज्ञान और तकनीकी के युग में सुख सुविधाएँ बढ़ी है। मनुष्य सम्पन्न हुआ है उसकी जीवन शैली बदली है, परन्तु इससे उसकी शांति छिन गई है। यह सच है कि मनुष्य जिस परिवेश में रहता है उससे अलग होकर जीने की कल्पना वह नहीं कर सकता। गाँवों में शहरी सभ्यता ने

अपने पैर पसारने शुरु कर दिये हैं। गाँव सिमट रहे हैं। जीवन मूल्य प्रभावित हुए। आस्थाएँ बदली है। भौतिक परिवेश के चित्रण में नगरों के परिवेश को लिया जा सकता है। जिसके अन्तर्गत शहरी वातावरण, खान–पान, रहन–सहन, जीवन शैली विचार आदि समाहित है।

षष्ठ अध्याय – 'शिल्प विधान' से है इसके अन्तर्गत भाषा व शिल्प के महत्त्व को परिभाषा द्वारा व्याख्यायित किया गया है। साहित्यकार अपनी अनुभूतियों व भावों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है जिन उपादानों, प्रक्रिया, ढंग व कौशल से उन अनुभूतियों को चित्रित करता है। वह शिल्प पक्ष कहलाता है। शिल्प मनोभावों की अभिव्यक्ति को साकार रूप प्रदान करता है। रचनाकार अनुभूतियों को सशक्त, सरल विशिष्ट बनाने के लिए शिल्प का प्रयोग करता है। विचारों, तथ्यों, भावों, घटनाओं तथा प्रसंगों को आकार गत स्वरूप शिल्प द्वारा ही प्राप्त होता है। रचना को रोचक व व्यवस्थित बनाने में शिल्प की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। समर्थ रचनाकार भाषा कौशल व विशिष्ट शैली के प्रयोग से रचना को गंभीर अर्थवान, प्रभावपूर्ण बनाता है। प्रस्तुत अध्याय में डॉ. विजय द्वारा प्रयुक्त भाषा प्रयोग की विविध भावभंगिमाओं जैसे बिम्ब, सांकेतिकता, मुहावरे, लोकोक्तियों, सूक्ति प्रयोग आदि से समृद्ध है। शब्द शक्ति के प्रयोग से इनकी भाषा का पैनापन हमें दिखाई देता है, जो इनके वाग्वैदग्ध्य को दर्शाता है। इन सबके उदाहरण समस्त गद्य साहित्य में दिखाई देते हैं। बिम्ब संकेतात्मकता, व्यंग्यात्मकता द्वारा इनके भाषा सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। इनके कहानी संग्रहों में ग्रामीण परिवेश का चित्रण बिम्ब के माध्यम से व्यक्त हुआ है। बिम्ब अभिव्यक्ति का सूक्ष्म माध्यम है। डॉ. विजय ने बिम्ब प्रयोग के माध्यम से पात्रों के मन का अन्तर्द्वन्द्व व ग्रामीण अंचल के चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'संकल्प' मोहभंग, बंसीवाला, आम के पेड़, आधा परांठा इसी प्रकार की कहानियाँ है। 'वसीयत' कहानी में कमलेश्वर की बहू का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित है। 'विवाहिता' में कामना व वंदना दोनों के अन्तर्मन की उलझन को दर्शाया गया है। 'संकल्प' कहानी में रूपा की मनः स्थिति के साथ ग्रामीण अंचल को बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। सांकेतिकता भी शिल्प का महत्त्वपूर्ण अंग है। डॉ. विजय ने ग्रामीण जीवन की विविध समस्याओं को सांकेतिकता के साथ दर्शाया गया है। 'विवाहिता' कहानी में त्रिकोण प्रेम की समस्या के साथ पत्नी की पीड़ा को संकेत के माध्यम से व्यक्त किया गया है। उदाहरण दृष्टव्य है 'दशरथ राय ठीक हो गए। ठीक क्या हुए वंदना की सेवा से अभिभूत हो सोचने लगे, यदि वंदना नहीं होती तो मुझे जीवन में न जाने कितने कष्ट और उठाने पड़ते। पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि विवाह दाम्पत्य संबंध का नहीं परस्पर समर्पण का एक अनूठा अध्याय है।' मुहावरे व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता व रोचकता आती है। मुहावरेदार भाषा प्रभावी व आकर्षक होती है। लोकोक्तियाँ अनुभवों से पूर्ण होती है। विजय ने अपने कथा साहित्य में मुहावरें, लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है जिससे भाषा प्रभावी व चमत्कारपूर्ण बन गयी है। शब्द शक्ति के द्वारा विभिन्न स्थानों पर अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का प्रयोग करते हुए भाषा को सुसज्जित करते हुए पात्रों के मन की विविध दशाओं को संवादों के माध्यम से व्यक्त किया है। सूक्ति प्रयोग डॉ. दयाकृष्ण के साहित्य का विशिष्ट पक्ष है जिससे इनका शैल्पिक सौन्दर्य दोगुना हुआ है। इनके साहित्य में स्थान–स्थान पर प्रयुक्त सूक्त वाक्यों का प्रयोग समाज

को दिशा निर्देश प्रदान करता है। साथ ही भाषा में गंभीरता व रोचकता उत्पन्न करता है। डॉ. विजय के सम्पूर्ण साहित्य में भारतीय संस्कृति की अजस्र धारा प्रवाहित है जिसमें भारतीय चिंतन को स्थान–स्थान पर दर्शाया गया है। डॉ. विजय ने स्वयं इस विषय पर लिखा है कि 'विचारों का आदान–प्रदान ही हमारी पहचान व व्यक्तित्व को दर्शाते हैं।' सूक्ति प्रयोग से डॉ. विजय के शिल्प सौन्दर्य में चार चाँद लग गये हैं। यह सूक्ति प्रयोग उनके उपन्यासों, कहानियों नाटक, निबंधों में स्थान–स्थान पर प्रयुक्त हुए है। 'वसीयत', 'बड़ी मछली', 'मोहभंग', 'ममत्व', 'गाय की पूँछ' कहानियों में सूक्ति वाक्यों तथा आदर्श वाक्यों की भरमार है। इनके प्रयोग से डॉ. विजय ने समाज को शिक्षाप्रद सार्थक संदेश प्रदान किया है। शब्द भण्डार की दृष्टि से डॉ. विजय की भाषा अत्यन्त समृद्ध है। इसमें तत्सम, तद्भव व देशज शब्दावली का प्रयोग किया गया है। जैसे साग, नटना, गोखड़ा, आड़, कुरेदना, फूँकना, लुगलुगा, पिचकना, थप्पी आदि यह शब्दावली हाड़ौती अंचल के परिवेश को दर्शाती है। इनकी भाषा भावात्मक संवेग को लिए हुए है। कहानियों में ग्रामीण व निरक्षर जनता की भाषा में स्थानीय स्तर व बोली का प्रभाव है जो पात्रों की सहजता व मौलिकता को दर्शाता है। इस अध्याय में डॉ. विजय के सम्पूर्ण गद्य साहित्य के शिल्प कौशल को विविध उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबंध का अंतिम पड़ाव उपसंहार के रूप में है। इसमें शोध प्रबंध का सार व मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में डॉ. विजय के व्यक्तित्व परिचय व साक्षात्कार को सम्मिलित किया गया है। साहित्य और समाज एक दूसरे से सम्पृक्त होते है। साहित्यकार का उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु होता है। वह महत उद्देश्य की पूर्ति के साथ साहित्य सृजन करता है। 'डॉ. विजय ने इस धर्म का निर्वहन किया है। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' पर शोध कार्य करने का मेरा यही उद्देश्य रहा है कि मैं इनके समग्र गद्य साहित्य के विशिष्ट पक्ष को इनके वाग्वैदग्ध्य कौशल को प्रकाश में लाकर विविध आयामों के धनी डॉ. विजय के वाक्चातुर्य का भी मूल्यांकन किया जा सके ऐसी मेरी दृष्टि व सोच रही है। हाड़ौती अंचल के साहित्यकार सहज व सरल भाव से साहित्य सृजन की अजस्र धारा में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं। डॉ. दयाकृष्ण विजय इस दृष्टि से विशिष्ट साहित्यकार है। इनके सम्पूर्ण साहित्य में संस्कृति व भारतीय दर्शन के विविध पक्ष उद्घाटित हुए है। जिसमें आदर्शवाद, राष्ट्रीयता की भावना मानवीय मूल्य, दार्शनिक मूल्य, आध्यात्मिक आदि सभी समाविष्ट है। मैंने यथा संभव अपनी समझ व दृष्टि के अनुसार डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य की मूल संवेदना व वाग्वैदग्ध्य कौशल को समझाने का लघु प्रयास किया है। साक्षात्कार के माध्यम से डॉ. विजय के समग्र साहित्य की संवेदना, चिंतन, दृष्टि, साहित्य लेखन की प्रेरणा बिन्दु तथा इनके जीवन से जुड़े विविध पक्षों को उद्घाटित करते हुए भारतीय धर्म व दर्शन, भक्ति, भारतीय चिंतन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने की यह मेरी विनम्र कोशिश है।

♦♦♦♦

शोध सारांश

शोध – सारांश

डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य

वाग्वैदग्ध्य वह उत्कृष्ट शैली है जो अपने प्रभाव द्वारा सीधे हृदय को स्पर्श करती है। वाग्वैदग्ध्यता का अर्थ है वाक् कौशल या वाक् चातुर्य अर्थात् अपनी बात को इस प्रकार से प्रस्तुत करना की वह अधिक प्रभावशाली व हृदय स्पर्शी हो जाये। कबीर ने अपने दोहों में इसी वाक् चातुर्य द्वारा जनमानस को परिष्कृत करने की बात कही है। सूर का भ्रमर गीत अपनी इस उत्कृष्ट शैली के कारण प्रभावशाली बन पड़ा है इसके अन्तर्गत गोपियों व उद्धव के वार्तालाप में गोपियाँ अपने वाक् चातुर्य से उद्धव की ओर ऐसे व्यंग्य बाण छोड़ती है कि वह निरुत्तर हो जाते हैं। इसी को आधार बनाते हुए मैंने लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य में वाग्वैदग्ध्य के वैशिष्ट्य को ढूँढने की विनम्र कोशिश करते हुए 'डॉ. विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' विषय शोध प्रबंध के अन्तर्गत शोध कार्य को विस्तार देने का प्रयास किया है।

डॉ. दयाकृष्ण विजय सामाजिक, सांस्कृतिक, लेखन के परिचायक है। डॉ. विजय हाड़ौती क्षेत्र के साहित्यकार हैं इन्होंने सांस्कृतिक दृष्टि से चिन्तन करते हुए शिक्षा, जीवन मूल्य साहित्य और संस्कृति, साहित्य और दर्शन साहित्य और इतिहास जैसे विषयों पर निबंध, कहानी, उपन्यास व नाटक की रचना की है। डॉ. विजय ने 'स्पष्ट' किया है कि शिक्षा ही मनुष्य को उसके जीवन मूल्यों से परिचित कराती है। डॉ. विजय ने चिन्तक व वरिष्ठ समालोचक के रूप में नाटक, कहानी, उपन्यास निबंध आदि सभी में भाषा व साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन किया है। भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार पर भारतीय दृष्टि से गद्य साहित्य की रचना की है। 'डॉ. विजय के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' प्रस्तुत शोध प्रबंध में–

प्रथम अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य' शीर्षक से है। डॉ. विजय ने सैद्धान्तिक या शास्त्रीय दृष्टि से चिन्तन करते हुए शिक्षा और जीवनमूल्य, अन्तर्राष्ट्रियता बनाम भारतीयता, साहित्य और संस्कृति, भारतीयता एवं साहित्य जैसे विषय पर निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक की रचना की है। डॉ. विजय ने स्पष्ट किया है कि शिक्षा ही मनुष्य को उसके जीवन मूल्यों से परिचित कराती है। डॉ. विजय चिंतक एवं वरिष्ठ समालोचक के रूप में चर्चित है। इनके नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी में भाषा एवं साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन किया है। 'भारतीय साहित्य और सामाजिक सरोकार' पर भारतीय दृष्टि से गद्य साहित्य की रचना की है। 'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य साहित्य और वाग्वैदग्ध्य' में हिन्दी गद्य साहित्य का उद्भव व विकास की यात्रा का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इसमें गद्य साहित्य की लोक यात्रा का परिचय है। वाग्वैदग्ध्य का अर्थ वाक् चातुरी अर्थात् अपनी बात को इस प्रकार प्रस्तुत

करना की वह प्रभावशाली व हृदयस्पर्शी बन जाये। वाक् वैदग्ध्य, दक्षतापूर्ण अपनी बात रखना तथा उस पर अडिग रहकर साहित्य को श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के साथ प्रस्तुत करना ही वाग्वैदग्ध्य कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में सूर, तुलसी, मीरा, कबीर के साहित्य में वाक् कौशल व्यक्त हुआ है। शब्दों की अभिव्यक्ति को दर्शाने वाली वह शैली है जो हृदय को स्पर्श करती है। किसी भी भाषा के ज्ञान के संचित कोश को 'साहित्य' कहा जाता है। हिन्दी साहित्य की गंगा में दो धारायें प्रवाहित हैं एक गद्य और दूसरी पद्य। गद्य साहित्य निबंध पत्र, कहानी, नाटक आदि में विचारों को व्यक्त करना समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक किसी भी विषय पर अपनी बात प्रकट करने के लिए जिस ढंग को अपनाया जाता है उसे गद्य कहा जाता है। पद्य साहित्य में कविता, चौपाई, पद्यचरण आदि को लयबद्ध तरीके से रचित करना चरित्रावली, कवितावली, दोहावली आदि की रचना कर पद्य कौशल उजागर करने की निपुणता इस साहित्य में अपना स्थान रखती है।

वाग्वैदग्ध्य शब्दों की अभिव्यक्ति करने वाली उत्कृष्ट शैली है। जो गद्य विधा में प्रेरक वचन व हृदय स्पर्शी अभिव्यक्ति का एक माध्यम सिद्ध हुई। वाग्वैदग्ध्य का आभास सर्वप्रथम सूरदास रचित भ्रमरगीत सार में चातुर्य से व्यंग्य द्वारा आक्रोश भाव से अपनी बात कहने का ढंग ही वाग्वैदग्ध्य कहलाया ऐसी चातुर्यपूर्ण वाणी जिसे सुनकर श्रोता के हृदयस्पर्शी भाव जाग्रत हो जाये। हिन्दी गद्य साहित्य सदैव आगे की ओर बढ़ता रहा है। चाहे वह भारतेन्दुकाल हो, द्विवेदी युग हो, प्रसाद युग हो या फिर आचार्य रामचन्द्र युग। हिन्दी गद्य साहित्य में पीढ़ी दर पीढ़ी नई सोच, नई आशाऐं, नये विचार पढ़ने को मिलते हैं। इसमें सदैव ही परिष्कार होता रहा है डॉ. महावीर प्रसाद हिन्दी गद्य साहित्य के निखार को लाने में अग्रणी है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की विशेषता है गद्य साहित्य की प्रचुरता, भारतेन्दु युग में प्रारम्भ होने वाली कुछ प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में पूर्णतः परिष्कृत होती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ये दोनों घटनाएँ विशेष महत्व रखती है। द्विवेदी युग 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 1903 में इसका कार्यभार सम्भालना सरस्वती पत्रिका के माध्यम से आचार्य द्विवेदी ने खड़ी बोली का परिष्कार कर गद्य शैली को परिष्कृत किया। साहित्य सृजन एक सांस्कृतिक कर्म है डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने भी जिस समय लेखन प्रारम्भ किया वह एक संधि युग की भाँति था जिसमें एक ओर छायावादी स्वर था तथा दूसरी ओर प्रगतिवादी विचार धारा अतः डॉ. विजय के सृजन में इन दिनों की विचारधाराओं का अभूतपूर्व मिश्रण पढ़ने को मिलता है। डॉ विजय के कवि जीवन का प्रारम्भ सीनियर कक्षा के विद्यार्थी अकलेरा (झालावाड़) विद्यालय के विद्यार्थी के रूप में हुआ। डॉ. विजय की साहित्यिक प्रतिभा के साथ उनकी काव्य दक्षता भी छात्र जीवन में विकसित हुई अध्ययन काल में कोटा महाविद्यालय (हर्बर्ट कॉलेज) में सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों तथा गोष्ठियों का आयोजन एवं संचालन किया। डॉ. विजय के निबंधों में स्पष्टता, संक्षिप्तता, सूत्रात्मकता, सरलता, सहजता जैसे इनके गुणों ने निबंधों को प्रासंगिक तथा मूल्यवान बनाया है। डॉ. विजय की नैबंधिक दृष्टि वस्तुपरक है वे एक चिंतक है। निबंध के विषय का उदय, अन्य समानधर्मी विषयों की सूचना उनका तुलनात्मक इतिहास महत्त्व एवं प्रासंगिकता पर वे विशेष

ध्यान देते हैं। विजय के लेखन का विशिष्ट अंदाज हमें पढ़ने को मिलता है। इनके निबंधों का संग्रह उनके निबंधकार के ज्ञानात्मक स्वरूप का परिचय देता है उनके निबंध संग्रह के अट्ठारह निबंधों को चार वर्गों में बांटा जा सकता है। प्रथम वर्ग – अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और रचनाकार, शिक्षा और जीवनमूल्य, अन्तर्राष्ट्रीयता साहित्य और संस्कृति, भारतीयता और साहित्य में पाँच निबंध संग्रहों को स्थान दिया है। द्वितीय वर्ग में विभिन्न युग चेतना को स्थान दिया है गुप्त जी की युग चेतना, पं. गिरधर शर्मा नवरत्न की युग चेतना, सूरदास का मानववाद आदि पर रचित रचनाओं को इस वर्ग में रखा है। तीसरे वर्ग में साहित्य सृजन की केन्द्रीय विधा, समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में, भारतीयता साहित्य में रामकथा की महत्ता, काव्य का स्वरूप और उसकी उपयोगिता कस्मैदेपाय हविषवधियम, छः निबंधों को रखा गया है। चौथे वर्ग में हाड़ौती अंचल की साहित्यिक परम्परा, राजस्थान की संत परम्परा और रामस्नेही, स्वामी रामचरण, राजस्थान की लोक भाषाएँ और राजस्थानी भाषा की एकरूपता की आवश्यकता को रखा जा सकता है। डॉ. विजय के प्रथम वर्ग की अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य की विशिष्ट परम्परा के चिन्तन स्त्रोत का आह्वान करती है। तो दूसरे वर्ग में तीन साहित्यकारों का मूल्यांकन है। जिसमें साहित्यिक वैविध्य का शास्त्रिय स्वरूप उभरता है और चौथे में हाड़ौती अंचल की लोकभाषा साहित्य एवं संत परम्परा आदि का विश्लेषण मिलता है। हिन्दी उपन्यास कला भी आधुनिक युग की देन है।

हिन्दी उपन्यासों की रचना भारतेन्दु युग से होती है परन्तु इसका पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है। गोदान प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों से भिन्न यथार्थवादी दृष्टिकोण से एक भारतीय कृषक की दीन–हीन दशा का चित्रण है। प्रेमचन्द के साथ या बाद में उपन्यासों की रचना करने वालों में जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, चतुरसेन, शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक, बेचेन शर्मा 'उग्र', प्रतापनारायण श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार इलाचन्द जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, निराला पंत, महादेवी वर्मा आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। प्रसाद के उपन्यास में भिन्न प्रकार के समाज का चित्रण है किन्तु शैली काव्यात्मक है। इसी क्रम में विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि ने प्रेमचन्द की शैली अपनाते हुए सामाजिक उपन्यास लिखे जिनमें आदर्शोंमुख यथार्थवाद अधिक था हिन्दी कहानी लेखन में उपन्यास के बाद आज हर विषय पर लिखी जाने वाली कहानी हिन्दी जगत में विशिष्ट स्थान रखती है। उपन्यास की भाँति कहानियों की रचना का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है। हिन्दी कहानी का भी चरम उत्कर्ष प्रेमचन्द की लेखनी से हुआ इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य में कहानियों के अभाव की पूर्ति की। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी कला के क्षेत्र में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का योगदान चिरस्मरणीय है। इनकी 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। यही इनकी अक्षय कीर्ति का स्तम्भ भी है। जैनेन्द्र जी से हिन्दी कहानियों के वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। हिन्दी नाटकों की परम्परा संस्कृत नाटकों को आधार बनाकर विकसित हुई। राजा लक्ष्मण सिंह ने सन् 1919 में कालिदास के रचित

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का हिन्दी अनुवाद किया। हिन्दी नाटकों की विस्तृत परम्परा का विकास सर्वप्रथम भारतेन्दु युग में हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली', भारतजननी, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, सतीप्रताप, विषस्य विषमौषधम जैसे नाटक लिखें प्रसाद जी हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी के रूप में आते हैं। डॉ. विजय ने भी विविध प्रकार के नाटकों का लेखन किया है। जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाते हुए भारतीय संस्कृति की गौरवमयी परम्परा व श्रेष्ठता को चित्रित किया गया है। आदि सम्राट (1974 ई.) – डॉ. दयाकृष्ण विजय द्वारा रचित 'आदिसम्राट' नाटक ऐतिहासिकता पर आधारित है।

छत्रपतिशिवाजी – ऐतिहासिक नाटक महाराष्ट्र के महान सम्राट् छत्रपति शिवाजी पर आधारित है उनका ओजस्वी चरित्र व गोरिल्ला युद्ध नीति द्वारा मराठा की आनबान व शान को कायम रखने में अहम् भूमिका निभाती है। उसका इसमें विस्तार से वर्णन मिलता है।

सिंहासन – ऐतिहासिक नाटक 'सिंहासन' की पारिवारिक कलह को दर्शाता है इसमें सिंहासन के प्रति एक भाई का प्रेम का निर्वहन करता है तथा दूसरे का राज्य की सेवा तथा प्रजाधर्म का निर्वहन करना है।

राग से विराग तक – की नाटिका में डॉ. विजय ने पति–पत्नी के राज्य के प्रति भाव को दर्शाया है इसमें राजा पूर्ण रूप से राज्य के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ व धर्म परायण है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के ज्ञान साहित्य जगत में उनके योगदान तथा शिक्षा जगत में हमें उनके लिखे गद्य साहित्य, नाटक, एकांकी, लघुकहानी तथा शिक्षा जगत में ज्ञान प्रदान करना है। वाग्वैदग्ध्य सृजन का आधार होता है साहित्यकार अनुभूति को संवेदना में रूपान्तरित करता है। अनुभूति में वाग्वैदग्ध्य लेखन कौशल प्रविष्ट होते ही साहित्य में व्यापकता आ जाती है। साहित्य चाहे किसी भी भाषा में लिखा गया हो संवेदना की प्रखरता ही उसे उत्कृष्ट बनाती है। सूरदास रचित भ्रमरगीत सार में गोपियों–उद्धव की वार्ता को सूरदास जी ने बड़ी ही रोचकता व वाक्चातुर्य से प्रतिपादित किया है। यही शैली पठन व पाठन में अपनी और आकर्षित करती है। वाक् वैदग्ध्य डॉ. विजय के लेखन की अभिव्यक्ति है। यह गद्य के विविध रूपों में साहित्य का रूप धारण करती है जैसे कहानियों में संवाद शैली, नाटकों में शिल्प दृष्टि आदि। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' का रचना संसार' पर आधारित है। कथा संग्रह 'उलझन' में मानवीय संवेदना को उजागर किया है। सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को कथा के आधार तत्त्व बताते हुए कथाओं में उजागर किया है। मनुष्य जीवन को अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं, सजग साहित्यकार अपने परिवेश से असम्पृक्त नहीं रह सकता वह वाग्वैदग्ध्य से जुड़कर अपने द्वारा अनुभूत सत्य को साहित्य सृजन के रूप में प्रस्तुत करता है। साहित्य में लेखन कौशल का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गद्य साहित्य जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि में किसी भी एक भाव या विचार पर आधारित होती है।

इसके अन्तर्गत डॉ. विजय के कथा संग्रह 'उलझन' (1953), 'स्वप्न और सत्य' (1989), 'बड़ी मछली' (1952) 'एक और क्रांति' (1995) का सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, परिवेशगत शहरी व ग्रामीण, मूल्यगत संदर्भ, पारिवारिक संदर्भों को व्याख्यायित करते हुए इनकी कहानियों में चित्रित तत्कालीन परिवेश, सांस्कृतिक मूल्य आदि का विश्लेषण किया गया है। तत्कालीन परिवेश और वर्तमान समय में लगभग 65 वर्ष का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। आज सांस्कृतिक संकट गहराया हुआ है। भौतिकवादी संस्कृति पनप रही है। सांस्कृतिक प्रदूषण बढ़ा है। मनुष्य समाज व संस्कृति से दूर होकर संवेदना शून्य होता जा रहा है साहित्यकार का संघर्ष सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए होता है क्योंकि मूल्य और संस्कृति एक दूसरे के पूरक होते हैं जो किसी भी समाज के मूल्य, सामाजिक मानदण्ड एक दूसरे व व्यवहार का स्वीकृत ढंग किसी समाज की संस्कृति को निर्धारित करते हैं। डॉ. विजय ने अपने कहानी संग्रह 'उलझन' में संस्कृति व जीवन मूल्यों पर आधारित कहानियों का चित्रण किया है। 'बड़ी मछली' (1962) डॉ. विजय का तीसरा कहानी संग्रह है। जिसमें 18 कहानियाँ संकलित है। सम्पूर्ण कहानियाँ किसी विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई है तथा समाज को दिशा प्रदान करती है कहानी संग्रह पचपन वर्ष पूर्व के परिवेश व घटनाओं को केन्द्र में रखकर कहानियों का कथ्य व शिल्प बुना गया है। सम्पूर्ण कहानियों में लोकजीवन की विविध झाँकियाँ प्रतिबिम्बित हुई है। जिनमें ग्रामीण परिवेश है, सामाजिक समस्याएँ हैं पारिवारिक संबंधों पर गहन चिन्तन व्यक्त हुआ है तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण कहानियों में व्यक्त किया गया है। संस्कार श्री विजय का मूलमंत्र है अतः प्रत्येक कहानी संस्कारित जीवन जीने की सीख अवश्य देती है कहानियों में संस्कृति व जीवन मूल्य बिखरे पड़े हैं। अतः ये कहानियाँ मूल्यवान है कहा भी गया है कि संस्कृति मनुष्य व समाज की अमूल्य धरोहर होती है।

साहित्य मनुष्य के दैनिक व्यवहार व भावों की प्रतिक्रिया में रचा जाता है "साहित्य का कार्य सीधे–सीधे उपदेश देना नहीं है पर वह भावना के माध्यम से पाठक के मन में मानवीय मूल्यों, उदात्त भावनाओं तथा नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है। डॉ. विजय के कहानी संग्रह 'बड़ी मछली' में ये सभी विशेषताऐं मिलती है। मूल्य व संस्कृति एक–दूसरे के पूरक हैं। समाज के आदर्श, विश्वास, मान्यताएँ, मानदण्ड, धर्मप्रथाएँ, रुढ़ियाँ आदि सभी सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिम्बित है इन्हीं प्रतिबिम्बों से सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन होता है। डॉ. विजय की कहानियों में ये सभी विशेषताएँ व्यक्त हुई है। अपनी कहानियों के विषय में कहते हैं कि 'बड़ी मछली' उनका तीसरा कथा संग्रह है जिसमें घटनाक्रम, विचार, दर्शन, मनोविज्ञान परिस्थिति, नीति, राजनीति अधिक है। इसमें कथाकार को समझने में जहाँ आसानी है वहीं कहानी सपाटबयानी न होकर पठनीय, मानवीय वस्तु हो गई है। सभी कहानी में सूक्त वाक्य विशिष्ट संदेश के साथ चित्रित है प्रथम कहानी 'विवाहिता' में सम्बन्धों की पवित्रता दर्शायी गई है। जो आज भी प्रासंगिक है। दशरथ राय अपनी पत्नी वन्दना को छोड़कर कामना की ओर आकृष्ट होते हैं अंत में चोट लगने पर विवाहिता वन्दना ही उनकी सेवा करती है। कामना उन्हें छोड़कर चली जाती है। दशरथ राय सोचते हैं यदि वन्दना नहीं होती तो मुझे जीवन में न जाने कितने कष्ट ओर उठाने

पड़ते पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि विवाह दाम्पत्य सम्बन्ध का नहीं परस्पर समर्पण का अनूठा सम्बन्ध है। यहाँ बताया है कि परस्पर विश्वास और समर्पण भाव ही दाम्पत्य जीवन का आधार होता है। जो आज के युग की महती आवश्यकता है। आज संबंध टूट रहे हैं बिखर रहे हैं। 'वसीयत' कहानी में पैतृक सम्पत्ति के बँटवारें की समस्या, रिश्तों की प्रगाढ़ता, भाई–भाई का प्रेम अंत में सांमजस्य की भावना से समस्या का समाधान सुझाया गया है जहाँ विश्वेश्वर अपने पिता द्वारा लिखी वसीयत को चिता के हवाले कर देता है। जिसमें पिता ने अकेले विश्वेश्वर को सम्पत्ति का वारिस बना दिया था। 'बड़ी मछली' संग्रह शीर्षक कथा है जो प्रतीकात्मक है। यह अर्थ प्राधान्य व सम्बन्धों की रिक्तता पर आधारित है अस्तित्ववादी दर्शन से आज प्रेम का भाव तिरोहित हो रहा है। मनोहरा व सम्पत्ति एक दूसरे को प्रेम करते हैं विवाह करते हैं परन्तु सम्पत्ति मनोहरा को भूलकर 'अर्थ' के पीछे भागने लगता है। 'प्रेम की गहराई का पानी सूखकर उथला लथपथ कीचड़ हो गया था। वह अपने धन कमाने में लगा था' मनोहरा स्वयं को उपेक्षित महसूस करती है। वह सोचती है समय बीतने के साथ सम्पत्ति का व्यवहार भी बदल गया सम्पत्ति की आँखों में अब न वह प्यार की मादकता है न अधरों पर स्मित की मदिरता मस्ती का वह मदभरा आलम कपूर हो गया है। मनोहरा अंत में कहती है 'बड़ी मछली' में छोटी मछली को निगल लिया। 'बड़ी मछली' के लिये वह नोटों की गड्डी की ओर ईशारा करती है आज भी 'अर्थ' प्रधान संस्कृति ने पति–पत्नी, माता–पिता, पिता–पुत्र आदि रिश्तों को प्रभावित किया है कहानी आज भी प्रासंगिक है।

"मोहभंग" कहानी में बुजुर्गों की समस्या पर विचार करते हुए समाधान भी सुझाया गया है। कहानी में मुरारीलाल शर्मा अपने पौत्र को अपने पास रखना चाहते हैं विश्वेन्द्र नारायण वकील है। अचलेश्वर अपने पिता को नाराज किये बिना अपने पुत्र को साथ रखना चाहता है। वकील विश्वेन्द्र नारायण बुजुर्गों की समस्या का समाधान करने के लिये उनका मनोविज्ञान को समझकर व्यवहारिक ज्ञान से समस्या का समाधान करते हैं। 'ममत्व' कहानी में अन्तर्जातीय विवाह से उपजी समस्या को बताया गया है। कार्तिक की पुत्री प्रतिभा ने विश्वास आहुजा से विवाह कर लिया है। कार्तिक पुत्री को अपनाने को तैयार नहीं होता। अंत में प्रतिभा के पुत्र होने पर वह राखी पर अपने पिता के घर बच्चे के साथ आती है। सब उसे स्वीकार कर लेते हैं अश्विनी कहता है– "ममत्व स्वाभिमान से अधिक प्रबल संवेग है।"

'स्वाभिमान' कहानी में माता व पुत्र के बीच के स्वाभिमान की कथा है। कान्ता का पुत्र अनिल है विमल जंमीदार है मिल–मालिक है व कान्ता की मजबूरी का फायदा उठाकर उसके घर आता है। अनिल बड़ा होने पर विमल कुमार का आना बर्दाश्त नहीं करता वह माँ से कहता है कल से यह हमारे घर नहीं आयेगा माँ कान्ता उसे समझाती है। वह कहता है 'माँ तुम नहीं समझती किसी के स्वाभिमान को चोट कितनी गहरी पहुँचती है।' 'संकल्प' कहानी में जातिगत भेदभाव का चित्रण किया गया है। किशोर रूपा से कहता है 'तूने सारे गाँव का पानी मैला कर दिया है.........गाँव वाले अब क्या पीएगें?' कहानी प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुँआ' कहानी का स्मरण कराती है। स्त्री विमर्श के विविध अध्याय यह खुलते दिखाई पड़ते है। जहाँ रूपा संकल्पबद्ध

होकर जीर्ण शीर्ण रुढ़ियों और योग पंथी मान्यताओं को मिटाकर एक स्वस्थ्य सुन्दर और साम्यवादी परम्परा के निर्माण का संकल्प लेती है। नारी स्वतन्त्रता का पक्ष रखते हुए रूपा कहती है– जब तक अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा नहीं होगी तब तक नारी अपने पैरों पर नहीं खड़ी होगी नारी शिक्षा न केवल दरिद्रता मिटायेगी बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस देगी तथा नर और नारी के बीच की समानता का पथ प्रशस्त करेगी। कहानी तत्कालिन परिवेश की है परन्तु विचार व समस्याएँ समसामयिक है, नारी शिक्षा, नारी आत्मनिर्भरता की बात जातिगत भेदभाव को खत्म करना जैसी समस्या कहानी में उठायी गई है। 'भविष्यदृष्टा' कहानी में जीवदर्शन, निर्गुण, सगुण आदि की विस्तार से व्याख्या की गई है। शिष्य अश्विनी से बाबा कहते हैं 'परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है उसका कोई रूप नही है। वह समान रूप से व्याप्त परम चैतन्य सत्ता है, जो प्रवृत्ति को आवृत भी दिए है और प्रकृति से पृथक भी है वह प्रकृति नहीं है।' कहानी में वैराग्य, निष्काम, कर्मयोग की व्याख्या की गई है। बाबा अश्विनी को निष्काम कर्म के विषय में कहते हैं– "बाह्य साधन नहीं है। साधना है शरीर जितना चाहता है उसकी संपूर्ति का। कर्म करते हुए भी उसमें रमण नहीं। फलेच्छा नहीं। यही निष्काम कर्म है। संसार में रहकर भी संसारबद्धता नहीं।" कहानी में आत्मा परमात्मा निष्काम कर्म आदि की गहन व्याख्या करते हुए चिन्तन प्रस्तुत किया गया है 'दाख' कहानी में संस्कारों की महत्ता बतायी गयी है। 'आधा पराँठा' कहानी में भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ बताई गयी है। कहानी में बताया गया है प्रफुल्ल की पत्नी माधुरी शहर में रहकर भी ग्रामीण जैसी ही है। उसने परम्पराओं को दृढ़ता से अपनी मुट्ठी में जकड़कर रखा है वह पूरी तरह भारतीय महिला है। पश्चिम की हवा उसे नहीं लगी है।

'अवतार' कहानी में रैगिंग जैसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है। सम्पूर्ण कथा संग्रह जीवन के विविध आयाम सूक्त प्रयोग, आदर्श वाक्यों, मुहावरों व कहावतों से युक्त है जैसे 'ममत्व' स्वाभिमान से भी अधिक प्रबल संवेग है।

"घी पड़ने पर आग अधिक धधकती है लकड़ी रगडने से आग उगलती है। पत्थर टकराने से चिंगारी निकलती है।"

"विधाता के पूर्वजन्मों के संस्कारों का यह प्रतिफल है।"

"संस्कार सही है वे महिलाओं के माध्यम से एक दूसरे के पास जितनी तेजी से जाते है उतने पुरुषों से नहीं।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है। सम्पूर्ण कहानी संग्रह विविध विषयों के साथ सुन्दर शिल्प में सजकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। जिसमें लोकजीवन है लोक रंग है, लोक विश्वास है, मान्यताएँ है, धर्म है, आस्था है, दर्शन की विशेष व्याख्या है बुहारा, नटना, गर्र गर्र, खेजिया जैसे आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी कहानियों में किया गया है। 'बड़ी मछली', कथा संग्रह में डॉ. दयाकृष्ण विजय के गंभीर चिन्तन को विविध विषयों के साथ विविध कहानियों में चित्रित किया है जो तत्कालीन परिवेश को व्यक्त करने के साथ समाज को सीख व दिशा निर्देश भी प्रदान करता है। इसी क्रम में नाटकों के अन्तर्गत 'आदि सम्राट् (1983 ई.)' ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया

नाटक है जिसमें 'छत्रपति शिवाजी', महाराष्ट्र के महान सम्राट शिवाजी के चरित्र पर आधारित है उनका औजस्वी चरित्र व गौरिल्ला युद्ध नीति मराठा की आन–बान–शान को दर्शाया गया है 'सिंहासन' नाटक में पारिवारिक कलह तथा एक भाई का सिंहासन के प्रति प्रेम दूसरे राज्य की सेवा तथा प्रजा धर्म के निर्वहन को चित्रित किया गया है, 'राग से विराग तक' में डॉ. विजय पति–पत्नी के राज्य के प्रति समर्पण भाव तथा कर्त्तव्यनिष्ठा धर्मपरायणता का भाव प्रमुखता से उभारा है। डॉ. विजय के उपन्यास रमताराम (2004 ई.) तथा पायसपायी (2008 ई.) में प्रकाशित है जो श्री स्वामी रामचरण जी के जीवन को समर्पित है इसमें संतों का समाज पर प्रभाव के दर्शाया है मानव जीवन शैली में उच्च आदर्शों, धर्म, भक्ति, करुणा तथा त्याग भावना को दर्शाया है। मानव जीवन शैली, मानव मूल्य, सर्मपण, भाव, धर्म परायणता, आदर्श एवं उदारता के भाव को कथासूत्र में पिरोया है संतो का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव भी इन उपन्यासों में विस्तार से वर्णित है। डॉ. विजय के निबंध अत्यन्त गंभीर विषय वस्तु के साथ प्रस्तुत हुए है उनके निबंधों में विचारों की स्पष्टता वेग सम्मत समाधान बोधगम्य चिन्तन की सरलतम अभिव्यक्ति उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता है जिसमें भाव गांर्भीय सांस्कृतिक उच्च आदर्श भारतीय दर्शन आदि को विस्तार से विश्लेषित किया है। उनके निबंध संग्रह की विस्तृत शृंखला है जिसमें गीता अनुशीलन, राजस्थानी काव्य साधना अब और तब, विचारों के अमलतास, साहित्य संस्कृति और युग बोध, वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका, संस्कृति के वागर्थ प्रमुख निबंध संग्रह है। यह निबंध भारतीय संस्कृति, दर्शन, मूल्य, युगबोध, राजस्थानी साहित्य सृजन तथा राजस्थानी हिन्दी महाकाव्यों में चित्रित सांस्कृतिक चिन्तन को दर्शाते है। विषयवस्तु व भाषा की दृष्टि से डॉ. विजय के यह निबंध संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व समाज को दिशा निर्देश देने वाले है इनके सम्पूर्ण निबंधों में भारतीय साहित्य में अन्तर्निहित चिन्तन व आदर्श को दर्शाया गया है। इसी क्रम में 'संस्कृति का वागर्थ' (2005) निबंध संग्रह में अतिमहत्त्वपूर्ण निबंध संकलित है। जिसमें डॉ. विजय ने संस्कृति शब्द को भारतीय परिप्रेक्ष्य में विविध प्रकार से व्याख्यायित किया है। वह कहते हैं। "संस्कृति आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही स्थितियों की दिग्दर्शिका है सभ्यता बदलती रही है पर संस्कृति के मूल्य शाश्वत होते हैं वे नहीं बदलते। केवल युगानुसार इनका व्यवहार बदलता है यही संस्कृति की सापेक्षता होती है संस्कृति जहाँ प्राकृत का परिष्कृत रूप है वहीं उसमें लोकहित का भाव भी प्रमुख होता है इस हेतु संस्कृति शिव कृति है सत् शिव सुन्दर जहाँ है वहीं संस्कृति है।" डॉ. विजय का सम्पूर्ण साहित्य भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत है इनके सम्पूर्ण साहित्य में भारतीय संस्कृति की अजस्र धारा निर्बाध रूप से प्रवाहमान है प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृति की विशद व्याख्या प्रस्तुत करते हुए संस्कृति की विशेषताओं को भी व्याख्यायित किया गया है। इसके अन्तर्गत भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति के मूल अन्तर को स्पष्ट किया गया है। संस्कृति की विविध परिभाषाओं में पाणिनी से लेकर डॉ. मगल देव शास्त्री अरविन्द घोष, सर्वपल्ली राधाकृष्णन की परिभाषा दी गई है। डॉ. देवराज के अनुसार संस्कृति का संबंध मनुष्य की बुद्धि स्वभाव और मनोवृत्ति से होता है। परम्परा का प्राचीन रूप इसमें दिखाई देता है। अब आगे प्रश्न उठता है कि संस्कृति व समाज में पहले कौन बना स्पष्ट है समाज पहले बना। उसने ही संघर्ष किया और

समाज का निर्माण हुआ। संस्कृति व सभ्यता का अन्तर भी निबन्धों में स्पष्ट किया गया है कि संस्कृति आध्यात्मिक होती है। सभ्यता यान्त्रिक। संस्कृति जीवन का अन्तरिक सौन्दर्य होती है जीवन जीने की दृष्टि, बौद्धिक विराट का प्रतीक होती है। शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा, समग्र सार्वदर्शिका, सार्वकालिक चिन्तन होती है। वही सभ्यता बाह्य सौन्दर्य भौतिक विकास का दिग्दर्शन, गतिशील तत्कालिक व क्षणिक चिन्तन होती है। सभ्यता व संस्कृति दोनों की श्रेष्ठता ही हमारी आध्यात्मिक उन्नति का परिचायक होता है। "डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति मानते हैं।" इस प्रकार संस्कृति का संबंध आध्यात्म से है जबकि सभ्यता का संबंध विज्ञान से है कहा भी गया है– "सभायां साधवः सम्याः।" सभ्यता, जैसा, विदित है, सभ्य के आगे ता प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। सभाओं में व्यवहार की मधुरता, वचन की शिष्टता तथा व्यक्ति देह की शोभिता सभ्यता की सूचक है। सभ्यता बाह्य परिष्कृति है। संस्कृति–आन्तरिक संस्कृति और परम्परा के विषय में विस्तार से व्याख्या डॉ. विजय करते हैं परम्परा में लोककल्याण का भाव निहित होता है। संस्कृति की निरन्तर अनुपालना परम्परा में परिवर्तित हो जाती है किसी भी परम्परा के पीछे लोकस्वीकृति अनिवार्य होती है। लोक स्वीकृति सदा काल सापेक्ष होती है। इस काल सापेक्षता के निकष पर सतत परिमार्जित संशोधित तथा संवर्धित होते रहना ही परम्परा की जीवन्तता है। कई बार परम्पराएँ रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है जो मनुष्य के लिए निर्वहन करना कठिन हो जाती है अतः जिस परम्परा का परिष्कार संशोधन एवं परिवर्धन होता रहता है वह दीर्घ जीवी होती है।

इस प्रकार अंत में डॉ. विजय का रचना संसार अत्यन्त उत्कृष्ट गांभीर्य एवं भाषा की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।

तृतीय अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य की मूल संवेदना एवं वाग्वैदग्ध्य' शीर्षक से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत प्रकृति और परिवेश, आदर्शवाद, राष्ट्रीयता, मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि विविध पक्षों का विवेचन विभिन्न परिभाषाओं तथा उदाहरणो ंके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रकृति और परिवेश के अन्तर्गत डॉ. विजय ने अपने गद्य साहित्य के अन्तर्गत प्रकृति और तत्कालिन परिवेश को चित्रित किया है। चरित्रों की प्रकृति तथा प्राकृतिक सौन्दर्य और परिवेश को सूक्ष्मता को साथ चित्रित किया हैं इनके नाटक 'सिंहासन', 'छत्रपति शिवाजी', 'आदि सम्राट्' सभी में ऐतिहासिक परिवेश तथा पात्रानुकूल प्रवृत्ति का चित्रण डॉ. विजय के वाक् कौशल को दर्शाता है। 'आदि सम्राट' में डॉ. विजय ने स्वर्गलोक की प्रकृति को चित्रित किया है। 'छत्रपति शिवाजी' नाटक में डॉ. विजय ने ऐतिहासिक संदर्भ को लिया है। इसमें वीर शिवाजी को शूरवीर मराठा के रूप में प्रस्तुत करते हुए मराठा और मुगल के संघर्षों को बड़ी गंभीरता से व्यक्त किया है। जबकी 'राग से विराग' नाटक की प्रकृति में आध्यात्मभाव प्रमुखता से मिलता है। नाटक की प्रकृति सांसारिक माया मोह के बंधन को छोड़कर आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने का संदेश देती है। 'रमताराम' उपन्यास में स्वामी रामचरण की संतप्रकृति तत्कालीन परिवेश तथा समाज कल्याण का भाव इसमें अर्न्तनिहित है। इसी क्रम में आदर्शवाद व राष्ट्रीयता को भी डॉ. विजय ने अपने सभी नाटक, उपन्यास और निबंधों में नवीन

दृष्टि के साथ स्थान–स्थान पर व्यक्त किया है। एक स्थान पर वह कहते हैं– "कि सृष्टि का आधार सारतत्त्व जड़पदार्थ नहीं अपितु चेतना है आदर्शवाद, जड़ता या भौतिकवाद का विपरित रूप प्रस्तुत करता है।"

राष्ट्रीयता से परिपूर्ण चेतना में डॉ. विजय का सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण है जिसमें स्थान–स्थान पर हमें इनके गद्य साहित्य में त्याग समर्पण सांस्कृतिक चिन्तन का भाव दृष्टि गोचर होता है। उनके समस्त निबंध संग्रह राष्ट्रीय चेतना को समर्पित है जिसमें राष्ट्रीयता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि– "किसी व्यक्ति और किसी संप्रभु राज्य के बीच के कानूनी संबंध को राष्ट्रीयता कहते हैं। राष्ट्रीयता उस राज्य को उस व्यक्ति के ऊपर कुछ अधिकार देती है और बदले में उस व्यक्ति को राज्य सुरक्षा व अन्य सुविधाएँ लेने का अधिकार देता है। अधिकारों की परिभाषा अलग–अलग राज्यों में भिन्न होती है। आमतौर पर परम्परा व अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हर राज्य को यह तय करने का अधिकार देते हैं कि कौन व्यक्ति उस राज्य की राष्ट्रीयता रखता है और कौन नहीं। इनके अधिकांश निबंध व कहानियाँ मानवीय मूल्यों को समर्पित हैं। मानवीय मूल्यों के विविध रूप इनके विभिन्न गद्य साहित्य में चित्रित हुए हैं। व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार के मूल्यों का भाव तत्त्व मानव की मानवीयता पर निर्भर करता है। इन सबके अन्तर्गत मानव को मानव से जोड़ने का भाव प्रमुख है। वर्तमान परिवेश में जहाँ मूल्यों का विघटन हो रहा है। बढ़ती महत्त्वाकांक्षा से आधुनिक जीवन प्रणाली, आत्मकेन्द्रीत होता मनुष्य, स्वयं को स्थापित करने की झटपटाहट ने मूल्यों को प्रभावित किया है। डॉ. विजय के कहानी संग्रह 'उलझन', 'बड़ी मछली', 'एक और क्रांति', 'स्वप्न और सत्य' इन सभी में जीवन मूल्य की श्रेष्ठता को दर्शाया गया है। सामाजिक मूल्यों में डॉ. विजय ने कहा है कि 'सामाजिक मूल्य सामाजिक मान' है जो कि सामाजिक जीवन के अन्तः संबंधों को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। सामाजिक मूल्य के अनुसार व्यक्ति को अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करना चाहिए इसके विपरित यदि कोई अन्तर्जातीय विवाह करता है तो सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि उस सामाजिक जीवन के विभिन्न क्रिया कलाप से संबंधित विभिन्न प्रकार के मूल्य प्रभावित होते हैं। पिता से सम्बंधित कुछ मूल्य होते हैं तो सम्पूर्ण राष्ट्र के शासन के सम्बन्ध में भी मूल्य हुआ करते हैं। उसी प्रकार विवाह से सम्बन्ध में सामाजिक धार्मिक आचरण राजनीति, आर्थिक जीवन आदि के संबंध में एकाधिकार मूल्य होते हैं। समस्त मूल्यों में एक बोधात्मक तत्त्व होते हैं। दार्शनिक मूल्यों के अन्तर्गत डॉ. विजय ने जीवन दर्शन की गहराई व श्रेष्ठता को विविध रूपों में उल्लेखित किया है। इनके निबंध संग्रह 'संस्कृति के वागर्थ', 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य' आदि में भारतीय दर्शन के अन्तर्गत धर्म, संस्कृति, आत्मा, दर्शन आदि का विवेचन किया है। वह कहते हैं दर्शन संस्कृति का विशिष्ट अंग है संस्कृति के चार उपादानों में प्रथम अंग आस्था व दार्शनिक चिंतन पर आधारित है। हमारे यहाँ षट दर्शन है जिसमें जीवन का सार भरा पड़ा है। भारतीय जीवन में दर्शन की विकास यात्रा अत्यन्त दीर्घ है। जो ब्रह्मा के मंत्र योग से वेद, ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यक, उपनिषद तथा गीता तक हमें प्रवृत्ति मार्गीय दर्शन दिखाई देता है। भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषता है निवृत्ति और प्रवृत्ति

निवृति में जगत को मिथ्या मानते हुए आत्मदर्शन को महत्त्व दिया गया है। इस क्रम में रामानन्द परम्परा के सभी संत कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा जगत को मिथ्या मानते हुए माया मोह के बंधन से छूटने की बात यहाँ करते हैं। वहीं प्रवृत्ति मार्ग में कर्म काण्ड द्वारा सांसारिकता का उपभोग करते हुए विश्वकल्याण की भावना प्रमुख है।

चतुर्थ अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य के विविध आयाम' के अन्तर्गत सामाजिक समस्याएँ, आर्थिक संदर्भ, आध्यात्मिकता तथा राजनीतिक संदर्भों के साथ डॉ. विजय के गद्य साहित्य के चिन्तन के विविध आयामों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत दहेज प्रथा, जातिप्रथा, गरीबी अन्तर्जातीय विवाह और तत्कालीन परिवेश, निर्धनता, बेकारी दाम्पत्य जीवन की टूटन त्रिकोणीय प्रेम आदि समस्याओं को प्रमुखता से उभारा गया है। क्योंकि सामाजिक समस्याएँ वे हैं जो समाज में सामंजस्य भाव, सुदृढ़ता एवं सामाजिक मूल्यों के लिए खतरा मानी जाती है। जातिवाद से, बेरोजगारी से व्यक्ति के मन में असंतोष, वैराग्य का भाव पनपता है जो आपस में कटुता का भाव जाग्रत करता है। कहानी 'विवाहिता' त्रिकोण प्रेम पर आधारित है। 'ममत्व' में अन्तर्जातीय विवाह पर आधारित तथा 'सोने की मोहरे' में रिश्तों से ज्यादा धन पर अपना ध्यान केन्द्रीत किये जाने को बताया है। यह कहानियाँ डॉ. विजय के सामाजिक चिंतन को प्रस्तुत करती है। धर्म व संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए डॉ. विजय कहते हैं कि धर्म संस्कृतिक नैतिक शास्त्र होता है धर्म संस्कृति का जागतिक शक्ति है। धर्म एक शाश्वत तत्त्व है जो शरीर मन को शुद्ध करता है। 'संस्कृति के वागर्थ' निबंध संग्रह में डॉ. विजय ने संस्कृति और धर्म की विस्तार से व्याख्या की है। इसी अध्याय के अन्तर्गत परिवारिक विच्छेद, तलाक, वृद्धावस्था की समस्याएँ, त्रिकोण प्रेम, पारिवारिक समस्याएँ आदि है। सभी समस्याओं को परिभाषित करते हुए विविध रूपों में डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में जातिगत संदर्भ, आर्थिक संदर्भ, पारिवारिक समस्याओं को सूक्ष्मताओं के साथ व्यक्त किया है। भूमण्डलीकरण के दौर में आज विकास के नाम पर अनेक योजनाएँ बनाई जाती है। किन्तु अशिक्षा अज्ञानता के कारण आम आदमी इन सबका लाभ नहीं उठा पाता डॉ. विजय ने अपनी कहानियों में इन सब समस्याओं जैसे एकाकीपन, निराशाभाव, टूटन को दर्शाया है। आज महँगाई की मार चारों तरफ पड़ रही है। मनुष्य आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहा है। आजादी के बाद और आज के समय के बीच तेजी से महँगाई बढ़ी है। गरीब वर्ग अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति मुश्किल से कर पा रहा है। डॉ. विजय की कहानी 'स्वप्न और सत्य', 'एक और क्रांति', वर्ग विशेष पर आधारित है। 21वीं सदी में आज भी समाज में विषमता व्याप्त है महँगाई व भ्रष्टाचार बढ़ा है मजदूर वर्ग जहाँ जो दो जून की रोटी के लिए संघर्षरत है वहीं उच्चवर्ग अपने दिखावटी जीवन के कारण समर्थ व सक्षम दोनों है। फिर भी तनाव ग्रस्त है। मनुष्य कभी ज्ञान प्राप्त करता है तो कभी लोक व्यवहार को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण करता है। 'सोने की मोहरे', 'केले की पूजा' आदि कहानियों में समाज के यथार्थ स्वरूप को चित्रित किया गया है। 'गाय की पूँछ' कहानी में आस्था व धन परायणता का भाव प्रमुखता से उजागर हुआ है। जहाँ बाढ़ आने पर श्री धोकड़े जी को 'गाय की पूँछ' से सहारा मिलता है। 'सोने की मोहरे' नामक कहानी में मानव मन का लाल वृद्धों की उपेक्षा का

भाव व स्वार्थ की प्रवृत्ति यहाँ उजागर हुई है। इस प्रकार डॉ. दयाकृष्ण की गद्य साहित्य की मूल संवेदना में जीवन के विविध संदर्भों जैसे आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक व दार्शनिक भाव को सूक्ष्मता से परिभाषित करते हुए डॉ. विजय ने स्थान–स्थान पर इनका उल्लेख किया है।

पंचम अध्याय – 'डॉ. दयाकृष्ण विजय का गद्य व समसामयिक संदर्भ' के अन्तर्गत आंचलिकता पारिवारिक संदर्भ, वर्तमान परिवेश तथा परिवेशगत (ग्रामीण व शहरी) पर आधारित है। ऐतिहासिक परिवेश के अन्तर्गत संदर्भ डॉ. विजय ने 'आदि सम्राट', 'राग से विराग तक', 'सिंहासन', 'छत्रपति शिवाजी' आदि सभी नाटकों में अपने काल संदर्भपरक राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का चित्रण समाविष्ट किया है। राष्ट्रीयता का भाव, ऐतिहासिक संदर्भ यहाँ प्रमुख है। कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति व सांस्कृतिक विकास के इतिहास को पाठक से परिचित कराना इसका प्रमुख उद्देश्य है। प्रवृतिगत विशेषताओं के अन्तर्गत राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक चिंतन, जीवन मूल्यों की स्थिरता विश्व कल्याण एवं समन्वयवादी भावनाओं का विकास ही इनके नाट्यकर्म का मूल है। प्रवृतिगत विशेषताओं के इस क्रम में आगे कथाकार के रूप में डॉ. दयाकृष्ण विजय कथा–शिल्प प्रक्रिया में हमारे समक्ष कहानी के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हैं डॉ. विजय की कहानियों का कथ्य सार्थकता और उद्देश्य की समग्रता के साथ गहरी संवेदनशीलता, मानवीय सरोकार तथा सांस्कृतिक धरोहर के प्रति आग्रहशीलता से युक्त है। 'स्वप्न और सत्य' कहानी संग्रह में डॉ. विजय ने यथार्थ और कल्पना को अपनी लेखनी से उतारा है। शब्दों की कल्पना और सत्य को रोचकतापूर्ण लिखा है। शिल्पगत और आधुनिक कथाशिल्प के निकष पर वे सही न दिखाई देते हों लेकिन शिल्प कहानी की अभिव्यंजकता और समसामयिक है। जीवन के सभी पक्षों पर मानव मन का जीवन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आधार पर रचित है। डॉ. विजय के समग्र साहित्य में आंचलिकता की गंध समायी हुई है। आंचलिक परिवेश में रीति–रिवाज, परम्परा, भाषा व संस्कृति की विशिष्ट छाप होती है। यह सभी विशेषताएँ हमें डॉ. विजय के निबंध, कथा संग्रह, नाटक सभी में दृष्टिगोचर होती है। डॉ. विजय के कथासाहित्य में हाड़ौती अंचल की गंध, लोक संस्कृति, परम्पराएँ, रीति–रिवाज, आस्थाएँ तथा धार्मिक विश्वास चित्रित हुए हैं। इनकी कहानियों में हाड़ौती अंचल का खान–पान, रहन–सहन व परिवेश चित्रित है। 'गृह लक्ष्मी' कहानी में हाड़ौती अंचल का उदाहरण दृष्टव्य है ''गृह लक्ष्मी ने जैसा आदेश दिया था वैसा ही दीप जला, अगरबत्ती ने धुँआ छोड़ा, जल से केले का स्नान हुआ, पीला वस्त्र चढ़ा, हल्दी का तिलक लगा, पीले फूल चढ़े, पीले गुड़ का भोग लगा तथा पीला आम जिसे पण्डित जी पहले ही ले आये थे। चढ़ाया गया बाद में आरती हुई।'' इसी क्रम में निबंध संग्रह 'राजस्थानी काव्य साधना अब और तब' के निबंधों में हाड़ौती अंचल की गंध समायी हुई है। इन निबंधों में अनेक स्थानों पर हाड़ौती अंचल की प्राकृतिक छटा, रहन–सहन, आस्था और विश्वास व्यक्त हुआ है। पारिवारिक संदर्भ में परिवार व समाज का चित्रण उल्लेख व परिवेश जिसमें ग्रामीण व शहरी दोनों ही समाहित है डॉ. विजय के कथा साहित्य में मिलता है। इनका कहानी संग्रह 'उलझन' (1953 ई.) जिसमें तत्कालिक परिवेश की कहानियाँ संकलित है। जिसमें ग्रामीण परिवेश का चित्रण अधिकांशतः मिलता है। शहरी परिवेश का चित्रण नगण्य है। यह सभी

कहानियाँ सूक्त वाक्य से परिपूर्ण है। यहाँ सामाजिक सरोकारों का धर्म निर्वहन दिखाई पड़ता है। इनमें अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण में मिलता है। जातिवाद, अशिक्षा, बेरोजगार, अन्तर्जातीय विवाह, त्रिकोण प्रेम का सूक्ष्मता के साथ विवेचन किया गया है। परिवेशगत संदर्भों में आजादी के तुरन्त बाद की समस्या व सोच को भी डॉ. दयाकृष्ण विजय ने बड़ी गहराई के साथ चित्रित किया है। एक निबंध में परिवेश को चित्रित करते हुए वह कहते हैं कि– "वर्तमान परिवेश में साहित्य में बहुत बड़ा बदलाव आजादी से 69वें वर्ष बाद निरन्तर परिवर्तन हमें पढ़ने को मिल रहा है। चाहे वह किसी युग से जुड़ा हो अथवा किसी भी पहलू में कुछ नयी सोच मिलती है। 'गाय की पूँछ', 'गृह लक्ष्मी', 'सोने की मोहरे', 'आम का पेड़', 'आधा परांठा' व 'अवतार' कहानियाँ ग्रामीण परिवेश को दर्शाती है। जिसमें गाँव का जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य, तालाब का किनारा, अटूट धार्मिक आस्था सभी कुछ दिखाई देता है। ग्रामीण परिवेश का प्राकृतिक सौन्दर्य अपने आप में विशिष्ट होता है उदाहरण दृष्टव्य है– "सूरज ने गोखड़ों पर दस्तक दे दी तब तक कश्यप के घर की आज कुण्डी नहीं खुली कल तक जहाँ मेहमानों पाहुनों की भीड़ का जमघट था, वहाँ सुबह–सुबह मौन का गहरा सन्नाटा छाया हुआ।" 'वसीयत' कहानी में ग्रामीण जीवन की विवशता, मजबूरी, गरीबी का बड़ा मार्मिक चित्रण कहानी में मिलता है। वास्तव में गाँव की सामान्य जीवी एक विधवा। किसी परिवार से सेवा भी कितनी माँगती है। दो समय रुखी–सूखी रोटी। वर्ष में दो थोड़े छोटे–मोटे कपड़े। न कभी आना, न कहीं जाना फिर विद्योत्तमा की आँखें चली गई थी। जर्जर देहयष्टि हो गई थी। तीर्थ यात्रा करती तो उसकी भी संभावना शेष नहीं रही। भारतीय संस्कृति का प्रभाव विशेषकर कहानियों में डॉ. विजय ने शहरी परिवेश में व्याप्त समस्याएँ जैसे अन्तर्जातीय विवाह, त्रिकोण प्रेम, जातिवाद, कुरीतियों को दर्शाया है।

आज 'अर्थ' प्रदान युग है। मनुष्य के समस्त क्रियाकलाप अर्थ द्वारा संचालित है। परिणाम स्वरूप प्रतिस्पर्धा, भागदौड़, असंतोष, आशंका, एकाकीपन मनुष्य के जीवन में प्रविष्ट हुए है। आज विज्ञान और तकनीकी के युग में सुख सुविधाएँ बढ़ी है। मनुष्य सम्पन्न हुआ है उसकी जीवन शैली बदली है, परन्तु इससे उसकी शांति छिन गई है। यह सच है कि मनुष्य जिस परिवेश में रहता है उससे अलग होकर जीने की कल्पना वह नहीं कर सकता। गाँवों में शहरी सभ्यता ने अपने पैर पसारने शुरु कर दिये हैं। गाँव सिमट रहे हैं। जीवन मूल्य प्रभावित हुए। आस्थाएँ बदली है। भौतिक परिवेश के चित्रण में नगरों के परिवेश को लिया जा सकता है। जिसके अन्तर्गत शहरी वातावरण, खान–पान, रहन–सहन, जीवन शैली विचार आदि समाहित है।

षष्ठ अध्याय – 'शिल्प विधान' से है इसके अन्तर्गत भाषा व शिल्प के महत्त्व को परिभाषा द्वारा व्याख्यायित किया गया है। साहित्यकार अपनी अनुभूतियों व भावों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है जिन उपादानों, प्रक्रिया, ढंग व कौशल से उन अनुभूतियों को चित्रित करता है। वह शिल्प पक्ष कहलाता है। शिल्प मनोभावों की अभिव्यक्ति को साकार रूप प्रदान करता है। रचनाकार अनुभूतियों को सशक्त, सरल विशिष्ट बनाने के लिए शिल्प का प्रयोग करता है। विचारों, तथ्यों, भावों, घटनाओं तथा प्रसंगों को आकार गत स्वरूप शिल्प द्वारा ही प्राप्त होता है। रचना को रोचक व व्यवस्थित बनाने में शिल्प की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। समर्थ रचनाकार

भाषा कौशल व विशिष्ट शैली के प्रयोग से रचना को गंभीर अर्थवान, प्रभावपूर्ण बनाता है। प्रस्तुत अध्याय में डॉ. विजय द्वारा प्रयुक्त भाषा प्रयोग की विविध भावभंगिमाओं जैसे बिम्ब, सांकेतिकता, मुहावरे, लोकोक्तियों, सूक्ति प्रयोग आदि से समृद्ध है। शब्द शक्ति के प्रयोग से इनकी भाषा का पैनापन हमें दिखाई देता है, जो इनके वाग्वैदग्ध्य को दर्शाता है। इन सबके उदाहरण समस्त गद्य साहित्य में दिखाई देते हैं। बिम्ब संकेतात्मकता, व्यंग्यात्मकता द्वारा इनके भाषा सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। इनके कहानी संग्रहों में ग्रामीण परिवेश का चित्रण बिम्ब के माध्यम से व्यक्त हुआ है। बिम्ब अभिव्यक्ति का सूक्ष्म माध्यम है। डॉ. विजय ने बिम्ब प्रयोग के माध्यम से पात्रों के मन का अन्तर्द्वन्द्व व ग्रामीण अंचल के चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'संकल्प' मोहभंग, बंसीवाला, आम के पेड़, आधा परांठा इसी प्रकार की कहानियाँ है। 'वसीयत' कहानी में कमलेश्वर की बहू का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित है। 'विवाहिता' में कामना व वंदना दोनों के अन्तर्मन की उलझन को दर्शाया गया है। 'संकल्प' कहानी में रूपा की मनः स्थिति के साथ ग्रामीण अंचल को बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। सांकेतिकता भी शिल्प का महत्त्वपूर्ण अंग है। डॉ. विजय ने ग्रामीण जीवन की विविध समस्याओं को सांकेतिकता के साथ दर्शाया गया है। 'विवाहिता' कहानी में त्रिकोण प्रेम की समस्या के साथ पत्नी की पीड़ा को संकेत के माध्यम से व्यक्त किया गया है। उदाहरण दृष्टव्य है 'दशरथ राय ठीक हो गए। ठीक क्या हुए वंदना की सेवा से अभिभूत हो सोचने लगे, यदि वंदना नहीं होती तो मुझे जीवन में न जाने कितने कष्ट और उठाने पड़ते। पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि विवाह दाम्पत्य संबंध का नहीं परस्पर समर्पण का एक अनूठा अध्याय है।' मुहावरे व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता व रोचकता आती है। मुहावरेदार भाषा प्रभावी व आकर्षक होती है। लोकोक्तियाँ अनुभवों से पूर्ण होती है। विजय ने अपने कथा साहित्य में मुहावरें, लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है जिससे भाषा प्रभावी व चमत्कारपूर्ण बन गयी है। शब्द शक्ति के द्वारा विभिन्न स्थानों पर अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का प्रयोग करते हुए भाषा को सुसज्जित करते हुए पात्रों के मन की विविध दशाओं को संवादों के माध्यम से व्यक्त किया है। सूक्ति प्रयोग डॉ. दयाकृष्ण के साहित्य का विशिष्ट पक्ष है जिससे इनका शैल्पिक सौन्दर्य दोगुना हुआ है। इनके साहित्य में स्थान–स्थान पर प्रयुक्त सूक्त वाक्यों का प्रयोग समाज को दिशा निर्देश प्रदान करता है। साथ ही भाषा में गंभीरता व रोचकता उत्पन्न करता है। डॉ. विजय के सम्पूर्ण साहित्य में भारतीय संस्कृति की अजस्र धारा प्रवाहित है जिसमें भारतीय चिंतन को स्थान–स्थान पर दर्शाया गया है। डॉ. विजय ने स्वयं इस विषय पर लिखा है कि 'विचारों का आदान–प्रदान ही हमारी पहचान व व्यक्तित्व को दर्शाते हैं।' सूक्ति प्रयोग से डॉ. विजय के शिल्प सौन्दर्य में चार चाँद लग गये हैं। यह सूक्ति प्रयोग उनके उपन्यासों, कहानियों नाटक, निबंधों में स्थान–स्थान पर प्रयुक्त हुए है। 'वसीयत', 'बड़ी मछली', 'मोहभंग', 'ममत्व', 'गाय की पूँछ' कहानियों में सूक्ति वाक्यों तथा आदर्श वाक्यों की भरमार है। इनके प्रयोग से डॉ. विजय ने समाज को शिक्षाप्रद सार्थक संदेश प्रदान किया है। शब्द भण्डार की दृष्टि से डॉ. विजय की भाषा अत्यन्त समृद्ध है। इसमें तत्सम, तद्भव व देशज शब्दावली का प्रयोग किया गया है। जैसे साग, नटना, गोखड़ा, आड़, कुरेदना, फूँकना, लुगलुगा, पिचकना, थप्पी आदि यह

शब्दावली हाड़ौती अंचल के परिवेश को दर्शाती है। इनकी भाषा भावात्मक संवेग को लिए हुए है। कहानियों में ग्रामीण व निरक्षर जनता की भाषा में स्थानीय स्तर व बोली का प्रभाव है जो पात्रों की सहजता व मौलिकता को दर्शाता है। इस अध्याय में डॉ. विजय के सम्पूर्ण गद्य साहित्य के शिल्प कौशल को विविध उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबंध का अंतिम पड़ाव उपसंहार के रूप में है। इसमें शोध प्रबंध का सार व मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में डॉ. विजय के व्यक्तित्व परिचय व साक्षात्कार को सम्मिलित किया गया है। साहित्य और समाज एक दूसरे से सम्पृक्त होते है। साहित्यकार का उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु होता है। वह महत उद्देश्य की पूर्ति के साथ साहित्य सृजन करता है। 'डॉ. विजय ने इस धर्म का निर्वहन किया है। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य' पर शोध कार्य करने का मेरा यही उद्देश्य रहा है कि मैं इनके समग्र गद्य साहित्य के विशिष्ट पक्ष को इनके वाग्वैदग्ध्य कौशल को प्रकाश में लाकर विविध आयामों के धनी डॉ. विजय के वाक्चातुर्य का भी मूल्यांकन किया जा सके ऐसी मेरी दृष्टि व सोच रही है। हाड़ौती अंचल के साहित्यकार सहज व सरल भाव से साहित्य सृजन की अजस्र धारा में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं। डॉ. दयाकृष्ण विजय इस दृष्टि से विशिष्ट साहित्यकार है। इनके सम्पूर्ण साहित्य में संस्कृति व भारतीय दर्शन के विविध पक्ष उद्घाटित हुए है। जिसमें आदर्शवाद, राष्ट्रीयता की भावना मानवीय मूल्य, दार्शनिक मूल्य, आध्यात्मिक आदि सभी समाविष्ट है। मैंने यथा संभव अपनी समझ व दृष्टि के अनुसार डॉ. दयाकृष्ण विजय के गद्य साहित्य की मूल संवेदना व वाग्वैदग्ध्य कौशल को समझाने का लघु प्रयास किया है। साक्षात्कार के माध्यम से डॉ. विजय के समग्र साहित्य की संवेदना, चिंतन, दृष्टि, साहित्य लेखन की प्रेरणा बिन्दु तथा इनके जीवन से जुड़े विविध पक्षों को उद्घाटित करते हुए भारतीय धर्म व दर्शन, भक्ति, भारतीय चिंतन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने की यह मेरी विनम्र कोशिश है।

♦♦♦♦

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार पुस्तकें व ग्रन्थ

1. प्रबंध प्रकाश भाग–2
2. विश्व मानवता की ओर
3. भारतीय संस्कृति के आधार
4. वैदिक संस्कृति का विकास
5. हमारी सांस्कृतिक एकता
6. अशोक के फूल
7. काव्य और कला तथा अन्य निबंध
8. भूमिका, संस्कृति के चार अध्याय
9. कार्तिकेय खंडकाव्य
10. इन्द्रधनुष का आठवां रंग
11. साहित्य, संस्कृति और युगबोध
12. भारतीय संस्कृति के आधार
13. शब्द तक उतरी हुई अनुभूति
14. साहित्य, संस्कृति और युगबोध
15. हिन्दू संस्कार, (डॉ. राजबली पाण्डे)
16. सांस्कृतिक भारत, (डॉ. भगवत शरण उपाध्याय)
17. भारत में संस्कृति के आधार, (अरविंद घोष)
18. उत्तर हल्दीघाटी (खण्डकाव्य), सन् 1995, अनुराग प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली
19. एक और क्रांति (कथा संग्रह), सन् 1995, सन् मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली
20. विचारों के अमलतास (निबंध संग्रह), सन् 1995, अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
21. शब्द तक उतरी हुई अनुभूति (गजल संग्रह), सन् 1996, विजय प्रकाशन सिविल लाइन्स, कोटा
22. एक अधूरा अश्वमेघ (खण्डकाव्य), सन् 1996, सार्थक प्रकाशन 100–ए गौतम नगर, दिल्ली

23. क्षमा नहीं करोगी शकुन्तला (नई कविता), सन् 1998, विजय प्रकाशन सिविल लाइन्स, कोटा
24. गीतायनी (गीत संग्रह), सन् 1999, नंदन प्रकाशन, लखनऊ
25. संस्कृति साहित्य और युगबोध (निबंध संग्रह), सन् 2000, अनिल प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
26. त्रिपादिका (हाइकु संग्रह), सन् 2000 विजय प्रकाशन, सिविल लाइन्स, कोटा
27. एक और वामन (हाइकु संग्रह), सन् 2002, विजय प्रकाशन, सिविल लाइन्स, कोटा
28. रमताराम (उपन्यास), सन् 2004, विजय प्रकाशन, सिविल लाइन्स, कोटा
29. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्य में सांस्कृतिक चेतना (समीक्षा), सन् 2005, साहित्यागार, धामाणी मार्केट, चौड़ा रास्ता, जयपुर
30. हिन्दी भाषा और महाकाव्य (समीक्षा), सन् 2005, साहित्यागार, चौड़ा रास्ता, धामाणी मार्केट, जयपुर
31. संस्कृति का वागर्थ (समीक्षा), सन् 2006, साहित्यागार, धामाणी मार्केट, चौड़ा रास्ता, जयपुर
32. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य (निबंध संग्रह), सन् 2006, धारिका प्रकाशन रोहिणी नई दिल्ली–110085
33. धूप छाही क्षण (नई कविता), सन् 2007, यतीन्द्र साहित्य सदन, भीलवाड़ा
34. वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका (निबंध संग्रह), सन् 2007, धारिका प्रकाशन रोहिणी, नई दिल्ली
35. पायसपायी (उपन्यास), सन् 2008, पंचगंगा प्रकाशन ट्रस्ट, वाराणसी (उ.प्र.)
36. समय के शिलालेख (व्यंग्य कविताएँ), सन् 2009, विजय प्रकाशन 228–बी सिविल लाइन्स, कोटा
37. धूप खिले सोनाली (गीत संग्रह), सन् 2009, विजय प्रकाशन 228–बी सिविल लाइन्स, कोटा
38. अनुभवों के आयाम (गजल संग्रह), सन् 2009 धारिका प्रकाशन, 319 थर्ड फ्लोर, रोहिनी, दिल्ली
39. मुस्तक की छाव तले (मुक्तक संग्रह), सन् 2009, विजय प्रकाशन, सिविल लाइन्स, कोटा
40. देखन में छोटे लगे (दोहा सतसई), सन् 2009, विजय प्रकाशन, कोटा
41. अणु से विराटा तक, सन् 2012, विजय प्रकाशन, सिविल लाइन्स, कोटा
42. गद्य काव्य, सन् 2012, संजय पब्लिकेशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
43. संवेदना के स्वर, सन् 2012, विजय प्रकाशन, सिविल लाइन्स, कोटा

44. भारतीय उपन्यासकार और कथा साहित्य, डॉ. प्रभाकर मानवे, भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता 1989
45. आदि सम्राट (नाटक) सन् 1974, सुशील प्रकाशन पुरानी मण्डली कचहरी रोड़, अजमेर
46. मेरे भारत मेरे देश (कविता संग्रह) सन् 1974 अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
47. छत्रपति शिवाजी (नाटक) सन् 1975, अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
48. आंजनेय (महाकाव्य) सन् 1978 विजय प्रकाशन, कोटा
49. स्वप्न और सत्य (कथा संग्रह) सन् 1979, चिन्मय प्रकाशन चौड़ा रास्ता, जयपुर
50. राम की बहुरिया (गीति काव्य) सन् 1980, अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
51. राग से विराग तक (नाटिका) सन् 1983, अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
52. गीता अनुशीलन (समीक्षा), सन् 1984, अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
53. सृष्टि का सगुण पक्ष (एकांकी संग्रह) सन् 1987 अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
54. श्वेत शिखरों पर धूप बिम्ब (नई कविता) सन् 1987 अनुराग प्रकाशन, महरौली दिल्ली
55. सिंहावलोकन (नाटक) सन् 1989 चिन्मय प्रकाशन चौड़ा रास्ता, जयपुर
56. राजस्थानी काव्य साधना अब और तब सन् 1990, अर्चना प्रकाशन, बी–6 दाता नगर, अजमेर
57. इन्द्र धनुष का आठवां रंग (नई कविता) सन् 1991 अमन प्रकाशन, महरौली, दिल्ली
58. कार्तिकेय (खण्ड काव्य) सन् 1992 आर्य प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली (किताब पर)
59. हारीत कृत 'दमयंती' प्रस्तावना, पृ. ख,ग,घ
60. मेघनाद वध–भूमिका
61. बीसवीं शताब्दी पूर्वाध के महाकाव्य
62. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास
63. आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान
64. विचारों के अमलतास–डॉ. दयाकृष्ण विजय, प्रकाशन सिविल लाइन्स, कोटा
65. साहित्य संस्कृति और युगबोध–डॉ. दयाकृष्ण विजय, प्रकाशन सिविल लाइन्स, कोटा
66. साहित्य संस्कृति और युगबोध–डॉ. दयाकृष्ण विजय, प्रकाशन सिविल लाइन्स, कोटा
67. धूप छांही क्षण (नई कविता) सन् 2007 यतीन्द्र साहित्य भवन भीलवाड़ा
68. वर्तमान साहित्य एवं समाज निर्माण की भूमिका (निबंध संग्रह), सन् 2007 यतीन्द्र साहित्य भवन, भीलवाड़ा
69. पायसपायी (उपन्यास), सन् 2008 पंचगंगा प्रकाशन, ट्रस्ट वाराणसी (उ.प्र.)
70. समय के शिलालेख (व्यंग्य कविताएँ), सन् 2009 विजय प्रकाशन 228 बी–सिविल लाइन्स, कोटा

71. धूप खिले सोनाली (गीत संग्रह) सन् 2009 विजय प्रकाशन 228 बी–सिविल लाइन्स, कोटा
72. अनुभवों के आयाम (गज़ल संग्रह) 2009 धारिका प्रकाशन 319 थर्ड फलोर रोहिनी, दिल्ली
73. पुस्तक की छांव तले (मुक्तक संग्रह) सन् 2009 विजय प्रकाशन 228–बी, सिविल लाइन्स, कोटा
74. आदि सम्राट (नाटक) द्वितीय संस्करण 2014 सुशील प्रकाशन कचहरी रोड़, अजमेर
75. डॉ. दयाकृष्ण विजय के साहित्य में प्रवृत्ति मूलक दार्शनिकता (शोधकर्ता डॉ. मिर्जा हैदर बैग बीकानेर, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर से)
76. डॉ. दयाकृष्ण विजय का रचना संसार (शोधकर्ता डॉ. नरेन्द्र तोमर ग्वालियर, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर से)
77. डॉ. दयाकृष्ण विजय काव्य–सृजन के विविध आयाम (शोधकर्ता डॉ. यदुवीर सिंह खिरवार खेतड़ी, आगरा विश्वविद्यालय से)

शब्द–कोश

1.	हिन्दी शब्द सागर	–	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2.	हिन्दी साहित्य कोश भाग 1.2	–	धीरेन्द्र वर्मा
3.	हिन्दी–उर्दू कोश	–	आचार्य रामचन्द्र वर्मा, बदरी नाथ कपूर
4.	लोक भारती वृहद् प्रामाणिक हिन्दी कोश	–	बदरी नाथ कपूर आचार्य रामचन्द्र वर्मा
5.	सहज समान्तर कोश	–	अरविन्द कुमार, कुसुम कुमार
6.	हिन्दी शब्द कोश	–	हरदेव बाहरी
7.	आदर्श हिन्दी शब्द कोश	–	रामचन्द्र पाठक

पत्र–पत्रिकाएँ

1.	पुस्तक–वार्ता	–	वर्धा
2.	साहित्य अमृत	–	नई दिल्ली
3.	वागर्थ	–	कोलकाता
4.	साक्षात्कार	–	साहित्य अकादमी, भोपाल
5.	तद्भव	–	लखनऊ
6.	वाक्	–	नई दिल्ली
7.	आलोचना	–	नई दिल्ली, पटना
8.	पाखी	–	नोएडा
9.	अक्सर	–	जयपुर
10.	हंस	–	नई दिल्ली
11.	बिपासा	–	भाषा एवं संस्कृति वि. शिमला
12.	समकालीन साहित्य	–	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
13.	मधुमती	–	राज. साहित्य अकादमी, उदयपुर
14.	भाषा परिचय	–	भाषा एवं पुस्त. वि., जयपुर
15.	मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद	–	बेंगलूर
16.	वैचारिकी	–	कोलकाता
17.	नया ज्ञानोदय	–	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

♦♦♦♦

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका / पुस्तक का नाम	ISSN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय
01.	नागार्जुन की कविता में आम आदमी	2017	शोध समीक्षा और मूल्यांकन	0974–2832	हिन्दी विशेषांक Volume-VIII-Issue-94-96 नवम्बर 2016 से जनवरी 2017	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	परिवार में उपेक्षित वृद्ध–स्त्रीयाँ	2017	प्रिंटिंग एरिया	2394–5303	हिन्दी विशेषांक Volume-02- Issue-52 अप्रेल 2018	अन्तर्राष्ट्रीय

An International Indexed, Refereed, Interdisciplinary, Multilingual, Monthly Research Journal

ISSN 0974-2832 | Nov-2016-Jan-2017 (Combined), Vol-VIII-Issue-94-96

Impact Factor - 1.00064 (UIF)

SHODH SAMIKSHA AUR MULYANKAN

शोध समीक्षा और मूल्यांकन

Hindi, English, Maths, Physics, Chemistry, Biology, Information Technology, Engineering, Management, Commerce, Life Sciences, Home Science Economics, Political Science, Public Administration, Education, Music, Law, Human Science, History, Computer, Psychology

AN INTERNATIONAL REFERRED RESEARCH JOURNAL
S.S.M.
WAY TO SUCCESS.....
R.A.E.
JAIPUR INDIA

Editor
Dr. KRISHAN BIR SINGH
www.ssmrae.com

Contents

Library Science

The Study of Computerized Television

*** Dr. Veena Prakashe ** Sunanda Girde** 1-4

Zoology

मण्डला जिले में जैव विविधताओं के संदर्भ

*** Dr. (Smt) Manju Dubey** 24-26

Drawing & Painting

आधुनिक रंगमंच में कुचामणी ख्याल का योगदान

*** डॉ. चन्द्रदीप हाड़ा ** डॉ. आई. यू. खान** 43-44

माणिक्यलाल वर्मा आदिम एवं जनजाति शोध संस्थान

*** डॉ. राम सिंह भाटी** 45-46

Music

पण्डित राजेन्द्र भट्ट द्वारा कल्पना संगीत विद्यालय

*** डॉ. प्रभा भारद्वाज ** महावीर गुप्ता** 30-31

संगीत और सौन्दर्य

*** डॉ. आराधना सक्सैना** 35-36

Marathi

समाज प्रबोधन आणि समतेसाठी संतश्रेष्ठ सेना महाराजांचे

*** प्रा. अभय सुभाष जोशी** 61-62

Economics

भारत में बजट व्यवस्था

*** ले0 धर्मेन्द्र कुमार** 22-23

Home Economics

अमरावती जिल्हयातील शहरी व ग्रामीण स्त्रियांमध्ये स्त्री

*** डॉ. लीना सुनील कांडलकर** 73-77

English

Jane Eyre : A Fascinating Story of Wish

*** Manglika Shashwat** 8-9

Education

Teaching Language through Concept

*** Rajesh J Pareira ** Dr. H. A Patel** 10-12

जल संरक्षण एवं प्रबन्धन में शिक्षक की भूमिका

*** किरण जिलोवा** 16-18

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत सरकारी विद्यालयों

*** डॉ. (श्रीमती) सुमन चौधरी** 19-21

प्राथमिक शिक्षा के विकास में ग्राम शिक्षा समिति

*** डॉ. प्रतिष्ठा शर्मा ** विनोद कुमार कुमावत** 40-42

अकादमिक अभिप्रेरणा के सक्रियता संदर्भ में

*** Manju Choudhary** Sujeet Mishra** 57-60

Political Science

मानवता के रक्षक मानवाधिकार एवं गैर सरकारी संगठन

*** मदन लाल** 37-39

जन–सशक्तिकरण में मनरेगा की भूमिका के संदर्भ

*** Dr. Sitaram Choudhary** 50-52

Sociology

पर्यटन विकास : क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य, एक समाजशास्त्रीय

*** डॉ० जगदीश चन्द्र आर्य ** संजीव कुमार यादव** 32-34

Hindi

काल की संकल्पना और अज्ञेय का निबन्ध साहित्य

*** श्रीमती नमिता चौहान** 27-29

नागार्जुन की कविता में आम आदमी

*** श्रीमती ऋचा भार्गव** 47-49

नवजागरण कालीन हिंदी उपन्यास 'देवरानी जेठानी

*** सनसम रामेश्वरी देवी** 63-65

कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'नर– नारी'

*** आलता चकवर्ती** 68-69

Research Paper

Emotional intelligence through vedas

*** Richa Chauhan** 5-7

"Ahimsā" in Jainism and Its Relevance in Today's Context

*** Dr. (Mrs.) Vinay Singhal** 13-15

छत्रपती शिवाजी महाराज आणि पोर्तुगीजः

*** डॉ. नितीन व. चांगोले** 53-56

'प्रौद्योगिक शिक्षा एवं सामान्य शिक्षा के विद्यार्थियों

*** डॉ भावना शर्मा ** डॉ संगीता महाशब्दे** 66-67

दिव्यांग (अपंग) बालकाचे समायोजन आणि पालकाची

*** प्रा. विवेक एस. गोर्लावार** 70-72

International Indexed & Refereed Research Journal ISSM-0974-2832,(Print) E-ISSN-2320-5471, Nov,2016-Jan,2017 (Combined) VOL,-VIII,ISSUE-94-96

शोध पत्र – हिन्दी

नागार्जुन की कविता में आम आदमी

Nov-2016-Jan.,2017

* श्रीमती ऋचा भार्गव

* शोधार्थी,राजकीय कला महाविद्यालय कोटा (राज.)

साहित्य में आम आदमी की चर्चा किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही होती रही है। विष्व के सभी भाषा साहित्य में यह आम आदमी अलग– अलग नामों से अलग–अलग रूपों उपस्थित है। परन्तु वर्तमान साहित्य में आम आदमी को व्यापक रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है।

प्रष्न यह है कि आम आदमी से तात्पर्य क्या है। 'आम–आदमी'दो षब्दो का संयुक्त प्रयोग है आम और आदमी ।'आम' का षाब्दिक अर्थ है–साधारण,मामूली,सामान्य और 'आदमी' षब्द षक्ति, पुरूश का र्प्याय है।

इस प्रकार आम आदमी षब्द विषेश रूप से नितान्त मामूली, पददलित,प्रताडित, अनवरत, संघर्शरत, मध्यवर्ग, निम्न वर्ग व सर्वहारा वर्ग को सम्मिलित कर सकते है। यहाँ आम आदमी षोशण व दमन को नियति मानकर जीता हुआ रोजी–रोटी को जुटा भर पाने की समस्याओं से जूझता रहता है।

लोक भाषा में लोक काव्य में तो आम आदमी का सहज चि़त्रण प्रचुरता से मिलता है। क्योंकि लोक काव्य में आम आदमी के बारें कहने वाला स्वयं भी आम आदमी होता है।

हिन्दी काव्य में अद्योपान्त दृश्टि डालने पर सर्वप्रथम कबीर का नाम उभरता है जिनके काव्य में आमजन के प्रति सहानुभूति परिलक्षित होती है। रीतिकाल से आमजन एकदम नदारद है पर हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल इस दृश्टि से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के साथ उपस्थित होता है। जिसमें आम आदमी प्रमुखता के साथ उपस्थित है।

आज की कविता आम आदमी के समग्र व्यक्तित्व से गहरी जुड़ी हुई है। युगीन सत्य के परिप्रेक्ष्य में आम आदमी की स्थिति, मनोदषा व जीवन आज की कविताओं में कवियों ने उसकी भावनाओं व इच्छाओं को पर्त दर पर्त टटोला है। वह संघर्शरत आम आदमी का प्रतिनिधि बन गया है । ऐसे कवियों कविवर नागार्जुन प्रमुख है । आम आदमी को आम आदमी की ही भाषा में सर्वप्रथम सुप्रतिश्ठित करने का श्रेय कवि नागार्जुन को जाता है।1

कालिदास की अप्रतिम रचना मेघदूत के हिन्दी रूपान्तर की भूमिका में नागार्जुन स्वंय लिखते है।

''जो काव्य जितना ही अधिक लोकप्रिय होगा बहुतन की उतनी ही अधिक अनुभव सामग्री उसका आधार होगी। '' (1)

उनकी कविताओं में यही अनुभव व्यक्त हुआ है। मामूली, उपेक्षित, असहाय जिन्दगी के चित्र अनायास ही इनकी कविता का विशय बन गये। आम आदमी की छोटी –छोटी इच्छाएँ ,छोटे–छोटे सुख हैं। ये मामूली इच्छाएँ भी षायद ही पूरी हो पाती हों । 'गगा मईया' कविता में नंगधड़ंग मल्लाहो के बालक उथली धार में पैसे ढूँढ रहे है और सपने बुन रहे है कि उन पैसों बीड़ी पियेगें,आम चूसेंगें। देह में सुगन्धित टिकिया मलेंगे या सिर में चमेली का तेल लगायेगें।

आम जन का नागार्जुन ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है इसलिये वे उसके जीवन के प्रतिफल और हर क्षण के साथ जुड़ी पीडा ,निराषा, हताषा को भी सषक्त अभिव्यक्ति दे पाते हैं। 'प्रेत का बयान', 'खुरदरे पैर', 'घिन तो नहीं आती', 'अकाल और उसके बाद' आदि इसी प्रकार की कविताएँ है।

यथार्थ का वह रूप जिन्हे षिश्ट व सुरूचिपूर्ण कवि वीभत्स समझ नकार देते है। नागार्जुन उन्हें काव्य का रूप प्रदान करते है । जहां किसी का ध्यान नही जाता वहां भी वे अपना अस्तित्व सिद्व कर देते है । आम जन की पीड़ा से कवि कितना आहत है यह उनकी 'खुरदरे पैर' कविता में व्यक्त है।

देर तक टकराये / उस दिन इन ऑखों से वे पैर
भूल नही पाउॅगा फटी बिवाईयॉ / खूब गई दुधिया
निगाहों में धंस गई कुसुम कोमल मन में ।(2)

रिक्षे वाले के कुलिष, कठोर, खुरदरे पैर कवि के मन में धॅस गये है यह कल्पना केवल नागार्जुन ही कर सकते थे। 'घिन तो नहीं आती' कविता में बोझाा ढोते कुली मजदूरों का चित्रण किया है। उनका जीवन जीने का अपनाा ढंग है । जिससे अन्य लोगों को घिन आ सकती है वे सुरती फॉकते, ठहाके, लगाते अपनी दुनिया में मस्त है । उनका साथ भला किसे रूचिकर लगता होगा उनके भाव कविता में इस प्रकार व्यक्त किया है–

सच सच बतलाओ / नागवार तो नहीं लगती है,
जी तो नहीं कुढ़ता है? / घिन तो नहीं आती है।(3)2

आज मानव भौतिकता वाद के कारण अपने असित्व को भूल अर्थ की दौड़ में षामिल हो गया है। मनुश्य अपनी जड़ों से दूर रह कर जीवित नहीं रह सकता, उसकी मूलभूत आवष्यकताऐं, इच्छाऐं उसे वापिस अपने परिवेष की और

लैटाना चाहती है। उसकी स्मृति में प्रिया का सिन्दूर से सजा भाल, घोर निर्जन और विशम परिस्थितियों में भी याद आता है। मनुश्य सामाजिक प्राणी है, समाज के बिना उसके अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती वह आज अपनो से दूर प्रवासी होने की पीड़ा भोग रहा है। उसे आज भी धान से लहलहाते खेत, कन्दमूल, आम के बगीचे, षाक भाजी, अपना गॉव इन सबकी मधुर स्मृति ह्दय में टीस पैदा करती है। यही वेदना 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता में व्यक्त है–

ओह, यद्यपि पड़ गया हूँ दूर उनसे आज ह्दय से पर आ रही आवाज धन्य वे जन, वही धन्य समाज। (4)

आज मशीनवत हो रहे मानव के लिये संवेदना जड़ हो गयी है। फिर आम जन में गहराई से पेठे हुए संस्कार उसे वापिस अपने परिवेष की याद दिलाते है। वह अगहनी धान की दुद्वी मंजरियों के पकने की प्रतीक्षा लहलहाती फसलों की कल्पना मात्र से पुलकित होता है। वह आज उन्ही खेतों की मेंड़ों पर, सैकत पुलिन पर चहलकदमी करना चाहता है। जो उससे दूर होते जा रहे है जो उससे छूट गया है वह उन सबका स्पर्ष करना चाहता है क्योंकि प्रभात का सुन्दर दृष्य तो वह सोने में ही निकाल देता है। 'पछाड़ दिया मेरे अस्तित्व को ' कविता में अपनो से दूर हुये मनुश्य की यही पीड़ा व्यक्त हुई हैं ।

लौटना तो है ही / मगर यंह कहॉ दिखता है रोज –रोज
सोते ही बिता देता हूँ, षत–षत प्रभात
छूट सा गया है, जनपदों का स्पर्ष । (5)

छूट गये सभी पलों को जीना चाहता है। अंजली में भर लेना चाहता हैं। कवि नागार्जुन की कविता में जन पक्ष धारता गजब की है जो अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी कविता का संसार सामान्य लोक जीवन ही है जिनसे अन्य कवि ऑखें मूंद लेते है। 'दन्तुरित मुस्कान', 'गुलाबी चूडियॉ'' यदि आज की कविता में देखना हो तो नागार्जुन की कविता में जाना होगा । इनकी काव्य दृश्टि व्यापक है जो लोक चेतना यथार्थ के अनुभव से अनुप्राणित है ।

जहॉ कवि ने षहर के मजदूरों के जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को चित्रित कर उनके हितों की रक्षा के लिये आवाज उठायी है । वहीं दूसरे और खेत – खलियान किसान व सामान्य जन की पीड़ा को व्यक्त किया है इनका काव्य पूर्णतया आमजन को समर्पित हैं।

जन सामान्य के दुःख – दर्द को व्यक्त करने के साथ इन्होंने मजदूरों के हितों के लिये अपनी आवाज उठायी है इसलिये इन्हें मजदूर वर्ग का कवि भी कहा जाता है । ये अपना स्वर खेत –खलियान , मजदूर किसान तक ले जाते है। वे उनके दुखः–दर्द को बॉटते है किसानों के लिये ' अकाल ' मृत्यु के समान है। दुर्भिक्ष के कारण मानव ही नही छोटे छोटे जीव भी सुख – दुःख के साथी होते है। कवि ने इसे 'अकाल और इसके बाद' कविता में व्यक्त किया है ।

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उसके पास
कई दिनों तक छिपकलियों की रही भीत पर गष्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही षिकस्त । (6)

अकाल समाप्ति के बाद अनाज आने की खुषी से चेहरे दमक रहे है –

दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा ऑगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की ऑखें कई दिनों के बाद ।(7)

सामान्य जन की सोच, पीड़ा को वे बड़ी सूक्ष्मता के साथ परखते है। षहरी चकाचौध में वे बस ड़ाईवर द्वारा लाई गयी 'गुलाबी चूड़ियों ' को भी याद रखते है। ये चूड़ियॉ अपने घर से दूर चले गए ड़ाईवर की ऑखों में चमक पैदा करती है जो अपने परिवेष की याद के साथ अपने पन की गन्धा और स्पर्ष से सुवासित है।

आम आदमी के मन में जीवन जीने की अथाह उमंग है। महत्वाकांक्षाऍ है। खुषी के छोटे–छोटे पलों को वह भरपूर जीना चाहता है परन्तु मजबूरी व विवषता उसकी खुषी को पल में काफूर कर देती है। 'मास्टर' कविता निम्नवर्गीय व्यक्ति की विवषता दृष्टव्य है।

बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट मिनट में पॉच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़तें है, किसी तरह आदम के सॉचे । (8)

फास्ट फूड के कल्चर में आम आदमी को 'सिके हुये दो भुट्टे' आहाद से भर देते है। उसका समूचा असितत्व दो जून रोटी जुटाने में समाप्त हो जाता है। वह उसमें उलझा हुआ है। परन्तु आषा की किरण दिखने पर उसका मन मयूर नाचने लगता है ।

आज के कवि का समाज के प्रति उत्तर दायित्व बोध गहरा है वह अपने समय और जीवन के प्रति बेहद सचेत है। कवि नागार्जुन उन सब जन के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने समाज के लिये संघर्श किया किन्तु सफल नहीं हो पायें 'उनको प्रणाम' कविता में वे कहते है –

जो छोटी सी नैया लेकर / उतरे करने को उदधि पार
मन की मन में ही रही , स्वंय
हो गए उसी में निराकार उनको प्रणाम (9)

कवि कहता है आमजन पाशाण नहीं उसके पास भी अनुभूति है, वेदना है, आम आदमी अर्थात जो साझी समस्याओ से घिरा है, समान स्तर पर जीवन यापन करता हुआ समान दुःखों का भागीदार है एंव समान विशमताओं से जूझ रहा है भश्टाचार, दंगों , नौकरषाही , मूलहीनता, अकाल, महामारी, बेरोजगारी सभी की मार आम आदमी पर पड़ती है किन्तु इसका मतलब ये नहीं कि आमजन षोशण या दमन के लिये ही पैदा हुआ है। प्रष्न भी उठता है।

'क्या आम आदमी इतना लाचार हो गया है कि समकालीन कविता उसका षोकगीत बन गयी है क्या उसके बदलाव की कोई उम्मीद नहीं ' (10)

यहॉ बात आमजन की मजदूरी, पीड़ा वेदना को व्यक्तभर करने बात नहीं बल्कि अहम मुद्दा आमजन की आवाज को प्रमुखता देना, बुलन्दी तक पहुँचाना है सच्चा कवि वही है जो मन साधारण की अन्तर्वेदना को महसूस करे, जो कि षोशण और विशमताओं की चक्की में पिस रहा है।

बाबा नागार्जुन ऐसे ही कवि है जिनकी प्रतिबद्वता है आमजन के प्रति, वे अपनी कविताओं में पात्रों के साथ गहराई से जुड़ जाते है। नागार्जुन सच्चे अर्थो में प्रतिनिधि जन कवि हैं जिनका सम्पूर्ण काव्य आम आदमी की पीड़ा को समर्पित है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मधुमति अंक दिसम्बर 1998 पृ.88
2. नागार्जुन प्रतिलिपि कविताएँ 3,4,5,6,7
8. मृदुल जोषी : समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी पृ.–29
9. आधुनिक हिन्दी काव्य संकलन, पृ.–40
10. बहुवचन अंक अप्रैल – जून 07, पृ.– 50

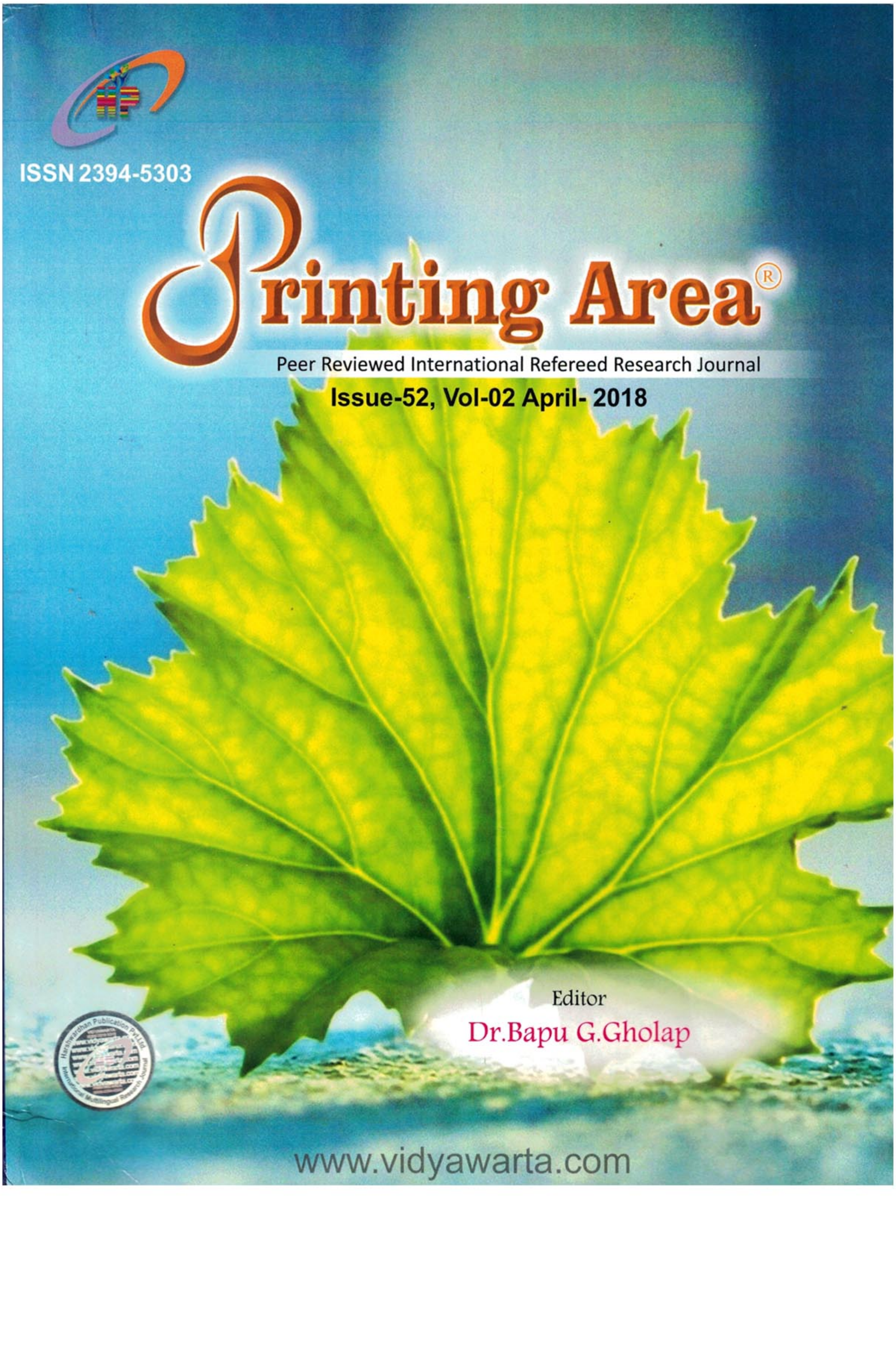
ISSN 2394-5303
Printing Area®
Peer Reviewed International Refereed Research Journal
Issue-52, Vol-02 April- 2018
Editor
Dr.Bapu G.Gholap
www.vidyawarta.com

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

Index

01) THE FUZZY SET THEORY AND ITS APPLICATIONS
Prof. Jamkar V. M.,Jalna ||10

02) A search for Gender Equality In Kamala .....
Dr. Dilip Kumar Jha, Assam || 17

03) Work Life Balance and Challenges Faced by Working Women
Sudeshna Mishra,Odisha ||21

04) Goalporiya Lokogeet – A Major Contribution ....
Khorsed Alom Mondal ,Dhubri (Assam) ||25

05) A Comprehensive Study of Mulk Raj Anand & Sayed Abdul Malik As a Humanist
Khorsed Alom Mondal ||28

06) Cultural Discrimination at Domestic work in Northen India
Rathod Bhimrao Jaisu, Rajasthan. ||34

07) JUDICIAL SENSITIVITY RELATING THE PROSTITUTION IN INDIA
Dr. Umesh Narain Sharma, Satendra Kumar Sharma, Uttar Pradesh ||37

08) WOMEN EMPOWERMENT: ISSUES AND CHALLENGES
Amarjit Lal , Rajasthan ||42

09) Emerging Trends in the Music of Punjab
Harsimran Kaur Bhatti, New Delhi. ||51

10) The Financial Inclusion: An approach of IDBI Bank Ltd. for Indian Economy
Dr. Rajeev Shukla, Mr. Raju Kashyap, Lucknow. ||53

11) Mahatma Gandhi and his Champaran Satyagraha
Dr. Saurav, Jharkhand. ||58

12) INDIA'S ECONOMY: CHALLENGES AND OPPORTUNITIES
Dr. Raju Kalmesh Sawant, N.D.Patil , Sangli ||63

13) USTAD LACHHMAN SINGH SEEN The Musical Voyage: ......
Arupriya Seen, Patiala ||67

14) EDUCATIONAL ASPIRATION OF HIGHER SECONDARY SCHOOL STUDENTS.....
Ms. Nilima Chhotulal Sonar, Prof. Dr. H. Y. Deore, Dhule ||72

15) IMPACT OF ADVANCE TECHNOLOGY ON EDUCATION SYSTEM .....
Dr. Manjush Awasthi, Dr. Brijesh Chandra Tripathi , lucknow ||75

16) भारतरत्न डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर : सामाजिक, शैक्षणिक , कार्य
डॉ.रूद्राक्षे चंद्रकांत दशरथ,लोणी ||79

17) सार्कमधील चीनचे आगमन— भारतापुढील आव्हान
प्रा.डी.एम.ढवारे,वाशिम. ||83

18) ७३ आणि ७४ वी घटना दुरुस्ती व महिलांचा राजकीय सहभाग
प्रा. डॉ.संजय गायकवाड , जि.हिंगोली. ||86

19) व्यसनमुक्त समाज काळाची गरज
प्रा. विवेक एस. गोर्लावार डचिरोली ||90

20) स्त्री — पुरूष समानता आणि व्यवहार
प्रा.कु. प्रज्ञा एस. वनमाली, गडचिरोली ||94

21) मौर्य साम्राज्यातील न्यायव्यवस्था
डॉ.हेमलता एफ. भावसार, कांचनमाला कांबळे (गवई) ||97

22) ''अग्रणी बैंकों द्वारा प्रसारित सम्भाव्यतायुक्त ऋण योजनायें एवं उनका मण्डल...
डा०मुनीष कुमार, डा०जय प्रकाश (डी०लिट०), आगरा। ||100

23) शरद पवार यांचे महिला धोरण
प्रा. डॉ.सौ. वंदना विनायक नढे, ता.जुन्नर, पुणे. ||106

24) ग्रामीण आणि शहरी क्षेत्रातील विद्यार्थ्यांच्या भावनिक बुद्धिमत्तेचे तुलनात्मक अध्ययन
डॉ.आर.एल.निकोसे , विनोद वा. गेडाम, नागपूर ||110

25) प्रकृति का उपभोक्तावादी कवि महेशचंद्र दिवाकर
डॉ. हाशमबेग मिर्झा , सुदाम दौलत पाटील ||114

26) महिला कैदियों की समस्यायें एवं जेल व्यवस्था
श्रद्धा सोम सिंह, ग्वालियर (म.प्र.) ||119

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

27) हरिशंकर परसाई की कहानियों में समाज–दर्शन
डॉ. के. सुब्रमणि TAMILNADU ||124

28) महाराष्ट्रातील समाजकार्य महाविद्यालयातील ग्रंथालयाचा अभ्यास त्याकरिता ग्रंथपालांचा ...
प्रा. वर्षा अ तिडके (शनिवारे) गडचिरोली ||127

29) डॉ. भगवानस्वरूप चैतन्य का काव्य—कृतित्व एवं सृजन के विविध आयाम : एक अध्ययन
मंजू त्यागी, ग्वालियर (म.प्र.) ||131

30) पुराणों एवं महाकाव्यों में वर्णित यक्ष, — एक एतिहासिक विवेचन
डा० अश्विनी कुमार ||138

31) परिवार में उपेक्षित वृद्ध—स्त्रीयाँ
श्रीमती ऋचा भार्गव , कोटा (राजस्थान) ||143

32) चोल कालीन स्थानीयशासन व्यवस्थाकी विषेशताऐं
डॉ.सहदेव दास, हजारीबाग,झारखण्ड ||146

33) झारखण्ड में आदिवासी महिलाओं की दशा एंव दिशा
डॉ०राजेश हंसदा, हजारीबाग, झारखण्ड। ||79

34) भारत की विदेश नीति और सुरक्षा के गैर—पारंपरिक खतरें
पायल यादव ||157

35) औपचारिक एंव अनौपचारिक (प्रौढ़) शिक्षा : एक ऐतिहासिक अध्ययन
सरिता कुमारी, हजारीबाग ||162

36) A Study of the Understanding of Science of Hindu and Muslim Students
Dr. Ramendra Kumar Gupta, Orai ||166

37) Some case studies of Young depressed patients and its cure.
Prof. Satyanarayan B. Joshi, Malvan ||170

38) Transportation System in India : Progress and Potential
Dr. Kumar Kartikeya, Bhilwara ||175

39) Pradhan Mantri Mudra Yojana as a tool of Finance Inclusion with special...
Pardeep kumar, Gurana (Hisar) ||182

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

31

परिवार में उपेक्षित वृद्ध–स्त्रीयाँ

(अनामिका की 'वृद्धाएँ' कविता के संदर्भ में)

श्रीमती ऋचा भार्गव
शोधार्थी, हिंदी विभाग
विध्या भवन, झाला हाउस के सामने, सूरजपोल
कोटा (राजस्थान)

****

भारतीय समाज में परिवार का महत्व सनातन काल से स्वीकारा गया है द्य भारतीय संस्कृति में 'मात्र देवो भव पितृ देवो भव' के द्वार मातादृपिता को भगवान का दर्जा मिलता रहा है । संयुक्त परिवार प्रथा अनादि काल से चली आ रही है । परन्तु अब धीरे–६ ीरे दृष्टि बदलने लगी है द्य सयुक्त परिवार टूटे है, एकल परिवार से होते हुए परिवार केवल पति–पत्नी और बच्चे में सीमित हो गये है । परिणाम स्वरूप व्यक्ति में हताशा, निराशा एकाकीपन व अवसाद बढ़ा है द्य जीवन की व्यस्तता और अर्थ केन्द्रित दृष्टि ने परिवार संस्था को सबसे अधिक ठेस पहुँचाई है द्य बुजुर्ग जो परिवार के संसार होते थे । आज उपेक्षा का शिकार होकर एकाकी व दयनीय जीवन जीने को विवश है । घर की वृद्धाएँ जिनके अनुभव परिवार को दिशा निर्देश देते थे । परिवार हो सहयोग देते थे वे अब अपने घर में अवांछित वस्तु में तब्दील हो गयी है । आज परिवार में बुजुर्ग व युवा पीढ़ियों को बिच वैचारिक मतभेद भी बड़ा है । साहित्यकार अतिसंवेदनशील होता है साहित्य में समाज प्रतिबिम्बित होकर है , समाज में होते तेज परिवर्तनों को साहित्यकार अपनी पैनी दृष्टि से खोज लेता है था समाज में व्याप्त विसंगतियों और विषमताओं को साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है ।

सहित्य समाज को प्रतिबिंबित करता है द्य साहित्य सृजन का आधार संवेदना होती है । प्रत्येक

साहित्यकार अपनी अनुभूत संवेदनाओ को शब्द बर्ड कर साहित्य में उस अनुभूति को विविध रूपो में प्रस्तुत करता है । साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं । क्योंकि सहिव्य में वह सभी सृजित होता है जो समाज में घटित होता है । परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई होती है । आज का परिवेश परिवर्तित हो रहा है । "अर्थ", की प्रधानता बड़ी है । रिश्तो की गर्माहट कम हुई है । भौतिक वादी युग में महत्वकांशाओं को पंख लग गये है । संयुक्त परिवार विघटित हो गये है । मनुष्य एकाकी परिवार में सिमट कर अपनों से इर देश—विदेश में अर्थोजन हेतु परिवार से इस जा रहा है । इन सबने अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओ को जन्म दिया है । जिसमे संयुक्त परिवार को विखराव ने वृद्ध जनों को उपेक्षित और असहाय बना दिया है । कियोकी उनके परिजन तो अर्थोपाजन की होड़ में उन्हें एकाकी और कष्टप्रद जीवन भोगने के लिय छोड़ गये है । परिवार के चले जाने से उमे के इस पड़ाव पर जब शारिरीक क्षमता शिथिल होती के । परिवार के वृद्ध जन जो किसी समय में वट वृक्ष की भाँती होते थे जिनकी छत्रछाया में परिवार नाम की संस्था कलती फलती थी वह एकाकी बेसहारा या फिर घर में केवल स्वार्थ पूर्ति के साधन और वस्तु में तबदिल होगये है । जो काय आने पर ही जिनका महत्व बना रहता है । कवियित्री अनामिका ने अपनी कवितओं में उपेक्षित वृद्ध स्त्रीयो की पीड़ा को चित्रित क्या है ।

अनामिका एक ऐसी ही संवेदनशील कवयित्री हो जिन्होंने अपने कवितओं के माध्यम से बुजुर्ग स्त्रियों की पीड़ा व परिवार के लिये उनके महत्व को प्रस्तुत किया है । उनकी 'वृद्धाएँ' कविता आज के परिवेश को चित्रित करती है जहाँ परिवार में वृद्धजन उपेक्षित है द्य युवा पीढ़ी अपने बजुर्गो को प्रति संवेदन शून्य हो रही है स्वार्थ के लिय वृधो का अनादर होने लगा है द्य उन्हें फालतू वास्तु समझा जाने लगा है । अनामिक अपनी 'वृद्धाएँ' कविता में वृद्ध स्त्री को उस जीण—शिर्ड वस्त्र को समान बताती है जो जीण—शिर्ड होने पर बहुरूपों में प्रयुक्त होने लगता है जैसे झाड़न, पोंछा, नाडा इत्यादि ये सब घर के लिये अत्यंत जरुरी सामान होता है ठीक उसी प्रकार वृद्ध हो जाने पर स्त्रियों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है । बन्धन की श्रंखलाओं में ममता, लाड, दुलार की कडिया मजबूती से, किन्तु उसका भावनात्मक दोहन होने लगता है । जिस स्त्री के जीवन का प्रारम्भ गृहस्ती की सुरूआत करने में बिट जाता है, अंत में उसे घर परिवार से अधिकांशत उपेक्ष मिलती है । वह मनुष्य से मशीन बन जाता है घर में बच्चे संभालने से लेकर सब्जी साफ करने के कम के लिये वह उपयोगी सिद्ध होने लगती है ।

जीर्णाणी वस्त्राणि के नाम पर
बर्ड जाती है उसकी उपयोगित
कही न कही—सबसे—मिल जाता है उनका तारछन्दः
सार्वजानिक हो जाती है उसकी निजता।

आर्थात् उसकी अपनी कोई इच्छा नही रह जाती मात्र उन्हें वास्तु समझा जाता है, जिसका अधिक से अधिक उपयोग व दोहन किया जा सके ऐसी स्थितियाँ आज परिवारों में देखने को मिल जाता है । जहाँ वृद्ध स्त्रियों की भावनाएँ गौण हो जाती है, परिवार में उसका स्थान आवश्यकतानुसार निर्धारित हो जाता है द्य अनामिका अपनी कविता में कहती है वृद्धाएँ धरती का नमक कही जाती है । यहाँ 'नमक' का आर्थ मान प्रतिष्टा, संरक्षक होने से है । भारतीय परिवेश में नमक का महत्व अधिक है । अनामिका कहती है दृ
किसी ने कहा था,

जो घर में हो कोई वृद्धा
खाना ज्यादा अच्छा पकता हैं
पर्दे—पेटीकोट और पायजामें भी
दर्जी और रफूगर के मुहताज नहीं रहते ।

आज के परिवर्तित व प्रदूषित सांस्कृतिक परिवेश में रिश्ते उस वस्तु की भाँति हो गये है, जो उपयोगी रहने पर ही घर में रहती है अन्यथा उन्हें घर से हटा दिया जाता है । उक्त पँक्तियों में वृद्ध स्त्री का महत्व बताया है, जब परिवार के लोगों में स्वार्थपरता हावी होने लगती है, तो संवेदन शून्यता अनावृत होकर इन वृद्धाओं की उपेक्षा, अनादर व तिरस्कार के रूप में सामने आता है । आगे वे कहती है जिन लोकगीतों, लोककथाओं और कथा समयकों से हम अपना ज्ञान

समृद्ध करते है । उन गीतों को गाने वाली वृद्धाएँ घर में किसी मेहमान के आने पर बैठक से दूर छिपने का प्रयास करती है ।

लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती,
छुप—छुप कर रहती है, चाय सी, माया सी ।

इन पँक्तियों से भीष्म सहनी की कहानी 'चीफ की दावत' का सहसा स्मरण हो आता है जिसमें अपने बॉस को प्रसन्न करने के लिये पुत्र अपने घर को सुसज्जित करता है तथा अपने बुदी माँ को कोठरी में रहने के लिये कहता है । आगे कवित्री वृद्ध स्त्री की उपयोगिता के विषय में कहती है ।

'कपडों की छाती फटती है तो
बढ़ जाती है, उसकी उपयोगिता ।

आज की पीढ़ी बुगुर्गो की जिम्मेदारी वहन करने से बच रही है । व्यक्तिवादी प्रवात्ति आज आर्थ तत्व की परिधि में कसी हुई है, वृद्धों का अनादर हो राह है उन्हें व्यर्थ की वस्तु की तरह समझ जा रहा है जो अत्यन्त शोचनीय व चिन्तन का विषय है । पारिवारिक मूल्यों की टूटन बर्ड रही है ।

कवयित्री अनामिका ने यांत्रिक युग की बढ़ती विसंगतियों का चित्रण क्या है, जहाँ सब रिश्ते स्वार्थ के बलिवेदी पर होम कर दिए गये है आधुनिक युग में रिश्तों में बढ़ती स्वार्थ प्रवृत्ति की स्थिति पर सविता जैन अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है — स्वातान्त्रोत्तर भारत का एक नविन परिवर्तित रूप हमारे सामने आता है, जहाँ एक और परम्परा से चले आ रहे रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी और सामाजिक—पारिवारिक सम्बन्धों के परम्पराबद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था द्य परम्परा से विच्छिन्न होकर तथा सभी प्राचीन मानव सम्बन्धों के मोहपाश से मुक्त पिता—पुत्र, माँ—बेटी, पति—पत्नी या भाई—बहन जैसे निकटतम सम्बन्धों में भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है जो एक दूसरे को पास सहते हुए भी बहुत बूर कर देता है ।

वृद्ध स्त्री जो असहाय हो गयी है अपने पुत्र व बहू के अधीन होकर अपनी इच्छाए मन में दबाती है द्य गाँव जाने की बात सोचने पर घर वालों को व्यवस्था बिगड़ने का डर सताता है वे सब मिलकर बुढ़ी माँ को गाव जाने से सोकते हैं—

और सोचती है बैचेनी से—
गाँ गए बहुत दिन हुए
बस उनके यह सोचने भर से
जादू से घर में सब हो जात है ठीक ठाक
सब कहते है, अरे! अभी कहाँ जाओगी ?
अभी तो हमें जाना है बाहर, बच्चों को रखेगा कौन ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अनामिका ने अपनी कविता 'वृद्धाएँ' के अन्तर्गत वर्तमान जीवन विडम्बनाओं विसंगतियों व संवेदन शुन्यता की स्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है द्यजहाँ वे वृद्ध स्त्रयाँ जो परिवार का आधार होती थी आज अपने ही घर परिवार में उपेक्षित व कम आने वाली उपयोगी वस्तु में परिवर्तित कर दी गई है द्य यह प्रश्न विचारणीय है जो समाज का विकृत स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है आवश्यकता है जो समाज का विकृत स्वरूप हमारे समक्ष करता है आवश्यकता है बच्चों को घर को बुजुर्गो के प्रति सम्मान व आदर का भव सिखाने व उनके अनुभवों से सीख लेने की जिससे उका मन सम्मान व प्रतिष्ठा पुनःस्थापित हो सकें द्य साथ ही उनकी भावनाओं, मन: स्थिति, अपेक्षओं को महसूस करने की जिससे उनका बुढ़ापा आनन्दपूर्ण वातावरण में व्यतीत हो सके ।

संदर्भ :

१. अनामिका की कविताएँ : पुनश्चर्या पाठ्य सामग्री से पृ.—४८४ ।

२. अनामिका की कविताएँ : पुनश्चर्या पाठ्य सामग्री से पृ.—.४८४ ।

३. अनामिका की कविताएँ : पुनश्चर्या पाठ्य सामग्री से पृ.—४८४ ।

४. अनामिका की कविताएँ : पुनश्चर्या पाठ्य सामग्री से पृ.—४८३ ।

५. अनामिका की कविताएँ : डॉ. भैरू लाल गर्ग,पृ.—७७ ।

६. अनामिका की कविताएँ : पुनश्चर्या पाठ्य सामग्री से पृ.—४८४ ।

❑❑❑

परिशिष्ट

(साक्षात्कार)

परिशिष्ट

(साक्षात्कार)

साहित्य सृजन की प्रकृति प्रक्रिया में साहित्यकार की अपनी दृष्टि सोच व अनुभूति समाहित रहती है। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य का समग्र अध्ययन करने के पश्चात् "डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' के गद्य साहित्य का वाग्वैदग्ध्य" विषय पर शोध कार्य करते हुए इनके गद्य साहित्य में वाक् कौशल के विविध आयाम स्पष्ट हुए। मैंने अपनी दृष्टि से इसका विश्लेषण व मूल्यांकन किया। किन्तु साहित्य सृजन के मूल में कौन सी प्रेरणा रही होगी यह गंभीर व विचारणीय प्रश्न था। अपनी जिज्ञासा का समन करने के लिए मैंने डॉ. दयाकृष्ण विजय के निवास बी–सिविल लाईन्स कोटा पर जाकर 26 दिसम्बर 2018 को उनसे लम्बी बात–चीत की। अपनी सृजन यात्रा के विविध पक्षों पर मेरे द्वारा किये गये प्रश्नों का डॉ. विजय ने बड़ी सहज व सरल भाव से उत्तर दिये। प्रस्तुत साक्षात्कार में उनके जीवन साहित्य यात्रा से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिली।

ऋचा भार्गव : कृपया अपने जीवन तथा शिक्षा के संबंध में कुछ विस्तार से बताइए?

डॉ. विजय : जन्म–8 अप्रेल 1929 को ग्राम छजावा, तहसील–अटरु, जिला बाराँ में हुआ। मेरी शिक्षा कवाई तहसील अटरु कक्षा चार तक। कक्षा 7 छिपाबड़ौद से तथा 8वीं कक्षा अकलेरा जिला झालावाड़ से, उसके बाद की शिक्षा सूरजपोल सैकेण्ड्री स्कूल से हुई। तत्पश्चात राजकीय महाविद्यालय से स्नातक की शिक्षा पूर्ण की बाद की शिक्षा Ph.D. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से की। मेरी एक बहन है। मेरी माता का मेरे सिर से साया मेरे जन्म के कुछ समय बाद उठ गया था। मेरे पिता हल्का पटवारी थे। बाद में कानूनगो बने।

ऋचा भार्गव : आपने परिवार व समाज पर आधारित कहानियाँ लिखी हैं। आपके विचार से तत्कालीन परिवेश व वर्तमान में क्या बदलाव आया है?

डॉ. विजय : मैंने अब तक अपनी सृजन यात्रा में विविध विधाओं पर आधारित नाटक, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि का सृजन किया है। अब तक में लगभग 50 पुस्तकें छप चुकी है। जिनमें 25 पुस्तकें काव्य पर आधारित है। खण्ड काव्य

व महाकाव्य पर भी मेरी लेखनी चली है। बचपन से आज तक समाज में कॉफी परिवर्तन आया है। सामाजिक स्तर पर मेरे कहानी संग्रह 'उलझन' जोकि 1952 में प्रकाशित हुआ। उसमें तत्कालीन परिवेश का मैंने चित्रण किया है। उसमें गरीबी बेरोजगारी धार्मिक आस्था दहेज प्रथा त्रिकोणीय प्रेम गृहस्थ जीवन से सम्बंधित अनेक कहानियाँ लिखी है। तब लोगों का जीवन सहज व सरल था। आवश्यकताएँ सीमित थी। लेकिन आज इन 66 वर्षों के दौरान सब कुछ बदल चुका है। प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। अर्थ की प्रधानता ने रिश्तों को खोखला कर दिया है। सहनशीलता कम हो रही है। समाज में परिवार का स्वरूप बदल रहा है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। इस प्रकार का परिवर्तन महसूस मैं कर रहा हूँ।

ऋचा भार्गव : आपके सम्पूर्ण साहित्य में संस्कृति की निर्झरिणी प्रवाहित है। कृपया प्रकाश डालें?

डॉ. विजय : मेरे परिवार में संस्कार प्रमुख रहे हैं। संस्कारित परिवेश में लालन–पालन होने के कारण इसका प्रभाव मेरे समग्र चिन्तन पर पड़ा। इसका प्रभाव मेरे साहित्य सृजन में भी दिखाई देने का यही कारण है। संस्कारित माहौल इसका प्रमुख कारण रहा है। भारतीय दर्शन व संस्कृति का में अमर उपासक हूँ। इसका प्रभाव मेरे साहित्य सृजन में आना स्वाभाविक हैं।

ऋचा भार्गव : रमताराम उपन्यास में अपने धर्म की विशद् चर्चा की है। इस उपन्यास के लेखन के पीछे आपकी प्रेरणा स्त्रोत भी रहा है?

डॉ. विजय : रमताराम के पीछे मेरी धारणा विकसित हुई स्वामी रामचरण जी महाराज विजयवर्गीय होने की वजह से मैंने उन पर कुछ लिखा मैंने स्वामी जी के समाज प्रबोधक प्रवचनों रामद्वारा स्थापना तथा फूल डोल अवसर को स्थान–स्थान पर विस्तार से प्रस्तुत किया है तथा स्वामी रामचरण महाराज के लिए उपयोगी संदेशों को मैंने 'रमताराम' उपन्यास में गहराई के साथ चित्रित करते हुए उनकी भक्ति व दर्शन को बताया है।

ऋचा भार्गव : आपकी कहानियों में हाड़ौती अंचल के परिवेश को चित्रित किया गया है? आज आप क्या महसूस करते हैं?

डॉ. विजय : मैं हाड़ौती अंचल में ही मेरा लालन पालन हुआ। अटरु, छिपाबड़ौद, बाराँ झालावाड़ आदि स्थानों पर होने के कारण वहाँ के परिवेश रहन सहन, खान–पान आदि सभी पर हाड़ौती अंचल की गंध समायी हुई है। इन कहानियों में सामाजिक परिवर्तन की बयार व चिन्तन को प्रस्तुत किया गया है। समाज की समस्याओं को चित्रित करते हुए। समाज व परिवार के लिए आदर्श स्थापित करना मेरा उद्देश्य रहा है।

ऋचा भार्गव : गद्य की विविध विधाओं पर आपने सृजन किया है। आपकी प्रिया विधा कौन सी हैं?

डॉ. विजय : हाँ मैंने गद्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि। किन्तु मेरी प्रिय विधा कविता ही है। वह मेरे हृदय के करीब है। अंजली नामक महाकाव्य 14 वर्ष की आयु में लिख लिया था। इसे मैं माँ सरस्वती की अपने ऊपर कृपा मानता हूँ मेरी लेखनी से विविध विधाओं का कोई भी पक्ष शायद नहीं छूटा है।

ऋचा भार्गव : आपने साहित्य यात्रा के विभिन्न पड़ाव पार किए हैं। आज आप सृजन की दृष्टि से क्या अन्तर महसूस करते हैं?

डॉ. विजय : हाँ इस साहित्य यात्रा में मैंने विभिन्न पड़ाव पार करते हुए अपने सृजन धर्म का निर्वहन किया है। इस यात्रा में सामाजिक स्तर पर आये परिवर्तनों के आहट को महसूस करते हुए मैंने इन्हें कहानी, नाटक, उपन्यास सभी में दर्शाया है। आज समय बहुत परिवर्तित हुआ है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिदृश्य में परिवर्तन आया है। लोगों की सोच व दृष्टि बदली हैं। समाज में सहनशीलता व सरलता के स्थान पर प्रतिस्पर्धा और महत्त्वाकांक्षा प्रबल हुई है।

ऋचा भार्गव : तकनीकी व बाजारवाद में साहित्य व समाज को कहाँ तक प्रभावित किया है?

डॉ. विजय : मेरे सम्पूर्ण सृजन में संस्कृति प्रमुख है। सांस्कृतिक चिन्तन ही मेरे सम्पूर्ण साहित्य में दिखाई देता है। आज बाजारवाद और तकनीकी ने समाज को प्रभावित किया है। तो इन सबका साहित्य में आना स्वाभाविक है। किन्तु मेरे गद्य साहित्य में इन सब का प्रभाव न के समान ही है। क्योंकि मेरी

कहानियाँ उस समय लिखी गई थी जब बाजारवाद और तकनीकी संसाधनों में पैर नहीं पसारे थे। इसलिए उनमें धर्म, आस्था, ईश्वरी विश्वास, सांस्कृतिक चिन्तन की प्रमुखता है।

ऋचा भार्गव : आपकी कहानियों में सूक्त वाक्य स्थान–स्थान पर प्रयुक्त है, क्या कारण है बताइए?

डॉ. विजय : निश्चित रूप से यह सही है कि मेरी कहानियों में सूक्ति प्रयोग स्थान–स्थान पर मिलता है। इन सबके पीछे मेरा परिवेश संस्कृतिक के प्रति अगाध प्रेम गहन अध्ययन प्रमुख रहा है और शिल्प की दृष्टि से सोचा जाए तो प्रत्येक साहित्यकार का अपना ढंग या तरीका होता है। जो उसके लेखन का परिचायक होता है। मेरी कहानियों में कोई न कोई संदेश छिपा हुआ है जिन्हें मैंने सूक्तियों के माध्यम पूर्ण करने का प्रयास किया है। किन्तु धर्म, दर्शन के प्रति गहन अध्ययन व रूचि ने सूक्त प्रयोग को समृद्ध किया है इसलिए यह मेरे साहित्य में स्थान–स्थान पर दिखई देते हैं।

ऋचा भार्गव : आपने धर्म में धर्म और दर्शन की विशद व्याख्या की है। इसका प्रमुख उद्देश्य क्या रहा?

डॉ. विजय : हाँ यह सच है कि मेरे अनेक निबंधों में धर्म, दर्शन, वैद, ऋचा, उपनिषद् आरण्यक पर मैंने विशद चर्चा की है मेरे कई निबंधों में इसे देखा जा सकता है सांस्कृति के वागर्थ, साहित्य, संस्कृति और युग बोध, संस्कृति राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य आदि प्रमुख निबंध संग्रह है जिनमें वेद, धर्म, दर्शन, उपनिषद् आदि के चिन्तन को मैंने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। धर्म और दर्शन का प्रभाव मेरे ऊपर बचपन से ही रहा। मैं इसी परिवेश में पला बढ़ा हूँ। पारिवारिक पृष्ठभूमि, संस्कारों की प्रमुख भूमिका रही है।

इस प्रकार डॉ. विजय के जीवन से जुड़े विविध पहलूओं को मैंने साक्षात्कार के माध्यम से जानने का प्रयास किया अन्त में धन्यवाद ज्ञापन के बाद यह लम्बी बातचीत समाप्त हुई। डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' जी ने अपना आशीर्वाद देते हुए। बड़ी आत्मीयता के साथ मुझे पुनः मिलने को कहा।

♦♦♦♦